Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत प्रवचन

भाग-४

('बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

✽ भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला, पुष्प-२१० ✽

ॐ

परमात्मने नमः।

श्री

वचनामृत-प्रवचन

[चौथा भाग]

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृत
पर
परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

संकलनकार :

ब्र. श्री चन्दुलाल खीमचन्द झोबालिया

卐

अनुवादक :

श्री मगनलाल जैन

卐

प्रकाशक :

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ-364250 (सौराष्ट्र)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथमावृत्ति : 1500 प्रति वि.सं. 2063 ई.स. 2007

मुद्रक:
स्मृति ऑफसेट
जैन विद्यार्थी गृह, सोनगढ-364250
Phone : (02846) 244081

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated by Dr Vinod Shah Blackburn, UK who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of VachanAmrut Pravachan Part 4 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	30 May 2010	First electronic version

• પરમોપકારી પૂજ્ય ગુરુદેવ શ્રી કાનજી સ્વામી •

प्रकाशकीय निवेदन

भारतवर्षमें धर्मजिज्ञासु जीवोंके महान भाग्योदयसे इस शताब्दिमें अध्यात्ममूर्ति आत्मज्ञसंत सत्पुरुष परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका महान उदय हुआ। उनकी प्रबल वाणीके पुनितयोगसे प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनने १८ सालकी लघुवयमें अतीन्द्रिय आनंदरसप्लावित स्वात्मानुभूति-समन्वित सम्यक्‌दर्शनको प्राप्त कर लिया।

पूज्य बहिनश्रीने ब्र. बहिनोंके आश्रममें रात्रि स्वाध्यायमें किये हुए प्रवचनोंमेंसे, आत्मार्थी ब्र. बहिनों द्वारा लिखी गयी नोंधमेंसे ''बहिनश्रीके वचनामृत'' ग्रंथ प्रकाशित किया गया। यह ग्रंथ पूज्य गुरुदेवश्रीको बहुत पसंद आया। उन्होंने ''यह पुस्तक द्वादशांगका सार है'' ऐसा कहकर वचनामृतकी बहुत महिमा बतायी। इसका अभ्यास करनेका अनुरोध किया तथा मुमुक्षुओंके भक्तिभीगे अनुग्रहसे ''बहिनश्रीके वचनामृत'' ग्रंथ पर पूज्य गुरुदेवश्रीने अनुभवरसझरते प्रवचन किये।

इन प्रवचनोंको पूज्य गुरुदेवश्रीके अंतेवासी ब्र. श्री चंदुभाईने गुर्जर भाषामें लिपिबद्ध किये तथा चार भागोंमें इन्हें प्रकाशित किया गया। इन प्रवचनोंसे मुमुक्षु समाज अत्यंत लाभान्वित हुआ। इन प्रवचनोंकी हिन्दीभाषी मुमुक्षु समाजकी ओरसे भी बहुत मांग होनेसे श्री मगनलालजी जैन द्वारा इनका अनुवाद कराके यह सभी प्रवचन हिन्दीमें प्रकाशित किये जा रहे हैं। आशा है कि इस ग्रंथके स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षुजन निज आत्मसाधनामें प्रवृत्त होंगे।

इस ग्रंथके प्रकाशनमें ब्र. श्री चंदुभाईने अति परिश्रमपूर्वक तथा अति उल्लसितभावसे जो सहयोग दिया है इस हेतु हम उनके अत्यन्त उपकृत है। इस ग्रंथका सुन्दर मुद्रण-कार्य शीघ्रतासे करनेके लिये स्मृति ऑफसेट, सोनगढके भी हम अत्यंत आभारी हैं।

वैशाख शुक्ला दूज, सं २०६३
(पूज्य गुरुदेवश्रीकी ११८वीं जन्मजयंती)

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ–३६४२५० (सौराष्ट्र)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

नमः श्रीसद्गुरुदेवाय।

प्रस्तावना

भारतवर्षकी भव्य वसुंधरा संतरत्नोंकी पुण्य जन्मस्थली है। पवित्र आर्यभूमिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। उसमें सौराष्ट्रका भी प्रमुख स्थान है। बाईसवें तीर्थंकरदेव श्री नेमिनाथ भगवानके समुद्भवसे सौराष्ट्रकी भूमि पावन हुई है। अर्वाचीन युगमें भी अध्यात्मप्रधान जैनाकाशमें चमकते हुए नक्षत्रोंके समान समीपसमयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञ संत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबहिन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओंकी जगतको भेट देकर सौराष्ट्रकी वसुंधरा पुण्यभूमि बनी है।

परम देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामीकी दिव्यध्वनि द्वारा पुनः प्रवाहित एवं गुरुपरम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परमपावन अध्यात्मप्रवाहको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसार आदि प्राभृत-भाजनोंमें सूत्रबद्ध करके चिरंजीव किया है उस पुनीत प्रवाहके अमृतका पान करके, अंतरके पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूतिसमृद्ध आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके जिन्होंने सौराष्ट्र-गुजरातमें, समग्र भारतवर्षमें तथा विदेशमें भी शुद्धात्मतत्त्वप्रमुख अध्यात्मविद्याका पवित्र आन्दोलन प्रसारित कर बीसवीं–इक्कीसवीं सदीके विषमय भौतिकयुगमें दुःखार्त जीवोंका उद्धार किया है उन जिनशासनप्रभावक परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी शुद्धात्मसुधारसस्यंदी मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ-धड़कता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्यझरता जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेश एवं अन्य अनेकानेक उपकारोंका वर्णन चाहे जितने संक्षिप्त रूपमें किया जाय तथापि अनेक पृष्ठ भर जायँगे इसलिये पूज्य गुरुदेवका संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन इस वचनामृत-प्रवचन ग्रन्थमें अन्यत्र दिया है।

'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके प्रवचनकार परमोपकारी परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी शुद्धात्मदृष्टिवंत, स्वरूपानुभवी, वीतराग देव-गुरुके परमभक्त, बालब्रह्मचारी, समयसार आदि अनेक गहन शास्त्रोंके पारगामी, स्वानुभवस्यंदी भावश्रुतलब्धिके धनी, सततज्ञानोपयोगी, वैराग्यमूर्ति, नयाधिराज शुद्धनयकी प्रमुखतासहित सम्यक् अनेकान्तरूप अध्यात्मतत्त्वके उत्तम व्याख्यानकार एवं आश्चर्यकारी प्रभावना उदयके धारक अध्यात्मयुगस्रष्टा महापुरुष हैं। उनके यह प्रवचन पढ़ते ही पाठकको उनका गाढ़ अध्यात्मप्रेम, शुद्धात्म-अनुभव, स्वरूपकी ओर ढलती हुई परिणति, वीतरागभक्तिके रंगमें रंगा हुआ चित्त, ज्ञायकदेवके तलका स्पर्श करनेवाला अगाध श्रुतज्ञान एवं प्रभावशाली परम कल्याणकारी वचनयोगका ख्याल आ जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवने अध्यात्मनवनीत समान इस 'वचनामृत'के प्रत्येक बोलको हर ओरसे छनकर उन संक्षिप्त सूत्रवाक्योंके विराट अर्थोंको इन प्रवचनोंमें खोला है। सबके अनुभवमें आये हों ऐसे घरेलू प्रसंगोंके अनेकों उदाहरणों द्वारा, अतिशय सचोट तथापि सुगम ऐसे अनेक न्यायों द्वारा तथा अनेक यथोचित दृष्टान्तों द्वारा पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के अर्थगम्भीर सूक्ष्मभावोंको अतिशय स्पष्ट एवं सरल बनाया है। जीवके कैसे भाव रहें तब जीव–पुद्गलका स्वतंत्र परिणमन समझमें आया कहा जाय, कैसे भाव रहें तब आत्माका यथार्थ स्वरूप समझमें आया माना जाय, भूतार्थ ज्ञायक निज ध्रुवतत्त्वका कैसा आश्रय हो तो द्रव्यदृष्टि परिणमी कही जाय, कैसे-कैसे भाव रहें तब स्वावलम्बी पुरुषार्थका आदर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-वीर्या दिककी प्राप्ति हुई कही जाय,–आदि मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत विषय मनुष्यके जीवनमें होनेवाली अनेक घटनाओंके सचोट उदाहरण देकर ऐसे स्पष्ट किये गये हैं कि आत्मार्थीको उस-उस विषयका स्पष्ट भावभासन होकर अपूर्व गंभीर अर्थ दृष्टिगोचर हों और वह, शुभभावरूप बंधमार्गमें मोक्षमार्गकी कल्पना छोड़कर, शुद्धभावरूप यथार्थ मोक्षमार्गको समझकर, सम्यक् पुरुषार्थमें लग जाय। इस प्रकार 'वचनामृत'के स्वानुभूतिदायक गंभीर भावोंको, आरपार उतर जाय ऐसी प्रभावकारी भाषामें तथा अतिशय मधुर, नित्य-नवीन वैविध्यपूर्ण शैलीसे अत्यन्त स्पष्टरूपसे समझाकर गुरुदेवने आत्मार्थी जगतपर असीम उपकार किया है। 'वचनामृत'की सादी भाषाके गर्भमें छिपे हुए अनमोल तत्त्वरत्नोंके मूल्य स्वानुभवविभूषित गुरुदेवने जगतविदित किये हैं।

यह परम पुनीत प्रवचन स्वानुभूतिके पंथको अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्रकाशित करते हैं इतना ही नहीं, किन्तु साथ-साथ मुमुक्षुजीवोंके हृदयमें स्वानुभवकी रुचि एवं पुरुषार्थ जागृत करके, कुछ अंशमें सत्पुरुषके प्रत्यक्ष उपदेश जैसा चमत्कारिक कार्य करते हैं। प्रवचनोंकी वाणी इतनी सहज, भावार्द्र, चेतनवंती और जोरदार है कि चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके स्वानुभवस्यंदी चैतन्यभाव ही मानो मूर्तिमंत होकर वाणी-प्रवाहरूपसे बह रहे न हों! ऐसी अत्यंत भाववाहिनी–अंतर्वेदनको अति उग्ररूपसे व्यक्त करती, शुद्धात्मा–ज्ञायक–के प्रति अपार प्रेमसे छलकती, हृदयस्पर्शी जोरदार वाणी सुपात्र पाठकके हृदयको आन्दोलित कर देती है और उसकी विपरीत रुचिको क्षीण करके शुद्धात्मरुचिको जागृत करती है। प्रवचनोंके प्रत्येक पृष्ठमें शुद्धात्ममहिमाका अत्यंत भक्तिमय वातावरण गूँज रहा है और उसके प्रत्येक शब्दमेंसे मधुर अनुभवरस टपक रहा है। उस शुद्धात्मभक्तिरससे और अनुभवरससे मुमुक्षुका हृदय भीग जाता है, उसे शुद्धात्माकी लय लगती है, शुद्धात्माके सिवा सर्व भाव उसे तुच्छ भासते हैं और पुरुषार्थ 'चल पड़ूँ, चल पड़ूँ' होने लगता है। ऐसी अपूर्व चमत्कारिक शक्ति पुस्तकारूढ़ प्रवचनवाणीमें क्वचित् ही देखनेमें आती है।

इस प्रकार अध्यात्मतत्त्वविज्ञानके गहन रहस्य अमृत-झरती वाणीमें समझाकर और साथ-साथ शुद्धात्मरुचिको जागृत करके, पुरुषार्थकी प्रेरणा देकर, प्रत्यक्ष सत्समागमकी झाँकी करानेवाले, ये प्रवचन जैनसाहित्यमें अद्वितीय हैं। प्रत्यक्ष सत्समागमके वियोगमें मुमुक्षुओंको ये प्रचवन अनन्य आधारभूत हैं। निरालम्बी पुरुषार्थ समझाना और प्रेरित करना वही उद्देश होनेके साथ 'वचनामृत'के सर्वांग स्पष्टीकरणस्वरूप इन प्रवचनोंमें समस्त शास्त्रोंके सर्व प्रयोजनभूत तत्त्वोंका तलस्पर्शी दर्शन आ गया है। श्रुतामृतका सुखसिन्धु मानों इन प्रवचनोंमें लहरा रहा है। यह प्रवचनग्रन्थ हजारों प्रश्नोंके निराकरणका महाकोष है, शुद्धात्मतत्त्वकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि उत्पन्न करके परके ओरकी रुचि नष्ट करनेकी परम औषधि है, स्वानुभूतिका सुगम पंथ है और भिन्न भिन्न कोटिके सर्व आत्मार्थियोंको अत्यन्त उपकारक है। परम पूज्य गुरुदेवने इन अमृतसागर समान प्रवचनोंकी भेट देकर भारतवर्षके मुमुक्षुओंको निहाल कर दिया है।

स्वरूपसुधा प्राप्त करनेके इच्छुक जीवोंको इन परम पवित्र प्रवचनोंका बारम्बार मनन करने योग्य है। संसार-विषवृक्षको छेदनेका वह अमोघ शस्त्र है। डालियों-पत्तोंको पकड़े बिना वे मूलपर ही आघात करते हैं। इस अल्पायु मनुष्यभवमें जीवका सर्वप्रथम कर्त्तव्य एक निज शुद्धात्माका बहुमान, प्रतीति एवं अनुभव है। वे बहुमानादि करानेमें ये प्रवचन परम निमित्तभूत हैं। मुमुक्षु अतिशय उल्लासपूर्वक उनका अभ्यास करके, उग्र पुरुषार्थसे उनमें कहे हुए भावोंको सम्पूर्णतया हृदयमें उतार कर, शुद्धात्माकी रुचि, प्रतीति तथा अनुभव करके, शाश्वत परमानन्दको प्राप्त करो।

परमोपकारी परमकृपालु परम पूज्य गुरुदेवश्रीने जिनके 'वचनामृत' पर ये सुन्दर भाववाही प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति स्वानुभूतिपरिणत पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके संक्षिप्त परिचयके साथ, पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयमें वर्तती—उनकी आध्यात्मिक पवित्रता, स्वानुभूति तथा लोकोत्तर प्रशान्त जीवन सम्बन्धी—विशिष्ट महिमाका और पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभवदशामेंसे प्रवाहित 'वचनामृत'के विषयमें पूज्यपाद गुरुदेवश्रीके उच्चारे हुए पवित्र उद्‌गारोंका, आत्मार्थी जीवोंके लाभ हेतु यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

जिनकी पवित्र परिणतिमेंसे भव्यजनकल्याणकारी 'वचनामृत'का पुनीत प्रवाह बहा है उन महान आत्माकी अंतरंग सहजदशाका—शुद्धज्ञायकभावसमर्पित सर्वस्व लोकोत्तर जीवनका क्या वर्णन हो सकता है? उन पवित्रात्मा पूज्य बहिनश्री—चम्पाबेनका जन्म वि. सं. १९७० भाद्रपद कृष्णा २, शुक्रवार, तदनुसार ता. ७-८-१९१४के शुभदिन वढवाण शहरमें हुआ था। पिताजीका नाम श्री जेठालाल मोतीचन्द शाह, माताजीका नाम तेजबा। श्री व्रजलालभाई तथा विद्वान श्री हिम्मतलालभाई—ये दो भाई दो बहिनें—इसप्रकार चार भाई-बहिनोंमें चम्पाबेन सबसे छोटीं। पूज्य चम्पाबेनका प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व—अंतर तथा बाह्य—अति गम्भीर और महान है। बचपनसे ही वैराग्यप्रेम, कुशाग्रबुद्धि, चिन्तनशील स्वभाव तथा दृढ़ निर्णयशक्ति आदि अनेक गुण उनमें सहज उपलब्ध हैं।

वैराग्यभीना और सत्यशोधक उनका हृदय आत्माकी प्राप्तिके लिये तड़फता था। पूज्य गुरुदेवका सत्समागम हुआ, उनकी अध्यात्मामृतझरती अमोघ वज्रवाणीने बहिनश्रीका अंतरंग सत्त्व झलका दिया। निजशुद्धात्मदर्शन—सम्यक्त्व प्राप्त करनेकी आकांक्षा तीव्र बनी। उन्होंने सर्व शक्ति आत्मामें केन्द्रित करके दिन-रात दृष्टिकी निर्मलता तथा स्वात्मानुभूतिकी साक्षात् प्राप्तिके लिये अथक्, अविरत पुरुषार्थ किया, और अन्तमें तीव्र तड़पके परिणामस्वरूप मात्र अठारह वर्षकी छोटी उम्रमें ही वि. सं. १९८९, चैत्र कृष्णा दसवींके दिन वांकानेरमें अपना अप्रतिम पुरुषार्थ सफल किया—भवसंततिछेदक, कल्याणबीज सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, निज भगवान आत्माका अद्‌भुत साक्षात्कार हुआ और परिणतिमें अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय निर्मल निर्विकल्प स्वात्मानुभूतिका मंगलमय अमृतझरना बहने लगा। अहा! धन्य हैं वे महान आत्मा, धन्य है उनका ध्येयलक्षी अचल पुरुषार्थ और धन्य है उनका अवतार कि जिसमें उन्होंने अवतारसंततिके छेदनका महान कार्य किया!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिन-प्रतिदिन उस अमृतझरनेकी—सुधासिक्त आत्मसाधनाकी परिणति वृद्धिंगत होने लगी, और साथ ही साथ सोनगढ़में वि. सं. १९९३, वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन ज्ञानपरिणतिमें जातिस्मरण ज्ञानकी सातिशय निर्मलता भी प्रगट हुई। पूज्य गुरुदेवको स्वयंको कुछ बातोंका—अमुक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए ऊँची देहवाले राजकुमार, तीर्थंकरत्व इत्यादिका—जो 'भास' होता था उनका स्पष्ट सत्य निराकरण पूज्य बहिनश्रीके स्मरणज्ञानने कर दिया। पूज्य गुरुदेवके भूत, वर्तमान और भावी भवोंका आश्चर्यकारी अनुसंधान—गतभवमें श्रेष्ठीपुत्ररूपमें श्री सीमंधर भगवानकी सभामें प्रत्यक्ष श्रवण किया था वह—उनके स्मरणज्ञानने दिया। उस पवित्र अनुसंधानज्ञान द्वारा मुमुक्षु समाज पर विशिष्ट उपकार हुआ है।

परम पूज्य अध्यात्मयुगस्रष्टा करुणासागर गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका समस्त मुमुक्षु जगत पर अनंत-अनंत उपकार है। उनके विविध उपकारोंमेंसे एक महान उपकार यह है कि उन्होंने जिनके 'वचनामृत' पर स्वयं भावविभोर होकर यह अद्भुत प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति धन्यावतार भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र अलौकिक अंतरंगदशाकी यथार्थ पहिचान करायी है।

सुधास्यंदी-स्वात्मानुभूतिपरिणत, विशिष्टज्ञानविभूषित पूज्य बहिनश्रीकी सहज प्रशमरसझरती पवित्र मुद्रा ही मानो, साधकका मूर्त रूप हो तदनुसार सम्यक् मोक्षमार्गका मूल उपदेश दे रही है। शास्त्रोपम-गम्भीर तथापि सरल ऐसे उनके 'वचनामृत' विविध कोटिके सर्व जीवोंको अति उपकारक होते हैं, चमत्कारिक विशदतासे वस्तुस्वरूपको—शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी मुख्यतापूर्वक अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्वको—हस्तामलकवत् दर्शाते हैं और साधक जीवोंकी अटपटी अंतर परिणतिकी अविरुद्धरूपसे स्पष्ट सूझ देते हैं। कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री बहिनश्रीकी पवित्र दशाकी और 'वचनामृत'की महिमा बतलाते हुए सभामें अनेकबार अति प्रसन्नताका अनुभव करते थे। पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूतिविभूषित पवित्रता, अनेक भव सम्बन्धी धर्मविषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और 'वचनामृत'की विशिष्टताका मुक्तकण्ठसे प्रकाश करते हुए गुरुदेवकी प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओंकी दृष्टि समक्ष आज भी स्पष्ट तैरती है।

प्रशममूर्ति, धन्यावतार, गुणगम्भीर, उदारचित्त तथा देव-गुरुकी परमभक्त पूज्य बहिनश्री अंतरमें अतिमहान और बाह्यमें अति निर्लेप हैं। उनका आत्मलक्षी अंतरंग जीवन और उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्भुतदशा वर्णनातीत है। उनके विशुद्ध गहन व्यक्तित्व पर, उनकी दशाके पारखी पूज्य गुरुदेवने उन्हें 'भगवती' एवं 'जगदम्बा'के असाधारण विशेषण दिये हैं वह उनकी सहज अंतरंगदशाके तथा उनकी महानताके यथार्थ द्योतक हैं। हमेशा तोल-तोलकर वचन उच्चारनेवाले, तीक्ष्णदृष्टिवंत, गहन विचारक, स्वरूपानुभवी परम पूज्य गुरुदेवश्री अन्य किसी भी व्यक्तिको जिन विशेषणोंसे कभी विशेषित नहीं करते थे, ऐसे उपरोक्त दो महिमापूर्ण विशेषणोंसे पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनको अनेकबार प्रसन्नतापूर्वक बिरदाते थे, वही वास्तविकता पूज्य बहिनश्रीकी अद्भुत महत्ता अपने हृदयमें दृढ़रूपसे स्थापित करनेके लिये पर्याप्त है। इन विशेषणों द्वारा पूज्य गुरुदेवने संक्षेपसे उनके प्रति अहोभाव व्यक्त करता हुआ अपना हार्द प्रगट किया है। अहा! गुरुदेवके हार्दको तथा उन विशेषणोंकी मर्मभरी गहराईको हम गम्भीरतासे समझें, गुरुदेवके दिये हुए अध्यात्मबोधको जीवनमें बुन लेनेवाली इन 'भगवती माता'की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मसाधनाके आदर्शको दृष्टि समक्ष रखें और उनके जीवनमेंसे प्राप्त होनेवाली प्रेरणा द्वारा हम अपने आत्मार्थको साधें।

सचमुच 'भगवती माता' पूज्य बहिनश्री मात्र भारतवर्षकी ही नहीं, अपितु दृष्टिगम्य जगतकी अद्वितीय महिलारत्न हैं, मुमुक्षुसमाजकी शिरोमणि हैं, मुमुक्षुमहिला-समाजकी शिरछत्र हैं, कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंकी जीवनाधार हैं और आत्मार्थियोंकी महान आदर्श हैं।

स्वानुभूतिविभूषित पूज्य बहिनश्रीके असाधारण गुणगंभीर व्यक्तित्वका परिचय देते हुए पूज्य गुरुदेव स्वयं प्रसन्न हृदयसे सभामें अनेकबार प्रकाशित करते कि :—

"बहिनोंके महान भाग्य हैं कि चम्पाबेन जैसी 'धर्मरत्न' इस कालमें पैदा हुई हैं। बहिन तो भारतका अनमोल रतन हैं। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ उनको अंतरसे जागृत हुआ है। उनकी अंतरंग स्थिति कोई और ही है। उनकी सुदृढ़ निर्मल आत्मदृष्टि तथा निर्विकल्प स्वानुभूतिका जोड़ इस कालमें मिलना दुर्लभ है...असंख्य अरब वर्षका उन्हें जातिस्मरण ज्ञान है। बहिन जब ध्यानमें बैठती हैं तब कई बार तो अंतरमें भूल जाती हैं कि 'मैं महाविदेहमें हूँ या भरतमें' !!....बहिन तो अपने अंतरमें—आत्माके कार्यमें—ऐसी लीन हैं कि उन्हें बाहरकी कुछ पड़ी ही नहीं है। प्रवृत्तिका उन्हें किंचित् भी रस नहीं है। उनकी बाह्यमें प्रसिद्धि हो यह उन्हें स्वयंको बिलकुल अच्छा नहीं लगता। परन्तु हमें ऐसा भाव आता है कि बहिन कई वर्षतक छिपी रहीं, अब लोग बहिनको पहिचानें।"

—ऐसे वात्सल्योर्मिभरे भावोद्‌गारभरी पूज्य गुरुदेवकी मंगल वाणीमें जिनकी आध्यात्मिक पवित्र महिमा सभामें अनेकबार प्रसिद्ध हुई है उन पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके, उन्होंने महिला—शास्त्रसभामें तथा ब्रह्मचारिणी बहिनोंके समक्ष चर्चामें उच्चारे हुए—उनकी स्वानुभवस्यंदी ज्ञानधारामेंसे प्रवाहित—आत्मार्थ-पोषक वचनामृत लिपिबद्ध हों तो अनेक मुमुक्ष जीवोंको महान आत्मलाभका कारण होगा, ऐसी बहुत समयसे समाजके अनेक भाई-बहिनोंको उत्कट भावना वर्तती थी! उस शुभभावनाको साकार करनेमें, कुछ ब्रह्मचारिणी बहिनोंने पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी प्रवचनधारा तथा चर्चामेंसे अपनेको विशेष लाभ हो ऐसे वचनामृत लिख लिये थे, उनमेंसे विशिष्ट बोल चुनकर एक संग्रह तैयार किया गया, जो 'बहिनश्रीके वचनामृत' नामक पुस्तकरूपमें श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट—सोनगढ़की ओरसे वि. सं. २०३३में पूज्य बहिनश्रीकी ६४वीं जन्मजयन्ती-उत्सवके मंगल-अवसर पर प्रकाशित किया गया।

इस 'वचनामृत' पुस्तकका गहन अध्ययन करके, जिस प्रकार कुशल जौहरी रत्नको परख लेता है उसीप्रकार उसमें भरे हुए गंभीर भावोंको पूज्य गुरुदेवने तुरन्त परख लिया और श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़के अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशीसे कहा—"भाई! इस पुस्तककी लाख प्रतियाँ छपाओ।' (अभी तक—पाँच वर्षके अल्प समयमें ८६००० प्रतियाँ गुजराती, हिन्दी, मराठी तथा कन्नड़—इसप्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं।) अध्यात्मतत्त्व समझनेके लिये यह पुस्तक ध्यानपूर्वक पढ़नेको पूज्य गुरुदेव विशेषरूपसे कहते और नवागंतुकको प्रसन्नतासे भेट देते थे।

इस आत्मार्थिप्रिय अमूल्य पुस्तककी महत्ता, विभिन्न प्रसंगों पर निकले हुए गुरुदेवके मंगलमय पवित्र उद्‌गारोंमें देखें :—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

'(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समयसर प्रकाशित हो गई। बहिनको कहाँ बाहर आनेकी इच्छा है, किन्तु पुस्तकने उन्हें प्रगट कर दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव अति गम्भीर हैं। मैंने पूरी पढ़ ली है। एकबार नहीं लेकिन पच्चीसबार पढ़े तब भी संतोष न हो ऐसी पुस्तक है। दस हजार पुस्तकें छपवाकर हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के सब ग्राहकोंको भेट देना चाहिये ऐसा मुझे विचार आया।' (पूज्य गुरुदेवके भाव-अनुसार हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको यह पुस्तक भेट दी गई थी।)

''परिणमनमेंसे निकले हुए शब्द हैं। बेनकी तो निवृत्ति बहुत। निवृत्तिमेंसे आये हुए शब्द हैं। पुस्तकमें तो समयसारका सार आ गया है—अनुभवका सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' तो ऐसी वस्तु प्रगट हो गई है कि भारतमें सर्वत्र इसका प्रकाशन होना चाहिये।''

'यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी हैं कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात बाकी नहीं है। थोड़े शब्दोंमें द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगतके भाग्य कि ऐसी सादी भाषामें पुस्तक प्रकाशित हो गई। वीतरागके भावका रटन और मंथन है। सारे देशमें ढिंढोरा पिटेगा। जहाँ पुस्तक हाथमें आयी वहीं कहा कि एक लाख पुस्तकें छपना चाहिये।'

'मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है—सम्पूर्ण समयसारका सार आ गया है इसलिये सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक बाहर लोगोंके हाथमें पहुँचेगी तो डंका बजेगा। इसे पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जायँगे—ऐसी बात है। जगतको लाभका कारण है।'

''बेनकी पुस्तक (वचनामृत) बड़ी ऊँची है। सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्दमेंसे आयी हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है—माल भरा है। अति गम्भीर! थोड़े शब्दोंमें बहुत गंभीरता! यह तो अमृतधाराकी वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंगका सार है, सारमें सार तत्त्व आ गया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'की अपेक्षा यह पुस्तक अलौकिक है। जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु प्रगट हुई!''

'जो आनन्दमें जमकर बैठ गया है, जो अतीन्द्रिय आनन्दके ग्रास ले रहा है तथा जो अतीन्द्रिय आनन्दको गटागट पी रहा है ऐसे धर्मीका (—साधकका) यह स्वरूप बहिनके मुखसे (वचनामृतमें) आया है। बिलकुल सादी भाषा। प्रभुके समवसरणमें ऐसी बात चलती थी, भाई! अरे! यह बात बैठ जाय तो निहाल हो जाय! जिनेश्वरका जो आदेश है वह बहिन कह रही हैं।'

पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे अनेकबार 'वचनामृत'की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर मुमुक्षुसमाजने 'वचनामृत' पर प्रवचन द्वारा उसके गहन भावोंको समझानेकी प्रार्थना पूज्य गुरुदेवसे की। पूज्य गुरुदेवने भक्तोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और प्रवचन दिये। प्रवचनोंमें 'वचनामृत'के भावोंको खूब रसपूर्वक स्पष्ट किया। 'वचनामृत'में ४३२ बोल हैं; उन पर १८१ प्रवचन हुए हैं। वे प्रवचन चार भागोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनमेंसे यह पहला भाग है।

'बहिनश्रीके वचनामृत'में समादिष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयोंपर पूज्य गुरुदेवने इस प्रवचन ग्रन्थमें जो अद्‌भुत छानबीन की है—तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किये हैं, उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि—अहा! इसमें ऐसे अलौकिक भाव भरे हैं। सचमुच, पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के गहन भावोंको खोलकर मुमुक्षुओंपर महान उपकार किया है।

T-2

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये प्रवचन पूज्य बहिनश्रीकी चरणोपासिका कतिपय ब्रह्मचारी बहिनों तथा मुमुक्षु भाई-बहिनोंने टेप-रिकॉर्डमेंसे उतार दिये हैं। उनका यह संकलन तैयार किया गया है। यह संकलन अध्यात्मप्रेमी आदरणीय विद्वद्वर्य भाईश्री हिंमतलाल जेठालाल शाहने अथक परिश्रम लेकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाँच लिया है तथा प्रूफ-संशोधनमें भी सहयोग दिया है। वास्तवमें उनके अमूल्य सहयोग बिना इन प्रवचनोंका ऐसे सुन्दररूपमें तैयार होना असम्भव था। इस हेतु कृतज्ञतापूर्वक उनका जितना आभार मानूँ उतना कम है। टेपमेंसे उतार देनेवाले भी धन्यवादके पात्र हैं।

अंतमें, हम—अध्यात्मतत्त्व पिपासु जीव, पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूति-रसधारामेंसे प्रवाहित इस शुद्धात्मस्पर्शी 'वचनामृत' पर परमोपकारी कृपासिंधु पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवप्रधान समस्त निजात्मवैभव खोलकर दिये हुए इन विशद प्रवचनोंके गहरे अवगाहन द्वारा भवसंततिछेदक स्वानुभूति साधनेकी प्रबल प्रेरणा प्राप्त कर अपने साधनापंथको सुधास्यंदी बनाएँ—यही भावना।

भाद्रपद कृष्णा २, सं. २०३८,

—संकलयिता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अध्यात्मयुगस्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

[संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन]

भरतक्षेत्रकी वर्तमान चौबीसीके चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट और भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि निर्ग्रंथ संतों द्वारा सुरक्षित, तर्कशुद्ध अबाधित सुविज्ञान-सिद्धान्तोंकी कसौटी पर पार उतर सके ऐसा, अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म कालदोषके कारण वैज्ञानिक भूमिकासे च्युत होकर रूढ़िग्रस्त साँप्रदायिकतामें और क्रियाकांडमें फँस गया था ऐसे इस युगमें—विक्रमकी २०-२१वीं शताब्दिमें—भारतवर्षके जीवोंके महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने अवतार लेकर आत्मसाधनाके अध्यात्मपथको प्रकाशित किया, संप्रदायकी कैदमेंसे बाहर निकालकर जिन्होंने हजारों जीवोंमें शुद्ध आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक नये मुमुक्षुसमाजका सर्जन किया, स्वयंकी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञान-कलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्योंको खोलकर जिन्होंने 'तुझमें सब भरा पड़ा है' ऐसा घोषित करके प्रत्येक जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटा—इत्यादि अनेक प्रकारसे भारतवर्षके धर्मपिपासु जीवों पर जिनका अनंत-अनंत उपकार है ऐसे अध्यात्मयुगस्रष्टा परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका संक्षिप्त ★जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन यहाँ प्रस्तुत किया है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका पवित्र जन्म सौराष्टके उमराला गांवमें वि. सं. १९४७ वैशाख सुदी दूज, रविवारके शुभ दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें हुआ था। गुरुदेवश्रीकी मातुश्री उजमबा व पिताश्री मोतीचंदभाई जातिसे दशाश्रीमाली वणिक एवं धर्मसे स्थानकवासी जैन थे। बचपनसे ही उनके मुखपर वैराग्यकी सौम्यता और आंखोंमें बुद्धि और वीर्यकी प्रतिभा झलकती थी। स्कूलमें तथा जैनशालामें भी प्रायः प्रथम नंबर ही रखते थे।

ग्यारह वर्षकी उम्रमें एक बार जैनशालाकी सीढ़ियोंसे उतरते समय संप्रदायके एक साधुको वैराग्यकी मस्त चालसे जाते हुए देखकर इस होनहार महापुरुषके हृदयमें गहरी छाप पड़ी तथा अन्तर्मनमें ऐसा लगा कि 'अहा! कैसी वैराग्यकी धुन! झुके हुए नेत्रोंके साथ कैसी मस्त चाल! नितांत अकेले, कोई साथी-संगी नहीं! कैसी अवधूत दशा!' इस प्रकार बचपनसे ही वैरागी मस्त जीवनके प्रति उनका चित्त समर्पित हो जाता था। पाठशालाके लौकिक ज्ञानसे उनको संतोष नहीं होता था; उनको अंतरंगमें लगता रहता कि 'जिसकी खोजमें मैं हूँ वह यह नहीं है।' कभी कभी यह दुःख तीव्र हो जाता, और एक बार तो माँसे बिछुड़े बालककी भाँति, यह बाल-महात्मा सत्‌के वियोगमें बहुत रोये थे।

छोटी उम्रमें ही माताका (वि. सं. १९५९में) व पिताजीका (वि. सं. १९६३में) वियोग हुआ।

★ जीवनवृत्तका कुछ भाग आदरणीय पं. श्री हिंमतलाल जे. शाहके लेखोंमेंसे शब्दशः लिया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे पालेजमें पिताजीकी दुकान पर बैठने लगे। व्यापारमें उनका वर्तन प्रामाणिक और सरल था। एक बार बड़ौदाकी अदालतमें जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीशके समक्ष सत्य घटना स्पष्टतासे बता दी। उनके मुखपर झलकती सरलता, निर्दोषता और निर्भीकताकी न्यायाधीश पर छाप पड़ी, और उनका कहा हुआ सारा विवरण यथार्थ है, ऐसा विश्वास आ जानेसे उसे संपूर्णरूपसे मान्य रखा।

वे कभी कभी नाटक देखने जाते थे; अतिशय आश्चर्यकी बात तो यह है कि नाटकका श्रृंगारिक प्रभाव होनेके बदले किसी वैराग्यप्रेरक दृश्यकी उन पर गहरी छाप पड़ती थी और वह कितने ही दिनों तक रहती थी। कभी कभी तो नाटक देखकर आनेके बाद पूरी रात वैराग्यकी धुन रहती। एक बार नाटक देखकर आनेके बाद उसकी धुनमें 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाला बारह कड़ीका एक काव्य उन्होंने बनाया था। अहा! सांसारिक रसके प्रबल निमित्तोंको भी महान आत्माएँ वैराग्यका कैसा निमित्त बना लेती हैं।

दुकान पर भी वे वैराग्यप्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। उनका मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनका आत्मा अन्दर कुछ और ही शोधमें था। उनके अन्तरका झुकाव सदा धर्म व सत्यकी शोधके प्रति ही था। उनका धार्मिक अभ्यास, उदासीन जीवन और सरल अंतःकरण देखकर सगे-संबंधी उनको 'भगत' कहते थे। सगाईके संदेश आने पर उन्होंने अपने बड़े भाई खुशालभाईको स्पष्ट कह दिया कि 'मेरी सगाई नहीं करना, मेरे आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा है और मेरे दीक्षा लेनेके भाव हैं।' खुशालभाई और सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा बहुत समझाने पर भी उन महात्माके वैराग्यभीने चित्तको संसारमें रहना पसंद नहीं आया! उन्होंने योग्य गुरुके लिये बहुत शोध की। सौराष्ट्र, गुजरात व राजस्थानसे बहुतसे साधुओंसे मिले, पर कहीं भी मन स्थिर नहीं हुआ। अन्तमें बोटाद संप्रदायके श्री हीराचंदजी महाराजके हाथसे दीक्षा लेनेका निश्चित हुआ। विक्रम संवत् १९७०के मागशिर सुदी ९वीं, रविवारके दिन उमरालामें बड़ी धूमधामसे दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न हुआ।

दीक्षा लेकर तुरन्त ही गुरुदेवश्री श्वेतांबरके आगमोंका कड़ा अभ्यास करने लगे। उन्होंने चारेक वर्षमें ४५ आगम, लाखों श्लोकोंकी टीका सहित, विचारपूर्वक पढ़ लिये। वे संप्रदायकी रीति अनुसार चारित्र भी कठोर पालते थे। थोड़े ही समयमें उनकी आत्मार्थिताकी, ज्ञान-पिपासाकी और चारित्रकी सुवास स्थानकवासी जैन संप्रदायमें खूब फैल गयी थी।

गुरुदेवश्री प्रारम्भसे ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ ही उनका जीवनमंत्र था। 'केवली भगवानने देखा होगा तब मोक्ष होगा'—ऐसी काललब्धि और भवितव्यताकी पुरुषार्थहीनता भरी बातें कोई करे तो वे सहन नहीं कर सकते थे। वे दृढ़तासे कहते थे कि जो पुरुषार्थी हैं उसके अनन्त भव होते ही नहीं; केवलीभगवानने भी उसके अनन्त भव देखे ही नहीं; पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ बाधक नहीं होते।'

दीक्षापर्यायके कालमें उन्होंने श्वेतांबरके शास्त्रोंका खूब मननपूर्वक अभ्यास किया। उन्होंने एक लाख श्लोकप्रमाण टीकायुक्त भगवतीसूत्र सत्रह बार पढ़ा। हर कार्य करते समय उनका लक्ष सत्यकी शोधके प्रति ही रहता था। फिर भी वे जिसकी शोधमें थे वह उन्हें अभी तक मिला नहीं था, अथकरूप उल्लसितवीर्यसे उनकी शोधवृत्ति चालू ही थी; तब—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विक्रम संवत् १९७८में विधिकी किसी धन्य घड़ीमें श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत समयसार नामका महान ग्रंथ गुरुदेवश्रीके करकमलमें आया। उसे पढ़ते ही उनके हर्षका पार न रहा। जिसकी शोधमें वे थे वह उन्हें मिल गया। गुरुदेवश्रीके अन्तर्नयनोंने समयसारमें अमृतके सरोवर छलकते देखे। एकके पीछे एक गाथाएं पढ़ते हुए उन्होंने घूंट भर-भरके वह अमृत पिया। ग्रंथाधिराज समयसारने गुरुदेवश्री पर अपूर्व, अलौकिक, अनुपम उपकार किया और उनके आत्मानन्दका पार न रहा। गुरुदेवश्रीके अन्तर्जीवनमें परम पवित्र परिवर्तन हुआ, भूली हुई परिणति निज घरकी ओर ढली—उपयोगका प्रवाह सुधासिंधु ज्ञायकदेवकी ओर ढला। उनकी ज्ञानकला अपूर्व रीतिसे खिल उठी।

विक्रम संवत् १९९१ तक स्थानकवासी संप्रदायमें रहकर गुरुदेवश्रीने सौराष्ट्रके अनेक प्रमुख शहरोंमें चातुर्मास किया। और शेषकालमें सैकड़ों छोटे-बड़े नगरोंको पावन किया। हजारों श्रोताओंको उनके उपदेशके प्रति बहुमान जागृत हुआ। क्रियाकांडमें लुप्त हुए अध्यात्मधर्मका बहुत उद्योत हुआ। उनके प्रवचनमें ऐसे अलौकिक अध्यात्मिक न्याय आते थे कि जो अन्यत्र कहीं भी सुननेको न मिले हों। 'जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बंधे वह भाव भी हेय है।.....शरीरके रोमरोममें तीव्र रोग हो तो भी वह दुःख नहीं, दुःखका स्वरूप ही कुछ और है।....व्याख्यान सुनकर बहुत जीव समझें तो मुझे बहुत लाभ हो ऐसा माननेवाले व्याख्याता मिथ्यादृष्टि हैं।.....इस दुखमें समता नहीं रखूंगा तो कर्मबन्धन होगा—ऐसे भावसे समता रखना वह भी मोक्षमार्ग नहीं।....पाँच महाव्रत भी मात्र पुण्यबंधके कारण हैं।' ऐसे हजारों अपूर्व न्याय व्याख्यानमें अत्यन्त स्पष्ट रीतिसे लोगोंको समझाते थे। प्रत्येक प्रवचनमें वे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन पर अत्यन्त अत्यन्त भार देते थे। वे कहते थे कि—"शरीरकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़कनेवालेके उपर भी क्रोध न किया—ऐसा व्यवहारचारित्र भी इस जीवने अनंत बार पालन किया, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवोंकी हिंसाके पापसे भी मिथ्यादर्शनका पाप अनन्तगुना है।....सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यक्त्वका निर्णय स्वयं ही कर सकता है। सम्यग्दृष्टि संपूर्ण ब्रह्मांडके भावोंको पी गया होता है।....सम्यक्त्व वह कोई और ही वस्तु है।...सम्यग्दर्शन शून्य क्रियाएं बिना एकाईकी बिंदी हैं।....सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है।....हीरेकी कीमत तो हजारों रूपया होती है परन्तु उसके पहल पाड़ते समय खिरी हुई रजका मूल्य भी सैकड़ों रुपया होता है; वैसे सम्यक्त्वहीरेकी कीमत तो अमूल्य है, वह मिले तो तो कल्याण हो जाय परन्तु न मिले तो भी 'सम्यग्दर्शन यह कोई जुदी ही वस्तु है'—इस प्रकार उसकी महिमा समझकर उसे प्राप्त करनेकी उत्कंठारूप रज भी बहुत लाभकारी है।....मात्र जानना ही ज्ञान नहीं। सम्यक्त्व सहित जानना वही ज्ञान है। ग्यारह अंग मुखाग्र हों परन्तु सम्यग्दर्शन न हो तो वह अज्ञान है।....आजकल तो सभी अपने अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे हैं। सम्यग्दृष्टिको तो मोक्षके अनंत अतीन्द्रिय सुखकी वानगी प्राप्त हो गयी है। वह वानगी मोक्षसुखके अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है।" इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी अद्‌भुत महिमा अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टांतोंसे वे लोगोंको ठसा देते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। और वे संप्रदायमें थे तबसे ही इसका स्पष्ट रीतिसे प्रतिपादन करते थे। प्रथम सत्य समझनेकी मुख्य आवश्यकता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ऐसा वे अति दृढ़तापूर्वक पहलेसे ही कहते थे और प्रवचनके प्रारम्भमें एक गाथा बोलते थे—'संबुज्झह जंतवो....' जिसका सारांश था कि—हे जीवों! तुम सम्यक् प्रकारसे समझो समझो! इस प्रकार वे प्रारम्भसे ही सत्य समझनेका उपदेश देते थे।

जैनधर्म पर उनकी अनन्य श्रद्धा, सारा विश्व न माने तो भी अपनी मान्यतामें स्वयं अकेले टिके रहनेकी उनकी अजब दृढ़ता और अनुभवके बलपूर्वक निकलती उनकी न्यायसंगत वाणी बड़े बड़े नास्तिकोंको भी विचारमें डाल देती थी और बहुतोंको आस्तिक बना देती थी। उनका सिंहनाद पात्र जीवोंके हृदयकी गहराईको स्पर्शकर उनके आत्मिक वीर्यको उछाल देता था। अहा! सत्य और अनुभवके जोरसे सारे जगतके अभिप्रायोंके सामने जूझते इस अध्यात्मयोगीकी गर्जना जिन्होंने सुनी होगी उनके कानोंमें उसकी झंकार अभी भी गूंजती होगी! थोड़े ही वर्षोंमें उनके प्रखर ज्ञान, कड़े चारित्र और प्रवचनकौशल्यकी सुवास इतनी अधिक फैल गई कि स्थानकवासी जैनसमाज उनको साधुके रूपमें 'काठियावाडका कोहनूर' कहती थी।

लघु वयसे ही गुरुदेवका वैरागी, चिन्तनपूर्ण, बुद्धिप्रतिभायुक्त, ध्येयलक्षी भक्तजीवन था। बालब्रह्मचारीरूपसे दीक्षित होकर उच्चतम कोटिके स्थानकवासी साधुके रूपमें विचरण करते समय, 'भवभ्रमणका अंत लानेका सच्चा उपाय क्या?', 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पाया, फिर पीछो पटक्यो, वहाँ क्या करना बाकी रहा?'—इस विषयमें गहरा मंथन व अभ्यास करके उन्होंने खोज निकाला कि—मार्ग कोई जुदा ही है; वर्तमानमें तो शुरुआत ही उल्टी है। क्रियाकांड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप निश्चित कर स्वानुभव करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूपरमणता वह मुनिमार्ग है। साथमें होनेवाले बाह्य व्रत-नियम तो अधूरेपनकी–अपरिपक्वताकी प्रगटता है। मोक्षमार्गकी मूल बातमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है ऐसा गुरुदेवश्रीने अन्तरसे खोज निकाला।

समयसार-प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव और वास्तविक निर्ग्रंथमार्ग बहुत समयसे भीतर सत्य लगता था, और बाह्यमें वेश तथा आचरण अलग था,–यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी; इसलिये उन्होंने सोनगढ़में योग्य समय–विक्रम संवत् १९९२ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर-जयंती), मंगलवारके दिन—'परिवर्तन' किया, स्थानकवासी सम्प्रदायका त्याग किया। संप्रदायका त्याग करनेवालोंको किस किस प्रकारकी अनेक महाविपत्तियां सहनी पड़ती है, उन पर कैसी कैसी अघटीत निंदाकी झडियाँ बरसती हैं, वह सब उनके ख्यालमें था, फिर भी उस निडर और निस्पृह महात्माने उसकी कुछ भी परवाह न की। सत्के प्रति परम भक्तिमें सब प्रकारकी प्रतिकूलताका भय व अनुकूलताका राग अत्यंत गौण हो गया। जगतसे बिलकुल निरपेक्षरूप हजारोंके जनसमुदायमें गर्जनेवाला सिंह सत्के लिये सोनगढ़के एकांत स्थलमें जा बैठा।

उनके 'परिवर्तन'से स्थानकवासी संप्रदायमें बहुत खलबली हुई, विरोध हुआ। परन्तु गुरुदेवश्री काठियावाड़के स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे। उनके पीछे काठियावाड़ पागल बना हुआ था। इसलिये 'गुरुदेवश्रीने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा' ऐसा विचार कर धीरे-धीरे लोगोंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बहने लगा। सांप्रदायिक मोह अत्यन्त दुर्निवार होने पर भी, सत्के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थी जीवोंकी संख्या तीनों कालमें अत्यन्त अल्प होने पर भी, सांप्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भयको छोड़कर सोनगढ़की ओर बहता सत्संगार्थी जनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही गया।

पूज्य गुरुदेव कहते थे : जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो वस्तुस्वभाव—आत्मधर्म है। उसका अन्य किसी धर्मके साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्मके साथ समन्वय करना वह रेशम और टाटके समन्वय जैसा व्यर्थ है। दिगंबर जैनधर्म वही वास्तविक जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगंबरत्वके बिना कोई जीव मुनिपना और मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

गुरुदेव सम्प्रदायमें थे तभीसे प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रताकी श्रद्धा उनके अंतरमें ओतप्रोत हो गयी थी। मैं एक स्वतंत्र पदार्थ हूं, मुझे कोई कर्म रोक नहीं सकते—ऐसा वे बारम्बार कहते थे। वह विशेष स्पष्टतासे समझनेके लिये जामनगरमें चातुर्मासके समय आत्मार्थी श्री हिंमतभाई जे. शाहने प्रश्न पूछा—'महाराज! दो जीवोंके १४८ कर्मप्रकार सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग–सभी बिलकुल एक समान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षणमें समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकारके?' गुरुदेवने कहा : 'भिन्न-भिन्न प्रकारके।' पुनः प्रश्न किया : 'दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूरी है और आवरण भी बिलकुल एक समान है, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकारके कैसे कर सकते हैं?' गुरुदेवने तुरन्त ही दृढ़तासे उत्तर दिया : 'अकारण पारिणामिक द्रव्य है', अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं ऐसे भावसे स्वतंत्रतया परिणमन करनेवाला द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव स्वाधीनतासे करनेमें वस्तुतः कौन रोक सकता है? वह स्वाधीनतासे अपना सब कुछ कर सकता है। स्वाधीनताका कैसा सुन्दर स्पष्टीकरण!

परमपूज्य गुरुदेवके उपदेशमें मुख्य वजन 'समझ' पर था। 'तुम समझो; समझे बिना सब व्यर्थ है' इस प्रकार वे बारम्बार कहते थे। 'कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—एक रजकणको भी हिलानेकी सामर्थ्य नहीं रखता, तो फिर देहादिकी क्रिया आत्माके हाथ कहाँसे हो? ज्ञानी व अज्ञानीमें प्रकाश और अंधकार जैसा महान अन्तर है, और वह यह है कि अज्ञानी परद्रव्य तथा रागद्वेषका–शुभाशुभ भावका—कर्ता होता है और ज्ञानी अपनेको शुद्ध अनुभव करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। उस कर्तृत्व बुद्धिको छोड़नेका महा पुरुषार्थ प्रत्येक जीवका कर्तव्य है। वह कर्तृत्वबुद्धि ज्ञान बिना नहीं छूटती। इसलिये तुम ज्ञान करो।'—यह उनके उपदेशका प्रधान स्वर था।

परम पूज्य गुरुदेवके ज्ञानको सम्यक्त्वकी छाप तो बहुत समयसे लगी थी। वह सुधास्यंदी सम्यग्ज्ञान सोनगढ़के विशेष निवृत्तिवाले स्थानमें अद्‌भुत सूक्ष्मताको प्राप्त हुआ; नई-नई ज्ञानकला खूब खिली। अमृतकलशमें जिस प्रकार अमृत घोला जाता हो उसीप्रकार गुरुदेवके परम पवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मामें तीर्थंकरदेवके वचनामृत खूब घोले गये—घोंटे गये। अन्दर घोंटा गया वह अमृत कृपालु गुरुदेव हजारों मुमुक्षुओंको प्रवचनमें परोसते थे व निहाल करते थे।

समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्रों पर प्रवचन देते समय गुरुदेवके शब्द-शब्दमें बहुत गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती, जिससे श्रोताजन शास्त्रका मर्म सरलतासे समझ जाते। जिस अनन्त ज्ञान और आनन्दमय पूर्ण दशाको प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने दिव्यध्वनि द्वारा वस्तुस्वरूपका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निरूपण किया, उस परम पवित्र दशाका सुधास्यंदी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रगट करके सद्गुरुदेवने अपनी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रोमें रहे हुए गूढ़ रहस्योंको समझाकर मुमुक्षुओं पर महान-महान उपकार किया है। गुरुदेवकी वाणी सुनकर सैकड़ों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे और उल्लासमें आकर कहते थे : 'गुरुदेव! आपके प्रवचन अपूर्व हैं; उनका श्रवण करते हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जिस बातको समझाओ हमको उसमेंसे नया-नया ही जाननेको मिलता है। नव तत्त्वका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, निश्चय-व्यवहारका स्वरूप या व्रत-तप-नियमका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस-जिस विषयका स्पष्टीकरण आपके श्रीमुखसे सुनते हैं उसमें हमें अपूर्व भाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। आपके शब्द-शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रगट होता है।'

पूज्य गुरुदेवकी प्रवचनशैली भी अद्भुत थी। कठिन गिने जानेवाले अध्यात्म-विषयको भी खूब स्पष्टतासे, अनेक सरल दृष्टांतों द्वारा, शास्त्रीय शब्दोंका बहुत ही कम प्रयोग करके घरेलू भाषामें समझाते थे, कि जिससे कम पढ़े-लिखे सामान्य लोग भी सरलतासे समझ जायें। गुरुदेवश्री प्रवचन करते-करते अध्यात्ममें ऐसे मग्न हो जाते, परमात्मदशाके प्रति अगाध भक्ति उनके मुखारविंद पर ऐसी झलकती, कि श्रोताओं पर भी उसकी छाप पड़ती। अध्यात्मकी जीवंतमूर्ति गुरुदेवश्रीकी देहके अणु-अणुमेंसे मानों अध्यात्मरस झरता हो ऐसी चमत्कारभरी उनकी प्रतिभा थी। पूज्य गुरुदेवका प्रवचन सुननेवालोंको इतना तो स्पष्ट लगता था कि 'यह कोई विशिष्ट प्रकारका पुरुष है; जगतसे यह कुछ और ही कहता है, अपूर्व कहता है; इसके कथनके पीछे कोई अजब दृढ़ता और जोर है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आता।' अहा! इस कलिकालमें, अन्तरमें ऐसा अलौकिक पवित्र परिणमन—केवलज्ञानका अंश, और बाह्यमें ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्वका अंश, इन दोनोंका सुयोग देखकर मुमुक्षुओंका हृदय नाच उठता था।

अहो! परम प्रभावक अध्यात्ममूर्ति गुरुदेवकी उस मोहविनाशिनी वज्रवाणीकी तो क्या बात, उनके दर्शन भी महापुण्यके थोक उछलें तब प्राप्त होते! इस अध्यात्ममस्त महापुरुषके समीप संसारकी आधि-व्याधि-उपाधि फटक भी नहीं सकती थी। संसारतप्त प्राणियोंको उनके पवित्र समागममें परम विश्रांति मिलती थी। जो वृत्तियां महाप्रयत्नसे भी नहीं दबतीं वे पूज्य गुरुदेवके सान्निध्यमें अपने आप शांत हो जाती हैं—ऐसा अनुभव बहुतसे मुमुक्षुओंको होता था। आत्माका निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्षका सुख आदि आध्यात्मिक भावोंकी जो श्रद्धा अनेक तर्कोंसे नहीं हो पाती वह गुरुदेवके दर्शन तथा समागमसे सहजमात्रमें हो जाती। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवरस-झरते पवित्र ज्ञान और चारित्रने मुमुक्षुओं पर महा कल्याणकारी अनुपम उपकार किया है।

सनातन सत्य वीतराग दिगम्बर जैनमार्ग अंगीकृत करनेके बादके वर्षोंमें शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनवृत्तांतके साथ संबंध रखनेवाले, मुमुक्षुओंको उपकारभूत हों ऐसे, प्रभावनाके अनेक सुयोग बन गये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

विक्रम संवत् १९९४की वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनको आत्मध्यानमयी विमल अनुभूतिमेंसे उपयोग बाहर आनेपर, उपयोगकी स्वच्छतामें अनेक भवान्तर सम्बन्धी सहज स्पष्ट जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूज्य गुरुदेवको अनेक वर्षोंसे अपने भूत-भविष्यके भवके साथ सम्बन्धवाला जो अस्पष्ट 'भास' होता था उसका स्पष्ट हल बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञान द्वारा मिलनेसे स्वयंके मनोमन्दिरमें एक प्रकारका उजाला हुआ और उनकी धर्मपरिणतिको एक असाधारण नवीन बल मिला। बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानकी बातें आत्मार्थियोंको उपकारक हो ऐसी लगनेसे पूज्य गुरुदेवश्री उसके कितने ही तथ्य धीरे-धीरे मुमुक्षुओंके समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे थे, जिसे सुनकर आत्मार्थिजन अत्यन्त आह्लादित होते थे और उनके श्रद्धाजीवनमें, भक्तिजीवनमें तथा 'इस अल्पायुषी मनुष्यपर्यायमें निज कल्याण अवश्य कर लेना योग्य है'—ऐसे उद्यमजीवनमें नई चमक आ जाती थी।

जहाँ 'परिवर्तन' हुआ था वह मकान छोटा था इसलिये भक्तोंने संवत् १९९५में प्रवचन तथा पूज्य गुरुदेवके निवास हेतु एक मकान बनवाया और उसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' रखा। परम पूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवको समयसार परमागमके प्रति अतिशय भक्ति होनेके कारण, स्वाध्यायमन्दिरमें उसके उद्घाटनके दिन—ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी, रविवारके दिन—प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके पवित्र करकमलोंसे श्री समयसार परमागमकी मंगल प्रतिष्ठा की गई। समयसार सर्वोत्तम शास्त्र है–ऐसा गुरुदेव बारम्बार कहते थे। समयसारकी बात करते ही उन्हें अति उल्लास आ जाता था। समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष दे ऐसी है—ऐसा गुरुदेवश्री कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके सभी शास्त्रों पर उन्हें अत्यन्त प्रेम था। 'भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवका हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'—ऐसा वे अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे, उस विषयमें पूज्य गुरुदेवको अंशमात्र भी शंका नहीं थी। वे कुंदकुंदाचार्यदेवके विदेहगमनके सम्बन्धमें अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे पुकार करके कहते थे कि—'कल्पना नहीं करना, इन्कार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानो तो भी ऐसी ही है, न मानो तो भी ऐसी ही है; यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमंधर भगवानके प्रति गुरुदेवश्रीको अतिशय भक्तिभाव था। कभी-कभी सीमंधर भगवानके विरहमें परम भक्तिवंत गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी।

पूज्य गुरुदेवश्रीने संवत् १९९५में माघ कृष्णा त्रयोदशीके दिन २०० मुमुक्षुओंके संघ सहित शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी पावन यात्रा अति उत्साह और भक्तिपूर्वक की। उसी वर्ष चैत्र कृष्णा एकमके दिन स्वाध्यायमन्दिरमें भगवानकी दिव्यध्वनि 'ॐ'के शिलापट्टकी स्थापना की गई थी। तत्पश्चात् राजकोटके मुमुक्षुओंका अति आग्रह होनेसे चातुर्मास करनेके लिये पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे। वहाँ 'आनन्दकुंज'में दस महिने तक रहकर, समयसार, आत्मसिद्धि और पद्मनंदिपंचविंशतिका पर अपूर्व प्रवचन किये। पूज्य गुरुदेवकी नित्य-नई निर्मल ज्ञानपर्यायोंमेंसे सहज स्फुरित जड़-चेतनके विभागके, निश्चय-व्यवहारकी संधिके तथा अन्य अनेक आध्यात्मिक न्याय सुनकर राजकोटके हजारों लोग पावन हुए। वहाँ निशदिन आध्यात्मिक आनन्दका सुन्दर वातावरण गूँज उठा।

T-3.

राजकोटसे सोनगढ वापिस लौटते समय पूज्य गुरुदेवने ३०० भक्तोंके साथ, २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभुके दीक्षा, केवल और निर्वाण—तीन कल्याणकोंसे पावन हुए गिरिराज गिरनारतीर्थकी अत्यन्त भक्ति तथा उल्लास सहित यात्रा की। पहली टूंक पर दिगंबर जिनमन्दिरमें एवं दीक्षाकल्याणक-धाम सहस्राम्रवनमें जमी हुई भक्तिकी धुन तथा निर्वाणस्थल पाँचवीं टूंक पर पूज्य गुरुदेव परम अध्यात्मरसमें तराबोर बनकर—

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!'

—आदि पद गाते हुए भक्ति कराते थे उस समय प्रसरित हुआ भक्तिभीना शांत आध्यात्मिक वातावरण—उन सबके पवित्र संस्मरण तो भक्तोंके स्मरणपट पर उत्कीर्ण हो गये हैं।

विहारके समय मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े गांवोंमें पूज्य गुरुदेव वीतराग सद्धर्मका डंका बजाते गये। लोगोंको गुरुदेवके प्रति भक्ति उमड़ पड़ती, भव्य स्वागत-समारोह होते और हजारोंकी संख्यामें प्रवचनसभा छलक उठती। गुरुदेवका प्रभावना–उदय देखकर, तीर्थंकरभगवान तथा समर्थ आचार्यभगवन्त जब विचरते होंगे उस समय धर्मका, भक्तिका व अध्यात्मका कैसा वातावरण फैल जाता होगा उसका तादृश चित्र कल्पनाचक्षु समक्ष खड़ा होता था।

संवत् १९९७ के वैशाख मासमें पूज्य गुरुदेवश्री विहार पूर्ण कर सोनगढ़ पधारे। उसके बाद तुरंत ही श्री नानालालभाई जसाणी तथा उनके भाइयोंने श्री सीमंधरभगवानके जिनमंदिरका निर्माणकार्य प्रारम्भ किया, जिसमें श्री सीमंधरस्वामी आदि जिनभगवंतोंकी वीतरागभाववाही प्रतिमाओंकी पंचकल्याणकविधिपुरस्सर मंगल प्रतिष्ठा संवत् १९९७ के फाल्गुन शुक्ला दूजके शुभ दिन हुई। प्रतिष्ठामहोत्सवके आठों दिन पूज्य गुरुदेवके मुखारविंदसे भक्तिरसभीनी अलौकिक वाणी छूटती थी। बिछुडे हुए सीमंधरभगवानका (भले स्थापना-अपेक्षासे) मिलन होनेसे पूज्य गुरुदेवश्रीको कोई अद्‌भुत आनन्दोत्साह था। प्रतिष्ठाके पूर्व श्री सीमंधरभगवानकी प्रतिमाके प्रथम दर्शनके समय पूज्य गुरुदेवश्रीकी आँखोंसे विरहवेदनाके आँसू बहने लगे थे। सीमंधरभगवान जब मंदिरमें प्रथम पधारे तब गुरुदेवश्रीको भक्तिरसकी मस्ती चढ़ गई और सारा देह भक्तिरसके मूर्त स्वरूप जैसा शांत–शांत दिखने लगा। गुरुदेवश्रीसे साष्टांग प्रणमन हो गया और भक्तिरसमें अत्यन्त एकाग्रताके कारण शरीर ज्योंका त्यों थोड़े समय तक निश्चेष्टरूपसे पड़ा रहा। भक्तिका यह अद्‌भुत पावन दृश्य, पासमें खड़े मुमुक्षुओंसे सहा नहीं जाता था; उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और चित्तमें भक्ति उमड़ पड़ी। पूज्य गुरुदेवने प्रतिष्ठा भी अपने पवित्र हस्तसे, भक्तिभावमें मानों शरीरका भान भूल गये हों ऐसे अपूर्व भावसे की थी।

दोपहरके प्रवचन बाद पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें इस जिनमन्दिरमें प्रतिदिन पौनघंटा भक्ति होती थी। प्रवचन सुनते समय आत्माके सूक्ष्म स्वरूपके प्रणेता वीतराग जिनेन्द्रभगवन्तका माहात्म्य हृदयमें स्फुरित हुआ हो, जिससे तुरन्त ही जिनमन्दिरमें भक्ति करते हुए, वीतरागदेवके प्रति पात्र जीवोंको अद्‌भुत भक्तिभाव उल्लसित होता था। इस प्रकार जिनमन्दिर ज्ञान व भक्तिके सुन्दर सुमेलका निमित्त बना।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसके एक साल बाद श्री समवसरण-मन्दिर बना। उसमें श्री सीमन्धरभगवानकी अतिशय भाववाहि चतुर्मुख जिनप्रतिमा बिराजमान है। समवसरणकी सम्पूर्ण रचना अत्यन्त आकर्षक और शास्त्रोक्त विधि अनुसार है। मुनियोंकी सभामें श्री सीमंधरभगवानके सामने अत्यन्त भावपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रीमद्‌भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवकी अति सौम्य मुद्रावन्त निर्ग्रंथ प्रतिमा है। प्रतिष्ठा महोत्सव सं. १९९९के ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन हुआ था। श्री समवसरणके दर्शन करते समय, श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्रके तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर परमात्माके समवसरणमें पधारे थे वह, पूज्य गुरुदेवने पूर्वभवमें प्रत्यक्ष देखा हुआ भव्य प्रसंग उनकी आंखोंके समक्ष खड़ा हुआ और उसके साथ संकलित अनेक पवित्र भाव हृदयमें प्रस्फुरित होनेसे उनका हृदय भक्ति और उल्लाससे भर आया। समवसरणमें भक्तिके समय 'रे! रे! सीमन्धरनाथना विरहा पड्या आ भरतमां' यह पंक्ति आने पर, भगवानके विरह-वेदनसे पूज्य गुरुदेवका भक्तहृदय अत्यन्त द्रवीभूत हो गया था और नेत्रोंमेंसे अश्रुकी धारा बह निकली थी; उस विरहव्यथाका भक्तिभीना दृश्य अभी भी मुमुक्षुओंकी दृष्टि समक्ष घूमता है। श्री समवसरणमन्दिर बननेसे मुमुक्षुओंको समवसरणमें बिराजमान जिनेन्द्रभगवानके पावन दर्शनके साथ साथ सीमन्धर-कुन्दकुन्द मिलनका मधुर प्रसंग दृष्टिगोचर करनेका निमित्त प्राप्त हुआ।

वि. सं. १९९९ के श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके रोज—श्री महावीरभगवानकी दिव्यध्वनि छूटनेके पावन दिन, वीरशासनजयंतीके मंगल दिन—सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवने परमागम श्री प्रवचनसार पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया था। उसमें ज्ञेय अधिकार पर व्याख्यान देते समय, अनेक वर्षोंमें भक्तोंने जो सुना था उससे भी अधिक, कोई अचिंत्य, अद्‌भुत और अपूर्व ऐसे श्रुतका स्रोत पूज्य गुरुदेवश्रीके अन्तर आत्मामेंसे—उनकी निर्मल भावश्रुतज्ञानकी पर्यायमेंसे–बहने लगा। द्रव्यानुयोगके अश्रुतपूर्व अद्‌भुत न्यायोंसे भरा हुआ वह आश्चर्यकारी स्रोत जिन्होंने बराबर श्रवण किया होगा उनको उसकी महिमा अन्तरंगमें अंकित होगी। बाकी उसका वर्णन तो क्या हो सके? उस श्रुतामृतका पान करते समय ऐसा लगता था कि यह तो कोई सातिशय आश्चर्यकारी आत्मविभूति देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ! या कोई अचिंत्य श्रुतकी निर्मल श्रेणी देखनेका सुभाग्य संप्राप्त हुआ!

सं. १९९९ की भाद्रपद शुक्ला पंचमीको—दशलक्षण पर्युषणपर्वके प्रारम्भके दिन—सोनगढ़में कुमार जैन युवकोंके लिये, तत्त्वज्ञानका अभ्यास करानेके प्रयोजनसे, ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किया गया था। उसमें तीन वर्षका अभ्यासक्रम रखा गया था। उसमें शामिल होनेवाले ब्रह्मचारी भाई प्रतिदिन तीन घण्टे नियत की हुई धार्मिक पुस्तकोंका शिक्षण प्राप्त करते थे, प्राप्त किये हुए उस शिक्षणको एकांतमें स्वाध्याय और परस्पर चर्चा द्वारा दृढ़ करते थे व पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जिनेन्द्रभक्ति इत्यादि दैनिक क्रममें सम्मिलित होते थे; इसप्रकार सारा ही दिन धार्मिक प्रवृत्तिमें व्यतीत होता था।

ज्ञानध्यानरत गुरुदेवको अन्तरमें भावश्रुतकी लब्धि नये-नये न्यायोंसे जैसे-जैसे दिन-प्रतिदिन खिलती जा रही थी वैसे-वैसे उनका पुनीत प्रभावना-उदय भी प्रबलरूपसे वृद्धिंगत होता जा रहा था। सं. १९९९ की फाल्गुन शुक्ला पँचमीके दिन झालावाड़ होकर चातुर्मास हेतु राजकोट जानेके लिये पुनः विहार हुआ। पूज्य गुरुदेव, अमृत बरसते महामेघकी भाँति, मार्गमें आनेवाले हरेक ग्राममें अध्यात्म-अमृतकी झड़ी बरसाते थे और अनेकों—हजारों—तृषावन्त जीवोंकी तृषा शांत करते थे। जैनेतर भी पूज्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरुदेवका आध्यात्मिक उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। जैनदर्शनमें मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड ही नहीं हैं किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा है ऐसा समझमें आने पर उन्हें जैनदर्शनके प्रति बहुमान प्रगटता था। पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रसारित आत्मविचारके प्रबल आन्दोलनोंसे प्रभावित होकर कितने ही अजैन तो वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके श्रद्धालु हो गये थे। सचमुच गुरुदेवने आत्मसाधनाका अध्यात्म-पंथ दरशाकर भारतमें तथा विदेशमें हजारों जीवोंको जागृत किया है। सौराष्ट्रमें तो दिगम्बर जैनधर्मका नवसर्जन उन्हींने किया है। पूज्य गुरुदेवने अन्तरसे खोजा हुआ स्वानुभवप्रधान अध्यात्ममार्ग—दिगम्बर जैनधर्म ज्यों ज्यों प्रसिद्ध होता गया त्यों त्यों अधिकाधिक जिज्ञासु आकर्षित हुए; ग्राम-ग्राममें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई। सम्प्रदायत्यागसे जगी विरोधकी आँधी शाँत हो गई। पूज्य गुरुदेवका प्रभावना उदय दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होता गया।

मात्र बड़ी उम्रमें गृहस्थ ही नहीं किन्तु छोटी उम्रके बच्चे भी पूज्य गुरुदेवके तत्त्वज्ञानमें उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। गुरुदेवके भक्त हजारोंकी संख्यामें बढ़ने लगे। संवत् १९९८ से प्रतिवर्ष विद्यार्थियोंको धार्मिक शिक्षा देने हेतु ग्रीष्मशिबिर खोला जाता था, विद्यार्थी उसमें उत्साहसे भाग लेते थे, लिखित परीक्षाएँ ली जातीं और पुरस्कार दिये जाते। सं. २००४ से श्रावण मासमें प्रौढ़ गृहस्थोंके लिये भी शिक्षणशिबिर चलता है।

पूज्य गुरुदेवके भक्त देश-विदेशमें जगह-जगह निवास करते हैं, उन्हें गुरुदेवके अध्यात्म-उपदेशका नियमित लाभ प्राप्त हो तदर्थ सं. २००० के मगसिर महीनेसे 'आत्मधर्म' गुजराती मासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् करीब डेढ़ वर्ष बाद हिन्दी 'आत्मधर्म'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। बीचमें कुछ वर्षो तक 'सद्गुरुप्रवचन-प्रसाद' नामका दैनिक प्रवचन-पत्र प्रकाशित होता था। तदुपरान्त समयसार, प्रवचनसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-ग्रन्थ इत्यादि अध्यात्मसाहित्यका विपुल मात्रामें—लाखोंकी संख्यामें—प्रकाशन हुआ, हजारों प्रवचन टेप-रिकार्ड किये गये, जिनसे पूज्य गुरुदेवका अध्यात्म-उपदेश घर-घरमें गूंजने लगा।

पूज्य गुरुदेवके मंगल प्रतापसे सोनगढ़ 'अध्यात्म-तीर्थधाम'के रूपमें बदल गया। सोनगढ़का शांत अध्यात्ममय वातावरण और वैविध्यपूर्ण धार्मिक कार्यक्रम देखकर बाहरसे आनेवाले जिज्ञासु मुग्ध हो जाते थे। सोनगढ़में उत्सव, मात्र रूढ़िगत शैलीसे नहीं किन्तु तदनुरूप भावभीने वातावरणमें एक विशिष्ट अनोखी शैलीसे मनाये जाते थे। कुछ दिन यहाँ रहनेवाले जिज्ञासुको फिर कहीं और जगह जाना अच्छा नहीं लगता था और उसे ऐसा लगता था कि—वास्तवमें आत्मार्थीकी अध्यात्म-साधनाका पोषक एवं प्रोत्साहक शांत धार्मिक वातावरण गुरुदेवके इस पवित्र धाम जैसा अन्यत्र कहीं नहीं है?

सं. २००२ की ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन दिगम्बर जैन समाजके सुप्रसिद्ध अग्रिम नेता, इन्दौरके श्री सेठ हुकमचन्दजी पूज्य गुरुदेवकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर, गुरुदेवके दर्शन तथा सत्संग हेतु सोनगढ़ आये। वे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुनकर एवं भक्ति आदिका अध्यात्मरसयुक्त वातावरण देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे विशिष्ट बातें सुनकर तथा समवसरणकी रचना देखकर उन्हें अति प्रसन्नता हुई। श्री सेठ हुकमचन्दजीके आनेके बाद दिगम्बर समाजका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष बढ़ने लगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धीरे-धीरे सोनगढ़ एक अध्यात्मविद्याका अनुपम केन्द्र—तीर्थधाम बन गया। बाहरसे हजारों मुमुक्षु भाई-बहिन, दूर-दूरसे अनेक दिगम्बर जैन, पण्डित, त्यागी, ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशका लाभ लेने हेतु आने लगे।

पूज्य गुरुदेवका पावन प्रभावना-उदय बढ़ता गया, जिज्ञासुओं की आमद बढ़ती हुई, उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमन्दिर छोटा लगने लगा। इसलिये जिसमें ढाई हजार लोग अच्छी तरह बैठकर प्रवचन सुन सकें ऐसा विशाल, बीचमें खम्भे रहित, अनेक पौराणिक सुन्दर चित्रों एवं तत्त्वबोधक सुन्दर सैद्धांतिक सुवाक्योंसे सुशोभित 'श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन-मंडप'का निर्माण हुआ। संवत् २००३ की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाके दिन उसका उद्घाटन करते हुए श्री सेठ हुकमचन्दजी आनन्दविभोर होकर बोले कि—'मेरे हृदयमें ऐसा भाव आ जाता है कि अपनी सारी सम्पत्ति इस सद्धर्मकी प्रभावना हेतु न्योच्छावर कर दूँ तब भी कम है।'

तत्पश्चात् फाल्गुन शुक्ला तीजके दिन वींछिया ग्राममें, सोनगढ़के बाद सर्व प्रथम दिगम्बर जिनमन्दिरका श्री सेठ हुकमचंदजीके शुभ हस्तसे शिलारोपण हुआ।

संवत् २००३ की चैत्र-कृष्णा तीजको सोनगढ़में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषदका वार्षिक अधिवेशन पं. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री (बनारस)की अध्यक्षतामें हुआ। उस अधिवेशनका प्रसंग अत्यन्त प्रभावशाली था। सोनगढ़का अध्यात्ममय वातावरण देखकर तथा पूज्य गुरुदेव द्वारा हो रही दिगम्बर जैनधर्मकी अध्यात्मतत्त्वप्रचार-प्रमुख अभिवृद्धिको देखकर सभी विद्वान खूब ही प्रभावित हुए थे।

पूज्य गुरुदेवका समग्र जीवन ब्रह्मचर्यके अद्भुत तेजसे अतिशय देदीप्यमान था। उनको पहलेसे ही ब्रह्मचर्यका असीम प्रेम था। दीक्षित पर्यायमें उन्हें मात्र शास्त्रस्वाध्याय एवं तत्त्वचिंतनकी ही धुन रहती थी। चारित्रका पालन भी वे सख्तीसे करते थे; स्त्रियोंके प्रति न तो वे कभी दृष्टि डालते और न ही कभी उनसे वार्तालाप करते थे। सम्प्रदायमें एक बार उनके गुरुने कहा : 'कानजी! इस बहिनको शास्त्रकी गाथा समझा दो।' पूज्य गुरुदेवने उनकी बातका अस्वीकार करते हुए सविनय कहा कि—'महाराज! स्त्रियोंके सम्पर्कमें आना पड़े ऐसा कोई कार्य मुझे कभी न सोंपे।' अहा! कैसा प्रबल वैराग्य! ब्रह्मचर्यका कैसा अद्भुत रंग! पूज्य गुरुदेव, स्त्रियोंके प्रति अत्यन्त उपेक्षावृत्तिसे, मात्र पुरुषोंकी सभा पर दृष्टि जाय इस प्रकार, प्रवचनमें कुछ टेढ़े पुरुषाभिमुख बैठते थे; स्त्रियोंको न तो कभी सम्बोधन करते और न उनके साथ कभी प्रश्नोत्तर। दो बारके प्रवचनोंके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि पुरुषोंके कार्यक्रममें स्त्रियोंको आनेका सख्त प्रतिबन्ध था। पुरुषोंके धार्मिक शिबिरोंमें भी स्त्रियोंको बैठनेकी गुरुदेव सख्त मनाई करते थे। अकेली तो नहीं, किन्तु एकसे अधिक स्त्रियाँ भी, साथमें पुरुषकी उपस्थितिके बिना, उनके दर्शन करने नहीं आ सकती थीं। कोई स्त्रियाँ भूलसे भी यदि, दो प्रवचन तथा जिनेन्द्रभक्तिके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि अन्य कार्यक्रमोंमें आजायँ, तो पूज्य गुरुदेव जोरसे निषेध करते और उन्हें स्थान छोड़कर चले जानेको बाध्य होना पड़ता।

स्वानुभवसमृद्ध-शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मचर्यकी छाप समाज पर खूब पड़ती थी। उनके ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर निज हितार्थ कुछ कुमार भाइयोंने, अनेक कुमारिका बहिनोंने तथा अनेक दम्पतियोंने आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ली थी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २००५, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन छह कुमारिका बहिनोंने पूज्य गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार की। बादके वर्षोंमें क्रमशः ऐसी ही अन्य चौदह, आठ, नौ एवं ग्यारह कुमारिका बहिनोंने एक साथ, तथा अलग-अलग अन्य अनेक कुमारिका बहिनोंने भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर, पूज्य गुरुदेवके समक्ष ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ली। अहा! वास्तवमें इस भौतिक विलास-प्रचुर युगमें वीतरागविज्ञानके अध्ययन हेतु प्रशममूर्ति स्वात्मज्ञ पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी कल्याणकारी शरणमें जीवनको वैराग्यमें ढालनेका यह अनुपम आदर्श पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावनायोगका एक विशिष्ट अंग है।

गुरुदेवका प्रभाव एवं अध्यात्मका प्रचार भारतमें शीघ्रतासे फैलने लगा। सौराष्ट्रमें जगह-जगह दिगम्बर जिनमन्दिरोंकी तैयारी होने लगी। लोगोंकी जिज्ञासा बढ़ती गई और अधिकाधिक जिज्ञासु सोनगढ आकर लाभ लेने लगे।

पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावसे सौराष्ट्र-गुजरातमें दिगम्बर वीतराग जैनधर्मके प्रचारका एक अद्‌भुत अमिट आन्दोलन फैल गया। जो मंगल कार्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने गिरनार पर वादके समय किया था उसी प्रकारका दिगम्बर जैनधर्मकी सनातन सत्यताकी प्रसिद्धिका गौरवपूर्ण कार्य अहा! पूज्य गुरुदेवने श्वेताम्बर बहुल प्रदेशमें रहकर, अपने स्वानुभूतिमुद्रित सम्यक्त्वप्रधान सदुपदेश द्वारा हजारों स्थानकवासी-श्वेताम्बरोंमें श्रद्धाका परिवर्तन लाकर, सहजरूपसे तथापि चमत्कारिक ढंगसे किया। सौराष्ट्रमें नामशेष हो गये दिगम्बर जैनधर्मके—पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगसे जगह-जगह निर्मित दिगम्बर मन्दिर, उनकी मंगल प्रतिष्ठाएँ तथा आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा हुए—पुनरुद्धारका युग आचार्यवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके मन्दिरनिर्माण-युगका स्मरण कराता है। अहा! कैसा अद्‌भुत आचार्यतुल्य उत्तम प्रभावनायोग!

पूज्य गुरुदेवने दो-दो बार विशाल मुमुक्षु-संघ सहित की पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा उस अरसेमें पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे प्रवाहित सत्यतत्त्व-प्रकाशक प्रवचनों द्वारा हुई अभूतपूर्व प्रभावनाकी तो बात ही क्या! गाँव—गाँवमें भव्य स्वागत, चौराहे-चौराहे पर वधाई, उमड़ता हुआ मानवसमुदाय, श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते अभिनन्दन-समारोह;—जैन जनतामें धर्मोत्साहकी ऐसी लहर फैल जाती मानों तीर्थंकरभगवानका समवसरण आया हो! गुरुदेवकी अध्यात्मतत्त्व सम्बन्धी गर्जना सुनकर विरोधी काँप उठते, हजारों जिज्ञासुओंके हृदय प्रभावित होकर नाच उठते! अहा! तीर्थयात्राके दौरान हुई धर्म प्रभावनाका आनन्दोल्लासकारी चित्र प्रत्यक्षदर्शी मुमुक्षुओंके स्मृतिपट पर आज भी अंकित हैं।

अहो! उस अभूतपूर्व यात्राका क्या वर्णन हो सके! गुरुदेव जहाँ-जहाँ पधारते वहाँ ऐसा भव्य स्वागत होता कि वहाँकी अजैन जनता भी आश्चर्यमग्न हो जाती और प्रमोदमें बोल उठती कि—अहा कौन हैं यह सन्त पुरुष? अपनी नगरीमें हमने ऐसा भव्य और विशाल स्वागत नहीं देखा। इन्दौरमें हुआ असाधारण भव्य स्वागत तो विशिष्टरूपसे अविस्मरणीय है! पूज्य गुरुदेवके मंगल पदार्पणसे सर सेठ श्री हुकमचन्दजी तो अत्यन्त आनंदित हुए थे और उन्होंने अति आनन्दविभोर होकर हाथी-घोड़े तथा उनका सोने-मखमलका सारा कीमती साज-सामान पूज्य गुरुदेवकी स्वागतयात्राकी विशिष्ट शोभा हेतु निकालनेका अपने लोगोंको आदेश दिया था। इन्दोरमें हुए पूज्य गुरुदेवके प्रवचन भी कोई अद्‌भूत थे। पण्डित, त्यागी और समाज, खूब प्रभावित हुए थे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सं. २०१३, फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन पूज्य गुरुदेवने लगभग दो हजार भक्तों सहित श्री सम्मेदशिखरकी जीवनमें प्रथम बार यात्रा की। (दूसरी बार सं. २०२३ में की) अहा! पहली टोंक पर—श्री कुन्थुनाथ भगवानकी टोंक पर—पूज्य गुरुदेवने सम्मेदशिखर तीर्थकी, वहाँसे मोक्ष पधारे तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियोंकी, निर्वाणधामके रूपमें सम्मेदशिखरकी शाश्वतताकी एवं तीर्थयात्राकी, अध्यात्मसाधनाके साथ सुसंगत जो अद्भुत महिमा बतलायी थी उस मधुर प्रसंगका सुस्मरण आज भी भक्तोंको आनन्दित कर देता है। मधुवनमें पाँचेक हजार श्रोताओंकी सभामें जो अद्भुत प्रवचनधारा बहती उससे विद्वान तथा त्यागी भी प्रभावित होते थे। इन्दौरनिवासी पं. श्री बंशीधरजी न्यायाचार्यने अपने भावभीने भाषणमें गद्गद्भावसे साहसपूर्वक समाजसे स्पष्ट कहा था कि—अनन्त चौबीसीके तीर्थंकरों तथा आचार्योंने सत्य दिगम्बर जैनधर्मको अर्थात् मोक्षमार्गको प्रगट करनेवाला जो सन्देश दिया था वह इन कानजीस्वामीकी वाणीमें हमें सुनायी दे रहा है।

सं. २०१५में करीब सातसौ भक्तों सहित गुरुदेवने दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी मंगल यात्रा हेतु प्रस्थान किया। कुन्दाद्रि, रत्नप्रतिमाओंका धाम मूडबिद्री, विश्वविख्यात बाहुबलिधाम—श्रवणबेलगोला, कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि पोन्नूर आदि दक्षिण भारतके तथा मध्य भारतके अनेक तीर्थधामोंकी अति आनन्दपूर्वक मंगल यात्रा की। प्रवासके मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े नगरोंमें अध्यात्मविद्याकी वर्षा की। गाँव-गाँवमें भव्य स्वागत एवं अभिनन्दन-समारोह हुए। पूज्य गुरुदेवके दक्षिण भारतमें पदार्पणसे वहाँका समाज अति आनन्दित हुआ था और लोग उल्लास व्यक्त करते थे कि—जिस प्रकार श्री भद्रबाहुस्वामी हजारों शिष्यों सहित उत्तर भारतसे पधारे थे, उसी प्रकार अहा! श्री कानजीस्वामी हजारों भक्तों सहित पश्चिम भारतसे दक्षिण भारतमें पधारे और धर्मका महान उद्योत किया। (वि. सं. २०२० में दक्षिण भारतकी दूसरी बार यात्रा की थी।)

अध्यात्ममूर्ति स्वानुभूतिसम्पन्न पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनागगनके धर्मोद्योतकारी अपार प्रसंगसितारोंको गिननेसे गिना नहीं जा सकता। एक घटना याद करो और दूसरी भूलो—ऐसी तो अनेक अद्भुत शासनप्रभावनापूर्ण घटनाओंसे पूज्य गुरुदेवका जीवन विभूषित है। सोनगढ पूज्य गुरुदेवके पावन सत्समागम तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र छायामें अध्यात्मतत्त्वाभ्यासपूर्वक जीवन जीने हेतु, गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार करके, रहनेवाली कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंके लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविकाब्रह्मचर्याश्रम'की स्थापना हुई; संगमरमरनिर्मित गगनचुम्बी भव्य मानस्तंभ, श्री महावीर भगवानके विशाल भव्य जिनबिम्बयुक्त तथा समयसारादि परमागमोंकी सुन्दर कारीगरीसे अत्यंत सुशोभित अनुपम एवं अद्भुत 'श्री महावीरकुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममन्दिर' आदिके निर्माणकार्य हुए तथा उनके प्रतिष्ठामहोत्सव मनाये गये; सौराष्ट्र, गुजरात और हिन्दीभाषी प्रदेशोंमें अनेक नगरों एवं ग्रामोंमें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई, दिगम्बर जिनमन्दिर तथा समवसरण आदि रचे गये और उनकी भव्य प्रतिष्ठाएँ हुईं; तथा विदेश (नाइरोबी) प्रवास और वहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरकी भव्य प्रतिष्ठा तथा अध्यात्मतत्त्वोपदेश द्वारा सनातन सत्य जैनधर्मका प्रचार हुआ।—इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके पावन प्रभावना-उदययोगमें विविधरंगी धर्मोद्योत हुआ। अहा! पूज्य गुरुदेव द्वारा हुए धर्मप्रभावनाके उन पावन प्रसंगोंके संस्मरण आज भी भक्तोंके

तनको रोमांचित तथा मनको प्रफुल्लित कर देते हैं! वास्तवमें पूज्य गुरुदेवने इस युगमें एक प्रभावक आचार्य जैसा अद्‌भुत एवं अनुपम कार्य किया है।

पूज्य गुरुदेवके पुनित प्रतापसे सोनगढका जीवन ही जगतसे बिलकुल निराला था। प्रतिदिन प्रातः देव-गुरुके दर्शन, जिनेन्द्रपूजा, दो बार पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मरस झरते प्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति, भगवानकी आरती और तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम नियमित चलते थे; तदुपरान्त सत्‌साहित्यकी—मूल शास्त्रों तथा प्रवचनोंकी—लाखों पुस्तकें और 'आत्मधर्म' पत्र प्रकाशित हुए। सोनगढमें तथा सौराष्ट्र, गुजरात और भारतके अन्य नगरोमें अनेक पंचकल्याणकपुरस्सर जिनबिम्ब-प्रतिष्ठाएँ, वेदी-प्रतिष्ठाएँ हुई। उस हेतु तथा तीर्थयात्राके निमित्तसे भारतवर्षमें अनेक बार गुरुदेवके जिनशासनप्रभावकारी मंगलविहार हुए, लाखों लोगोंने गुरुदेवकी अश्रुतपूर्व अध्यात्मदेशना श्रवण की और हजारों लोगोमें धार्मिक रुचि उत्पन्न हुई! इस तरह विविध प्रकारसे कल्पनातीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेव द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना-प्रयत्नके साहजिक रीतिसे हुआ है। गुरुदेवने धर्मप्रभावनाके लिये कभी किसी योजनाका विचार नहीं किया था। मन्दिर बनवानेकी, प्रतिष्ठाएँ करानेकी, पुस्तकें छपवानेकी या धार्मिक शिक्षण-शिबिर चलानेकी-ऐसी किसी प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें वे कभी नहीं पड़ते थे। वह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। मुनिको कोई कर्मप्रक्रमके परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रवृत्तिका कार्यभार नहीं लेते—इस प्रवचनसारकी बातका विवरण करते हुए, मानों अपने हृदयकी बात शास्त्रमेंसे निकल आयी हो इस प्रकार, वे बड़े प्रफुल्लित हो उठते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था! जगत जगतकी जाने, मुझे अपना करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' यह कबीरने गाया है परन्तु गुरुदेवको तो जीवित ही 'मेरे लिये कोई है नहि दुनिया' ऐसी परिणति जीवनमें ओतप्रोत हो गई थी। अहा! कैसी आश्चर्यकारी निस्पृह दशा!

जिन्होंने जो सुधाझरती आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किया था, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' ऐसे विविध प्रकारसे सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती, जिसकी गहरी आत्मार्थप्रेरक छाप श्रोताओंके हृदयपट पर अंकित हो जाती। मुख्यतया इस प्रकार उनके द्वारा सहजरूपसे धर्मका उद्योत हो गया था।

पूज्य गुरुदेवके निमित्तसे ऐसी प्रबल बाह्य प्रभावना होने पर भी वह स्वयं सहजरूपसे हो गई थी। गुरुदेवको बाह्यमें किंचित् मात्र रस नहीं था। उनका जीवन तो आत्माभिमुख था। उनका दैनिक क्रम प्रायः निज ज्ञान, ध्यान एवं शास्त्रस्वाध्यायमें व्यतीत होता था। देवदर्शन, शास्त्रप्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति और तत्त्वचर्चाके सिवा अन्य प्रवृत्तिके प्रति उपेक्षाभाव वर्तता था। न कभी किसीके साथ इधर-उधरकी बातें करते और न कभी पुस्तक प्रकाशनादि बाह्य कार्योंमें रुचि बतलाते। गुरुदेवकी परिणति ऐसी आत्मोन्मुख एवं वैराग्यपरिणत थी कि उन्हें सरस-नीरस आहारके प्रति लक्ष भी नहीं जाता था। वे हमेशा सादा आहार लेते थे। जो भी आहार आये उसे उपेक्षित एवं उदासीन भावसे ग्रहण कर लेते थे। उनका जीवन मात्र आत्माभिमुख था। वे जगतसे बिलकुल उदास—उदास थे। गुरुदेवके परम पावन आदर्श जीवनसे, उनकी पवित्र आत्मसाधनासे, प्रभावित होनेके कारण जिज्ञासुओंके दल हजारोंकी संख्यामें पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मरसझरती वाणीके प्रति आकर्षित हुए। हजारों भक्तोंके श्रद्धाजीवन एवं

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भक्तिजीवन गुरुदेवके पुनीत चरणोंमें अर्पित हुए। अहा! गुरुदेवके प्रतापसे, मरुस्थलमें मीठे कुएकी भाँति, पंचम कालके इस भौतिक विलासके विषमय युगमें चतुर्थ कालका अंश—धर्मकालका प्रवर्तन हुआ। वास्तवमे गुरुदेवने इस कालमें अनेकान्तसुसंगत शुद्धात्मविद्याके नवयुगका प्रवर्तन किया है।

सचमुच तो पूज्य गुरुदेव इन सब कार्योंके 'कर्त्ता' थे ही नहीं, वे तो अंतरसे केवल उनके 'ज्ञाता' ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। बाह्य कार्य तो 'अकर्ता'भावसे—ज्ञाताभावसे सहजरूपसे हो गये थे। स्वानुभूतिसमन्वित भेदज्ञानधारामेंसे प्रवाहित शुद्धात्मदृष्टिजनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याणका मार्ग बतलाया यही वास्तवमें उनका हमारे ऊपर असाधारण महान-महान मुख्य उपकार है। वे बारम्बार कहते थे—अल्पायुषी मनुष्यभवमें निज कल्याण साधना तथा उसके कारणभूत सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। सम्यग्दर्शनका माहात्म्य अपार है।

श्रीमद्‌राजचंद्रजीने कहा है 'अनंत कालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।' अरेरे! इस भवान्तकारी सम्यग्दर्शन—निजशुद्धात्मदर्शन—विना अनादिकालसे अनन्त-अनन्त जीव संसारपरिभ्रमणके दुःख भोग रहे हैं। जीव चाहे जितने व्रत-तपादि क्रियाकाण्ड करे या शास्त्रोंका ज्ञान कर ले, किन्तु जब तक रागकी और परलक्षी ज्ञानकी दृष्टि तथा उसकी महिमा छोड़कर भीतर त्रैकालिक आत्मस्वभावकी महिमा न समझे, अन्तर्मुख दृष्टि न करे तब तक उसकी गति संसारकी ओर है। उसमेंसे जो कोई विरल जीव सुगुरुगमसे तत्त्वको समझकर अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणति अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मानुभूति—प्राप्त कर ले उसीने वास्तवमें, संसारमार्ग पर चले जानेवाले विशाल पान्थसमुदायसे अलग होकर, मोक्षमार्ग पर अपना प्रयाण प्रारंभ किया है। भले ही वह धीमी गतिसे चलता हो, असंयमदशा हो, अंतरमें साधनाका—स्थिर हो जानेका उग्र पुरुषार्थ न हो, तथापि उसकी दिशा मोक्षके ओरकी है, उसकी जाति मोक्षमार्गीकी है। सम्यग्दर्शनका ऐसा अद्‌भुत माहात्म्य कल्याणार्थीके हृदयमें उतर जाना चाहिये।

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टि होनेका इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार कर लेनेका अमोघ उपाय बतलानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष—उपकारी सम्यग्दृष्टिके माहात्म्यकी तो बात ही क्या? ऐसे अपने परम-उपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशयमाहात्म्यवन्त कृपालु कहानगुरुदेवके प्रति अपना सर्वस्व न्योच्छावर कर दें तो वह भी कम है।

पूज्य गुरुदेवने 'भगवान आत्मा....भगवान आत्मा....ज्ञायक' ऐसी ज्ञायकदेवकी मधुर ध्वनि सदैव जीवन्तपर्यन्त गुँजायी। भौतिक जगतमें जहाँ विशाल जनसमुदाय आत्माके अस्तित्व सम्बन्धमें भी शंकाशील है, वहाँ गुरुदेवने युक्ति तथा स्वानुभवके अत्यन्त बलपूर्वक भेरी बजाई कि—एक ज्ञायक आत्मा ही मैं हूं, मैं सर्वके उपर तैरता परम पदार्थ हूँ। वे आत्माकी मस्तीमें गाते थे कि—'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उलंघी हो जाय जिनेश्वर'। उन्हें आश्चर्य होता कि—यह, भीतर दृष्टिके समक्ष ही, परम निधान—समृद्धिसे भरपूर ज्ञायकतत्त्व—विद्यमान है उसका उल्लंघन करके—उसे लाँघकर—जगत क्यों चला जाता है? 'यह वस्तु सच्ची', 'यह वस्तु यहाँ यह दिख रही' इस प्रकार दृश्य वस्तुको वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवालेको वह क्यों नहीं देखता? क्यों उसे लाँघकर चला जाता है?

T-4.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व दृश्य वस्तुओंके द्रष्टाकी—परम-निधानकी—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगमसे होती है। अहा! ऐसे उस पवित्र गुरुगमके दाता अपने परमोपकारी गुरुदेव अपनेको परम सौभाग्यसे प्राप्त हुए।

पूज्य गुरुदेव कहते थे कि—विश्वके सर्व द्रव्य परिपूर्ण स्वतंत्र हैं। सभी द्रव्योंके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्यका शरीरादि पर द्रव्योंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्ध भावको स्वयं ही करता है। यहां स्वाभाविकरूपसे ही प्रश्न होता है कि "(श्री प्रवचनसार–शास्त्रमें कहे अनुसार) शुभ या अशुभ परिणमनमें 'शुभ या अशुभ' आत्मा बने"—ऐसा आप कहते हैं और साथ ही "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धताका आश्रय करना मोक्षमार्ग है"—ऐसा भी आपका कहना है; इन दोनों बातोंका मेल किस प्रकार है।

इस अत्यन्त-अत्यन्त महत्वकी बातका स्पष्टीकरण गुरुदेव इस प्रकार करते थे:—स्फटिकमणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; वह लालीरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह लाली स्फटिककी ही है, वस्त्रकी बिलकुल नहीं; परन्तु वह लाली लालरंगके चूरेकी, हिंगड़ेकी या कुंकुमकी लाली जैसी नहीं है; लाल दशाके समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता विद्यमान है। उसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिलकुल नहीं; परन्तु शुभाशुभ दशाके समय भी सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है। जिस प्रकार स्फटिकमणिको लाल हुआ देखकर कोई बालक रोने लगे कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मैला हो गया', किन्तु जौहरी तो उस लालीके समय ही विद्यमान निर्मलताकी मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दुःखी-दुःखी हो जाता है, परन्तु ज्ञानी शुभाशुभपनेके समय ही विद्यमान शुद्धताको मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्त्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिक भाव कहो—यह सब एकार्थ हैं ऐसा गुरुदेव कहते थे।

आत्मा 'भविष्यमें' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमानमें ही' वह सामर्थ्य-अपेक्षासे सम्पूर्ण विज्ञानघन है, अनन्तानन्दका पिण्ड है, निर्विकारी है, जिसकी ज्ञानीको स्पष्ट अनुभवसहित प्रतीति होती है। गुरुदेव कहते कि—**'तेरो सरूप न दुंदकी दोहीमें, तोहीमें है तोही सूझत नाहीं'**। तेरा स्वरूप राग-द्वेषादि द्वन्द्वकी दुविधामें नहीं है, इसी समय राग–द्वेष रहित है; उसकी सूझसे ही मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। उसकी सूझके बिना तू संसारमें परिभ्रमण करता है।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धत्त्वके–ध्रुवत्त्वके भान बिना शुद्ध परिणति नहीं होती। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वयका अर्थ मात्र 'वह....वह....वह' इतना ही नहीं, किन्तु केवलज्ञान सामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तसुखसामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तवीर्यादिसामर्थ्यसे भरपूर ऐसा 'वह..वह...वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा परमपारिणामिक भाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्धज्ञायकका गुरुदेव सतत अनुभव कर रहे थे इससे उनको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

निरन्तर आंशिक शुद्धपरिणति वर्तती थी। उनके साथ वर्तनेवाला प्रयोजनभूत विषयोंका-द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व, निश्चय–व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादिका—ज्ञान भी उनको विशदतापूर्वक सम्यक्रूपसे परिणमता था जिससे शास्त्रोंके लुप्तप्राय हो गये सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगतमें खूब प्रचलित हुए।

वे कहते थे कि—'अहो जीवों! अशुभ तथा शुभ दोनों भाव बन्धके कारण हैं, मोक्षके नहीं।' 'तो मोक्षका कारण कौन?' 'शुद्ध भाव।' 'कषाय कम करें उतना तो शुद्ध भाव होगा न?' दृढतासे उत्तर मिलता कि 'वह तो शुभ भाव है; निरन्तर शुद्ध ऐसे निज आत्मपदार्थको श्रद्धना–जानना और उसमें लीन होना वह शुद्ध भाव है'। 'अशुद्धभावके समय भी शुद्ध? अशुद्ध और शुद्ध एकसाथ कैसे हो सकते हैं?' 'हो सकते हैं। **यद् विशेषेपि सामान्यं एकमात्रं प्रतीयते।** अशुद्ध विशेषोंके समय भी सामान्य तो एकरूप —शुद्धरूप रहता है।' शुभाशुभ पर्यायके समय भी भीतर स्वभावमें सामर्थ्यरूपसे परिपूर्ण भरपूर शुद्धता भरी पड़ी है वह बात, श्री पंचाध्यायीके **'सन्त्येनकेत्र दृष्टान्ता हेमपद्मजलाऽनलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैन्धवाः॥'**—इस श्लोकमें कहे गये सुवर्ण, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र एवं लवणके दृष्टांतो द्वारा गुरुदेव समझाते थे। विशेष-अपेक्षासे होनेवाली अशुद्धताके समय भी सामान्य अपेक्षासे रहनेवाली द्रव्यकी शुद्धता समझाते हुए गुरुदेव कहते कि—द्रव्य-अपेक्षासे वर्तमानमें शुद्धता विद्यमान न हो तो किसीकाल पर्यायशुद्धता हो ही नहीं सकती। जहाँ अज्ञानी विशेषोंका आस्वादन करते हैं वहीं ज्ञानी सामान्यके आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। यही संक्षेपमें बन्धमार्ग और मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य है।

पूज्य गुरुदेवने भारतवर्षमें सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूतिकी महिमाका पावन युगप्रवर्तन किया।

जिस प्रकार श्री प्रवचनसारमें आचार्यभगवानने जगतके समक्ष घोषित किया है कि 'श्रामण्यको अंगीकार करनेका जो यथानुभूत—हमने स्वयं अनुभव किया हुआ—मार्ग उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं', उसी प्रकार अध्यात्मविद्या–युगस्रष्टा पूज्य गुरुदेवने भी स्वयं अनुभव करके अत्यन्त दृढतापूर्वक सिंहनाद किया कि 'अनुभव करके कहते हैं कि स्वानुभूतिका मार्ग ही मोक्षका उपाय है, तुम निर्भयरूपसे इस मार्ग पर चले आओ।'

स्वानुभूति होने पर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है। उस सम्बन्धमें गुरुदेव कहते थे कि—स्वानुभूति होने पर, अनाकुल–आह्लादमय, एक, समस्त विश्व पर तैरता विज्ञानघन परमपदार्थ—परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्रूपसे देखनेमें—श्रद्धनेमें ही नहीं आता; इसलिये बिना स्वानुभूतिके सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ ही नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना? स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका किसी भी प्रकार निर्णय करनेको गुरुदेव भारपूर्वक कहते थे। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सतपना और स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वोंका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—गुरुदेवने भारतव्यापी प्रचार किया। तीर्थंकरदेवों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक सत्य तो गुरुदेव द्वारा विविध माध्यमोंसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशित हुए ही; साथ ही साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्धद्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिमाणिक भाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसे बाहर लाकर पूज्य गुरुदेवने अथाह उपकार किया है।

जीव परद्रव्यकी क्रिया तो नहीं करता, किन्तु विकारकालमें भी स्वभाव-अपेक्षासे निर्विकार रहता है, अपूर्ण दशाके समय भी परिपूर्ण रहता है, सदाशुद्ध है, कृतकृत्य भगवान है। जिस प्रकार रंगित दशाके समय स्फटिकमणिके विद्यमान निर्मल स्वभावकी प्रतीति हो सकती है, उसीप्रकार विकारी, अपूर्ण दशाके समय भी जीवके विद्यमान निर्विकारी, परिपूर्ण स्वभावकी प्रतीति हो सकती है। ऐसे शुद्धस्वभावके अनुभव बिना मोक्षमार्गका प्रारम्भ भी नहीं होता, मुनिपनेका पालन भी नरकादिक दुःखोंके भयसे या अन्य किसी हेतुसे किया जाता है। 'मैं कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, सहजानन्द हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये' ऐसी परम उपेक्षारूप, सहज उदासीनतारूप, स्वाभाविक तटस्थतारूप मुनिपना द्रव्यस्वभावके अनुभव बिना कभी नहीं आता। ऐसे शुद्धद्रव्य–स्वभावके—ज्ञायकस्वभावके निर्णयके पुरुषार्थकी ओर, उसकी लगनकी ओर आत्मार्थियोंको मोड़कर, भवभ्रमणसे आकुलित मुमुक्षुओं पर गुरुदेवने अकथ्य उपकार किया है।

जिस प्रकार पूज्य गुरुदेवका तात्त्विक उपदेश हमें सत्य मार्गकी ओर उन्मुख करता है उसी प्रकार उनके ध्येयनिष्ठ जीवनका प्रत्यक्ष परिचय, उनका सत्संग हमारे समक्ष आत्मार्थीजीवनका आदर्श उपस्थित करके हमें पुरुषार्थकी प्रेरणा देता था। 'इस महँगे मनुष्यभवमें भवभ्रमणके अन्तका ही उपाय करना' यह एक ही जीवनध्येय गुरुदेवका पहलेसे ही था। उस ध्येयको उन्होंने समग्र जीवन समर्पित किया था। उसीके लिये अध्ययन, उसीका मंथन, उसीका प्रयत्न, वही उपदेश, वही बात, वही चर्चा, वही धुन, उसीके स्वप्न, उसीकी भनक,—उनका समस्त जीवन उसी हेतु था। गत अनेक वर्षोंमें जगतमें विविध आन्दोलन आये और गये, अनेक राजकीय, सामाजिक, धार्मिक झंझावात हुए, किन्तु मेरु समान अचल गुरुदेवके ध्येयनिष्ठ जीवनको वे लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सके। 'इस एक भवके सुखाभासके हेतु कल्पित व्यर्थ प्रयत्नसे क्या लाभ? मुझे तो एक भवमें अनन्त भवोंका अन्त करना है' ऐसे भावपूर्वक, फिर जन्म न हो उसके उपायकी धुनमें वे निज अन्तर्मुख जीवनमें अत्यन्त लीन रहे।भवन्तके उपायके सिवाय अन्य सब उन्हें अत्यन्त तुच्छ लगता था।

पूज्य गुरुदेवका अंतर सदा 'ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक, ध्रुव....ध्रुव....ध्रुव, शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध, परमपारिणामिकभाव'—इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनभावसे निरन्तर–जागृतिमें या निद्रामें—परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसारादिके प्रवचन करते हुए या चर्चा–वार्तामें वे ज्ञायकके स्वरूपका और उसकी महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहो! वे स्वतंत्रता और ज्ञायकके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थीयोंको सच्चा मुक्तिका मार्ग बतालाया!

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह–अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भावे भरे;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकमहीं तन्मय बनी ज्ञातृत्वने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो।

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे अपने गुरुदेव।

वे द्रव्य-अपेक्षासे 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभवते थे तथापि पर्याय-अपेक्षासे 'हम कब सिद्धपना प्रगट करेंगे!' इस प्रकार भावना भी भाते थे। सिद्धत्वकी तो क्या, किन्तु संयमकी भावनारूप भी वे परिणमते थे। 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल जहँ छाया जी, चरणकरणगुणधार महामुनि मधुकर मन लोभायाजी' ऐसे अनेक बार भावविभोर ललकारसे तथा 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो?...' इस प्रकार हृदयकी गहराईसे दैनिक प्रवचनोमें तथा श्री जिनबिम्ब–प्रतिष्ठामें दीक्षाकल्याणकके प्रासंगिक प्रवचनमें विविध प्रकारसे संयमकी भावना भाते हुए गुरुदेवकी पावन मूर्ति भक्तोंकी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपनेको पूर्ण शुद्ध देखें—मानें तथापि संयमकी भावना भायें?' हाँ; शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण शुद्ध अपनेको देखते–मानते हुए भी व्यक्ति–अपेक्षासे शुद्ध होनेकी भावना ज्ञानीको अवश्य होती है। गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणतिरूप परिणमित हो रहे थे। वास्तवमें तो शुद्धस्वरूपके दृष्टा सम्यग्दृष्टि जीवको ही सच्ची संयमकी भावना होती है, क्योंकि वह संयमपरिणतिका सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टिको सच्ची संयमकी भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयमकी खबर नहीं है।

'बहिनश्री के वचनामृत'के ३०८वें बोलमें कहा है कि :—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगता, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव शक्ति-अपेक्षाके इस बोलका बारम्बार उल्लासपूर्वक स्मरण करते थे, उसी प्रकार व्यक्ति–अपेक्षाका सिद्धत्व प्राप्त करनेकी भावनाका ४०१ वाँ बोल भी अनेक बार उल्लसितभावसे याद करके प्रसन्नतापूर्वक कहते थे:—देखो! बहिन कैसी भावना भाती हैं? 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है।...अब हम स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।

ऐसा अनेकान्तसुसंगत यथार्थ संधिवाला पूज्य गुरुदेवका जीवन हमें सच्चा मार्ग बतला रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभ भावोंमें संतुष्ट न होकर ध्रुव तत्त्वके आलम्बनके पुरुषार्थकी प्रबल प्रेरणा दे रहा है; तथा 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढताके साथ साथ 'हम अपने मूल वतनमें जानेके लिये तरस रहे हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहना चाहिये, नहीं तो 'ध्रुव तत्त्व'की समझके प्रकारमें ही कुछ भूल है ऐसी चेतावनी देकर, दीपस्तम्भरूप रहकर, हमारी जीवननौकाको चट्टानी मार्गसे बचाकर, हमें सच्चे मार्ग पर लगाते हैं। श्री सद्गुरुदेवकी स्तुतिमें हम गाते हैं न—

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग बिन वह नाव भी तारे नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

इसकालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य हैं;
मम पुण्यराशी फलि अहो! गुरुकहान नाविक आ मिले॥

—अहा! इस प्रकार परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवका स्वानुभवविभूषित पवित्र जीवन तथा अध्यात्मोपदेश हमें अत्यन्त उपकारक हो रहे हैं।

वस्तुतः पूज्य गुरुदेवने स्वानुभूति प्रधानताके एक अद्भुत युगका प्रवर्तन किया है। **'मेरो धनी नहि दूर दिसंतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके'** ऐसा प्रबल सिंहनाद करके गुरुदेवने सर्वज्ञ-वीतरागप्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिनशासनकी मन्द हुई ज्योतिमें नया तेल डालकर आत्मार्थी जीवों पर वास्तवमें महान अनहद उपकार किया है।

ऐसे चमत्कारपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान-भक्तिके नवयुगका सृजन करनेवाले महान-महान उपकारी परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने जीवनके अन्तिम क्षण तक अपने स्वानुभवसमृद्ध ज्ञानभण्डारमेंसे भक्तोंको खूब–खूब दिया; भारतके सुपात्र जीवोंको निहाल कर दिया। ९१ वर्षकी उम्र तक अविरतरूपसे वीतराग–विज्ञानका वितरण किया। अन्तमें भक्तोंके भाग्य क्षीण हुए। वि. सं. २०३७ मगसिर कृष्णा सप्तमी, शुक्रवार (ता. २८–११–१९८०)के दिन भक्तोंके परमाधार गुरुदेवने भक्तोंको निराधार छोड़कर अंतर ज्ञायककी साधनायुक्त समाधिपरिणाममें स्वर्गकी ओर महाप्रयाण किया।

अहो! कृपालु गुरुदेवकी उपकारभरपूर महिमाका तो क्या वर्णन हो!

श्रीमद्राजचन्द्रजीने गुरुमहिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि—

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिन्धु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार।

शुं प्रभुचरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन।

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन।

परम कृपालु पूज्य गुरुदेवकी अपार उपकारमहिमा, उनकी परम-भक्त प्रशममूर्ति धन्यावतार आत्मज्ञानी पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके विविध प्रसंगो पर बोले गये शब्दोंमें कहकर पूज्य गुरुदेवका 'संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन' समाप्त करता हूँ :—

"पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। यह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेवका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परमउपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो।''

''तीर्थंकर भगवन्तो द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानवीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहें हैं। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।''

''गुरुदेवने शास्त्रोंके गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूपसे रखा है! हमें कहीं सत्य ढूँढनेको जाना नहीं पड़ा। गुरुदेवका कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ',—इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है....।''

''...(श्री कहानगुरुदेवने) अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो।''

—यह है प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके श्रीमुखसे विभिन्न अवसरों पर प्रवाहित, आध्यात्मिक युगपुरुष परम-कृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी उपकारगरिमायुक्त लोकोत्तर महिमा। ऐसे सातिशय महिमावन्त महापुरुषके पावन योगसे भारतवर्षका आध्यात्मिक क्षेत्र उज्ज्वल हुआ है। शुद्धात्मदृष्टिका सुधापान करानेवाले इन तिरते पुरुषके सत्समागमका लाभ लेनेवाले महान भाग्यशाली बने हैं।

परमपूज्य परमोपकारी गुरुदेवके चरणोंमें—उनकी मांगलिक पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्ग-दर्शक उपदेशोंको और अनेकानेक उपकारोंको दृष्टि समक्ष रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक भावभीनी वन्दना हो। उनके द्वारा प्रकाशित स्वानुभूतिका पावन पंथ जगतमें सदा जयवन्त वर्ते और हमें सत्पुरुषार्थकी प्रेरणाका अमृतपान निरन्तर कराता रहे।

सोनगढ़
सं. २०३६, भाद्रपद कृष्णा दूज

—ब्र० चन्दुलाल खीमचन्द झोबालिया

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मंगलकारी 'तेज'दुलारी

मंगलकारी 'तेज'दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणोंसे मंडित अवनी आज सुमंगल है,.....मंगल०

फाल्गुन कृष्णा दशमी मंगल, वांकानेर सुमंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल ज्ञानमहोत्सवका यह अवसर अनुपम मंगल है,.....मंगल०

मंगल शिशुलीला अति उज्जवल, मीठे बोल सुमंगल हैं,
शिशुवयका वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,.....मंगल०

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरणमें कुंदप्रभुका दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनिका स्मरण मधुरतम मंगल है,.....मंगल०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल हैं,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल हैं;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,.....मंगल०

दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपदमें मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तव गुणको आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें.....मंगल०

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

परमात्मने नमः।

श्री

वचनामृत-प्रवचन

(भाग : चौथा)

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृत
पर
परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

प्रवचन-१३७

दिनांक : १-११-७८

वचनामृत-३५५

तरनेका उपाय बाहरी चमत्कारोंमें नहीं रहा है। बाह्य चमत्कार साधकका लक्षण भी नहीं है। चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्वसंवेदन ही साधकका लक्षण है। जो अंतरकी गहराईमें रागके एक कणको भी लाभरूप मानता है उसे आत्माके दर्शन नहीं होते। निस्पृह ऐसा हो जा कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं चाहिये। एक आत्माकी ही लगन लगे और अंतरमेंसे उत्थान हो तो परिणति पलटे बिना न रहे॥३५५॥

'तरनेका उपाय बाहरी चमत्कारोंमें नहीं रहा है।'

कोई बाहरी चमत्कार दिखायी दे—वाणीका, लेखनका अथवा हस्तकलाका, परन्तु उससे क्या? वह कोई आत्मकल्याणका उपाय नहीं है। अहा! यह तो बड़े लेखक हैं, बड़े

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अच्छे वक्ता हैं; परन्तु उसमें आश्चर्यचकित होने जैसा क्या है? लेखन और वक्तृत्व-कला वह कोई आत्माका वेदन नहीं है। महाराजके 'पदार्पण' से लक्ष्मी प्राप्त हुई, पुत्र नहीं था तो पुत्र प्राप्त हुआ, नौ लड़कियोंके बाद एक लाड़ला इकलौता पुत्र हो गया—यह सब बातें झूठी हैं। कोई साधु हथेलीमेंसे कुंकुम झरता हुआ दिखलाये, या कोई जादूगर लड़कीके टुकडे करके पुनः जीवित बतला दे; उसमें लोगोंको चमत्कार दिखायी देता है; परन्तु वह कोई चमत्कार नहीं है, मात्र हाथकी सफाई है। एक जादूगर कहता था—'महाराज! हमारे चमत्कार तो सब धतिंग हैं, नजरबन्दीके खेल हैं, हाथकी करामत हैं, परन्तु दुनियाँ तारीफ करती है।' हमने कहा : भले ही तारीफ करे, परन्तु मर जाओगे इसी-इसीमें; यह तो सब पुण्यका खेल है, इसमें तुम्हारी इच्छा काम नहीं आती। तथा कोई कहते हैं कि भगवानकी प्रतिमामेंसे अमृतकी बूँदें झर रही हैं; महाराजकी चपटी फिरी तो हम निहाल हो गये—यह सब ढोंग ही ढोंग है।—भ्रम है। इन सबके साथ आत्माका क्या सम्बन्ध? वास्तवमें, बाहरी चमत्कार कोई तिरनेका—आत्मकल्याणका—उपाय नहीं हैं।

'बाह्य चमत्कार साधकका लक्षण भी नहीं हैं।'

गणधर भगवान आदि श्रुतकेवलियोंको क्वचित् ऐसी लब्धि प्रगट होती है कि बारह अंग जैसे श्रुतसमुद्रको अंतर्मुहूर्तमें फेर जाते हैं, स्पष्ट वचनोच्चार द्वारा उसका पाठ कर लेते हैं, तथापि वह कोई विशेष वस्तु नहीं है। कोई अभव्य जीव भी मुनि दीक्षा लेकर ग्यारह अंग पढ़ लेता है, विभंगावधिज्ञान द्वारा सात द्वीप और सात समुद्रोंको प्रत्यक्ष देखता है, परन्तु वह कोई विशेष वस्तु नहीं है, भवके अन्तका उपाय नहीं है। शास्त्रज्ञानके या बाह्य मंत्रतंत्रके चमत्कार साधकका लक्षण भी नहीं है।

'चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्वसंवेदन ही साधकका लक्षण है।'

अरे! रागका वेदन तो जीवको अनादिकालसे है। उसका लक्ष छोड़कर, अंतरमें स्वभावका ग्रहण करके अतीन्द्रिय आनन्दमय जो स्वसंवेदन प्रगट हो वही सच्चा चैतन्यका चमत्कार है। अहा! चैतन्यचमत्कारस्वरूप निर्मल स्वसंवेदनकी तो बात ही क्या! वह तो कोई अपूर्व, अद्‌भुत और अनुपम दशा है। आत्माको अपनी पर्यायमें पहले जो कभी प्रगट नहीं हुआ था ऐसा अतीन्द्रिय आनन्दमय निर्मलस्वसंवेदन प्रगट होने पर पूर्ण शुद्धात्मस्वभाव कैसा है वह अनुभवमें आया। ऐसा स्वसंवेदन आज भी प्रगट किया जा सकता है।

जो अंतरकी गहराईमें रागके एक कणको भी लाभरूप मानता है, उसे आत्माके दर्शन नहीं होते।

धर्मके नामपर लोग अनुभवकी बातें तो करते हैं। अनेक वेदान्ती कहते हैं कि 'हमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव प्रगट हुआ है', परन्तु वह मूल अनुभव–सच्चा अनुभव–नहीं है। अनुभवके स्वरूपकी बातमें बहुत बड़ा फेर पड़ गया है। आत्माको सर्वव्यापक एक ब्रह्म मानकर, अंतरमें किंचित् 'भास' होने पर अपने आत्माका साक्षात्कार हुआ, अनुभव हुआ ऐसा मान बैठते हैं, परन्तु वह कल्पित 'भास' तो धूल भी अनुभव नहीं है, वह तो सब अज्ञानका चमत्कार है।

सहज ज्ञान और सहज आनन्दादि अनन्त गुणोंका स्वामी जो निज शुद्ध आत्मा उसकी अवस्थामें गुण–गुणीके भेदका जो विकल्प उठे वह भी राग है। शुभरागके एक कणको भी जो अंतरकी गहराईमें लाभदायक माने, उसे आत्माका यथार्थ दर्शन या स्वानुभूति प्रगट नहीं होती। वेदान्तमें अनुभवकी बातें बहुत आती हैं, परन्तु वह सब कल्पना है। जिसे अंतरमें आत्माका यथार्थ संवेदन प्रगट हुआ है उसकी पूरी दशा बदल जाती है। अहा! आनन्दका सागर ऐसा जो निज चैतन्यस्वभाव उसे भूलकर शरीरादि परमें या पुण्यपरिणामोंमें सुखबुद्धि रह गई तो अपने पवित्र प्रभुके दर्शन नहीं होंगे।

धनके ढेरमें लोग सुख मानते हैं, परन्तु उसमें धूल भी सुख नहीं है; वह सुखका साधन भी नहीं है। लक्ष्मी आदि कोई परवस्तु जीवको सुख–दुःखका कारण नहीं है, वह तो मात्र ज्ञेय है। परवस्तुमें अनुकूल या प्रतिकूलपनेकी कोई मुहरछाप नहीं है। अज्ञानी जीव परवस्तुमें अनुकूल–प्रतिकूलताकी कल्पना खड़ी करके व्यर्थ ही राग–द्वेष करता है। मुनिराजको भी आहार–विहारके विकल्प आयें, परन्तु उनमें वे अनुकूल–प्रतिकूलपनेकी कल्पना नहीं करते, वे उसके ज्ञाता ही हैं, कर्ता नहीं हैं।

अपनी जानकारी दूसरोंको बतलाऊँ, लोग मुझे पहिचानें, मुझे गिनतीमें लें—वह भी राग है, अभिमान है। जहाँ तक रागके एक कणका भी प्रेम है वहाँ तक आत्माके दर्शन नहीं होते।

'निस्पृह ऐसा हो जा कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं चाहिये।'

आत्मा द्रव्य–पर्यायस्वरूप अनादि निधन वस्तु है। उसके अस्तित्वमें पर्याय है अवश्य, परन्तु वह तो वर्तमान पलटता हुआ अंश है। आत्माका पूर्ण सनातन सहज अस्तित्व त्रिकाल एकरूप ध्रुव है। यहाँ कहते हैं कि विश्वके अन्य सर्व भावोंकी बात तो दूर रही, किन्तु अपनी प्रतिसमय नई–नई होनेवाली पर्यायोंके प्रति भी ऐसा निस्पृह हो जा कि मुझे तो अपना त्रिकालशुद्ध चैतन्यसामान्ययुक्त ध्रुव अस्तित्व ही चाहिये, अन्य कुछ–दुनियाँके मान–सम्मान–बड़प्पन आदिकी आवश्यकता नहीं है।

मुझे अपनी त्रैकालिक सहज सत्ता, सहज शुद्ध त्रैकालिक ज्ञानानन्दादि अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण ध्रुव अस्तित्व ही चाहिये; उसमें 'चाहिये' ऐसा जो, भाव है वह तो वर्तमान पर्याय,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु उस पर्यायरूप कार्यमें क्या चाहिये?—तो यहाँ कहते हैं कि श्रद्धा और ज्ञानके लक्षरूपसे मुझे अपना त्रिकालशुद्ध सहज पूर्ण अस्तित्व ही चाहिये, दृष्टिके विषयभूत ज्ञायक परमभाव-स्वरूप निज पूर्ण सत्ताकी ही आवश्यकता है।

समयसारकी ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीकामें आता है कि—जिस जीवको स्वानुभव हुआ है, विवक्षित एकशुद्धनयाश्रित निर्विकार स्वसंवेदनस्वरूप आंशिक शुद्धिरूप साधनामय परिणति प्रगट हुई है, उसकी वह निर्मल परिणति क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होनेसे यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है, तथापि वह ध्याता पुरुष ज्ञानी धर्मात्मा ऐसा ध्याता है कि 'जो सकल–निरावरण–अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर शुद्ध–पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ'। अहा! ऐसी बात है। साधकको पर्यायमें निर्मल सम्यग्दर्शन–ज्ञानादि प्रगट हुए हैं, तथापि वह निर्मल पर्यायोंका भी ध्यान नहीं करता; उसका ध्येय, आलम्बन तथा आश्रय तो एकमात्र त्रिकालशुद्ध ज्ञानानन्दमय निज ध्रुव अस्तित्व ही है। मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये, अन्य (पर्यायभेद या गुणभेद आदि) कुछ नहीं चाहिये—ऐसा कहकर बहिन कहती हैं कि अपनी वर्तमान पर्यायको अपने त्रैकालिक ध्रुव सहज अस्तित्वमें लगा दे। वर्तमान पर्यायमें ज्ञायकस्वभावमय शुद्ध ध्रुव अस्तित्वको ग्रहण करके तद्रूप परिणमित हो जा। अहा! ऐसा मार्ग है, आया कुछ समझमें?

प्रभु! यह तो तेरे घरकी बात है ना नाथ! अंतरमें तेरा भगवान ज्ञायक आत्मा पूर्ण सत्तामय सहज अस्तित्वसे नित्य विराज रहा है ना प्रभु! बहिनने सादी भाषामें कहा है न!—"जागता जीव खड़ा है वह कहाँ जायगा? अवश्य प्राप्त होगा ही।" अरे अब तो छोटे बच्चे भी बोलना सीख गये हैं कि 'जागता जीव' खड़ा है वह कहाँ जायगा? यह सुनकर मनमें लगा कि 'वाह! जागता जीव अर्थात् ध्रुव ज्ञायकभाव। 'जागता जीव खड़ा है' उसका अनुवाद हिन्दीमें 'जागता जीव विद्यमान है' किया है, उसकी अपेक्षा 'जागता जीव खड़ा है'—यह अधिक अच्छा है।

'मुझे मेरा अस्तित्व ही चाहिये' उसमें 'मेरा' शब्द क्यों पड़ा है? अस्तित्व तो पुद्गलादि शेष पाँच द्रव्योंमें तथा अन्य आत्माओंमें भी है, परन्तु उनके अस्तित्वके साथ मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, उनके अस्तित्वसे मुझे कोई लाभ–हानि नहीं है। अरे! 'मेरा अस्तित्व' अर्थात् क्षणिक पर्याय जितना अस्तित्व नहीं, परन्तु वर्तमान पर्याय द्वारा जीव जिसका आलम्बन लेता है, जिसका आश्रय तथा स्वीकार करता है ऐसा जो निज त्रिकालशुद्ध ध्रुव चैतन्यस्वभाव वही वास्तवमें मेरा सच्चा अस्तित्व है। मुझे मेरा ज्ञानानन्दस्वरूप त्रिकालशुद्ध सहज अस्तित्व ही चाहिये, उसके सिवा बाह्य मान–बड़प्पन, वैभव, उच्च पुण्य या रागका कण भी मुझे नहीं चाहिये। अहा! ऐसी भावना अंतरमें प्रगट हो तब उसे अंतरात्माकी प्राप्ति हो। आज बहुत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अच्छा विषय आ गया है, नूतन वर्ष है न! आजसे वि.सं. २०३५का प्रारम्भ हो रहा है।

ज्ञानलक्षणसे पहिचाना जानेवाला यह आत्मा अपनी वर्तमान पर्याय जितना भी नहीं है; तब फिर उसका स्त्री-पुत्र, दाल-चावल-रोटी, इन्द्रियाँ अथवा शरीर-वाणी आदि भिन्न अस्तित्व धारण करनेवाली वस्तुओंके साथ क्या सम्बन्ध? आत्मा तो उनका स्पर्श भी नहीं करता। आत्मा द्रव्येन्द्रियका भी स्वामी नहीं है तो वह कैसे स्त्रीको भोगे, रसको चखे, गंधको सूँघे, रूपको देखे या प्रशंसाको सुने? प्रभु तू तो चैतन्यस्वरूप आत्मा है न! तेरा परके साथ कोई मेल नहीं बैठेगा, अपने त्रिकालशुद्ध चैतन्यमय सहज अस्तित्वके साथ ही तेरा मेल हो ऐसा है। इसलिये तू उसका ग्रहण कर, रुचिमें उसका आश्रय और अवलम्बन ले, जिससे तेरा कल्याण अर्थात् परमानन्दपदकी प्राप्ति हो।

समयसारकी ७२वीं गाथामें आस्रवोंको अशुचि, विपरीत एवं दुःखके कारण आदि कहकर जीवको प्रत्येक बोलमें 'भगवान आत्मा' कहा है। भगवान आत्मा परम शुचि चैतन्यमय और दुःखका अकारण (सुखका कारण) है। अहा! सन्तोंकी भाषा और सम्बोधन तो देखो! आजकल जीवको 'भगवान आत्मा' कहो तो लोग भड़कते हैं। एक सेठने एक त्यागीजीकी सभामें कहा कि—सोनगढमें तो स्वामीजी जीवको 'भगवान आत्मा' कहते हैं। वह सुनकर त्यागीजीने कहा कि—आत्मा वर्तमानमें भगवान कैसा? भगवानपना प्रगट होगा तब भगवान कहलायगा। अरे रे! क्या किया जाय? आजकलके त्यागियोंको भी खबर नहीं है कि आचार्यदेव पहलेसे ही, अर्थात् पर्यायमें शुभाशुभ आस्रव हैं उस समय भी, आत्माको अंतर शक्ति अपेक्षासे, स्वभाव अपेक्षासे वर्तमानमें ही 'भगवान' कहते हैं। लौकिक नाटकमें भी सती अनुसूया लोरी गाते हुए अपने पुत्रसे कहती है—'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निर्विकल्पोऽसि'। आजकल तो सम्प्रदायके साधु भी 'वर्तमानमें भगवान हो? ऐसा कहकर विरोध करते हैं। अरे! भाई! आत्मा तो तीनोंकाल शक्ति-अपेक्षासे 'भगवान' है; शक्ति-स्वभाव-अपेक्षासे 'भगवान' न हो तो पर्याय-अपेक्षा भगवानपना प्रगट कहाँसे होगा? क्या वह देव-गुरु आदि निमित्तोंमेंसे अथवा कहीं बाहरसे आता है? स्वभावमें है वह अंतर्मुख पुरुषार्थसे पर्यायमें प्रगट होता है।

इसलिये यहाँ कहते हैं कि स्वभावके सिवा, अपने सहज शुद्ध अस्तित्वके सिवा मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिये। शुभरागका एक कण, उससे बँधनेवाला उच्च पुण्य या उसका फल स्वर्ग-अरे, जिससे तीर्थंकर नामकर्मका बंध होता है ऐसा उच्च शुभभाव—आदि अन्य कुछ मुझे नहीं चाहिये।

'एक आत्माकी ही लगन लगे और अंतरमेंसे उत्थान हो तो परिणति पलटे बिना न रहे।'

एक मात्र निज शुद्ध ज्ञायक आत्माकी ही रट, लगन, खटक, तड़प लागे—उसके सिवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई पर्याय, राग, निमित्त या बाह्य चमत्कार की नहीं—और अंतरमेंसे सहज उत्थान हो, अंतरमें रुचिका उदय हो, उत्कण्ठा जागे तो परिणति पलटे, परिणति आत्मामय हो और भवभ्रमणका अन्त आये। अरे रे! जीवको अभी चौरासी लाख योनिके अवतारकी थकान नहीं लगती और जो शुभाशुभ परिणमन अनन्तबार किया है वही बारम्बार करता रहता है। जीवने विगत अनादिकाल शुभाशुभके चक्करमें ही व्यतीत किया है। निगोदमें भी परिणामोंमें संक्लेश एवं विशुद्धता जनित तारतम्य होता है। परिणामोंमें उसके योग्य विशुद्धताके बलसे जीव निगोदसे निकलकर त्रसपर्यायमें आता है। त्रसपनेकी प्राप्ति भी अति दुर्लभ है। 'दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।' अहा! जहाँ त्रसपर्यायको भी चिन्तामणि रत्नके समान दुर्लभ कहा है, वहाँ मनुष्य पर्यायकी दुर्लभताकी तो बात ही क्या! अरे, ऐसा अति दुर्लभ मनुष्यभव किसलिये है? चिदानन्द सत्स्वरूप निज भगवान आत्माकी सानुभव प्राप्तिके लिये है। इसीलिये यहाँ कहा है न! कि 'मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये'—ऐसी अंतरमें तीव्र लगन लगे, अंतरसे उत्थान हो, भीतर स्वसन्मुखताका पुरुषार्थ जागे, तो परिणति पलटे बिना न रहे, स्वानुभूतिमय साधना द्वारा भवका अभाव हुए बिना न रहे।

❀

वचनामृत–३५६

मुनिराजका निवास चैतन्यदेशमें है। उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे–गहरे चैतन्यकी गुफामें चला जाता है। बाहर आने पर मुरदे जैसी दशा होती है। शरीरके प्रति राग छूट गया है। शान्तिका सागर उमड़ा है। चैतन्यकी पर्यायकी विविध तरंगें उछल रही हैं। ज्ञानमें कुशल हैं, दर्शनमें प्रबल हैं, समाधिके वेदक हैं। अंतरमें तृप्त–तृप्त हैं। मुनिराज मानों वीतरागताकी मूर्ति हों इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। देहमें वीतराग दशा छा गई है। जिन नहीं किन्तु जिन सरीखे हैं॥३५६॥

'मुनिराजका निवास चैतन्यदेशमें है।'

अब, मुनिराजकी बात कहते हैं। पूर्णानन्दका नाथ ऐसा जो निज भगवान आत्मा वह मुनिराजका निवास है; वनमें, गुफामें, शरीरमें, वाणीमें या अट्ठाईस मूल गुणोंके शुभविकल्पमें उनका निवास नहीं है। ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यदेशमें अंशतः निवास तो अविरत सम्यग्दृष्टिका भी है, परन्तु निचली भूमिका होनेसे उसे भूमिकाके अनुरूप शुभाशुभ विकल्प अधिक आते हैं, और स्वानुभव परिणत भावलिंगी मुनिराजको अंतरमें स्थिरता–शुद्धता अत्यंत बढ़ गई होनेसे अति अल्प विकल्प आते हैं। यद्यपि छठवें गुणस्थानकी अपेक्षा सातवें गुणस्थानका समय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आधा है और सातवें की अपेक्षा छठवेंका काल दुगुना है; छठवेंमें प्रमादके विकल्प होते हैं तथापि मुनिराज कहते हैं कि 'हम तो स्वदेशमें वास करते हैं।' अहा! चैतन्यदेश ही मुनिराजका निवास है। अहा! चैतन्य जिनका बादशाह है, चैतन्यस्वभाव जिनका स्वदेश है ऐसे वीतराग मुनिराजका निवास वास्तवमें निज आत्मा ही है।

'उपयोग तीक्ष्ण होकर गहरे–गहरे चैतन्यकी गुफामें चला जाता है।'

उपयोग अर्थात् जानने–देखनेका वर्तमान व्यापार। तीक्ष्ण अर्थात् सूक्ष्म। मुनिराजका उपयोग सूक्ष्म होकर गहरे–गहरे चैतन्यकी गुफामें चला जाता है। अहा! देखो, इसका नाम मुनिपना। अरेरे! सच्चा मुनिपना अभी सुननेको नहीं मिला, वहाँ मुनि कहाँसे हो गये? अरे मुनिपना कहा किसे जाय? वस्त्र–पात्र सहित मुनिपनेकी मान्यता वह तो गृहीत मिथ्यात्व है। बाह्यसे नग्नता हो, अट्ठाईस मूलगुणोंका यथार्थ रीतिसे पालन करते हों, परन्तु अंतरमें वस्तुस्वरूपकी प्रतीति न हो तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। यद्यपि वर्तमानमें नग्न दिगम्बर वेश धारण किया होने पर भी, अट्ठाईस मूलगुणोंका भी ठिकाना देखनेमें नहीं आता। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि भावलिंगी मुनिराजकी बात चल रही है। मुनिराजका उपयोग–अंतर्मुख चैतन्यव्यापार सूक्ष्म होकर गहरे–गहरे चैतन्यके धरातलमें–चैतन्यकी गुफामें चला जाता है, स्वरूपरमणतामें विशेष स्थिर होता जाता है। उपयोग बाहर जाने पर रागका उत्थान होता है, भीतर जाने पर रागका शमन होकर स्वरूपस्थिरता बढ़ती जाती है, गहरे–गहरे चैतन्यगुफामें चला जाता है। समयसारकी ४९वीं गाथा पर श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीकामें कहा है न! कि—शुद्ध निश्चयनयसे जो पुद्गलद्रव्यके सर्व वर्णादि गुणों तथा शब्दादि पर्यायोंसे रहित है, जो सर्व द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा मनोगत रागादि विकल्पोंका विषय नहीं है, जो धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और शेष अन्य जीवोंसे भिन्न है तथा जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा अनंतवीर्यस्वरूप है वही शुद्धात्मा है और वही दुर्लभ, अपूर्व एवं उपादेय है—ऐसा समझकर निर्मोह और निरंजन ऐसी जो निज शुद्धात्मसमाधि उससे समुत्पन्न जो सुखामृत रस उसकी अनुभूतिस्वरूप गिरिगुफाकी खोहमें स्थिर होकर सर्व तात्पर्यरूपसे उसका (शुद्धात्माका) ध्यान करना।

बहिनने पहले (३५५वें बोलमें) सम्यग्दर्शनकी बात कही और अब इसमें (३५६वें बोलमें) स्वरूप स्थिरताकी–मुनिपनेकी बात कहतीं हैं। भाई! मुनिपना किसे कहा जाता है?—कि जिनका निवास चैतन्यदेश है और जिनका उपयोग सूक्ष्म होकर गहरे–गहरे चैतन्यकी स्वानुभूतिस्वरूप गुफामें बारम्बार चला जाता है उन्हें मुनिराज कहा जाता है। अहा! धन्य वह मुनिदशा!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'बाहर आने पर मुरदे जैसी दशा होती है।'

अंतरमें जो स्वानुभवकी जगमगाती ज्योति—जीवंतज्योति प्रगटरूपसे वर्त रही है उसमें मुनिराज सदा जागृत रहते हैं; विकल्पसे वे मृत हो गये हैं, कदाचित् व्रतादिके विकल्प उठें और उपयोग बाहर आये तब उनकी दशा विकल्प और बाह्य पदार्थोंके प्रति मुरदे जैसी नीरस और निरुत्सुक होती है। बहिनके ४०१वें बोलमें आता है न! कि–ज्ञानी निजस्वरूपमें परिपूर्णरूपसे स्थिर होनेको तरसते हैं। कदाचित् दया, दान, शास्त्रस्वाध्यायादिके विकल्प उठें तब उनको अंतरमें ऐसा लगता है कि 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है; इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है, × × × अब हम स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे रहना है जहाँ सब हमारे हैं।'

अहा! विकल्पमें आनेकी भी रुचि जिनको उड़ गई है ऐसे मुनिराजकी अंतर्दशाका क्या कहना! उपयोग बाह्यमें या विकल्पमें आने पर उनकी दशा मुरदे समान हो गई होती है। अहा! मुनिदशा तो ऐसी कोई अद्भुत वस्तु है!

'शरीरके प्रति राग छूट गया है।'

मुनिराजको देहातीत निज भगवान आत्मामें सानुभव प्रचुर स्थिरताके कारण आनन्दकी उग्र दशा परिणमित हो गई है, इसलिये उनका देहादि सर्व पदार्थोंके प्रति राग छूट गया है।

'शान्तिका सागर उमड़ा है।'

सागरमें जैसे ज्वार आता है वैसे ही मुनिराजको अंतरमें चैतन्यसागरमें शान्ति एवं आनन्दका ज्वार आया है। अंतरमें शान्तिका सागर उछला है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टिको शान्ति तो प्रगट हुई है परन्तु वह अल्प है; मुनिराजकी शान्तिमें अत्यन्त वृद्धि हो गई है। मुनिराज स्वरूपगुप्त हो गये हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही उनका भावलिंग है। समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें कहा है न! कि—निरंतर झरता—आस्वादमें आता, सुन्दर जो आनन्द उसकी छापवाला जो प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन वही मुनिराजका निजवैभव है।

'चैतन्यकी पर्यायकी विविध तरंगें उछल रही हैं।'

समुद्रमें ज्वार आये तब लहरें उछलकर किनारे आती हैं, वैसे ही मुनिराजको चैतन्य महासागरमें साधनाका ज्वार आया है और इसलिये भीतर चैतन्यकी पर्यायमें श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द, स्वच्छत्व, प्रभुत्व आदि अनंत गुणोंकी यथासम्भव निर्मल तरंगें उछल रही हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ज्ञानमें कुशल हैं, दर्शनमें प्रबल हैं, समाधिके वेदक हैं।'

मुनिराज ज्ञानमें, सम्यक्‌विवेक–स्व–परका तथा स्वभावविभावका यथार्थ भेदविज्ञान–परिणमित होनेसे कुशल हैं, प्रवीण हैं, चतुर हैं; त्रिकालशुद्ध ज्ञायकभावके आश्रयरूप श्रद्धाका बल अंतरमें धाराप्रवाह सतत वर्तता होनेसे दर्शनमें प्रबल हैं; और भीतर स्वभावके अवलम्बन द्वारा स्वरूपस्थिरता अत्यन्त बढ़ गई होनेसे समाधिके–शान्तिके वेदक हैं। जिसप्रकार पिताकी झलक पुत्रमें आती है, वैसे ही मुनिराजमें, सर्वज्ञ पिताके धर्मपुत्र होनेसे, सर्वज्ञ परमात्माकी–उनकी शान्ति, समाधि, सुखकी—झलक आती है। शान्तिका कण तो राजकाजमें लगे हुए सम्यग्दृष्टिको भी होता है परन्तु वह अल्प है, मुनिराजके समान प्रचुर नहीं है। सम्यग्दृष्टिको तो कषायकी एक चौकड़ीका अभाव हुआ है, मुनिराजको कषायकी तीन चौकड़ीका अभाव हुआ है; अंतरमें साधना बहुत बढ़ गई है; उनके अंतरमें तो शान्तिका सागर उमड़ा है; वे ज्ञानमें प्रवीण हैं, श्रद्धामें सुदृढ़ हैं, स्वरूपरमणतामें रत हैं और समाधिके वेदक हैं।

'अंतरमें तृप्त–तृप्त हैं।'

जैसे ब्राह्मण लड्डू खाकर मंथर–सुस्त होनेसे धीमी चालसे चलता है, वैसे ही मुनिराजको अंतरमें साधनाका आनन्द इतना अधिक बढ़ गया है कि जिससे वे स्वरूपमंथर हो गये हैं, स्वरूपमें स्थिर हो गये हैं, अंतरमें तृप्त–तृप्त हैं।

'मुनिराज मानो वीतरागताकी मूर्ति हों इसप्रकार परिणमित हो गये हैं।'

वचनामृतके ४१७वें बोलमें ऐसा आता है कि—जैसे पिताकी झलक पुत्रमें दिखती है वैसे ही जिनभगवानकी झलक मुनिराजमें दिखायी देती है; परन्तु यहाँ विशेष कहा है : मुनिराज मानो वीतरागताकी मूर्ति हों, जिनबिम्ब हों इसप्रकार परिणमित हो गये हैं। आत्मा स्वभावसे जिस प्रकार जिनस्वरूप है वैसे ही मुनिराज पर्यायमें भी मानो वीतराग जिनबिम्ब हों तदनुसार परिणमित हो गये हैं।

'देहमें वीतरागदशा छा गई है।'

अहा! मुनिराजको अंतरमें अकषायका पिण्ड ढल गया है। स्तवनमें आता है न!—

उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयनमें,
हृदयकमलमें दया अनन्त उभराय जो;
मुखमण्डल पर प्रसन्नता प्रसरी हुई,
चरणकमलमें भक्तिरस रेलाय जो।

2

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिनके शरीरमें वीतरागदशा छा गई है, मुखमण्डल पर वीतरागता छलक रही है ऐसे मुनिराजकी दशाका क्या कहना? वे तो वीतरागरसके ढेर-पिण्ड हो गये हैं।

'जिन नहीं किन्तु जिन सरीखे हैं।'

मुनिराज भले ही वर्तमानमें जिन नहीं हैं, केवलज्ञानी नहीं हैं, तथापि उनको 'जिनसमान' कहा जाता है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी भी 'जिन' तो कहे जाते हैं, परन्तु मुनिराज तो अंतरमें स्वरूपरमणता बढ़ जानेसे 'जिनवर' कहे जाते हैं और तीर्थंकर-केवली भगवन्तोंको 'जिनवर वृषभ' कहा जाता है। सम्यक्त्वी जिनेन्द्रके लघुनन्दन हैं और मुनिराज जिनेन्द्रके युवराज हैं। इसलिये मुनिराजको जिन नहीं किन्तु 'जिनसमान' कहा जाता है। आया कुछ समझमें?......ऐसी बातें हैं।

मुनिराज देहमें स्थित चलते-फिरते हैं, अन्न-जल ग्रहण करते हैं, तथापि कहते हैं कि वे 'जिनसमान' हैं। भाई! बाह्यक्रिया को मत देख, वह सब तो जड़का परिणमन है, ऊपरी है; भीतर भगवान अंतरात्मा तो गहरे-गहरे द्रव्यस्वभावमें पड़ा है; पूर्ण द्रव्यस्वभाव जिनने अन्तर्गत किया है उन्हें 'जिन' नहीं किन्तु 'जिनसमान' कहा जाता है।

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप और राग आकुलतास्वरूप—इसप्रकार ज्ञानीको दोनों भिन्न भासित होते हैं। त्रैकालिक नित्यानन्द चैतन्यप्रभुके ऊपर दृष्टि जाने पर साथमें जो ज्ञान होता है वह चैतन्य और रागको अत्यन्त भिन्न जानता है। जिसे तत्त्वकी दृष्टि हुई है उसे सम्यग्ज्ञान होता है; जिसे वह दृष्टि नहीं हुई उसे चैतन्य और रागको भिन्न जाननेकी शक्ति नहीं होती।

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१३८

दिनांक २-११-७८

वचनामृत-३५७

इस संसारमें जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है। उसे किसीका साथ नहीं है। मात्र भ्रान्तिसे वह दूसरेकी ओट और आश्रय मानता है। इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्डमें अकेले भटकते हुए जीवने इतने मरण किये हैं कि उसके मरणके दुःखमें उसकी माताकी आँखोंसे जो आँसू बहे उनसे समुद्र भर जायें। भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किलसे तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है; उसमें आत्माका हित कर लेने जैसा है, बिजलीकी चमकमें मोती पिरो लेने जैसा है। यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजलीकी चमककी भाँति अल्प कालमें विलीन हो जायेंगे। इसलिये जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे अकेला ही सुखके मार्ग पर जा, अकेला ही मुक्तिको प्राप्त कर ले॥३५७॥

'इस संसारमें जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला परिभ्रमण करता है, अकेला मुक्त होता है।'

इस जन्म-मरणकी भयंकर भवाटवीमें अपने शुभाशुभ परिणामोंके कारण बाँधे हुए प्रारब्धवश जीव अकेला जन्मता है, वह गति तथा आयुकर्म पूर्ण होने पर जीव अकेला मरता है। मरण होने पर उसका सर्वथा नाश नहीं हो जाता, किन्तु उपार्जित पुण्य-पाप कर्मोंके फल भोगनेके लिये अन्य भवमें उसका जन्म होता है। इसप्रकार जन्म-मरणका प्रवाह जीवको अनादिकालसे प्रवर्तमान है। जन्म-मरणका मूल कारण ऐसा जो मिथ्यात्व एवं अज्ञानमय निजभाव, उसका सत्समागम द्वारा अपने अन्तर्मुख पुरुषार्थसे प्राप्त होनेवाले सम्यक्त्व और आत्मज्ञान द्वारा नाश करनेमें न आये तब तक जीव अकेला इस दुःखप्रचुर भवाटवीमें परिभ्रमण-पुनः पुनः चौरासी लाख योनिमें जन्म-मरण—करता रहता है। कदाचित् अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त करके, ज्ञानी अनुभवी गुरुके समागमसे अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप निज आत्माको समझकर अनुभवकर तथा उसमें स्थिर होकर जीव अकेला ही मुक्तिदशाको प्राप्त करता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसे किसीका साथ नहीं है।'

जन्म, मरण या मुक्तिमें जीवको किसीका साथ नहीं है, जीव सर्वत्र अकेला ही अपने सुख-दुःखको भोगता है। मिलकर इकट्ठे हुए सगे-सम्बन्धीजन जीवको उसके दुःखमें कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। कुटुम्बीजन तथा वैद्य-डॉक्टरों द्वारा बचानेके प्रयत्न किये जाने पर भी, महाबली-पराक्रमी जीव अकेले ही, अनिच्छासे स्वयमेव मृत्युको प्राप्त होता है, अन्य गतिमें वह अकेला ही स्वयमेव जन्म धारण करता है; जीव अकेला परमगुरुके प्रसादसे प्राप्त निज शुद्धात्माश्रित निर्मल ध्यान द्वारा जन्म-मरणके हेतुभूत समस्त कर्ममलका क्षय करके शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है। जन्म, मरण या मोक्षकी विधिमें उसे किसीका साथ या सहारा नहीं है।

'मात्र भ्रान्तिसे वह दूसरेकी ओट और आश्रय मानता है।'

जन्म-मरण या सुख-दुःखके प्रकारोंमें जीवको कोई सहायभूत नहीं होता, तथापि अनादि अभ्याससे प्रवर्तमान भ्रान्तिके-मिथ्या कल्पनाके—कारण वह दूसरोंकी ओट और आश्रय मानता है। मरणकालमें पिता, पुत्र, पत्नी या परिवार कोई भी बिलकुल सहाय नहीं होता। 'कोई मुझे बचा लो'......ऐसे उसका हृदय छटपटाता हो तब भी क्या घरके बड़े, स्नेहीजन या परिवार अथवा धनके ढेर उसे ओट या आश्रय दे सकते हैं?—बचा सकते हैं? जीव स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसारमें परिभ्रमण करता है और स्वयं परिभ्रमणसे मुक्त होता है; उसमें किसी अन्यकी-परिवारजनोंकी या गुरुकी ओट और आश्रय मानना वह मात्र भ्रान्ति है।

'इस प्रकार चौदह ब्रह्माण्डमें अकेले भटकते हुए जीवने इतने मरण किये हैं कि उसके मरणके दुःखमें उसकी माताकी आँखोंसे जो आँसू बहे उनसे समुद्र भर जायें।'

देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक—इन चार गतियोंमें जीव अनादिसे अकेला ही परिभ्रमण कर रहा है। परिभ्रमणके प्रवाहमें उसने इतने मरण किये हैं कि उसकी माताने मरणकी वेदनामें जो विलाप किये उसके आँसुओंसे समुद्र भर जायँ। भावपाहुडमें आता है न! कि—

तुझ मरणसे दुःखार्त बहु जननी अनेरी अनेरीका,
नयनों थकी जल जो बहा वह उदधिजलसे अति घणां.

अरे! इस संसारमें कौन किसकी माता और कौन किसका पुत्र? माता मरकर नरकमें जाये और पुत्र मरकर स्वर्गमें जाता है; पुत्र मरकर नरकमें जाये और माता मरकर स्वर्गमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाती है। भव परिवर्तन होने पर एक-दूसरेके साथ है कोई सम्बन्ध? किसीको एक-दूसरेके साथ है कोई लेना-देना?

'भवपरिवर्तन करते-करते बड़ी मुश्किलसे तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, ऐसा उत्तम योग मिला है, उसमें आत्माका हित कर लेने जैसा है, बिजलीकी चमकमें मोती पिरो लेने जैसा है।'

भाई! यह मनुष्य अवतार मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। अरे! त्रस पर्यायका मिलना भी जहाँ रत्नचिन्तामणि समान अति दुर्लभ है वहाँ मनुष्यभवकी दुर्लभताका तो क्या कहा जाय? 'दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रस तणी।' बड़ी मुश्किलसे मनुष्यभव प्राप्त हुआ, सत्समागमका ऐसा उत्तम योग मिला, परन्तु जीवने उसका मूल्य नहीं समझा, आत्महितकी परवाह नहीं की; उसने विषयोंमें पड़कर दुर्लभ मनुष्यभव नष्ट कर दिया।

मैं स्वभावसे परमानन्दशक्तिका पिण्ड हूँ, मेरा सुख मुझमें है, उसके लिये पत्नी, पुत्र, परिवार, पैसा या बँगला आदि बाह्य पदार्थ किंचित् भी साधन नहीं होते, वे सब तो मोहके अर्थात् दुःखके निमित्त हैं। अपनी नाभिमें कस्तूरी होने पर भी मृगको उसकी खबर या मूल्य नहीं है, वैसे ही सुख आत्माका स्वभाव है, परन्तु अपनेको उसकी खबर और मूल्य नहीं है। भीतर अतीन्द्रिय आनन्दका सागर भरा है, उसे बराबर पहिचानकर, ग्रहण करके-अनुभवमें लेकर अपना हित कर लेने जैसा है। सत्श्रवणका ऐसा अनुपम अवसर प्राप्त हुआ है, बिजलीकी चमकमें मोती पिरो लेने जैसा है।

'यह मनुष्यभव और उत्तम संयोग बिजलीकी चमककी भाँति अल्पकालमें विलीन हो जायँगे।'

ऐसे मनुष्यभव और उत्तम समागमके योगमें आत्माका कल्याण कर लेना योग्य है, नहीं तो बिजलीकी चमकके समान यह सब अल्पकालमें विलीन हो जायगा। पश्चात् यह मनुष्यभव और ऐसा उत्तम सत्समागम फिर कब मिलेगा?

'इसलिये जैसे तू अकेला ही दुःखी हो रहा है, वैसे ही अकेला ही सुखके मार्ग पर जा, अकेला ही मुक्ति प्राप्त कर ले।'

पुण्य-पापके विभावभावोंमें अपनापन मानकर जैसे तू अकेला दुःखी हो रहा है वैसे ही अंतरमें अतीन्द्रिय ज्ञानान्दस्वरूप निज त्रिकालशुद्ध आत्माके आलम्बनसे प्रगट होनेवाले शाश्वत सुखके मार्ग पर अकेला ही जा। तू अपनी वर्तमान वर्तती दशाको बाह्यमें लगा रहा है उसे त्रैकालिक ध्रुव सुखसे परिपूर्ण ज्ञायकस्वभावमें लगा दे। अपनी वर्तमानदशाको स्वभावमें लगा देना वही सुखका पंथ है। अपनी वर्तमान दशाको स्वभावमें न लगाकर, गुणभेद, पर्याय, राग-द्वेष या पुण्य-पापमें लगाना वह दुःखका पंथ है। चैतन्यलक्षणसे लक्षित—दया-दान,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग या विकल्पसे लक्षित नहीं—ऐसे निज त्रैकालिक ज्ञायकभावके प्रति लक्ष करना ही सुख़का उपाय है। अहा! भाषामें तो कितना आयेगा? भाव बहुत गंभीर हैं। आत्मा स्वतंत्र पदार्थ होनेसे स्वयं अकेले ही सुखके मार्ग पर जाना है, वहाँ कोई सहायक या साक्षी नहीं है। सुखके मार्ग पर अकेले ही चलकर तू अकेले ही मुक्तिको प्राप्त कर ले। 'मैं ज्ञानानन्द स्वरूप त्रिकालशुद्ध भगवान आत्मा हूँ'—इसप्रकार अंतरमें दृष्टि लगाकर, अकेले ही अनुभवको प्राप्त करके, अकेला ही स्वरूपमें स्थिर हो जा, जिससे तू अकेला ही—किसीकी सहायताके बिना—मुक्तिको प्राप्त करेगा। इस बोलमें वैराग्यकी बात कहकर अब अगले बोलमें अपनी विनय दरशातीं हैं।

❋

वचनामृत—३५८

गुरुदेव मार्गको अत्यन्त स्पष्ट बतला रहे हैं। आचार्यभगवन्तोंने मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है और गुरुदेव उसे स्पष्ट कर रहे हैं। जैसे एक-एक माँगमें तेल डालते हैं उसीप्रकार सूक्ष्मतासे स्पष्ट करके सब समझाते हैं। भेदज्ञानका मार्ग हथेलीमें दिखाते हैं। माल मसलकर, तैयार करके दे रहे हैं कि 'ले, खा ले'। अब खाना तो अपनेको है॥३५८॥

'गुरुदेव मार्गको अत्यन्त स्पष्ट बतला रहे हैं।'

बहिन अपना विनयभाव व्यक्त करते हुए कहती हैं कि—गुरुदेव आत्मकल्याणका मार्ग अत्यन्त स्पष्टरूपसे समझा रहे हैं : अपने-अपने असाधारण गुणयुक्त प्रत्येक पदार्थ संपूर्ण स्वतंत्र है। अपनी पर्याय प्रगट करनेमें पदार्थको किसी अन्य साधनकी आवश्यकता नहीं है। बहिनने वचनामृतके २५१वें बोलमें कहा है न!—'द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्यके लिये दूसरे साधनोंकी राह न देखना पड़े।' आत्मा भी एक स्वतःसिद्ध सम्पूर्ण स्वतंत्र द्रव्य है; उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कार्यके लिये देव-शास्त्र-गुरु आदि बाह्य साधनोंकी राह नहीं देखनी पड़ती।

'आचार्य भगवन्तोंने मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है और गुरुदेव उसे स्पष्ट कर रहे हैं।'

भगवान श्री कुन्दकुन्दादि आचार्य भगवन्तोंने जो आत्मानुभूतिमय मुक्तिमार्ग प्रकाशित किया है उसका यहाँसे (गुरुदेवसे) विशेष स्पष्टीकरण होता है—ऐसा बहिन कहती हैं।

'जैसे एक-एक माँगमें तेल डालते हैं उसीप्रकार सूक्ष्मतासे स्पष्ट करके सब समझाते हैं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवादि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय अपना परिणमन स्वतंत्ररूपसे करता है, उसमें किसीकी ओट या सहायता नहीं है;—इसप्रकार सूक्ष्मतासे बराबर स्पष्ट करके, बालोंकी प्रत्येक माँगमें तेल डालते हैं तदनुसार (गुरुदेव) सब स्पष्टरूपसे समझाते हैं।

'भेदज्ञानका मार्ग हथेलीमें दिखाते हैं।'

भाई! शरीर–वाणी–मन तो परपदार्थ हैं, परन्तु तेरी पर्यायमें जो दया, दान, पूजा, भक्ति आदिके विकल्प उठते हैं वह भी तेरा मूल स्वरूप नहीं है। समस्त पर द्रव्य और विभावोंसे तू अत्यन्त भिन्न है—ऐसा भेदज्ञानका मार्ग गुरुदेव हथेलीमें आँवलेकी भाँति अत्यन्त स्पष्ट बतलाते हैं।

"माल मसलकर, तैयार करके दे रहे हैं कि 'ले खा ले।' "

जिस प्रकार माँ अपने बच्चेको रोटी, शक्कर और घी मसलकर तैयार करके दे और कहे कि 'ले, खा ले!' उसीप्रकार गुरु भी अध्यात्मका माल चुनकर, तैयार करके देते हैं कि 'ले, इसे ग्रहण कर ले।'

'अब खाना तो अपने को है।'

गुरु स्पष्ट करके अध्यात्मका माल तैयार कर देते हैं, परन्तु अन्तर्मुख होकर उसका ग्रहण, तद्रूप परिणमन तो शिष्यको स्वयं ही करना है। गुरु शिष्यका परिणमन कर दें या करा दें ऐसा तो नहीं होता; अंतरमें आत्माको साधनेका कार्य स्वयं ही अपने स्वसन्मुखतारूप पुरुषार्थसे करना है।

❋

वचनामृत–३५९

सहजतत्त्वका कभी नाश नहीं होता, वह मलिन नहीं होता, उसमें न्यूनता नहीं आती। शरीरसे वह भिन्न है, उपसर्ग उसे छूते नहीं हैं, तलवार उसे छेदती नहीं है, अग्नि उसे जलाती नहीं है; राग–द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते। वाह तत्त्व! अनंत काल बीत गया तो भी तू तो ज्योंका त्यों ही है। तुझे कोई पहिचाने या न पहिचाने, तू तो सदा ऐसा ही रहनेवाला है। मुनिके एवं सम्यग्दृष्टिके हृदयकमलके सिंहासनमें यह सहजतत्त्व, निरंतर विराजमान है।।३५९।।

'सहजतत्त्वका कभी नाश नहीं होता, वह मलिन नहीं होता, उसमें न्यूनता नहीं आती।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसका कभी आदि नहीं है, जिसका कभी अन्त नहीं है, जो सदा स्वतःसिद्ध है ऐसा यह आत्मा चैतन्यचिह्नयुक्त सहजतत्त्व है। आत्माको पर्याय-अपेक्षासे उत्पाद और विनाश होने पर भी द्रव्य-अपेक्षासे उसका कभी नाश नहीं होता। जागता जीव विद्यमान है, जागती ध्रुवज्योति अंतरमें प्रगट प्रकाशमान है, वह कहाँ जायगी? अवश्य प्राप्त होगी ही। भीतर दृष्टि डाल न! द्रष्टा अन्यको देखता है, परन्तु द्रष्टा स्वयं चैतन्यबिम्ब है उसे देख न! चैतन्य स्वयं सहजतत्त्व है, उसका कभी नाश नहीं होता, अभाव नहीं होता। अहा! भाषामें नहीं किन्तु भावमें उसका भासन होना चाहिये।

सहज ज्ञायकभाव कभी मलिन नहीं होता। पर्यायनयसे आत्मा मलिन होता है।—निगोदके अनन्त भव किये, वहाँ ज्ञानका विकास अक्षरके अनन्तवें भाग रहा, तथापि उससे सहज द्रव्यस्वभावमें कोई न्यूनाधिकता नहीं हुई। निगोदके समय सहजस्वभाव किंचित् भी न्यून नहीं हुआ और केवलज्ञानके समय सहजस्वभावमें किंचित् भी वृद्धि नहीं हुई है। सहजतत्त्व तो सदा एकरूप त्रैकालिक ध्रुव है। जैसे पानीका प्रवाह अखण्ड होता है वैसे ही आत्माका 'ध्रुव....ध्रुव.....ध्रुव'—ऐसा ध्रौव्यका प्रवाह सदा अखण्ड होता है। अहा! ज्ञान–आनन्दादि स्वभावोंसे परिपूर्ण निज ध्रुव अखण्ड चैतन्यतत्त्व पर दृष्टि लगा न! सुखी होनेका मार्ग तो यही है, बाकी और सब बहिर्लक्षी बातें हैं।

अहा! तीर्थंकरके पुण्यकी तो क्या बात! जन्म लेते ही इन्द्र जिनके समक्ष वैभव खड़ा करते हों, देव जिनकी सेवामें सदा उपस्थित रहते हों, ऐसे तीर्थंकरोंको—कितने ही तीर्थंकरोंको तो चक्रवर्ती और कामदेवकी पदवी भी होती है—बाह्यवैभवकी नहीं किन्तु अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दजनक सहजज्ञायकभावके आश्रयकी लगन लगी थी। इसीलिये तो तीर्थंकर चक्रवर्ती—छियानवे हजार रानियाँ, बहत्तर हजार पाटन, अड़तालीस हजार नगर, छियानवे करोड़ ग्राम तथा छियानवे करोड़ पायदल आदि—बाह्य वैभव और उसका राग छोड़कर आत्मानन्दकी साधना हेतु वन–जंगलमें चले गये न? अंतरमें आनन्दस्वभावसे परिपूर्ण सहजतत्त्वका कोई आश्चर्यजनक चमत्कार लगा होगा तभी तो यह समस्त वैभव छूट गया न? अनंत–अनंत आश्चर्यकारी विभूति जिसमें सदा भरपूर विद्यमान है ऐसा त्रिलोकीनाथ परमात्मा, प्रभु! तू स्वयं ही है; मलिनता मात्र एक समयकी वर्तमानपर्यायमें है; उसके समीप, अरे! वहीं, अंतरमें चमत्कारी विभूतियोंसे भरपूर सहजज्ञायकतत्त्व शक्तिरूपसे सम्पूर्ण विराजमान है, वह कभी मलिन नहीं होता।

उस सहज ज्ञायकतत्त्वमें कभी न्यूनता नहीं आती। पर्यायमें न्यूनाधिकता हो परन्तु द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल ज्योंका त्यों नियत परिपूर्ण शुद्ध चैतन्यघन है। अरे! लोगोंको बाहरी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

माहात्म्य आता है, पाँच-दस लाख रुपये कमा ले तो 'मैं चौड़ा और गली सँकरी'—ऐसा अभिमानमें फूल जाता है और लक्ष्मी चली जाय तो दीनहीन हो जाता है, परन्तु भाई! वह वस्तु तेरी कहाँ है? तुझमें कहाँ है? तुझमें आश्चर्यजनक चैतन्यविभूति है उसमें तो कभी न्यूनता आती ही नहीं है।

'शरीरसे वह भिन्न है, उपसर्ग उसे छूते नहीं हैं, तलवार उसे छेदती नहीं है, अग्नि उसे जलाती नहीं है, राग-द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते।'

शरीर तो मिट्टी है, पुद्गलकी रचना है, उसका आत्मामें अत्यन्त अभाव है। समयसारकी तीसरी गाथाकी टीकामें आता है न! कि—छह द्रव्यस्वरूप लोकमें जो भी जितने पदार्थ हैं वे सब अपने द्रव्यमें अन्तर्मग्न रहे हुए अपने अनन्त धर्मोंके समूहको चूमते हैं-स्पर्शते हैं तथापि वे परस्पर एक-दूसरेको स्पर्श नहीं करते। प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-गुण-पर्यायोंको भले ही चूमे-स्पर्श करे, परन्तु परद्रव्यको तो कदापि स्पर्श नहीं करता। कर्मके उदयको जीव स्पर्श नहीं करता और कर्मका उदय जीवको—रागादि जीवपरिणामको—स्पर्श नहीं करता।

शरीरमें घाव लगे, सर्प काटे आदि अनेक प्रकारके जो उपसर्ग आयें वे आत्माको स्पर्श नहीं करते, बाधक नहीं होते। नारकी जीवको असुरकुमारके देव लोहेके धधकते हुए सलियोंके साथ गाँठ बाँधकर ऊपरसे अति गर्म घनोंका प्रहार करें, तथापि यह सब कुछ उसके आत्माको स्पर्श नहीं करते। अहा! ऐसे विकट प्रसंगमें भी कितने ही जीव अंतरमें एकदम गुलाँट खाकर सहजतत्त्वको पकड़ते हैं, और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी स्थितिमें भी प्रतिकूल संयोग उन्हें बाधा नहीं पहुँचाते।

आत्मा कभी शस्त्रोंसे छिदता—भिदता नहीं है। अनन्तानन्त गुणोंका अखण्ड एक पिण्ड ऐसा यह भगवान आत्मा तलवार आदि शस्त्रोंसे अछेद्य-अभेद्य है। अखण्ड आत्मतत्त्वमें अनंत-अनंत-अनंत गुण, प्रत्येक गुणकी एक-एक पर्याय—इसप्रकार प्रति समय अनंत-अनंत-अनंत पर्यायें; यह बात अहा! सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवानके सिवा अन्यत्र कहीं हो नहीं सकती। तीर्थंकर भगवानके शरीरमें १००८ लक्षण होते हैं, इसलिये इन्द्र १००८ नामोंसे भगवानकी स्तुति करते हैं। उनमें पहला नाम 'श्रीमान्' आता है। वास्तवमें वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ही, पर्यायमें अनन्तानन्त विभूति परिपूर्ण प्रगट हो जानेसे सच्चे अर्थमें 'श्रीमान्'—लक्ष्मीवान हैं, दूसरे सब मोही जीव तो धूलरूप लक्ष्मीके भिखारी हैं।

ज्ञानानन्दादि अनंत समृद्धियोंसे परिपूर्ण भगवान ज्ञायकदेव तलवारसे छिदता नहीं है, अग्नि उसे जला नहीं सकती, राग-द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते। राग-द्वेषादि विभाव तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक समयस्थायी पर्याय है और आत्माका सहजतत्त्व तो भीतर त्रिकालशुद्ध ध्रौव्यस्वरूप है। अरे रे! उस ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रय एवं दृष्टिके बिना जीव अनादिकालसे जन्म-मरणके दुःख भोग रहा है। छहढालामें कहा है न!—

'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।'

अट्ठाईस मूलगुणोंका निरतिचार पालन करे, किन्तु उससे क्या? वह तो शुभास्रव है, दुःखरूप और दुःखका कारण है। अरे! वीतराग प्रभुकी यह बात जीवको कैसे बैठे? प्रभु! तेरा सहजतत्त्व कैसा और कितना है वह जाननेकी तूने कभी परवाह नहीं की है। पर्यायमें जो पूर्ण प्रभुता प्रगटती है उसका प्रभु—उसका आश्रय, उसका आलम्बन—तो तू स्वयं—तेरा सहजतत्त्व-ही है। उस सहजतत्त्वको तलवार नहीं छेदती, अग्नि नहीं जलाती और पर्यायगत ऊपरी राग-द्वेष उसे विकारी नहीं बनाते। सम्यग्दर्शनके विषयभूत उस ध्रुव सहजतत्त्वका यथार्थ ज्ञान होकर प्रतीति और अनुभवमें उसका भावभासन होना वह सम्यग्दर्शन है।

'वाह तत्त्व! अनंतकाल बीत गया तो भी तू तो ज्योंका त्यों ही है।'

भाई! नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवके भव कर-करके अनंतकाल बीत गया, निगोदके भी अनन्तभव किये, तथापि तेरा मूल सहजतत्त्व ज्योंका त्यों रहा है; उसमें किंचित् भी न्यूनता नहीं आयी। अरेरे! यह मुख्य बात आज कल लुप्त हो गई है, उपदेशकोंने 'व्रत ले लो, उपवास करो, प्रतिमाधारी बनो, बस! हो गया धर्म'—ऐसा उपदेश दे-देकर लोगोंको बाह्यमें सन्तुष्ट कर दिया है; लेकिन उससे क्या हुआ? ऐसा तो अभव्य जीव भी करते हैं। प्रभु! तुझे अपने मूल स्वरूपका पता नहीं है। गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्वादिके परिणाम अनन्तकालसे हो रहे हैं तथापि वस्तुके मूलस्वरूपमें विपरीतता, अपूर्णता अथवा अन्य किसी प्रकारका विभाव अणुमात्र भी नहीं आया है, सहजतत्त्व तो सदा ज्योंका त्यों ही है। स्तवनमें कहा है न!—

ज्यों निर्मलता रे रत्न स्फटिककी, वैसा ही जीव स्वभाव रे;
श्री जिनवीरे रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय-अभाव रे।

अकषाय-स्वभावी भगवान निज आत्माको जिसने दृष्टिमें लिया। उसके जो ज्ञानानन्दमय अकषाय-परिणाम हुए उसे वीर भगवान धर्म कहते हैं। तथा सर्वज्ञपरमात्माकी स्तुतिमें ऐसा भी आता है:—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु तुम जाणन रीति, सब जग देखते हो लाल;
निज सत्तासे शुद्ध, सभीको पेखते हो लाल।

प्रभु! तुझे अपना सहज-अस्तित्व क्यों नहीं बैठता? चाहे जितने काल तक पर्यायमें महा नास्तिक जैसी मलिनता रही, तथापि तू तो निजसत्तासे सदा शुद्ध ही रहा है।

'तुझे कोई पहिचाने या न पहिचाने, तू तो सदा ऐसा ही रहनेवाला है।'

कोई न सूंघे, उससे फूलकी सुगन्ध चली नहीं जाती, उसीप्रकार अपने सहज ज्ञायकतत्त्वको कोई नहीं पहिचाने उससे उसकी शक्तिरूप शुद्धता कहीं चली नहीं जाती, वह तो सदा ज्योंकी त्यों रहती है। अनन्त सिद्ध हुए उन्हें कोई पहिचानता नहीं है? नहीं पहिचाने उससे कहीं उनका सिद्धत्व चला जायगा?—उसीप्रकार निज सहजतत्त्वको कोई पहिचाने या नहीं पहिचाने वह तो सदा ज्योंका त्यों ही रहता है। बहिनको सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं स्वानुभूति हुए हैं; उन्हें कोई पहिचाने अथवा नहीं पहिचाने उससे क्या? कोई नहीं पहिचाने उससे क्या उनका सम्यग्दर्शन चला जायगा? यहाँ तो त्रैकालिक सहजतत्त्वकी बात है कोई उसे पहिचाने या न पहिचाने, वह तो सदा ज्योंका त्यों—सदा शुद्ध ही—रहनेवाला है। प्रभु! यह तेरे महान बड़प्पनकी बात चलती है। तुझे कोई पहिचाने तो बड़प्पन बढ़ जायगा और नहीं पहिचाने तो बड़प्पन घट जायगा—ऐसा नहीं है, तेरा सहजतत्त्व तो पारिणामिकभावसे सदा ज्योंका त्यों ही रहनेवाला है।

'मुनिके एवं सम्यग्दृष्टिके हृदयकमलके सिंहासनमें यह सहजतत्त्व निरन्तर विराजमान है।'

पर्यायमें अनन्तकालसे मिथ्यात्व और रागद्वेषके परिणाम होने पर भी जो परमार्थसे अशुद्ध, अपूर्ण या विभावरूप नहीं हुआ है, विकारका दाग जिसे कभी नहीं लगता ऐसा यह सदा शुद्ध त्रैकालिक सहजतत्त्व मुनिराज एवं सम्यग्दृष्टिके मनमन्दिररूपी सिंहासन पर निरन्तर विराजमान है। मुनिराज और सम्यग्दृष्टिके बीच स्वरूपस्थिरताका अन्तर है, सम्यग्दर्शनमें कोई अन्तर नहीं है। दोनोंको साधनाका आलम्बन-आश्रय एकमात्रत्रिकालशुद्ध ज्ञानानन्दमय निज सहजतत्त्व ही है। मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है कि—'इसलिये ज्ञानादिककी हीनता-अधिकता होने पर भी तिर्यंचादिक और केवली-सिद्धभगवानको सम्यक्त्वगुण तो समान ही कहा। सम्यग्दृष्टिको भी अंतरमें आत्माका अनुभव वर्तता है इससे उसके हृदयकमलमें—ज्ञानकी निर्मलपर्यायमें—सहज तत्त्व सतत विराजमान है। उसको निज सहजतत्त्वका ही सदा आदर, आश्रय और आधार है।

अहा! सहज तत्त्व ऐसा अनुपम, अद्‌भुत और गम्भीर है; उसे बाह्यक्रिया अथवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभभावसे साध्य मान लेना वह बड़ी भूल है। सहजतत्त्व परिणतिमें प्राप्त करना हो तो उसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। निंबोली और नीलम दोनोंके रंग हरे होने पर भी मूल्यमें बड़ा अन्तर है। नीलम मूल्यवान रत्न है, वैसे ही त्रिकालशुद्ध सहजतत्त्वका मूल्य भी बहुत ऊँचा है। उसे पहिचानकर आश्रय करनेसे अंतरमें सम्यग्दर्शनादि निर्मल साधना प्रगट होती है। मुनिराज और सम्यग्दृष्टि दोनोंकी साधनामय निर्मल पर्यायमें आश्रयरूपसे सहजतत्त्व सदा विराजमान है, एक समय मात्र भी उसका विरह नहीं है। अहा! इसे सम्यग्दर्शन एवं मुनिपना कहा जाता है।

जिनेन्द्र प्रतिमा साक्षात् जिनेन्द्रतुल्य वीतरागभाववाही होती है। जिस अपेक्षासे कहा हो उस अपेक्षासे जानना चाहिये। जिनप्रतिमा है, उसकी पूजा, भक्ति आदि सब है। जब स्वरूपमें स्थिर नहीं हो सकता तब, अशुभसे बचने हेतु, ऐसे शुभभाव आये बिना नहीं रहते। 'ऐसा भाव नहीं आता'—ऐसा माने उसे वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है; और आये इसलिये 'उससे धर्म है'—ऐसा माने वह भी बराबर नहीं है; वह शुभराग तो बंधका कारण है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१३९

दिनांक ३-११-७८

वचनामृत-३६०

सम्यग्दृष्टिको पुरुषार्थसे रहित कोई काल नहीं है। पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया तबसे पुरुषार्थकी धारा चलती ही है। सम्यग्दृष्टिका यह पुरुषार्थ सहज है, हठपूर्वक नहीं है। दृष्टि प्रगट होनेके बाद वह एक ओर पड़ी हो ऐसा नहीं है। जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो ऐसा नहीं है। अंतरमें भेदज्ञानका-ज्ञातृत्वधाराका प्रगट वेदन है। सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है वह पुरुषार्थसे चल रही है। परम तत्त्वमें अविचलता है। प्रतिकूलताके समूह आये, सारे ब्रह्माण्डमें खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति न डोले—ऐसी सहज दशा है।।३६०।।

'सम्यग्दृष्टिको पुरुषार्थसे रहित कोई काल नहीं है।'

आत्मार्थी जीवको जबसे शरीरादि परद्रव्य एवं रागादि विभावोंसे पृथक् ऐसे निज शुद्ध द्रव्यस्वभावमें स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा दृष्टि एवं अनुभूति हुई तबसे उसका एक क्षण भी पुरुषार्थसे रहित नहीं होता। रागसे हटकर त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायकस्वरूपके प्रति उसे जो दृष्टि स्थिर हुई है, उसे जो निर्मल एवं निर्विकल्प प्रतीति हुई है, वह अंतर्मुख सहज पुरुषार्थसे ही हुई है। रागसे भिन्न होकर ज्ञायककी दृष्टि और अनुभव होनेके पश्चात् भी उसे पुरुषार्थ रहित कोई काल नहीं होता।

'पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया तबसे पुरुषार्थकी धारा चलती ही है।'

शरीर, वाणी और मनसे तथा शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न ऐसे निज ज्ञायकतत्त्वका अंतरमें पुरुषार्थ करके जबसे स्वानुभव युक्त भेदज्ञान प्रगट किया तबसे सम्यग्दृष्टि जीवको साधनाके पुरुषार्थका आचरण चलता ही रहता है। काललब्धि पके तब भेदज्ञान होता है—ऐसा यहाँ नहीं लिया है। भेदज्ञान साधनेके लिये और सधने पर भी सर्वदा पुरुषार्थकी ही प्रधानता है। पाँच समवाय-कारणोंमें पुरुषार्थके साथ शेष कारण आ जाते हैं। अंतरमें परमार्थस्वरूप शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी दृष्टि होने पर निर्विकल्प पुरुषार्थ होता है, इसलिये 'पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया' ऐसा कहा है न? रुचि अनादिसे जो शरीरादि परद्रव्य, रागादि परभाव तथा वर्तमान क्षणस्थायी पर्यायके ऊपर थी उसे जब उन सबसे भिन्न निज

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकभावकी ओर मोड़ा वहाँ मात्र निज शुद्धात्मा ही रुचिकर लगने लगा—यह भेदज्ञानकी विधि पुरुषार्थ द्वारा की—ऐसा यहाँ कहा है।

जीव स्वभावके आश्रयसे साधनाका पुरुषार्थ करता है वहाँ काललब्धि, भवितव्यता, कर्मका अभाव आदि समवाय-कारण साथ होते हैं।

इस बातकी वि.सं. १९७२में खूब चर्चा हुई थी। गुरुभाई वारंवार कहते थे कि—'केवली भगवानने देखा होगा तब अपना मोक्ष होगा, वर्तमानमें हम कुछ नहीं कर सकते।' उस समय मुझसे कहा गया था कि—अरे! तुम यह क्या कहते हो? केवलज्ञान अर्थात् ज्ञानगुणकी एक समयकी पूर्ण पर्याय कि जो सर्व क्षेत्रवर्ती एवं सर्वकालवर्ती सर्व पदार्थोंको—विश्वके त्रिकाल सम्बन्धी सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायोंको—एक साथ सीधे आत्मासे अत्यंत प्रत्यक्ष जाने।—ऐसी पूर्ण पर्यायकी सत्ता जगतमें है ऐसी स्वीकृति जिसे पुरुषार्थपूर्वक आये उसे 'केवलीने देखा वैसा होता है' यह बात यथार्थ बैठती है। केवलीके अर्थात् पूर्ण ज्ञानस्वभावके स्वीकारमें ही अनंत पुरुषार्थ आ जाता है। उस समय तो दिगम्बरके शास्त्र हाथमें भी नहीं आये थे, तथापि अंतरसे ऐसा लगा था कि केवलज्ञानका निर्णय करते हुए दृष्टि ज्ञानस्वभावमें जाती है। वस्तुस्वभावमें—उस समय 'ज्ञायक' ऐसी भाषा नहीं थी—दृष्टि जाय तभी सर्वज्ञताका सच्चा निर्णय होता है। यही बात श्री प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामेंसे निकली है—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

जो अरिहंतको द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे और (केवलज्ञानादि) पर्यायरूपसे जानता है, वह (अपने) आत्माको जानता है और उसका मोह अवश्य लयको प्राप्त होता है।

प्रवचनसारमें कहा हुआ यह भाव उस समय मुझे अंतरमेंसे उठा था कि जिसने केवलज्ञानका निर्णय किया वह केवल ज्ञानशक्तियुक्त अपने आत्माको जानता है और उसका मिथ्यात्वमोह अवश्य नष्ट होता ही है। अरिहंत इस आत्मासे पर हैं और उन्हें द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे तथा केवलज्ञानादि पर्यायरूपसे जो जाने वह केवलज्ञानादि स्वभावमय निज आत्माको जानता है;—यह कथन भी निमित्तसे है। उन्हें जानकर जो जीव अपने आत्माके साथ तुलना करे, पर्यायोंको गुणस्वभावमें निमग्न करे और गुणोंको द्रव्यस्वभावमें अभेद करे उसे निज आत्माका यथार्थ ज्ञान-सम्यग्दर्शन होता है और मिथ्यात्वका नाश होता है। सम्यग्दर्शन होना और मिथ्यात्वका नाश होना उसीमें स्वभावाश्रित अनंत पुरुषार्थ आ गया। आया कुछ समझमें?

उस समय मैंने गजसुकुमारका उदाहरण दिया था। श्रीकृष्ण अपने लघुभ्राता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गजसुकुमारके साथ हाथी पर हौदेमें बैठकर श्री नेमिनाथ भगवानके दर्शन तथा वाणी श्रवण करनेके लिये समवसरणमें जाते हैं। दर्शन करते ही गजसुकुमारको अंतरसे कोई सातिशय भावना एवं पुरुषार्थ जागृत होता है और भगवानसे प्रार्थना करते हैं—प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो आज ही मैं दीक्षा लेकर द्वारिकाके महाकाल स्मशानमें भिक्षुकी बारहवीं प्रतिमा—पादपोपम योग—धारण करना चाहता हूँ। भगवानकी दिव्यध्वनिमें आया कि—जहा सुक्खं, देवाणुपिय! मा पडिबंधं कुणह।' हे देवानुप्रिय! भावनानुसार सुख उत्पन्न हो वैसा करो, पुरुषार्थमें प्रतिबंध नहीं करना। अहा! भगवानकी वाणी तो पुरुषार्थप्रेरक होगी या पुरुषार्थको ढीला करनेवाली? काललब्धि पके या केवलीने देखा होगा तब आत्मा साधनाका पुरुषार्थ कर सकेगा—ऐसी पुरुषार्थहीन बातें भगवानकी वाणीमें आ ही नहीं सकतीं।

मुनिराज गजसुकुमार पादपोपम योग धारण करके महाकाल स्मशानमें ध्यानस्थ खड़ें हैं, वहाँ उनकी वाग्दत्ता पत्नीका पिता आता है, क्रोधाविष्ट होकर वह मुनिराजके मस्तक पर राखकी पाल बाँधकर उसमें धधकते हुए अंगारे डालता है और अपनी पुत्री अविवाहित रह गई उसके कषायावेशमें कहता है–ले यह मोक्षकी 'पगड़ी'। अहा! मुनिराज गजसुकुमार तो अंतरमें आनन्द झरती साधनाके पुरुषार्थमें निमग्न हो गये हैं, वे ऐसे भयंकर उपसर्गसे किंचित् भी विचलित नहीं होते, अंतरमें ज्ञायकके बलसे स्वरूपस्थिरताका ऐसा अप्रतिहत पुरुषार्थ किया कि झट्से प्रगट हो गया केवलज्ञान। अहा! धन्य वह अद्भुत पुरुषार्थ! उसी दिन दीक्षा और उसी दिन केवलज्ञान! भाई! यह क्या है?......कितना होगा उनका पुरुषार्थ! स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ बिना भेदज्ञान होता नहीं है और भेदज्ञान होने पर भी पुरुषार्थके बिना कोई काल नहीं होता। भेदज्ञान प्रगट किया तबसे ज्ञानीको पुरुषार्थकी धारा सतत चलती ही रहती है।

'सम्यग्दृष्टिका यह पुरुषार्थ सहज है, हठपूर्वक नहीं है।'

सम्यग्दृष्टि बाहरसे भले ही राज्यमें, भोगमें, व्यापारमें या युद्धमें खड़ा दिखायी दे, परन्तु अंतरमें उसका पुरुषार्थ, जो कि आनन्दनिधान ध्रुव द्रव्यस्वभावकी ओर सहजरूपसे ढला हुआ है वह, निरन्तर ढला ही रहता है; उसे हठपूर्वक जबरन् स्वभावकी ओर ढालना नहीं पड़ता। ज्ञानीका परिणमन सहज पुरुषार्थमय हो गया होता है।

'दृष्टि प्रगट होनेके बाद वह एक ओर पड़ी हो ऐसा नहीं है।'

धर्मीको चैतन्यकी दृष्टि होनेसे आत्माका अनुभव हो गया; अब फिर उसकी परिणति पुरुषार्थके बिना एक ओर पड़ी रहती है—ऐसा नहीं है; उसे परिणतिमें स्वभावकी ओरका सहज पुरुषार्थ सदैव वर्त रहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! यह तो कोई पुस्तक है! कुदरती ही प्रकाशित हो गई! बहिनने कुछ लिखनेको कहा नहीं था। वह तो बहिनसे बोलनेमें आ गया और लड़कियोंने लिख लिया। लिखा था वह बाहर आ गया। इसे देखकर कोई अब कृत्रिम लिखे कि वस्तु ऐसी है और वैसी है, परन्तु उसमें यह बात नहीं आ सकती।

'जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो ऐसा नहीं है।'

पर पदार्थ एवं रागादि विभावोंसे भिन्न निज शुद्धात्माका भेदज्ञान होनेके पश्चात् ज्ञानीकी दृष्टि; जैसे अंगारा ढँका हुआ पड़ा हो ऐसी, एक ओर पड़ी रहती है और वह पुरुषार्थरहित है—ऐसा नहीं है; उसको सहज पुरुषार्थका प्रवाह भीतर सतत चलता ही रहता है।

'अंतरमें भेदज्ञानका—ज्ञाताधाराका प्रगट वेदन है।'

रागादि विभावोंसे भिन्न होकर अंतरमें निरंतर भेदज्ञान वर्त रहा है, उससे ज्ञानीको ज्ञातृधाराका प्रगट वेदन है। 'प्रगट वेदन' क्यों कहा? भीतर शक्तिरूपसे आनन्दस्वभाव तो सदा प्रगट है, परन्तु यह तो पर्याय-अपेक्षाके 'प्रगट वेदन' की बात है। ज्ञानीको ज्ञातृधारा और कर्मधारा एकसाथ चलती हैं। सम्यग्दृष्टि जीवको एक ही कालमें शुद्ध ज्ञान भी है और क्रियारूप परिणाम भी है, तथापि क्रियारूप जो परिणाम है उससे मात्र बँध होता है, कर्मका क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता; उसीकाल उसको शुद्धस्वरूपानुभव—ज्ञान भी है, उसी काल ज्ञानसे कर्मक्षय होता है, एक अंशमात्र बंध नहीं होता। वस्तुका ऐसा ही स्वरूप है उसमें विस्मय या प्रश्न कैसा?

'सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है वह पुरुषार्थसे चल रही है।'

रागादि विभावोंसे पृथक् होकर ज्ञाताद्रष्टापनेकी जो सहजधारा चल रही है वह स्वभावोन्मुखताके सहज पुरुषार्थसे चल रही है, क्योंकि स्वभावके आश्रयसे जो ज्ञान हुआ वह कार्य किये बिना ऐसे ही पड़ा नहीं रहता, परन्तु ज्ञातृत्वधाराके सहज पुरुषार्थरूपसे निरन्तर कार्य कर रहा है।

'परमतत्त्वमें अविचलता है।'

ज्ञानी धर्मात्माको परमपारिणामिकस्वभावरूप त्रिकालशुद्ध अभेद ज्ञायकतत्त्वमें अविचलता-अडिगता है। ज्ञायकतत्त्वमें अविचलधारा सहज पुरुषार्थसे टिक रही है, किसी हठप्रयोगसे नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'प्रतिकूलताके समूह आयें, सारे ब्रह्माण्डमें खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति न डोले—ऐसी सहज दशा है।'

वास्तवमें तो कोई परपदार्थ अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है, तथापि लोगोंकी भाषामें समझाया जाता है न! कि—कोई अग्नि लगा दे, कीलें ठोक दे, पत्थर मारे आदि अनेक प्रकारकी प्रतिकूलताओंके पहाड़ टूट पड़ें, सारे विश्वमें खलबली मच जाय, तब भी ध्रुवस्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई चैतन्यधारा अपने मार्गसे किंचित् भी विचलित नहीं होती, डिगती नहीं है, बदलती नहीं है। अहा! ऐसा स्वरूप है—ऐसी सहजदशा है। पुरुषार्थ करके प्रथम जहाँ भेदज्ञान प्रगट किया वहाँसे प्रारम्भ करके पूर्णता तककी सर्व शुद्धियाँ अंतरके सहज पुरुषार्थसे ही प्रगट होती हैं। ज्ञानीको पुरुषार्थकी दशा हठपूर्वक नहीं रखनी पड़ती, परन्तु उसका जीवन ही सहज पुरुषार्थमय बन जाता है। प्रतिकूलताके पहाड़ टूट पड़ें, चौदह ब्रह्माण्डमें उथलपुथल हो जाय, तथापि ज्ञानी साधनाके मार्गसे च्युत नहीं होते—ऐसी ही उनकी कोई सहज दशा होती है!

भगवानके १००८ नामोंमें एक नाम 'जिनभर्ता' आता है। हे भगवान! आप 'जिनों'के—अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत सम्यग्दृष्टि तथा सकलविरत सम्यग्दृष्टि साधक जीवोंके—'भरण-पोषणकर्ता' हो अर्थात् आपने 'जिनों'को सन्मार्ग, सन्मार्गदर्शन और सद्बोधरूपी अमृतका पान कराया है जिससे आप 'जिनभर्ता' हो। जिसे अपने ज्ञायकभगवानकी अंतरमें दृष्टि प्रगट हुई है उसे परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्दका भोजन सहज पुरुषार्थसे निरन्तर चल ही रहा है; इसलिये ज्ञानी धर्मात्माको अपना ज्ञायक आत्मा ही 'जिनभर्ता' है। भेदज्ञानकी धारारूप-ज्ञातृत्वधारारूप-परिणमित ज्ञानीका ज्ञान 'आनन्दामृतनित्यभोजि' आनन्दरूपी अमृतका नित्य भोजन करनेवाला है। अहा! धर्मात्माको तो नित्य आनन्दका ही भोजन होता है, आहारका तो नहीं किन्तु रागका भी नहीं। ज्ञानीको भोजनका परिग्रह नहीं है, ज्ञानमय ऐसे एक निज ज्ञायकभावके ग्रहणके—आश्रयके कारण वह भोजनका मात्र ज्ञायक ही है। ज्ञानीको भोजनका तथा उसकी इच्छाका अन्तरमें स्वामित्व नहीं है इसलिये वह भोजनका और उसकी इच्छाका मात्र ज्ञायक ही है, क्योंकि भोजनके समय भी 'मैं तो मात्र ज्ञाता हूँ' ऐसी ज्ञातृत्वधाराका पुरुषार्थ उसके नित्य चल ही रहा है। अहा! ऐसा है वीतरागका मार्ग। अंतरमें ज्ञातृत्वधारा सतत वर्तती होनेसे, भले ही प्रतिकूलताके पहाड़ टूट पड़ें, सारे विश्वमें खलबली मच जाय, तथापि साधनामय चैतन्यपरिणति अपने मार्गसे च्युत नहीं होती-डिगती नहीं है। ज्ञानीकी ऐसी सहज दशा है।

❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३६१

तू ज्ञायकस्वरूप है। अन्य सब तुझसे अलग पड़ा है, मात्र तूने उसके साथ एकत्वबुद्धि की है।

'शरीर, वाणी आदि मैं नहीं हूँ, विभावभाव मेरा स्वरूप नहीं है, जैसा सिद्धभगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है'—ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर।

शुभ भाव आयँगे अवश्य। परन्तु 'शुभ भावसे क्रमशः मुक्ति होगी, शुभ भाव चले जायँगे तो सब चला जायगा और मैं शून्य हो जाऊँगा'—ऐसी श्रद्धा छोड़।

तू अगाध अनंत स्वाभाविक शक्तियोंसे भरा हुआ एक अखण्ड पदार्थ है। उसकी श्रद्धा कर और आगे बढ़। अनंत तीर्थंकर आदि इसी मार्गसे मुक्तिको प्राप्त हुए हैं।।३६१।।

'तू ज्ञायकस्वरूप है।'

प्रभु! तू तो जाननस्वभावी वस्तु है न! तेरी ज्ञायकस्वरूप वस्तुमें 'जानना.....जानना......जानना'के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? देहगेह आदि परवस्तुएँ तो तुझसे भिन्न हैं, परन्तु पर्यायमें जो शुभाशुभ भाव होते हैं वे भी तेरा सच्चा स्वरूप नहीं हैं।

'अन्य सब तुझसे अलग पड़ा है, मात्र तूने उसके साथ एकत्वबुद्धि की है।'

निकटवर्ती शरीर, वाणी, मन तथा दूरवर्ती पत्नी, पुत्र, परिवार और पैसा आदि अन्य सब तुझसे बिलकुल पृथक् हैं। तेरे ज्ञायकको वे पदार्थ किंचित् स्पर्श नहीं करते; क्योंकि प्रकृतिका ऐसा नियम है कि विश्वके समस्त पदार्थ अपने द्रव्यमें अंतर्मग्न रहे हुए अपने अनंत धर्मोंके समूहको स्पर्शते हैं तथापि वे, एकक्षेत्रावगाही होने पर भी, परस्पर एक-दूसरेको स्पर्श नहीं करते। भाई! तेरे ज्ञायकसे अन्य सब पृथक् पड़ा है, मात्र तूने उसके साथ एकत्वकी भ्रान्ति उत्पन्न की है।

अहा! वे आठ-आठ वर्षके बालक जब सम्यग्दर्शन प्राप्त करते होंगे, प्राप्त करके भीतर ध्रुवधाममें जानेका प्रयतन करते होंगे वह स्थिति कैसी होगी? माताके पास जाकर वे बालक विनयपूर्वक आज्ञा माँगते हैं कि-हे माता! पूर्णानन्दसे भरपूर ऐसा जो हमारा चैतन्यनाथ, उसका हमें थोड़ा स्वाद तो आया है, अब उसका पूर्ण स्वाद प्रगट करनेके लिये हम वनमें जा रहे हैं। कौनसे वनमें?-बाहरी वन—एकान्त तो उपचार है, भीतर चैतन्यके वनमें—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायककी एकान्त गुफामें—जा रहे हैं। जैसे वनमें मनुष्योंका पगरव नहीं है वैसे ही ज्ञायककी साधनामें शुभाशुभ विकल्पोंका कोलाहल नहीं है। भीतर जो आनन्दका अपूर्व स्वाद आया है उसमें वृद्धि हेतु एकान्त वनमें चले जाते हैं। हमें कोई देखे, जाने या गिने—ऐसी बिलकुल इच्छा नहीं है। 'बात रुचे नहीं विश्वकी, आठों पहर उदास'.....ऐसी सहजदशा अंतरमें हो गई है। ज्ञायकस्वभावसे समस्त विश्व भिन्न–पृथक् है, मात्र जीवने उसके साथ एकत्वबुद्धि कर रखी है।

" 'शरीर, वाणी आदि मैं नहीं हूँ, विभावभाव मेरा स्वरूप नहीं है, जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है'—ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर।"

शरीर, भाषा, इन्द्रियाँ आदि जड़ और पृथक् प्रदेशवाले भिन्न पदार्थ हैं; वे 'आत्मा' नहीं हैं, आत्माके नहीं हैं और आत्मामें नहीं हैं। शुभाशुभ विभावभाव आत्माका स्वरूप नहीं हैं। विभावभाव आत्माकी पर्यायमें होते हैं परन्तु वे उसका स्वभावभाव नहीं हैं। स्वभावभाव हों तो वह नित्य स्थायी रहने चाहिये। भाई! तू प्रथम यह निर्णय कर कि 'मैं स्वभावसे सिद्धसमान शुद्ध हूँ, जैसा सिद्धभगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है। सिद्धभगवान द्रव्य और पर्याय दोनों अपेक्षासे शुद्ध हैं तथा मैं द्रव्य–अपेक्षासे शुद्ध और पर्याय–अपेक्षासे अशुद्ध हूँ—इतना अन्तर है।' श्री समयसारकी पहली गाथामें आचार्यदेवने मंगलाचरणरूपमें सर्व प्रथम सिद्ध भगवन्तोंको अपने तथा श्रोताके आत्मामें स्थापित करके शास्त्र रचनेकी प्रतिज्ञा की है। कहीं बाहर गाँव जाना हो और दिन अच्छा न हो तो पहले मार्गमें आनेवाले पड़ौसीके घर पहलेसे प्रस्थानकी विधि कर देते हैं, वैसे ही वर्तमानमें सम्पूर्ण मोक्षदशाके लिये अकाल है इसलिये आचार्यदेव अनंत सिद्ध भगवंतोंको अपनी तथा श्रोताकी पर्यायमें स्थापनेरूप प्रस्थान–विधि कर देते हैं। जब अंतरमें साधनाकी पूर्णतारूप पुरुषार्थका स्वकाल प्रगट करेंगे तब सिद्ध हो जायेगें। इसलिये 'मेरा स्वरूप सिद्ध भगवान जैसा ही है'—ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर।

'शुभ भाव आयँगे अवश्य।'

वीतराग देव–शास्त्र–गुरुके प्रति भक्ति, शास्त्र-स्वाध्याय, सत्‌श्रवण आदिके शुभभाव आयँगे अवश्य।

"परन्तु 'शुभभावसे क्रमशः मुक्ति होगी, शुभभाव चले जायँगे तो सब चला जायगा और मैं शून्य हो जाऊँगा'—ऐसी श्रद्धा छोड़।"

दया–दानके अथवा व्रत–तपादिके शुभभावों द्वारा अनुक्रमसे मोक्षदशा प्रगट होगी ऐसा भ्रम छोड़ देना। शुभभाव छोड़ दूँगा तो मेरा सब चला जायगा और मैं अशरण हो जाऊँगा–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शून्य हो जाऊँगा ऐसी श्रद्धाको तिलांजलि दे देना। शुभभाव चले जायँगे तो फिर मुझमें क्या रहेगा?—भाई! आनन्दकन्द निज ज्ञायक प्रभुका आनन्द झरता स्वाद रहेगा। श्री समयसारमें कहा है न! कि—'शुभ और अशुभ दोनों भावोंका निषेध किया गया है तब फिर मुनियोंको कुछ भी करना नहीं रहनेसे वे मुनिपना किसके आश्रयसे, किसके अवलम्बन द्वारा पाल सकेंगे?'—ऐसी शंकाका समाधान करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि :–शुभाशुभ सर्व विभावोंका त्याग होने पर ज्ञानकी महा शरण है। उस ज्ञानमें लीन होने पर सर्व आकुलतारहित परमानन्दका उपयोग होता है–जिसका स्वाद ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानी कषायी जीव शुभाशुभ विभावोंको ही सर्वस्व जानकर उनमें लीन हो रहा है, ज्ञानानन्दका स्वाद नहीं जानता।

प्रभु! तू तो स्वभावसे सिद्धसमान शुद्ध है न! शुभकी रुचि छूटेगी तो सिद्ध समान स्वभावकी रुचिसे तुझे अंतरमें शान्ति प्रगट होगी। शुभका अस्तित्व छूटनेसे तेरा सहज अस्तित्व चला जायगा ऐसा नहीं है। अरे रे! जैनकुलमें जन्म लेने पर भी इस वस्तुकी खबर नहीं है। शुभभावसे तेरा 'स्थायित्व' नहीं है, परन्तु शुभाशुभ विभावोंसे रहित जो तेरा सहज अस्तित्व है वही तेरा 'स्थायित्व' है। शुभभावको छोड़नेसे शून्य हो जायगा ऐसा नहीं है, उसके जानेसे उलटे शुद्धिकी—शान्ति एवं आनन्दकी—वृद्धि होगी। ऐसा उपदेश है। अहाहा! बहुत कुछ आ गया इस पुस्तकमें।

'तू अगाध अनन्त स्वाभाविक शक्तियोंसे भरा हुआ एक अखण्ड पदार्थ है।'

जिनकी गहनता तथा संख्याकी कोई थाह नहीं है ऐसी अगाध अनन्त शक्तियोंसे भरपूर तू एक अखण्ड पदार्थ है। शक्तियाँ भले ही संख्यासे अनन्त हैं तथापि आत्मा तो अभेद एक पदार्थ है। अरेरे! वणिकोंको ऐसा अध्ययन करनेका समय नहीं मिलता, सारा दिन संसारके पाप, पाप और पाप! कदाचित् दो घड़ी स्वाध्याय करें तब भी कषाय मन्द किया हो तो शुभभाव है, उसमें धर्म कहाँ है? और शुभभाव जायगा तो मैं शून्य हो जाऊँगा ऐसा भी कहाँ है? शुभभाव रुचि एवं परिणतिमेंसे जायेगा तो मैं परिपूर्ण शुद्ध हो जाऊँगा—ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर।

'उसकी श्रद्धा कर और आगे बढ़।'

'मैं एक अखण्ड ज्ञायक पदार्थ हूँ'—ऐसी निज शुद्धात्माकी अविचल श्रद्धा कर। श्रद्धा करके वहाँ खड़ा नहीं रहना है–अटक नहीं जाना है। निज ज्ञायकको श्रद्धा और ज्ञानमें ग्रहण करके, उसमें विशेष लीनता बढ़ाकर आगे चलना है। जिस परिपूर्ण ज्ञायक शुद्धभावको दृष्टिमें लिया है उसमें अब ज्यादा आगे बढ़ा यही मुक्तिका एकमात्र उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अनन्त तीर्थंकरादि इसी मार्गसे मुक्तिको प्राप्त हुए हैं।'

अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली और अनन्त सन्त इसी मार्गसे मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। 'एक होय तीन कालमें, परमारथका पंथ।' श्री प्रवचनसारमें आता है न! कि—निज शुद्धात्माकी अनुभूतियुक्त सम्यग्दर्शन प्राप्त करके वीतरागचारित्रके विरोधी रागद्वेषको हटाना, अर्थात् निश्चयरत्नत्रयात्मक शुद्धात्मानुभूतिमें विशेष लीन होना, वही एक मोक्षमार्ग है; तीनोंकालमें दूसरा कोई मोक्षका मार्ग नहीं है। समस्त अरिहंत भगवन्त इसी मार्गसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं और अन्य मुमुक्षुजीवोंको भी इसी मार्गका उपदेश दिया है। अहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त साधक जीव इसी मार्गसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं। इसके सिवा मुक्तिका अन्य कोई मार्ग नहीं है—अन्य कोई उपाय नहीं है।

मैं एक अखण्ड ज्ञायकमूर्ति हूँ, विकल्पका एक अंश भी मेरा नहीं है—ऐसा स्वाश्रयभाव रहे वह मुक्तिका कारण है; और विकल्पका एक अंश भी मुझे आश्रयरूप है—ऐसा पराश्रयभाव रहे तो वह बंधका कारण है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१४०

दिनांक–४-११-७८

वचनामृत–३६२

जिस प्रकार अज्ञानीको 'शरीर ही मैं हूँ, यह शरीर मेरा है' ऐसा सहज ही रहा करता है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता, उसीप्रकार ज्ञानीको 'ज्ञायक ही मैं हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है' ऐसी सहज परिणति वर्तती रहती है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता। सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है।।३६२।।

''जिस प्रकार अज्ञानीको 'शरीर ही मैं हूँ, यह शरीर मेरा है' ऐसा सहज ही रहा करता है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता, उसीप्रकार ज्ञानीको 'ज्ञायक ही मैं हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है' ऐसी सहज परिणति वर्तती रहती है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता।''

जिसे स्व और परका तथा स्वभाव और विभावका भेदविज्ञान नहीं है ऐसे अज्ञानी जीवको अनादिकालसे प्रवर्तित अज्ञानके कारण ''शरीर ही 'मैं' हूँ, यह शरीर 'मेरा' है, शरीरकी क्रिया—उठने–बैठनेकी, खाने–पीनेकी, भाषा बोलनेकी आदि—'मैं करता हूँ''— ऐसी अपनी प्रतीति और परिणतिमें सहज ही घुँट गया है, वह उसे घोखना अथवा याद नहीं करना पड़ता। अंतरमें त्रिकालशुद्ध ऐसा ज्ञायकस्वरूप अपना सहज अस्तित्व भासित नहीं हुआ, इसलिये अपना अस्तित्व शरीरादि परपदार्थोंमें कल्पित कर लिया है। उस कल्पनासे उसकी परिणति ऐसी रंग गई है कि जिससे 'शरीर ही मैं हूँ, यह शरीर मेरा है, मैं शरीरकी क्रियाका कर्ता हूँ' ऐसा उसे सहज बना रहता है, बार–बार घोखना अथवा याद नहीं करना पड़ता।

—इस प्रकार, जिसने स्वसन्मुखताके अंतर्मुख पुरुषार्थ द्वारा स्व और परका तथा स्वभाव और विभावका निज–निज लक्षणके बलसे स्वानुभूतियुक्त यथार्थ भेदविज्ञान प्रगट किया है ऐसे ज्ञानी जीवको ''यह जो शुद्ध ज्ञायक है वही 'मैं' हूँ। उसके अतिरिक्त अन्य— शरीर, वाणी और मन अथवा पत्नी, पुत्र, परिवार और पैसादि—कुछ भी मेरा नहीं है, मैं शरीरादिका कर्ता, हर्ता या धर्ता नहीं हूँ'' ऐसी सहज प्रतीति और परिणति सतत वर्तती रहती है, उसे यह सब घोखना अथवा याद नहीं करना पड़ता।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्माको भी दया, दान, पूजा, भक्ति अथवा व्रतादिके शुभ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु 'वे विभाव मेरी वस्तु नहीं हैं, मेरा स्वरूप नहीं हैं' ऐसी सहज परिणति सदा—खाते-पीते, जागते-सोते, स्वाध्याय करते अथवा व्यापारमें, अरे! युद्ध आदि चाहे जिस अवस्थामें—सतत वर्तती रहती है। 'मैं चिदानंदमूर्ति ज्ञायक हूँ ऐसी श्रद्धा ज्ञानकी सहजदशा उसे निरंतर वर्तती रहती है। मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा उसे प्रतिक्षण घोखना अथवा याद नहीं करना पड़ता। यदि घोखना और याद करना पड़े तो उसे सहजदशा नहीं कही जाती।

'मैं अखण्ड ज्ञायकतत्त्व हूँ'—ऐसी सानुभव श्रद्धा और ज्ञानकी जो परिणति प्रगट हुई वह, फिर निष्क्रिय होकर एक कोनेमें पड़ी नहीं रहती, परन्तु उसका सहज परिणमन सदा-सतत वर्तता रहता है। घोखकर अथवा याद कर-करके वह दशा बनाए रखना पड़े ऐसा नहीं है, परन्तु वह दशा ही तद्रूप—स्वभावरूप सहजरूपसे परिणमित हो गई है।

'सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है।'

सहज पुरुषार्थ अर्थात् स्वाभाविक, किसी अन्यके आलम्बन या आश्रयरहित पुरुषार्थ। ज्ञानीको परिणतिमें 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसा सहज पुरुषार्थ निरंतर वर्तता रहता है। जिसे अधिक शास्त्रज्ञान हो, तर्कज्ञान हो वह ज्ञानी है—ऐसा 'ज्ञानी' शब्दका अर्थ नहीं है, परन्तु रागादि विभावोंसे श्रद्धा और ज्ञानमें भिन्न होकर अपने अनादिनिधन शुद्ध ज्ञायककी यथार्थ प्रतीति, ज्ञप्ति एवं अनुभूति जिसने अंतरमें प्रगट की है उसे 'ज्ञानी' कहा जाता है। अहा! वीतरागके धर्ममें ऐसी बात है।

आजकल सम्प्रदायमें तो मूल सम्यग्दर्शनका भी ठिकाना नहीं होता और उपदेशक 'व्रत लो, तप करो, नियम ले लो'—इसप्रकार लोगोंको अज्ञानमय क्रियाकाण्डमें लगा देते हैं; परन्तु भाई! अंतरमें कषाय मन्दकी हो तब भी वे सब तो विकल्प हैं, शुभभाव हैं, धर्म नहीं है। भूमिकाके अनुरूप शुभ विकल्प ज्ञानीको भी आते हैं, परन्तु विकल्पके कालमें भी भीतर ज्ञातृत्वधारा—'मैं तो मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसी परिणति-खण्डित नहीं होती। विकल्पके कालमें 'मैं तो मात्र ज्ञाता ही हूँ' ऐसी परिणति तो एक क्षण भी नहीं हटनेसे ज्ञानी विकल्पका कर्ता नहीं किन्तु मात्र उसका ज्ञाता ही है। ज्ञानीको ज्ञातृत्वधाराका सहज पुरुषार्थ सतत वर्तता रहता है। अहा! ऐसी बात और ऐसा धर्म है। यह तो सम्यग्दृष्टिकी—धर्मके प्रथम सोपानकी—बात हुई, स्थिरतारूप विशेष धर्मकी-मुनिकी-बात अब अगले बोलमें आयेगी।

❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३६३

मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धिसे भरे हुए चैतन्यमहलमें निवास करते हैं; चैतन्यलोकमें अनन्त प्रकारका दर्शनीय है उसका अवलोकन करते हैं; अतीन्द्रिय-आनन्द-रूप स्वादिष्ट अमृतभोजनके थाल भरे हैं वह भोजन करते हैं। समरसमय अचिन्त्य दशा है॥३६३॥

'मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धिसे भरे हुए चैतन्यमहलमें निवास करते हैं; चैतन्यलोकमें अनन्त प्रकारका दर्शनीय है उसका अवलोकन करते हैं; अतीन्द्रिय आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजनके थाल भरे हैं वह भोजन करते हैं।'

अहा! मुनिपना किसे कहा जाय! अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द, शान्ति, प्रभुता, समता, समाधि आदि आश्चर्यकारी निज ऋद्धिसे भरपूर ऐसे अपने ज्ञायक महलमें जो निवास करते हैं, चैतन्यस्वरूपमें प्रचुरतासे स्थिर हो गये हैं, उनको 'मुनिराज' कहा जाता है। ज्ञान और आनन्दादि चमत्कारी ऋद्धियोंसे परिपूर्ण निज चैतन्यमहलमें निवास करनेवाले साधकजीवको प्रतिक्षण पर्यायमें निर्मलताकी सिद्धि एवं ऋद्धिकी वृद्धि होती जाती है। समयसार–नाटकमें सम्यग्दृष्टि साधकका वर्णन करते हुए कहा है :—

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित,
साचे साचे बैन कहैं साचे जैनमती हैं।
काहूके विरुद्धि नाहिं परजाय–बुद्धि नाहिं,
आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं॥

सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा,
अंतरकी लच्छिसौं अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्तके उदास रहैं जगत सौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं॥

जिनको शरीर और रागादि विभावोंसे भिन्न अपने ज्ञायकस्वरूपका सच्चा ज्ञान प्रगट हुआ है, पूर्ण परमात्मपदकी प्राप्तिका सच्चा प्रेम है, जो हृदयके सच्चे हैं, सत्यवक्ता हैं और सच्चे जैन हैं, नयविवक्षाके सम्यग्ज्ञाता होनेसे जिन्हें किसीके साथ बैरविरोध नहीं है, शरीरादिके प्रति जिनको अहंबुद्धि छूट गई है, जो आत्मस्वरूपके शोधक हैं, न तो अणुव्रती हैं न महाव्रती हैं, जिन्हें अपने हृदयमें सदा आत्महितकी सिद्धि, आत्मशक्तिकी ऋद्धि और आत्मगुणोंकी—पर्यायोंमें निर्मलताकी—वृद्धि प्रगट अनुभवमें आती है, जो अंतरंग लक्ष्मीसे समृद्ध होनेके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण अयाचक लक्षपति हैं, जो जिनराजके सेवक हैं, जो संसारसे उदासीन तथा आत्मिकसुखसे सदा आनन्दरूप रहते हैं; ऐसे गुण–साधनाकी विशेषताएँ—जिनमें विद्यमान हैं वे जीव सम्यग्दृष्टि हैं। यह तो सम्यग्दृष्टिकी ऋद्धिकी बात कही; यहाँ तो मुनिराजकी बात चलती है। कैसे हैं मुनिराज? अहा! मुनिराज तो ज्ञान, आनन्द, समाधि आदि चमत्कारी निज सम्पदासे भरपूर चैतन्यमहलमें निवास करते हैं।

प्रश्न :—तो फिर पैसेवालोंकी ऋद्धिका क्या?

उत्तर :—पैसेवाले यानी क्या? पैसा तो धूल है, अजीव है। अपनेको पैसेवाला अर्थात् अजीववाला मानना वह तो मूढ़ता है, मिथ्यादृष्टिपना है। अरे! पैसा तो दूर रहा किन्तु अपनी पर्यायमें जो रागादि विभाव होते हैं वह भी आत्माका मूल स्वरूप नहीं है। ज्ञानीको भी निर्बलताका राग आता है, किन्तु वास्तवमें तो वह दृष्टिकी अपेक्षासे मात्र उसका ज्ञाता है, और ज्ञानकी अपेक्षासे ज्ञानी बराबर जानता है कि मेरी पर्यायमें रागका—अस्थिरताका—इतना परिणमन है, इतनी मेरी निर्बलता है। ज्ञानीको दृष्टि और ज्ञान दोनोंका सुमेल होता है। अहा! ऐसी बात है।

अहो! धन्य मुनिदशा! मुनिदशाकी तो बात ही क्या! बहिनके 'वचनामृत' पुस्तकमेंसे मुनिराज सम्बन्धी बोलोंका संकलन करके 'धन्य मुनिदशा!' नामकी छोटी पुस्तिका प्रकाशित हुई है। उसमें बहिनने मुनिपनेकी बड़ी सुन्दर बातें की हैं। मुनिराजका निवास अट्ठाईस मूलगुणोंके विकल्पोंमें नहीं, परन्तु ज्ञातापरिणतिरूप ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, आनन्दादि आश्चर्यकारी निज ऋद्धियोंसे परिपूर्ण निज ज्ञायकमहलमें है।

प्रश्न :—मुनिराज महलमें निवास करते हैं या वनमें?

उत्तर :—मुनिराज तो वन–जंगलमें अथवा गिरिगुफामें निवास करते हैं—यह तो व्यवहारका कथन है, वे तो सदा अंतरकी चैतन्यगुफामें वास करते हैं। श्री समयसारकी ४९वीं गाथाकी टीकामें श्री जयसेनाचार्यदेवने कहा है कि—यहाँ तात्पर्य इसप्रकार है : शुद्ध निश्चयनयसे जो पुद्गल द्रव्यके सर्व वर्णादि गुण एवं शब्दादि पर्यायोंसे रहित है, जो सर्व द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और मनोगत रागादि विकल्पोंसे अगोचर है, जो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य तथा शेष अन्य जीवोंसे भिन्न है और जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख एवं अनंत वीर्यस्वरूप है ऐसा जो शुद्धात्मा है वही समस्त द्रव्य, सर्वक्षेत्र, सर्वकाल तथा ब्राह्मण–क्षत्रियादि अनेक वर्ण भेदवाले मनुष्यके समस्त मन–वचन–कायाके व्यापारोंमें दुर्लभ है, वही अपूर्व है और वही उपादेय है ऐसा समझकर निर्मोह तथा निरंजन ऐसे निज शुद्धात्माकी निर्विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधिसे समुत्पन्न जो सुखामृतरस उसकी अनुभूतिस्वरूप जो गिरिगुफाकी कंदरा, उसमें स्थिर होकर सर्व तात्पर्यसे उसका (निज शुद्धात्माका) ध्यान करना। मुनिराज क्या पर्वतकी गुफामें निवास करते हैं? वास्तवमें तो, वे निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न अपनी आनन्दमय चैतन्यगुफामें रहते हैं, भीतर निजस्वरूपमें ही प्रचुरतासे स्थित रहते हैं। अहा! ऐसा मार्ग है प्रभुका। दिगम्बर सन्तोंने अद्भुत कार्य किया है! मूल गाथामें और टीकामें अमृतकी वर्षा की है।

प्रश्न :—तो क्या मुनिराज व्रतादिके विकल्पमें नहीं रहते?

उत्तर :—मुनिराजको भूमिकानुसार पंचमहाव्रत, समिति, स्वाध्याय आदिके विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु उनमें उनका निवास नहीं है, उनका निवास तो उन समस्त विकल्पोंसे भिन्न अंतरके अतीन्द्रिय आनन्दमें है। महाव्रत या तपादिके विकल्प तो शुभराग हैं, आस्रव हैं और बंधके कारण हैं।

प्रश्न :—वीतराग देव–गुरुकी पूजाके भाव यह सब क्या बंधका कारण हैं?

उत्तर :—भाई! लाख या करोड़ पूजा–बूजा कर न! परन्तु यह सब शुभराग और क्लेश है। समयसारके निर्जरा–अधिकारमें कहा है न!—

कोई जीव तो महा कष्टसे किये जा सकें ऐसे और मोक्षसे विमुख ऐसे कर्मों द्वारा स्वयमेव क्लेश पाते हैं तो पाओ और अन्य कोई जीव (मोक्षके सन्मुख अर्थात् कथंचित् जिनाज्ञामें कहे गये) महाव्रत और तपके भारसे दीर्घकाल तक भग्न होते हुए क्लेश प्राप्त करते हों तो करो; परन्तु जो साक्षात् मोक्षस्वरूप है, रागादि समस्त क्लेशरहित पद है, और स्वयं स्वसंवेद्यमान है ऐसा यह ज्ञान तो ज्ञानगुणके बिना किसी भी प्रकार वे प्राप्त कर ही नहीं सकते। शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप जो ज्ञान है वह साक्षात् मोक्ष है; वह ज्ञानसे ही प्राप्त होता है, अन्य किसी क्रियाकाण्डसे उसकी प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न :—पापभावकी अपेक्षा पुण्यभाव अच्छा तो कहा जायगा न?

उत्तर :—भाई! पुण्य और पाप–दोनों भाव आत्माका धर्म नहीं हैं इसलिये समान हैं। उनमें पुण्यभाव अच्छा और पापभाव बुरा—ऐसा भेद करना वह बड़ी भूल है; जो अनन्त संसारमें परिभ्रमणका कारण होता है। प्रवचनसारकी ७७वीं गाथामें कहा है :—

नहिं मानतो–अे रीत पुण्यरु पापमें न विशेष है।
वह मोहसे आच्छन्न घोर अपार संसारे भ्रमे।।७७।।

इसप्रकार 'पुण्य और पापमें अंतर नहीं है' ऐसा जो नहीं मानता, वह मोहाच्छादित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तता हुआ घोर अपार संसारमें परिभ्रमण करता है।

अहा! अद्‌भुत है दिगम्बर मुनिराजकी वाणी! दिगम्बर मुनिराजका तो क्या कहना! वे तो 'नंगा बादशाहसे बड़ा', बादशाहकी अपेक्षा भी वे बड़े—उत्तम–श्रेष्ठ हैं; उन्हें दुनियाकी कुछ पड़ी नहीं है। समाज या दुनिया माने या न माने, उन्होंने तो वस्तुस्थिति जैसी है वैसी यथार्थ कही है। शुभभाव अच्छा और अशुभभाव बुरा–इसप्रकार उन दोमें जो परमार्थतः अन्तर मानेगा वह 'हिंडदि घोरमपारं संसारं'—मिथ्यात्वसे आवृत अज्ञानी जीव घोर अपार संसारमें परिभ्रमण करेगा। शुभ या अशुभ दोनों भाव विभाव, अशुचि, बंधका कारण, दुःख और दुःख फलरूप है, इसलिये अठीक है; ठीक तो एकमात्र निज शुद्धात्मद्रव्य–स्वभावके आलम्बनसे प्रगट होनेवाला शुद्धभाव ही है। तत्त्वार्थसूत्रमें भी शुभभावको आस्रवतत्त्वमें गिना है; क्योंकि उससे पुण्यास्रव होता है। 'शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य (आस्रवः)। शुभयोग पुण्यका और अशुभयोग पापका आस्रव है। दोनों आस्रव-बंधरूपमें समान हैं; उन दोनोंमें परमार्थदृष्टिसे जो अन्तर मानेगा कि शुभभाव अशुभभावकी अपेक्षा ठीक है वह अनंत संसारमें भटक मरेगा। अहा! यह तो कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी वाणी है; अरे! कौन मानता है इसे?

यहाँ तो यह बात चलती है कि—'मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धिसे भरपूर चैतन्यमहलमें निवास करते हैं; चैतन्यलोकमें अनंत प्रकारका दर्शनीय है उसका अवलम्बन करते हैं.....' क्या कहा? भीतर चैतन्यकी दुनियामें सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज सुख, सहज वीर्य, सहज स्वच्छत्व, सहज प्रकाश, सहज प्रभुत्व, सहज विभुत्व आदि अनंत प्रकारका—अनंत....अनंत...अनंत—गुणवैभव देखना, जानना, आनन्द लेना है उसका मुनिराज सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और विशेष स्वरूपस्थिरताकी परिणतिरूप परिणमित होकर, अवलोकन कर रहे हैं।

अहा! आत्माके अनन्तगुणोंकी तो क्या गिनती हो! सर्वव्यापी आकाश द्रव्यके जितने प्रदेश हैं उनकी अपेक्षा प्रत्येक द्रव्यमें गुणोंकी संख्या अनन्तगुनी है। अरे! परमाणु या कालाणु, जो आकारमें छोटे से छोटा—एकप्रदेशी–द्रव्य है उसमें भी आकाशप्रदेशकी संख्याकी अपेक्षा अनंतगुने गुण हैं। उन अचेतन पदार्थोंमें अचेतन, आत्मामें—चेतनपदार्थमें—चेतनगुण हैं।

बड़े शहरोंमें 'प्रदर्शनी' लगती हैं न अथवा अजायब घर होते हैं न! जिस प्रकार लोग उन्हें देखने जाते हैं उसीप्रकार भीतर यह चैतन्यलोक भी एक दर्शनीय अनुपम प्रदर्शनी अथवा अजायबघर है। मुनिराज निज चैतन्यलोकमें दर्शनीय, अनुभवनीय, अनन्त अतीन्द्रिय गुणवैभवका अवलोकन करते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी निज चैतन्यलोकका अवलोकन करते हैं किन्तु थोड़ी स्थिरतासहित; क्योंकि पर्यायमें निर्बलता है, और मुनिराजको पर्यायमें विशेष उग्र स्थिरता परिणमित हो जानेके कारण अनंत दर्शनीय गुणवैभवको उग्रतासे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवलोकते हैं—अवगाहते हैं।

अहा! आत्मा भी एक वस्तु है न! 'वस्तु' किसे कहा ज.ता है? गोम्मटसारकी टीकामें कहा है कि—'गुणपर्यायो वसतः यस्मिन् इति वस्तु'—जिसमें गुण और पर्यायोंका वास है उसे 'वस्तु' कहते हैं। मुनिराज अनन्त-अनन्त गुणवैभवसे भरी हुई निज चैतन्यवस्तुको देखते हैं।

प्रश्न :—अनंतको भेद करके देखनेसे राग नहीं होता?

उत्तर :—नहीं, नहीं। यहाँ तो 'देखते हैं' इतनी बात है। अनंत गुणोंको देखते हैं—बस इतना। भेद करके देखते हैं ऐसा कहाँ कहा है? आत्मा अनंत गुणयुक्त है और मुनि आत्माको देखते हैं तो उसके अनंत गुणोंको देखते हैं, भेद करके नहीं। आत्मामें अनंत प्रकारता है, इसलिये उसे एकरूपसे देखते होने पर भी, अनंतको देखते हैं ऐसा कहनेमें कोई विरोध नहीं है। तथा (ज्ञानीके उपयोगात्मक ज्ञान सम्बन्धी विवरण करते हुए) पं. टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है कि—वस्तुका निश्चय होनेके पश्चात् ऐसा नहीं है कि सामान्यरूप स्वद्रव्यका ही चिन्तवन बना रहता है, स्वद्रव्य और परद्रव्यका सामान्यरूपसे तथा विशेषरूपसे जानना होता है, परन्तु वीतरागता सहित होता है। 'जानना' यह तो ज्ञानका स्वभाव है। क्या ज्ञान अनंतको जाने—परद्रव्योंको तथा अपने विशेषोंको जाने–इसलिये विकल्प (राग) होता है? नहीं.....नहीं।

अहा! दृष्टि तो निर्विकल्प–निराकार है; वह अपने अस्तित्वको नहीं जानती और परके अस्तित्वको भी नहीं जानती। परन्तु ज्ञान तो सविकल्प–साकार है; वह अपने अस्तित्वको जानता है और परके अस्तित्वको भी जानता है। ज्ञान स्व-पर सब जानता है, जाननेमें कोई दोष नहीं है—यह बात 'पंचाध्यायीमें आती है; वीरजीभाईके साथ अनेकबार (सम्प्रदायमें थे तब) इस पर चर्चा हो चुकी है। पंचाध्यायीमें कहा है कि—हे महाप्राज्ञ! स्वरूपस्थितिके लिये परपदार्थसे हटकर उपयोगको एकाकार करनेकी इच्छासे खेद न कर। सबको जान। ज्ञानोपयोगकी तो स्वाभाविक महिमा है कि वह स्व–पर सबको जानता है।

हे ज्ञानी! हे धर्मी! तू अनन्त–अनन्त निजगुण–पर्यायरूप विशेषोंको अथवा अनन्तानन्त पर पदार्थोंको देख; देखने–जाननेका तो तेरा स्वभाव है; देखनेसे तुझे राग होगा ऐसा है ही नहीं।

स्वपर प्रकासक सकति हमारी, तातैं वचनभेद भ्रम भारी;
ज्ञेयदशा दुविधा परगासी, निजरूपा पररूपा भासी।

अहा! स्व–परको जानना–यह तो ज्ञानकी ताकात-शक्ति है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—कभी तो आप ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं और कभी त्रैकालिक ज्ञायकका गुणगान करते हैं?

उत्तर :—दृष्टिका विषय कहना हो तब त्रैकालिक अभेद ज्ञायककी बात आती है। दृष्टि अर्थात् श्रद्धा निर्विकल्प है; वह अपनेको—श्रद्धारूप पर्यायको या परको नहीं जानती, विशेषको जानना वह उसका विषय ही नहीं है। ज्ञानका स्वभाव स्व-पर ज्ञेयको—सबको जाननेका है। वह अनन्तको जाने इसलिये विकल्प-राग हो ऐसा नहीं है।

चैतन्यलोकमें ज्ञान, आनन्दादि अनन्त प्रकारका दर्शनीय है। यहाँ गुणरूप ऋद्धिके अवलोकनमें 'रागको देखता है' यह बात गौण हो गई है। ज्ञानी धर्मात्माको भी राग आता है, परन्तु उसे वे पररूपमें जानते हैं, ज्ञान और आनन्दादि गुणवैभवको स्वद्रव्यरूपमें देखते हैं। यहाँ कहते हैं कि : मुनिराज चैतन्यलोकमें अनन्त प्रकारका दर्शनीय है उसका अवलोकन करते हैं। अहा! बहिनकी भाषा तो अद्भुत है! सादी, सुगम और गंभीर भावोंसे भरी हुई!

प्रश्न :—भाषा तो जीवको होती नहीं है न?

उत्तर :—भाषा तो शब्दवर्गणाकी पर्याय है, परन्तु भावके अनुरूप शब्दवर्गणा भाषारूप परिणमने पर व्यवहारसे 'जीवकी भाषा' कहा जाता है। भगवानकी ध्वनिको दिव्यध्वनि कहा जाता है न? दिव्यध्वनि तो पुद्गलकी पर्याय है। भाषा तो आत्माकी नहीं है, परन्तु 'मैं ज्ञायक आत्मा हूँ' ऐसा विकल्प भी आत्माका यथार्थ स्वरूप नहीं है। आत्मा तो परमार्थसे निर्विकल्प अतीन्द्रिय चैतन्यस्वरूप है, जिसमें सहज ज्ञान, सहज सुखादि अनन्त प्रकारका दर्शनीय है।

सम्यग्दृष्टि भी अंतर्परिणतिमें चैतन्यका अवलोकन करते हैं किन्तु निर्विकल्प दशा विशेष नहीं है, जबकि मुनिराजको स्वरूपस्थिरता अत्यधिक बढ़ जानेसे निर्विकल्पदशा बारम्बार आती है। यहाँ यह 'मुनिराज चैतन्यलोकका अवलोकन करते हैं' बहिनके वचन हैं। अहा! यह तो कोई पुस्तक है! सबके पास आ गई है न? आत्मधर्मके सब ग्राहकोंको भेंट दी गई है। लोग इसे पढ़ें तो सही!

मुनिराज तो अतीन्द्रिय-आनन्दरूपी स्वादिष्ट अमृतभोजनके थाल भरे हैं वही भोजन करते हैं। भगवान ज्ञायक आत्मामें भीतर अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादिष्ट भोजनके थाल भरे हैं—ज्ञान, दर्शन, कर्ता-करण-कर्मादि अनन्त गुणोंके आनन्दरूपी थाल भरे हैं; उसका स्वाद लेते-लेते चाहे जितना काल व्यतीत हो जाय तथापि अमृतका कभी अन्त नहीं आता। आत्माका सहज ज्ञानादिरूप ऐसा स्वरूप न समझे तबतक दर्शनशुद्धि नहीं हो सकती। अभी चारित्र तो कहीं दूर रह गया! भाई! चारित्रदशाका तो क्या कहना! वह तो कोई अनुपम दशा है! चारित्र तो परमेश्वरपद है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उस परमेष्ठीपदमें विद्यमान मुनिराज निज ज्ञायकस्वभावके उग्र अवलम्बन द्वारा, अतीन्द्रिय आनन्दरूप स्वादिष्ट अमृतभोजनके जो थाल भरे हैं वह भोजन करते हैं। मुनिराज किन्हें कहा जाता है? अंतरमें शरीर और विभावमें भिन्न निज ज्ञायकस्वभावके दृढ़ सम्यक् श्रद्धान एवं ज्ञानके बलसे तीन कषायके अभावरूप उग्र स्वरूपस्थिरता परिणमित हुई हो और बाह्यमें निर्विकार सहज नग्न दिगम्बर दशा हो, अंशमात्र भी वस्त्र–पात्रादिका परिग्रह न हो, परिणाममें महाव्रत, समिति आदिको प्रमतरूपसे पालन करनेके विकल्प हों तथापि उनका स्वामित्व नहीं है; सहज अतीन्द्रिय–आनन्दस्वरूप स्वादिष्ट अमृतभोजन कर रहे हैं—ऐसी अद्भुत दशाको मुनिपना कहते हैं। अहा! धन्य वह मुनिदशा!

अहा! जिसके उग्र अवलम्बनसे ऐसी अनुपम मुनिदशा प्रगट होती .है उस ज्ञायक आत्माका तो क्या कहना! वह कैसी वस्तु है! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति, आनन्द, स्वच्छत्व, ऐश्वर्य, प्रभुत्वादि अनन्तानन्त गुणसमृद्धिका अचिन्त्य भंडार है।

'समरसमय अचिन्त्य दशा है।'

अहा! जहाँ अतीन्द्रिय–आनन्दरूप अमृतका भोजन करते हों ऐसी समरसमय अचिन्त्य मुनिदशाका तो कहना ही क्या! वे तो चलते–फिरते सिद्ध हैं। मुनिराजकी परिणतिमें समतारूपी–वीतरागतारूपी–रस निरन्तर झर रहा है। भावलिंगी संतकी अंतर्दशामें तो समतारसकी फुहारें छूट रही हैं, परन्तु शरीरकी नग्नता भी निर्विकार तथा अंतरके समतारसके—वीतरागरसके—प्रतिबिम्बरूप सुशोभित होती है। मुनिराजकी साधनामय पवित्र परिणति कोई अद्भुत होती है। उन्हें आत्माके असंख्य प्रदेशमें चारित्रगुण समतारूपी रस—वीतरागतारूपी अतीन्द्रिय रस—सर्व गुणोंके परिणमनमें एकाकार हो गया है। उनको आनन्दगुण भी अनंत गुणोंके परिणमनमें एकाकार होकर परिणमता है। आनन्दसे सराबोर अनन्त गुणोंकी निर्मल पर्यायें—आनन्दसे भरपूर अमृतभोजनके थाल–अंतरमें भरी हैं उनका मुनिराज निरन्तर उपभोग करते हैं। ऐसी है विकल्पमय विषमता रहित समतारसमय अचिन्त्य अद्भुत दशा। वास्तवमें मुनिराजकी दशा कोई अद्भुत है। इस कालमें तो उसके दर्शन भी दुर्लभ हैं।

❄

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१४१

दिनांक : ५-११-७८

वचनामृत-३६४

गुरुदेवने शास्त्रोंके गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूपसे रखा है। हमें कहीं सत्य ढूँढ़नेको जाना नहीं पड़ा। गुरुदेवका कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ'—इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है। भेदज्ञानकी बात सुननेको मिलना दुर्लभ थी, उसके बदले उनकी सातिशय वाणी द्वारा उसके हमेशा झरने बह रहे हैं। गुरुदेव मानों हाथ पकड़कर सिखा रहे हैं। स्वयं पुरुषार्थ करके सीख लेने जैसा है। अवसर चूकना योग्य नहीं है।।३६४।।

इस बोलमें बहिनने अपना विनय व्यक्त किया है। बहिनकी भक्ति और निरभिमानताके वचन हैं। कितनी अधिक निरभिमानता! कहती हैं : 'आत्मा' ऐसा शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। अद्भुत है उनकी अपार निर्मानता! इस बोलमें यहाँके लिये (पूज्य गुरुदेवके लिये) विनयके शब्द बहिनने कहे हैं। यह बोल सब जन अपने आप पढ़ लेना।

❃

वचनामृत-३६५

काल अनादि है, जीव अनादि है, जीवने दो प्राप्त नहीं किये—जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व। जिनराजस्वामी मिले परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं, जिससे मिलना वह न मिलनेके बराबर है। अनादि कालसे जीव अंतरमें जाता नहीं है और नवीनता प्राप्त नहीं करता; एकके एक विषयका—शुभाशुभ भावका—पिष्टपेषण करता ही रहता है, थकता नहीं है। अशुभमेंसे शुभमें और फिर शुभमेंसे अशुभमें जाता है। यदि शुभ भावसे मुक्ति मिलती होती, तब तो कबकी मिल गई होती! अब, यदि पूर्वमें अनन्तबार किये हुए शुभ भावका

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व नवीन भाव करे—जिनवरस्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे, तो वह अवश्य शाश्वत सुखको प्राप्त हो॥३६५॥

'काल अनादि है, जीव अनादि है, जीवने दो प्राप्त नहीं किये—जिनराज स्वामी और सम्यक्त्व।'

आज प्रातःकाल एक विशेष विचार आया था : आत्मामें ऐसा कोई गुण नहीं है कि जिससे उसे स्वभावतः विकार हो। उसमें ऐसा कोई स्वभाव नहीं है कि जिससे वह अकेला, कर्मोदयादि परपदार्थके साथ युक्त हुए बिना, शुभाशुभ विकार करे। पुद्गलमें भी ऐसा कोई गुण नहीं है कि जिससे वह अकेला, जीवपरिणामके निमित्त बिना, कर्म-नोकर्मरूप विकृत दशामय हो। अहा! आत्मा ज्ञान, दर्शन, सुखादि अनन्तानन्त अमूर्तिक चैतन्य गुणोंका अभेद एक पिण्ड है; उसका कोई गुण स्वभावतः कभी विकाररूप नहीं परिणमता। आत्माको परके लक्षसे पर्यायमें विकार होता है और ध्रुवस्वभावके आश्रयसे विकार जाता है। पुद्गलपरमाणु भी एकप्रदेशी नित्यस्थायी सत् है। उसमें भी स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि जीव जितने ही, अनन्तानन्त गुण हैं। उसके समस्त गुण मूर्तिक एवं अचेतन हैं। उसमें भी कोई ऐसा गुण नहीं है जिससे वह स्वभावतः अकेला कर्मरूप विभावदशारूप-उदय, उपशम, क्षयोपशमादि पर्यायरूप—परिणमित हो। जीव और पुद्गलमें—द्रव्य या गुणमें—विभाव हो ऐसा कोई प्रकार नहीं है, मात्र पर्यायमें अन्योन्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे, जीवमें रागादिकी और पुद्गलमें कर्मादिकी विकृति होती है। जीव यदि वर्तमान पर्यायमें निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावका आश्रय करे तो भावी अनन्तकाल शुद्धरूप-निर्मलरूप परिणमित हो; पुद्गलपरमाणु भी कर्मस्कन्धसे पृथक् हो तो शुद्धरूप परिणमित हो; परन्तु पुनः अन्य पुद्गलोंके साथ मिलकर विभावरूप परिणमित हो ऐसा उसका पर्यायधर्म है। अहा! कैसा अद्भुत है वस्तुस्वभाव, कि स्वतः विकाररूप हो ऐसा द्रव्य-गुणमें कोई धर्म ही नहीं है। यह विचार आज आया था।

'काल अनादि है, जीव अनादि है, जीवने दो प्राप्त नहीं किये हैं—जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व।' व्यतीत कालप्रवाह अनादि है। उसमें अज्ञानभावसे जन्म-मरण करनेवाला जीव भी अनादिका है। जन्म-मरणरूप भवाटवीमें अनादिसे परिभ्रमण करते हुए जीवने भवान्तकारी दो अमूल्य वस्तुएँ प्राप्त नहीं की हैं—जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व। आत्मामें ऐसा कोई गुण नहीं है कि जिससे वह अकेला स्वभावतः विकाररूप परिणमन करे; पर्यायमें विकार है अवश्य, परन्तु वह गुणधर्म नहीं है—ऐसा वस्तुस्वरूप जिनराजने कहा है। जिन्होंने आत्माका ज्ञानानन्दमय पूर्ण निर्मल स्वरूप प्रगट कर लिया है, जिनको द्रव्य, गुण, पर्यायरूप जाननेसे जाननेवालेको निज आत्मा जाननेमें आता है और मोहका क्षय होता है, ऐसे वीतराग सर्वज्ञ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिनराजस्वामीको जीवने अंतरमें कभी प्राप्त नहीं किया—पहिचाना नहीं इसलिये, उनका दर्शाया हुआ भवान्तकारी 'सम्यक्त्व' धर्म भी कभी प्राप्त नहीं किया।

'जिनराजस्वामी मिले परन्तु उन्हें पहिचाना नहीं, जिससे मिलना वह न मिलनेके बराबर है।'

जीवको जिनराजस्वामी मिले, अरे! अनन्तबार मिले, महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेकर अथवा तो देवके भवोंमें तीर्थंकरोंके समवसरणमें अनन्तबार हो आया, 'भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ'—भव-भवमें जिनेन्द्रपूजा की, वंदना की, कल्पवृक्षके फल-फूलोंसे अर्चना की, मणि-रत्नोंके दीपकसे आरती उतारी, परन्तु जिनराजको नहीं पहिचाना, जिससे वे मिले न मिले बराबर हैं। जिनराज मोह-राग-द्वेष तथा क्षुधा-तृषादि समस्त दोषोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हैं; उन्हें जो जीव द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे तथा पर्यायरूपसे यथार्थ जाने वह, 'यह निज भगवान आत्मा भी स्वभावसे वैसा ही है' इसप्रकार अपने आत्माको स्वभावसे भगवान जाने—पहिचाने तो उसका मिथ्यात्वमोह अवश्य नष्ट होता है। जिनको अनन्त गुण पर्यायमें निर्मलरूप परिणमित हो गये हैं ऐसे वीतराग सर्वज्ञ जिनराज और यह आत्मा स्वभावसे समान हैं ऐसा जाने तो जिनराजको जाना कहा जाय, परन्तु जिनराज सदृश निज आत्माको जिसने जाना-पहिचाना नहीं है उसने जिनराजको भी यथार्थ नहीं जाना है और इससे अनन्तबार समवसरणमें जिनराजकी वाणी सुनने पर भी वह न मिले बराबर है।

जीवने अनादिकालसे भवपरिभ्रमणमें अनन्त परावर्तन व्यतीत किये : द्रव्यपरावर्तन, क्षेत्रपरावर्तन, कालपरावर्तन, भवपरावर्तन और भावपरावर्तन। कर्म-नोकर्मरूप पुद्‌गलपरावर्तनमें जीवने अनन्तबार मनुष्यपना प्राप्त किया। एक पुद्‌गल परावर्तनके अनन्तवें भागमें अनंत अवतार होते हैं—ऐसे अनन्त पुद्‌गलपरावर्तनमें जीवको अनन्तबार मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, अनन्तबार वह समवसरणमें गया है, परन्तु अनादि निधन स्वयंसिद्ध ऐसी यह ज्ञायकवस्तु विकार रहित है, उसके द्रव्य-गुण भी विकार रहित हैं—इसप्रकार अंतरसे निज आत्माको जिसने नहीं जाना उसने वास्तवमें जिनेन्द्रदेवको भी नहीं पहिचाना, और इसलिये जिनेन्द्रदेव मिले वे न मिले बराबर हैं।

अनादिकालसे जीव अंतरमें जाता नहीं है और नवीनता प्राप्त नहीं करता; एकके एक विषयका—शुभाशुभ भावका—पिष्ट पेषण करता ही रहता है, थकता नहीं है।'

जीवद्रव्य और उसके ज्ञानादि अनन्त गुण जो कि त्रिकाल निर्मल हैं, उनमें जीव अनादिकालसे जाता नहीं है, उस ओर दृष्टि या रुचि नहीं करता, जिससे पर्यायमें नवीनता—निर्मलता प्राप्त नहीं होती। बंध-मोक्ष, सुख-दुःख सब क्रीड़ाएँ मात्र पर्यायमें हैं; पर्यायमें विकार है, द्रव्य-गुणमें अर्थात् त्रैकालिक स्वभावमें विकार नहीं है। पर्यायमात्र एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समय स्थायी है, उसके पीछे—अंतरमें ज्ञायक महाप्रभु विराजमान है उसे पहिचानकर, उसकी महिमा लाकर जीव अंतरमें नहीं जाता और अनादिसे जहाँ है वहीं—पुण्य-पापके विभावोंमें—रुक गया है। शुभाशुभ विकल्प तो ऊपरी सीमावाली, हदवाली, मर्यादावाली वस्तु है और त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव—द्रव्य-गुण—तो अमर्यादित वस्तु है। अमर्यादित स्वभावके आश्रयसे जो पर्याय होती है वह असीम, अमाप होती है।

जिनराजकी दशा असीम ज्ञान, असीम आनन्द, असीम शान्ति, असीम स्वच्छता आदि असीम निर्मलताओंरूप परिणमित हो गई है। जीव स्वयं यदि अंतरमें दृष्टि करके जिनराज सदृश स्वयंको न पहिचाने और बाह्यमें एकके एक विषयका—शुभाशुभ विकारी भावोंका—पिष्टपेषण करता रहे तो अनादिका जो भवभ्रमण है वह चलता रहेगा, पर्यायमें नवीनता, निर्मलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। पर्यायमें परलक्षसे विकार है, परन्तु वह तो ऊपरी है, वह द्रव्य-गुणमें प्रविष्ट नहीं हो गया है। प्रभु! तेरा घर तो अनन्त-अनन्त-अनन्त गुणवैभवसे भरपूर है, उसे देख न! जिससे तेरी पर्यायमें नवीन-नवीन निर्मलताएँ प्राप्त होगी।

अपनी अनन्त चमत्कारिक गुणऋद्धिसे भरपूर यह भगवान ज्ञायक आत्मा अद्‌भुत चैतन्यलोक है। अजायबघरकी भाँति उसमें अनन्त प्रकारका दर्शनीय है। उस चैतन्यमहलमें सन्त निवास करते हैं। अनादि मिथ्यात्वबुद्धिसे पर्यायमें जो निवास था वह छोड़कर साधक-सन्त चैतन्यमहलमें निवास करते हैं कि जिसमें अनन्त गुणरूप कमरे अनन्त प्रकारकी दर्शनीय वस्तुओंसे भरपूर हैं। अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादिष्ट अमृत-भोजनके थाल भरे हैं। प्रभु! तू 'यह है, यह सब कुछ है' इसप्रकार बाह्यमें इधर-उधर देखता है, बाह्यवैभवका अवलोकन करता है उसके बदले अंतरमें, जहाँ आनन्दामृतके थाल भरे पड़े हैं वहाँ, देख न!—वहाँ जा न!

आत्मा आनन्दमय है, इसलिये आत्मासे अभिन्न अनन्त गुणोंमें—ज्ञान-आनन्द, दर्शन-आनन्द, श्रद्धा-आनन्द, वीर्य-आनन्द, प्रभुत्व-आनन्द, स्वच्छत्व-आनन्द, अस्तित्व-आनन्द, प्रमेयत्व-आनन्द, वस्तुत्व-आनन्द, द्रव्यत्व-आनन्द, कर्तृत्व-आनन्द, कर्मत्व-आनन्द आदिमें—आनन्दके रूपका विस्तार करके कहें तो आत्म-महलमें अनन्तानन्त आनन्दके थाल भरे हैं; उन अनन्त गुणोंका आनन्दमय भोजन सन्त करते हैं। अहा! संतोंकी कैसी अचिन्त्य दशा है! वे तो मात्र समरसका चिंतवन करते हैं। प्रभु! तू ऐसी स्थितिमें—अंतरमें नहीं जाता और 'यह क्या है, यह ऐसा है' इसप्रकार बाह्यमें इधर-उधर भटकता रहता है, इसलिये आनन्दमय नवीनताको प्राप्त नहीं कर पाता; एकके एक विषयका—अशुभमेंसे शुभमें और शुभमेंसे अशुभमें इसप्रकार बारम्बार एककी एक बातका रटन करता रहता है, मंथन करता रहता है, थकता नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई! यह जीवन तो बीतता जा रहा है; किसका शरीर किसका परिवार और किसके माता–पिता? मृत्युके कालमें सबको छोड़कर चला जाना है। मुनिराज तो सब छोड़कर एकाकी चल दिये हैं.....शरीरको सियार काट खाते हैं तथापि स्वयं तो अंतरसमाधिमें–आनन्दमें लीन हो गये हैं। मुनिराज अपनी परिणतिको सम्बोधकर कहते हैं :—

चलो सखी तहँ जाइये, जहाँ न अपना कोय,
क्लेवर भखे जनावरां, मरे न रोवे कोई।

ऐसी अद्भुत दशा—नवीनताको जीव प्राप्त करता नहीं है, एकके एक विषयका—पुण्य–पापके विकारका—पिष्टपेषण करता रहता है अर्थात् पीसे हुएको व्यर्थ पीसता रहता है, थकता नहीं है।

'अशुभमेंसे शुभमें और फिर शुभमेंसे अशुभमें जाता है।'

परद्रव्यका तो आत्मा कुछ कर ही नहीं सकता, परन्तु जो अपना स्वभाव नहीं है, जिसका अस्तित्व निज द्रव्यस्वभावमें है ही नहीं, ऐसे शुभाशुभ विभावोंको अपना मानकर जीव उन्हींको बार–बार घोंटता रहता है। स्वयं अंतरमें निर्मलानन्द प्रभु विराजता है, परन्तु उसे छोड़कर जीव हिंसा, झूठ आदि पापभावोंमेंसे दया–दानादि पुण्य भावोंमें जाता है, और फिर पुण्य भावोंमेंसे पाप भावोंमें जाता है, अंतरमें आनन्दनिधान ज्ञायकवस्तु है उसमें जाता नहीं है।

अहो! भगवान आत्मा तो केवलज्ञानादि अनन्त पंखुरियोंसे खिलनेवाला फूल है। आत्माके असंख्यात प्रदेशोंमें अनन्तानन्त गुण हैं, अंतरमें जानेसे वे सर्व गुण विकसित हो जाते हैं। अंतरमें सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान, सुख आदि जो अनन्त गुण हैं उन सबके अंकुर फूट निकलते हैं। अहा! कौस्तुभमणि समान जिसका एक–एक समय है ऐसा यह मनुष्यभव प्राप्त होना अति दुर्लभ है। अरे! बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुए इस मनुष्यभवमें अनेकों तो छोटी उम्रमें ही युवान शरीरको छोड़कर चल देते हैं। देहावसानके समय उसे कौन शरणभूत है? मरकर वह कहाँ जायगा? फिर कब मनुष्यभव प्राप्त होगा? कब सत् श्रवण मिलेगा? शास्त्रोंमें जब त्रस पर्यायकी प्राप्तिको भी चिन्तामणि समान दुर्लभ कहा है तब मनुष्यपनेकी दुर्लभताकी तो क्या बात! किसे कहते हैं मनुष्यपना? 'मनुते जानाति इति मनुष्यः', अपना जो ज्ञानानन्दमय स्वरूप है उसे सम्यक् प्रकारसे जो जानता है उसे मनुष्य कहते हैं।

नरकगतिके कारणभूत अशुभभाव जीवने अनन्तबार किये हैं, उसकी अपेक्षा देवगतिके कारणभूत शुभभाव जीवने असंख्यगुने अधिक किये हैं—इसप्रकार शुभ–अशुभ भावोंका पिष्टपेषण–कर्मचक्र जीवको अनादिसे चलता ही रहता है; वह बारम्बार अशुभमेंसे शुभमें और फिर शुभमेंसे अशुभमें चला जाता है, थकता नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'यदि शुभ भावसे मुक्ति मिलती होती, तब तो कबकी मिल गई होती!'

शुभ भाव जीवने अनन्तबार किये हैं; नववें ग्रैवेयकमें जाने योग्य शुक्ल लेश्याके परिणाम भी अनन्तबार किये हैं। यदि शुभभावसे मुक्ति होती हो तो उसकी मुक्ति कबकी हो गई होती।

'आजकल इस कालमें शुभभाव ही होते हैं, शुद्धभाव तो होते ही नहीं;' अरे प्रभु! यह तू क्या कहता है? शुभभाव तो विकृत दशा है, निज शुद्धात्म द्रव्य-सामान्य उसका कारण है ही नहीं। पंचमकालके श्रोता भी द्रव्य-गुणका—त्रैकालिक सामान्यस्वभावका—आश्रय करके शुद्धता प्राप्त करते हैं। यहाँ ऐसा कहते हैं कि—यदि शुभभावसे मुक्ति मिलती होती तो कबकी मिल गई होती!

'अब, यदि पूर्वमें अनन्तबार किये हुए शुभभावका विश्वास छोड़कर, जीव अपूर्व नवीनभाव करे—जिनवर स्वामी द्वारा उपदिष्ट शुद्ध सम्यक् परिणति करे, तो वह अवश्य शाश्वत सुखको प्राप्त हो।'

परलक्षसे हुए शुभभावोंसे मुझे कुछ लाभ होगा ऐसा विश्वास छोड़ दे। अंतरमें अनन्त आनन्दका नाथ निर्मल शुद्ध ज्ञायक आत्मा अनन्त सहज सामर्थ्यसे भरपूर विद्यमान है, उसका लक्ष करनेसे, आलम्बन लेनेसे, पर्यायमें जो अनेक प्रकारकी विकृति है वह दूर हो जायगी और परमानन्दमय पूर्ण निर्मल दशा प्रगट होगी—ऐसा उसका श्रद्धाकी पर्यायमें दृढ़ विश्वास कर; शुभभावका विश्वास छोड़कर पूर्वकालमें जो कभी प्रगट नहीं किया है ऐसा नवीन शुद्ध भाव प्रगट कर। वीतराग जिनवर प्रभुने कही हुई शुद्ध सम्यक् परिणति प्रगट कर, तो तू अवश्य शाश्वत सुख प्राप्त करेगा।

जिनवरदेवने उपदेशमें तात्पर्यरूपसे 'वीतरागता' ही बतलायी है। यह वीतरागता तो निज शुद्धात्मद्रव्यके आश्रयसे ही प्रगट होती है। चारों अनुयोगमें विषयका निरूपण भिन्न-भिन्न होने पर भी सबका तात्पर्य एकमात्र वीतरागता है। करणानुयोगमें 'ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे ज्ञान रुकता है, क्रोधकर्मके उदयसे क्रोध उत्पन्न होता है' आदि जो निमित्तप्रधान कथन आते हैं वे, परतन्त्रता बतलानेके लिये नहीं हैं; उन कथनोंका आशय है कि—उन-उन कर्मोंके उदय कालमें जीव स्वयं अपने अपराधसे उस-उस विभावरूप परिणमित होता है। निमित्तसे कथन करके तात्पर्य तो यह बतलाना है कि विभाव तेरा स्वभाव नहीं है, कर्मके सम्बन्धसे हुआ है; इसलिये तू उसे छोड़कर स्वभावका-निज ज्ञायकभावका आश्रय ले। स्वभावका आलम्बन लेनेसे तुझे अवश्य वीतरागता-शाश्वतसुखकी प्राप्ति होगी।

प्रथमानुयोग तथा 'भक्तामर' आदि भक्तिस्तोत्रोंमें भगवानको दयासागर कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान तो वीतराग हैं, उनको जगतके जीवोंके प्रति दयाका विकल्प नहीं होता। वास्तवमें तो भीतर आत्मामें रागादि दोषोंकी जो उत्पत्ति होती है वही निज आत्माकी 'हिंसा' है और उनकी निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे, अनुत्पत्ति ही 'दया' है। इसलिये वीतरागता प्रगट करनेके लिये निज द्रव्यस्वभावका आश्रय कर—ऐसी वीतराग जिनवरस्वामीकी आज्ञा है।

समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकामें 'उभयनयविरोध ध्वंसिनी.....जिनवचसि रमन्ते' श्लोक आता है। उसका कुछ लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि—निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयोंमें रमणता करना। भाई! दोनों नयोंका विषय तो परस्पर विरुद्ध है, दोनोंका आश्रय कैसे होगा? दोनोंमें रमणता नहीं हो सकती। जिनवरदेवने निश्चयको—निज शुद्ध चैतन्य ज्ञायक द्रव्यस्वभावको—उपादेयरूप और व्यवहारको—गुणभेद, पर्यायभेद आदिको—हेय अर्थात् गौणरूप कहा है। स्वभावके आश्रयरूप तथा पर्यायकी उपेक्षारूप परिणमना उसे 'जिनवचनमें रमना' कहा है। अहा! ऐसी बात जिनवरदेवके सिवा कहीं नहीं है।

जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिशत शुद्ध सम्यक्त्व परिणति प्रगट करना—ज्ञायकवस्तु द्रव्यरूपमें तथा गुणरूपमें तो शुद्धत्वसे परिपूर्ण है परन्तु पर्यायमें जो शुभाशुभ भाव होते हैं उनको, त्रैकालिक शुद्धत्वस्वभावके आश्रयसे परिणमित होकर, छोड़ना—यही करने योग्य है। चारों अनुयोगका उपदेश—जिनेन्द्रदेवकी आज्ञा भी यही है कि—

लाख बातकी बात यहै निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जगदंद-फंद, नित आतम ध्याओ।

दंद अर्थात् द्वित्व-द्वैतपना। यह गुणी है और यह गुण है ऐसे द्वैतका विकल्प भी छोड़ दे। यहाँ वेदान्त जैसा सर्वथा अद्वैतपना नहीं कहा है; जिनदेवने तो पर्याय-अपेक्षासे जो (कथंचित्) द्वैतपना है उसका आश्रय छोड़कर अभेद ज्ञायकतत्त्वका आश्रय करनेको कहा है, भेदका लक्ष छोड़कर अभेदको ग्रहण करनेको कहा है। अकेला एक और बिगड़ें दो; आत्माको—अकेलेको—कर्म-नोकर्मरूप दूसरोंका सम्बन्ध होना ही रागादि विभावरूप बिगाड़ हुआ। रागादिसे रहित होनेका जिनवरका उपदेश है। जिनवाणीमें भले व्रत, तपादि शुभरागकी, उसके फलकी बात आती है, परन्तु वह सब बतलानेका तात्पर्य 'वीतरागता प्रगट करना वही है।

भाई! अनादिकालसे तू भवभ्रमण कर रहा है; क्या अब तक तुझे उस दुःखमय परिभ्रमणकी थकान नहीं लगी? यदि थकान लगी हो तो अपने स्वभावमें विश्राम कर न! सर्वज्ञदेव कहते हैं कि—तुझे अपने स्वभावमें विश्राम मिलेगा, वहाँ विश्राम करना तुझे अच्छा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लगेगा। भीतर स्वभावमें विश्राम कर तो तेरी परिभ्रमणकी सारी थकान उतर जायगी। अहा! बहिनकी भाषा सादी है, परन्तु अलौकिक है, पुरुषार्थकी है।

जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिशत शुद्ध सम्यक्त्वपरिणति प्रगट कर। चैतन्यमूर्ति निज परमानन्द ज्ञायककी सम्यक्त्वरूप शुद्ध परिणति प्रगट करना वही सच्चा कर्तव्य है। शुभाशुभ भाव होते हैं वह तो संसार है, परिभ्रमणका कारण है। शुद्ध परिणति प्रगट करे तो अवश्य शाश्वत सुख प्राप्त करेगा। 'सादि अनंत, अनंत समाधि सुखमें, अनंत दर्शन, ज्ञान अनंत सहित जो।'—ऐसी दशा निज स्वभावकी शुद्ध परिणति प्रगट करने पर प्राप्त होती है। वह दशा शुभभावोंसे कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। रागकी मंदता करनेसे स्वभावकी स्वीकृति और शुद्धि प्रगट हो ऐसा नहीं है। अहा! ऐसा है जैनधर्म! मैं शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ—ऐसा विकल्प आये उससे शुद्धता होगी—ऐसा भी नहीं है। जो स्वभावसे ही शुद्ध है ऐसे ज्ञायक निज आत्मतत्त्वको अन्यकी—शुभभावकी—अपेक्षाका प्रश्न ही क्या? ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि एवं स्थिरतामें आश्रय ले तो शुद्ध परिणति अवश्य प्रगट होती ही है। अहा! ऐसी बातें हैं, यह है दिगम्बर जैनधर्म! त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेवके सिवा जगतमें अन्यत्र कहीं यह सत्य बात नहीं है। इस सत्यको कहनेवाला भी दूसरा कोई नहीं है। ऐसे जिनवर परमात्माकी जो आज्ञा है—उनने जो तत्त्व कहा है—उसे तू प्राप्त कर, तो तू अवश्य ही शाश्वत सुखको प्राप्त करेगा।

निश्चय दृष्टिसे प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप है। जिनवर और जीवमें कोई अंतर नहीं है। भले ही वह एकेन्द्रियका जीव हो अथवा स्वर्गका जीव हो। वह सब तो पर्यायमें है। आत्मवस्तु स्वरूपसे तो परमात्मा ही है। जिसकी दृष्टि पर्यायके ऊपरसे हटकर स्वरूपके ऊपर केन्द्रित हुई है वह तो अपनेको परमात्मस्वरूप देखता है और प्रत्येक जीवको भी परमात्मस्वरूप देखता है। सम्यग्दृष्टि सर्व जीवोंको जिनवर जानता है और जिनवरको जीव जानता है। अहा! कितनी विशाल दृष्टि!....बारह अंगका सार यह है कि आत्माको जिनवर समान दृष्टिमें लेना, क्योंकि आत्माका स्वरूप परमात्मा समान ही है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन—१४२

दिनांक ६-११-७८

वचनामृत–३६६

जिसने आत्माको पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्यायमें शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। विविध शुभ भाव आयें तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।

मुनिराजको पंचाचार, व्रत, नियम, जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभ भावोंके समय भेदज्ञानकी धारा, स्वरूपकी शुद्ध, चारित्रदशा निरंतर चलती ही रहती है। शुभ भाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचाका ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है॥३६६॥

'जिसने आत्माको पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्यायमें शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है।'

भगवान जिनेश्वरदेवने जो कहा है वह आत्मा शरीर, इन्द्रिय, वाणी और मनसे तो बिलकुल भिन्न है ही, परन्तु उसकी दशामें भीतर जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके शुभ परिणाम होते हैं वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है। स्वभाव तो भीतर शुभाशुभ विभावसे भिन्न, ज्ञानानन्दशक्ति सम्पन्न अनुपम वस्तु है। ऐसे शुद्ध चैतन्य विज्ञानघनस्वरूप निज आत्माको जिसने भीतर स्वभावसन्मुख दृष्टि करके पहिचाना, विकल्पोंसे छूटकर अनुभव किया, उसको अनुभूतिके आधाररूप ऐसा निज ज्ञायक आत्मा ही सदा समीप—सदा अधिकरूप, मुख्यरूप, आश्रयरूप—रहता है।

आत्मा वीतरागस्वरूप चैतन्यबिम्ब है। यदि वह वीतरागस्वरूप न हो तो पर्यायमें पूर्ण वीतरागता प्रगट कहाँसे होगी? पूर्ण शुद्ध चैतन्यका ज्ञान किया हो, विज्ञानघन शुद्ध आत्माको परसे तथा विभावसे भिन्न जाना हो, अनुभव किया हो, तो आत्मा सदा—प्रत्येक पर्यायमें—मुख्य रहेगा। जबसे आत्माका अनुभव हुआ तभी से धर्मका प्रारम्भ कहा जायगा। अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय चैतन्यप्रभुका ज्ञानकी वर्तमान पर्यायमें ज्ञान होना—वेदन होना वह धर्मका प्रथम सोपान है। उसके बिना चाहे जितने व्रत, तप, दया, दानादि करे वह सब, यदि कषायको मन्द करे तो, शुभ राग है, धर्म नहीं है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवानने नव तत्त्व कहे हैं न? उनमें जो पुण्य, पाप, आस्रव और बंध तत्त्व हैं वे विभावभाव हैं, ज्ञायक चैतन्यतत्त्वसे भिन्न है—ऐसा जिसे ज्ञान और अनुभव हो उसे आत्मा ही सदा समीप-अग्ररूप—वर्तता है; चाहे जिस प्रसंगमें—परिणाम चाहे शुभमें आये या अशुभमें आये—परन्तु भीतर दृष्टिमें तो आत्मा ही सदा ऊर्ध्वरूपसे वर्तता है। अहा! ऐसी बात कहीं अन्यत्र है?

अनादिकालसे परिभ्रमण करते हुए इस जीवने अनंत भव किये हैं; शुभ भाव किये तो स्वर्गमें गया, अशुभ भाव किये तो नरकमें और तिर्यंचगतिमें गया; शुभ और अशुभ भावोंसे न्यारे निजस्वभावका जिन्हें ज्ञान नहीं है वे सब जीव अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि हैं; भले ही व्रत, तपादि करते हों, तथापि शुभरागको धर्म या धर्मका कारण मानते हैं, इसलिये वे मिथ्यादृष्टि हैं। पूजा, भक्ति आदिमें शरीरकी जो क्रिया होती है वह तो जड़की दशा है, जड़के कारण होती है। शुभाशुभभाव अशक्तिके कारण आते हैं, परन्तु सम्यक्त्वीकी दृष्टिमें तो सदा आत्मा ही समीप रहता है; रागादि विभाव तो अत्यन्त पृथक्‌रूपसे अति तुच्छरूपसे वर्तते हैं। अहा! ऐसी बातें हैं! अरे, परिभ्रमण करते हुए अनंतकाल बीत गया, अनंत बार दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त किया, अनंत बार मुनिव्रत धारण किये, परन्तु भीतर आत्मा क्या अद्‌भुत वस्तु है उसकी प्रतीति कभी नहीं की। जिसने निजशुद्धात्मतत्त्वकी यथार्थ प्रतीति कर ली, ज्ञान और अनुभव कर लिया उसे प्रतिक्षण अपनी दृष्टिमें शुद्धात्माकी ही अधिकता वर्तती है; चाहे जितना ऊँचा शुभराग हो, परन्तु वह अधिकताको नहीं पाता, सदा तुच्छरूप ही वर्तता है।

धर्मीको प्रत्येक पर्यायमें निज शुद्धात्म द्रव्य ही मुख्य रहता है। दुनिया अनादिकालसे भववनमें भटक रही है; उसे न तो आत्माका ज्ञान हुआ, न धर्म हुआ। धर्मकी प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ उसे सम्यग्ज्ञान हो गया। धर्मीको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें सदा आत्माकी ही समीपता रहती है, किसी भी पर्यायके कालमें—एक समय भी—आत्माकी समीपता नहीं हटती। अहा! प्रत्येक दशामें यह ज्ञायक वस्तु मुख्य रहे बिना जन्म-मरणका अन्त नहीं आयगा। अरे! निगोदके, एकेन्द्रियके, तिर्यंचके, नरकके, अनंत भव करके जीव थककर चूर-चूर हो गया है; यह मनुष्य भव भी कोई पहलीबार नहीं है, ऐसे भव भी अनंत मिल चुके हैं। यह कोई नई बात नहीं है। नववें ग्रैवेयकका अहमिन्द्र भी अनंतबार हुआ, परन्तु निज शुद्धात्मद्रव्यकी महत्ता भासित नहीं हुई, इसलिये भवभ्रमणका अंत नहीं आया।

महाव्रतके परिणाम भी राग, आस्रव और दुःखमय हैं। अज्ञानी उन्हें धर्म मान बैठा है। ज्ञायक आत्माके आश्रय बिना सुख नहीं है। ज्ञायकका सम्यक्‌ज्ञान होने पर सुख होता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; परन्तु व्यापार–धंधे तथा अन्य सांसारिक पापोंके आगे उसे, यह तत्त्व समझनेका अवकाश ही नहीं मिलता। सांसारिक कार्योंमें धर्म तो नहीं है किन्तु पुण्य भी नहीं है। कदाचित् कषाय मन्द करे—दया, दान, भक्ति, स्वाध्याय आदि पुण्य परिणाम करे तो स्वर्ग मिलता है, परन्तु उससे एक भी भव कम नहीं होता। पुण्यमें धर्म मानना वह तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्वके गर्भमें तो अनन्त भव पड़े हैं। भवका अभाव करनेके लिये निज शुद्धात्म द्रव्यका आश्रय लेना ही एकमात्र उपाय है।

'विविध शुभभाव आयें तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।'

गृहस्थ दशामें वर्तते हुए ज्ञानी धर्मात्माको भी दया, दान, पूजा, शक्ति आदिके विविध शुभ परिणाम आते हैं; परन्तु उस समय भी उसे शुद्ध ज्ञायक आत्मा ही अधिक आश्रयभूत रहता है, विस्मृत नहीं हो जाता, तथा वे शुभभाव आश्रयरूपसे मुख्यपना नहीं पाते। हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापभावोंकी तो बात ही दूर रही, परन्तु भीतर द्रव्यस्वभावके आश्रयसे वर्तती मन्द शुद्धिके साथ वर्तता हुआ जो दया, दानादिका शुभ भाव वह भी मुख्यता नहीं पाता। धर्मीको मुख्यता तो सदा एक निज शुद्धात्मद्रव्य की ही वर्तती है, वही सदा उसके समीप रहता है।

'मुनिराजको पंचाचार, व्रत, नियम, जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभ भावोंके समय भेदज्ञानकी धारा, स्वरूपकी शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है।'

अहा! मुनिराज किन्हें कहा जाय?—कि जिनके अंतरमें शरीरादि परद्रव्य तथा रागादि विभावोंसे भिन्न चिन्मात्र निज शुद्धात्मद्रव्यकी सहज प्रतीति, ज्ञान और स्थिरताके साथ–साथ विकल्पकालमें पंचाचार, व्रत, नियम, पंचपरमेष्ठीकी भक्ति आदि शुभ भाव हठरहित वर्तते हों उन्हें मुनिराज कहते हैं।

यहाँ बहिन कहती हैं—मुनिराजको भूमिकाके योग्य पंचाचार, व्रत, तप, जिनेन्द्रभक्ति आदिके शुभभाव आयें उस काल भेदज्ञानकी—शरीरादि और रागादिसे भिन्न आत्मज्ञानकी—धारा तथा स्वरूपरमणताकी शुद्ध चारित्रधारा सतत चलती ही रहती है। मुनिराज तो स्वानुभूतियुक्त आत्मज्ञान तथा शुद्ध चारित्रवान वीतरागी संत होते हैं। बाह्यमें वे नग्न दिगम्बर और अंतरमें उनको मुनिउचित आत्मशुद्धि सहित पंचमहाव्रतादिके विकल्प होते हैं। विकल्पके समय भी 'रागसे भिन्न मैं ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसी भेदज्ञानकी धारा तथा स्वरूपस्थिरताकी निर्मल दशा निरन्तर चल ही रही है।

अरे! ऐसी दशा—सतत प्रवाहित भेदज्ञानकी धारा और स्वरूपकी शुद्ध चारित्रदशा—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तमानमें इस कालमें तथा इस क्षेत्रमें कहाँ दिखायी देती है? वीतराग सर्वज्ञ परमात्माने जैसा 'आत्मा' कहा है—दूसरे अज्ञानी 'आत्मा, आत्मा' कहते हैं वह नहीं'—उस अतीन्द्रिय आनन्दके नाथका जो भेदज्ञान, उस सहित आत्मामें अति रमणता प्रगट हो उसे भगवान चारित्र कहते हैं। आता है कुछ समझमें?

वीतराग सर्वज्ञके मार्गमें ही ऐसे सच्चे सन्त होते हैं। 'णमो लोए सव्वसाहूणं।' जिन्हें स्वरूपकी सच्ची दृष्टि और रमणता नहीं है, वे भले ही 'साधु' नाम धारण कर लें किन्तु वे सब झूठे हैं। जो स्वरूपके आनन्दमें रमते हों वे आत्म-रामी हैं, जो रागमें रमें वे हरामी-अज्ञानी हैं। वीतराग सर्वज्ञपरमेश्वरके मार्गमें जो सन्त होते हैं उनको स्वरूपकी निर्मल दृष्टि एवं स्वरूपमें रमणता होती है। ऐसे सन्तोंको भूमिकानुसार शुभभाव आते हैं, तथापि भेदज्ञान और शुद्ध चारित्रकी धारा निरन्तर चलती ही रहती है।

'शुभ भाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचाका ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही रहता है।'

ज्ञानी धर्मात्माको भूमिकानुसार शुभ भाव आते अवश्य हैं, परन्तु वे विभावभाव सदा नीचे ही रहते हैं; हृदयमें उनकी महत्ता आश्रयरूपसे किंचित् भी नहीं आती; उस समय भी अंतरमें आश्रयभूत शुद्ध स्वभाव-ज्ञायक आत्मा-ऊँचेका ऊँचा ही, सर्वोपरि रहता है। अहा ऐसी बात है। आया कुछ समझमें?

(श्रोता—) आप समझा दीजिये न?

बात तो सादी भाषामें आती है, प्रभु! क्या कहें? अब समझनेका प्रयत्न तो जीवको स्वयं करना है न? देखो न, बचपनमें शरीरकी स्थिति पूर्ण करके अनेक जीव, दूसरे भवमें चले जाते हैं। आत्माका हित अब बादमें करेंगे—ऐसे वादों ही वादोंमें भवका अन्त आ जाता है। भाई! आत्माकी सच्ची समझ इसी समय कर ले, नहीं तो मनुष्यभवका ऐसा महँगा अवसर मिलना कठिन है।

यहाँ तो कहते हैं कि धर्मीको शुभभावके समय भी अंतरमें वर्तती हुई भेदज्ञानकी धारा और स्वरूप रमणतारूप चारित्रदशा किंचित् भी हटती नहीं है, उसे किंचित् भी क्षति नहीं पहुँचती। अहा! कैसी अद्भुत दशा! समझनेमें भी कठिनाई होती है। आजकल तो उपदेशकोंने आत्मज्ञानशून्य बाह्यक्रियाओंमें-व्रत ग्रहण करो, उपवास करो, अहिंसाका पालन करो, भक्ति करो, यह करो और वह करो आदिमें धर्म मनवा दिया है। क्या किया जाय? जीवोंका ऐसा ही भवितव्य! भगवानने तो 'चारित्तं खलु धम्मो' कहा है। सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूपरमणता अर्थात् चारित्र सो धर्म है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु ज्ञायक वह आत्मा है। निज ज्ञायक आत्मामें श्रद्धान-ज्ञानपूर्वक विचरना, रमना, स्थिर हो जाना, अतीन्द्रिय आनन्दका भोजन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना वह जिनेन्द्रदेव द्वारा प्ररूपित यथार्थ धर्म है। ऐसी चारित्रदशा मुनिराजको होती है। ऐसी सहजदशा, शुभभावके कालमें भी, मुनिराजको अंतरमें वर्तती रहती है।

'वचनामृत'के ३६६वें बोलके इस तीसरे पैरेमें चारित्रदशाकी बात कही है। पहले पैरेमें 'जिसने आत्माको पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको सदा आत्मा ही समीप वर्तता है......' इतना लेकर यहाँ दूसरे पैरेमें, जो स्थिरतामें आगे बढ़ गये हैं ऐसे मुनिराजकी बात ली है। सूक्ष्म बात है भाई! क्या करें? त्रिलोकीनाथ श्री सीमंधर भगवान महाविदेह क्षेत्रमें विराजते हैं, वर्तमानमें विद्यमान हैं, पाँचसौ धनुषका शरीर है.....

(श्रोता—) आपको दिखते हैं?

दिखते हैं भीतर। उन सीमंधर परमात्माके पास वि.सं. ४९में श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव गये थे और वहाँसे आकर इन समयसार, प्रवचनसारादि शास्त्रोंकी रचना की है। अहाहा! इससे भी और आगे विशेष बात है.....!

(श्रोता—) वह भी बतलाईये!

बहिन (बहिनश्री चम्पाबेन) भी महाविदेहसे आयी हैं।

(श्रोता—) आप भी महाविदेहसे आये हैं?

अपनी बात नहीं कही जाती। बहिनकी जो यह वाणी है वह भगवानके निकट सुनी हुई दिव्यध्वनिमेंसे आयी है; आत्माका अनुभव होकर यह वाणी निकली है। सूक्ष्म बात है भाई! जगतको विश्वास आना कठिन होगा। दिनभर व्यापार-धंधेके कामोंमें लगा रहता हो उसे धर्मकी खबर कहाँसे पड़ेगी कि धर्म क्या वस्तु है? कदाचित् थोड़ा अवकाश मिले तो सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रोषधमें-रागकी क्रियाओंमें-लग जाता है। किन्तु भाई! पुण्य-पापके विभावसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप निज आत्माका भेदज्ञान किये बिना सामायिक अर्थात् समताका भाव आत्मामें करना आयगा कहाँसे?

ज्ञानीको—धर्मीको—संतको सामायिक, प्रतिक्रमण, जिनभक्ति आदि शुभभाव आयें, परन्तु उन विभावभावोंकी उन्हें कभी अधिकता नहीं होती; वे भाव सदा निम्न गौण और महत्त्वहीन ही रहते हैं; उनको महत्ता एवं मुख्यता तो एकमात्र आश्रयभूत निज ध्रुव शुद्ध ज्ञायक आत्माकी ही रहती है; शुद्ध आत्मा ही सदा उच्चका उच्च ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। चैतन्यप्रकाशका तेजपुंज ऐसा जो निज ज्ञायक आत्मा उस परसे धर्मकी दृष्टि एक क्षण भी नहीं हटती। ज्ञानीको समय-समय पर शुभभाव आते हैं परन्तु वे नीचे रह जाते हैं, ऊपर तो भगवान आत्मा ही रहता है। अहा! ऐसी बात है! अपने यहाँ सोनगढ़में तो चवालीस वर्षसे यही बात चलती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मी—सम्यक्त्वी हो या मुनि हो—कि जिसने आत्माको जाना है और अंशतः अनुभव किया है उसे शुभभावके समय भी–शुभभाव विभाव एवं बंधका कारण है इसलिये—भगवान आत्मा ही ऊर्ध्व रहता है। अहा! ऐसी बात है। दुनियाको उसकी खबर नहीं है। अरे रे! दुनिया खड़ी है कहीं और मार्ग रह गया है कहीं—अंतरमें।

'सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है।'

जिसे भिन्न आत्माका ज्ञान और रमणता वर्तती है उसे सब—समस्त शुभाशुभभाव—पीछे रह जाते हैं; आगे अर्थात् मुख्य तो एक निज शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है।

मेहमानका स्वागत–सत्कार करते हैं तब कहते हैं कि—'आपका ही यह घर है' परन्तु भीतर समझता है कि वह आगन्तुक है, चला जायेगा; उसीप्रकार शुभाशुभभाव भी आगन्तुक हैं, आत्माके घरकी वस्तु नहीं हैं—ऐसा ज्ञानी समझता है।

अनादिकालसे परिभ्रमण करता हुआ यह जीव, अरे! अनन्तबार अरबपति सेठ हुआ, अनन्तबार नववें ग्रैवेयकका अहमिन्द्र हुआ। वे सब वैभव पुण्यसे प्राप्त किये होंगे या पापसे? नरकके भव भी अनन्त किये हैं। सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि जीवने नरककी अपेक्षा स्वर्गके भव असंख्यातगुने अनन्तबार किये हैं; परन्तु वे पुण्यबन्धके कारणभूत व्रत और उपवासादिके शुभभाव वह धर्म नहीं हैं, विकल्प हैं। शुक्ल लेश्याके परिणाम भी धर्म नहीं हैं, पुण्यबंधका कारण है। अरे, आत्मा और उसका धर्म क्या अद्भुत वस्तु है उसकी जगतको खबर नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि पापभाव तो संसारमें भटकनेका कारण हैं, परन्तु ज्ञानीको जो शुभभाव आये वह भी बंधका कारण है। धर्मी जीवको ऊर्ध्वता, अधिकता और महत्ता सदैव शुद्धभावकी–शुद्धात्मस्वभावकी—वर्तती है, शुभ भाव उसे नीचे, महत्त्वहीन और गौण ही रहते हैं। शुभाशुभ सब पीछे रह जाता है, आगे एकमात्र शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है।

❋

वचनामृत–३६७

जिनेन्द्रभगवानकी वाणीमें अतिशयता है, उसमें अनन्त रहस्य होते हैं, उस वाणी द्वारा बहुत जीव मार्ग प्राप्त करते हैं। ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणीमें भी नहीं आता। चैतन्यतत्त्व अद्भुत, अनुपम एवं अवर्णनीय है। वह स्वानुभवमें ही यथार्थ पहिचाना जाता है।।३६७।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'जिनेन्द्र भगवानकी वाणीमें अतिशयता है, उसमें अनन्त रहस्य होते हैं, उस वाणी द्वारा बहुत जीव मार्ग प्राप्त करते हैं।'

त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा अरिहंतदेव वे जिनेन्द्र हैं। गणधरदेव, सकलविरत श्रमण, देशविरत श्रावक, अरे! अविरत सम्यग्दृष्टि भी 'जिन' कहे जाते हैं। अरिहंत तो सर्व साधक जिनोंके इन्द्र होनेसे 'जिनेन्द्र' कहे जाते हैं। अन्य प्रकारसे अविरत सम्यग्दृष्टि आदि 'जिन', गणधर 'जिनवर' और तीर्थंकर अरिहंत 'जिनवरवृषभ' कहे जाते हैं। श्री ऋषभादि महावीरपर्यंत २४ जिनवरवृषभ-जिनेन्द्रदेव हो गये वे वर्तमान अशरीरी सिद्धपदमें हैं। विदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधर स्वामी आदि जिनेन्द्रदेव, जो वर्तमानमें शरीरसहित वर्तते हैं वे 'अरिहंत' पदमें हैं। 'णमो सिद्धाणं'—सिद्ध परमात्मा अशरीरी होनेसे उनको वाणीका योग नहीं है, परन्तु 'णमो अरिहंताणं'—अरिहंत परमात्मा-जिनेन्द्रदेव सशरीर होनेसे उनको वाणीका योग है। उनकी वाणी अतिशययुक्त, अनन्त रहस्योंसे भरपूर तथा असंख्य जीवोंको कल्याणका मार्ग प्राप्त करानेवाली होती है। वीतराग सर्वज्ञकी वाणी 'दिव्यध्वनि'रूप होती है; अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारकी निरक्षरी 'ॐ' ध्वनिरूप होती है। ओष्ठ हिलते नहीं हैं, कण्ठ काँपता नहीं है, वाक्य-पदमें क्रमोच्चारण रहित, ऐसी श्री जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनि अनन्त अतिशयता, अद्‌भुतता एवं चमत्कृतियोंसे परिपूर्ण होती है।

जिनेन्द्रभगवानकी वाणीमें अनन्त रहस्य होते हैं, उस वाणीकी गम्भीरता अथाह है। जिनेश्वरकी वाणीके सम्बन्धमें श्रीमद् राजचन्द्रने सत्रहवें वर्षमें कहा है कि—

"अनंत अनंत भाव भेदसे भरेली भली,
अनंत अनंत नय निक्षेपे व्याख्यानी है;"

भवका अंत लाये ऐसी उस जिनवाणीका—उसकी गहनताका—क्या कहना! वह कोई साधारण वाणी नहीं है, अनंत-अनंत कल्याणकारी रहस्योंसे भरपूर है। उस कल्याणी वाणी द्वारा अनेकों जीव—अधोलोकके असुर, ऊर्ध्वलोकके सुर तथा मध्यलोकके नर और तिर्यंच—मोक्षमार्गको प्राप्त करते हैं। भगवानकी वाणी हितकर, मधुर एवं स्पष्ट होनेसे तीनों लोकके जीवों द्वारा पूज्य है। जिनवाणीकी महिमा गाते हुए श्रीमद्‌ने कहा है कि :—

सकल जगत हितकारिणी, हारिणी मोह,
तारिणी भवाब्धि मोक्षचारिणी प्रमाणी है;
उपमा देनेकी उसे तमा रखना सो व्यर्थ,
देनेसे निजमति मपाई मैंने जानी है;
अहो राजचन्द्र! बाल ख्याल नहीं पाते ऐसी,
जिनेश्वरकी वाणी, जिसने जानी उसने जानी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिनेन्द्रदेवकी वाणी द्वारा असंख्य जीव धर्म प्राप्त करते हैं; उसके सिवा अन्य किसी अज्ञानीकी वाणी द्वारा कोई जीव धर्मको प्राप्त कर लें ऐसा नहीं होता।

'ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणीमें भी नहीं आता।'

दक्षिण भारतमें एक दिगम्बर जैन साधु हैं जिन्होंने बीस वर्ष पूर्व दीक्षा धारण की थी। उन्होंने यह 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक तथा यहाँका दूसरा साहित्य पढ़ा; पढ़कर वे अति प्रसन्न हुए हैं और लिखते हैं कि 'स्वामीजी! आप यह बात कहाँसे लाये हैं? पिछले दोसौ वर्षमें ऐसी बात कहनेवाला कोई नहीं हुआ' वे साधु 'वचनामृत' पुस्तकें यहाँसे मँगवाते हैं और श्रावकोंको प्रतिदिन बीस मिनट यह पुस्तक पढ़नेकी प्रतिज्ञा लेने पर यह पुस्तक भेट देते हैं। भाई! जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा गया यह कोई अद्भुत मार्ग है। उनकी वाणी और सिद्धान्त अलौकिक हैं। उनका बतलाया हुआ शुद्ध परमानन्दकन्द चैतन्यतत्त्व ऐसा अद्भुत है कि जिसका सम्पूर्ण वर्णन उनकी 'ॐ'कार दिव्यध्वनिमें भी नहीं आता। एक अपेक्षासे ऐसा कहा जाता है कि शब्दब्रह्म अर्थात् जिनवाणी सर्वपदार्थ प्रकाशनशील है, तथा एक अपेक्षासे ऐसा भी कहा जाता है कि—

जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें,
कह न सके पर उसको श्री भगवान भी;
उस स्वरूपको अन्य वाणी क्या कहेगी?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान भी।

सर्वज्ञ भगवानने चैतन्यादि सर्व वस्तुओंका जो पूर्ण स्वरूप जाना है उसकी अपेक्षा अनंतवाँ भाग उनकी 'दिव्यध्वनि'में आता है। 'दिव्यध्वनि'में जितना आता है उसकी अपेक्षा अनंतवें भाग गणधर झेलते हैं, गणधर भगवानने जो झेला है उसकी अपेक्षा अनंतवे भागसे बारह अंगरूप श्रुतकी रचना होती है। इसप्रकार चैतन्यका अद्भुतस्वरूप मात्र अनुभवगम्य है, वाणीमें उसका पूर्ण चित्रण नहीं हो सकता। शत्रु मित्रताकी कितनी बातें करेगा? वैसे ही जड़ वाणीमें आनन्दनाथ चैतन्यका कितना वर्णन आयगा? मात्र संकेत आते हैं, पूर्ण वर्णन नहीं आ सकता। वाणी तो मात्र संख्यात शब्दात्मक है और चैतन्यप्रभु तो सहज ज्ञान और आनन्दादि अनंत-अनंत समृद्धिका भण्डार है। चैतन्य प्रभुकी अनंतताका वर्णन संख्यात शब्दात्मक वाणीमें किस प्रकार आयेगा? जिनेन्द्रदेवकी वाणी द्वारा अनेक जीव मोक्षका मार्ग प्राप्त करते हैं तथापि, सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणीमें भी नहीं आता।

'चैतन्यतत्त्व अद्भुत, अनुपम एवं अवर्णनीय है।'

अहा! चैतन्यतत्त्व कोई अद्भुत वस्तु है। धर्मीको अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर निज

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञायक आत्माका अनुभूतिमें स्वाद आता है, परन्तु उसका वह वर्णन कैसे करे? पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण आनन्दका नाथ—जिसके आश्रयसे सादि-अनंतकाल पूर्ण ज्ञान एवं आनन्द परिणतिमें बहता रहे ऐसा निज शुद्ध चैतन्यतत्त्व—उसकी लोकोत्तर अद्भुतता, अनुपमता और अवर्णनीयताका क्या कहना! श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवने समयसारकी आत्मख्याति टीकामें—दो कलशमें—'अद्भुतादद्भुत' एवं 'अद्भुत' कहा है—अहो! आत्माका तो यह सहज अद्भुत वैभव है कि एक ओरसे देखने पर वह अनेकताको प्राप्त है और एक ओरसे देखने पर सदैव एकताको धारण करता है, एक ओरसे देखने पर क्षणभंगुर है और एक ओरसे देखने पर सदैव उसका उदय होनेसे ध्रुव है; एक ओरसे देखने पर तीनलोक दिखायी देते हैं और एक ओरसे देखने पर मात्र एक चैतन्य ही शोभायमान है। ऐसी आत्माकी अद्भुतसे भी अद्भुत स्वभावमहिमा जयवंत वर्तती है। ऐसा द्रव्यपर्यायात्मक अनंत धर्मवान वस्तुका स्वभाव है। अज्ञानियोंको उसमें आश्चर्य उत्पन्न होता है कि यह तो असम्भवित जैसी बात है! ज्ञानियोंको यद्यपि वस्तुस्वभावमें आश्चर्य नहीं है तथापि उनको पहले कभी नहीं हुआ था, ऐसा अद्भुत परम आनन्द होता है और उससे आश्चर्य भी होता है। अहा! ऐसे अद्भुत चैतन्यतत्त्वको क्या उपमा दें ? किसके साथ तुलना करें? वह तो अनुपम और अवर्णनीय है।

'वह स्वानुभवमें ही यथार्थ पहिचाना जाता है।'

वह अद्भुत और अनुपम ज्ञायकतत्त्व वाणी, चेष्टा, विकल्प या धारणा द्वारा नहीं किन्तु अतीन्द्रिय स्वानुभूतिमें ही यथार्थ जाना जाता है। धर्मका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनसे होता है। सम्यग्दर्शन अर्थात् यथार्थमें आत्मदर्शन होने पर आनन्दका नाथ चैतन्यप्रभु अनुभवमें आता है, ज्ञात होता है। स्वानुभवके बिना धारणा आदि सब निरर्थक हैं; स्वानुभूतिमें ही आत्माकी यथार्थ पहिचान होती है।

❋

चमड़ा उतारकर जिसके जूते बनवाएँ तब भी जिनके उपकारका बदला नहीं दिया जा सके, ऐसा उपकार गुरु आदिका होता है। उसके बदले जो उनके उपकारका लोप करे—छिपाये वह अनंत संसारी है। किसके निकट रहकर श्रवण करना उसका भी जिसे विवेक नहीं है वह आत्माको समझनेके लिये योग्य नहीं है-पात्र नहीं है। जिनके लौकिक न्याय-नीतिका भी ठिकाना नहीं है ऐसे जीव शास्त्रपठन करे और उसे सुनने जायँ वे सुननेवाले भी पात्र नहीं हैं।

—पू. गुरुदेवश्री

प्रवचन-१४३

दिनांक : ७-११-७८

वचनामृत-३६८

पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्मका श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है। ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणीके श्रवणका योग अनंत कालमें महापुण्योदयसे प्राप्त होता है। इसलिये प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो। सावधान होकर शुद्धात्माको पहिचानकर भवभ्रमणका अंत लाओ॥३६८॥

'पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्मका श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है।'

अनादिकालसे नित्य निगोद और एकेन्द्रियमें परिभ्रमण करते हुए जीवको त्रसपना प्राप्त करना चिन्तामणिरत्नकी प्राप्तिके समान दुर्लभ है, वहाँ पंचेन्द्रियना, मनुष्यपना, उत्तमकुल और सत्यधर्मके श्रवणकी जो उत्तरोत्तर दुर्लभता उसकी तो बात ही क्या! पाँच इन्द्रियाँ तो पशुओंके भी होती हैं, परन्तु वहाँ सत्य धर्मका श्रवण दुर्लभ है, मनुष्यपनेमें धर्मश्रवणका योग अधिक संभवित है। पुण्योदयसे कदाचित मनुष्यपना प्राप्त हो जाय, परन्तु यदि पापप्रधान हीनकुलमें जन्म हो जाय तो वहाँ पाप परिणामोंकी प्रचुरताके कारण धर्मश्रवणकी जिज्ञासा नहीं होती; धर्मसंस्कार योग्य उत्तम कुलमें धर्माभिमुख वृत्ति उत्पन्न होनेका अवकाश है। मनुष्यपना तथा उत्तम कुल पुण्ययोगसे प्राप्त हो जाय तथापि यथार्थ धर्मका श्रवण भी अति दुर्लभ है। इसप्रकार उत्तरोत्तर दुर्लभ ऐसे धर्म प्राप्त करनेके उत्तम योग तुझे प्राप्त हुए हैं भाई! अब तो सावधान होकर अपना कल्याण कर ले!

'ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणीके श्रवणका योग अनंत कालमें महापुण्योदयसे प्राप्त होता है।'

'ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव.....' यह कहकर बेनने अपनी विनय और लघुता प्रगट की है। जिससे भवभ्रमणका अंत आये ऐसी आत्मसाधनाका पुरुषार्थ प्रेरित करनेवाली गुरुवाणीके श्रवणका योग अनंतकालमें महापुण्यका समूह हो तब बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'इसलिये प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ कर।'

अज्ञानीने विज्ञानकी—जड़की—शोधके लिये अथक पुरुषार्थ किया, परन्तु शरीर एवं रागसे भिन्न पूर्णानन्दका नाथ ऐसे निज चैतन्यभगवानको अंतरमें खोजनेका यथार्थ पुरुषार्थ कभी नहीं किया है। भाई! अब प्रमाद छोड़कर अंतरमें चैतन्यकी प्राप्तिका पुरुषार्थ कर।

'सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो।'

इन्द्रियाँ और उनके विषयभूत पर पदार्थोंसे भिन्न तथा मनके आश्रयसे होनेवाले समस्त संकल्प-विकल्पसे भी रहित भगवान ज्ञायक, कि जो अचिन्त्य चमत्कारी महा पदार्थ है उसे समझनेका—प्राप्त करनेका उत्तरोत्तर दुर्लभ ऐसा सर्व सुयोग तुझे प्राप्त हो गया है, अब तो उसका लाभ ले ले, एक क्षण भी आलस्य मत कर।

'सावधान होकर शुद्धात्माको पहिचानकर भवभ्रमणका अंत लाओ।'

शुद्ध आत्मा भगवत्स्वरूप अपार महिमायुक्त ज्ञायक महापदार्थ है, उसे सावधान होकर देख, पहिचान, ताकि भवभ्रमणका अंत शीघ्र आ जाय। दुर्लभ मनुष्यपना प्राप्त करके जीवनमें यह एक ही करने योग्य कार्य है, इसके सिवा और कुछ भी—कोई संसारकी वस्तु—करने योग्य नहीं है।

❋

वचनामृत-३६९

चैतन्यतत्त्वको पुद्‍गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्वको भवका परिचय नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्वको शुभाशुभ परिणति नहीं है, नहीं है। उसमें शरीरका, भवका, शुभाशुभ भावका संन्यास है।

जीवने अनंत भवोंमें परिभ्रमण किया, गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूल तत्त्व ज्योंका त्यों ही है, गुण ज्योंके त्यों ही हैं। ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ उससे कहीं उसके सामर्थ्यमें न्यूनता नहीं आयी है। आनन्दका अनुभव नहीं है, इसलिये आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है। शक्तिरूपसे सब ज्योंका त्यों रहा है। अनादि कालसे जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलतामें रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्योंके त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—ऐसे परमार्थस्वरूपकी सम्यग्दृष्टि जीवको अनुभवयुक्त प्रतीति होती है॥३६९॥

'चैतन्यतत्त्वको पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है।'

चैतन्यतत्त्व शरीर, इन्द्रिय, वाणी आदि जड़ पुद्गलतत्त्वसे बिलकुल भिन्न, ज्ञान एवं आनन्दादि असाधारण धर्मोंवाली स्वतःसिद्ध अनादिनिधन जीववस्तु है। चैतन्यमय जीववस्तुको अचेतन पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। 'नहीं है, नहीं है'—दो बार कहकर शरीरका आत्मामें सर्वथा अभाव कहा है। हे जीव! जिसका तुझमें अत्यन्त अभाव है उन शरीरादि परद्रव्योंको अपना मानकर उनकी सेवा-सुश्रूषामें तू जो लगा हुआ है उसे व्यर्थ जानकर अब छोड़ दे।

'चैतन्यतत्त्वको भवका परिचय नहीं है, नहीं है।'

चैतन्य ज्ञायक प्रभुको पुद्गलात्मक शरीर—हड्डी-मांसका पिंजरा नहीं है; उसे भवका-जन्म-मरणका-परिचय भी नहीं है, नहीं है। जिन भावोंसे भव मिले उन रागादि विभावभावोंका भी परिचय इस ज्ञायक आत्माको परमार्थसे नहीं है। अहा! सहज तत्त्व ऐसा है।

जिसमें मनुष्य-देवादि भव और भवके कारणभूत मिथ्यात्व एवं रागादिभाव नहीं हैं, जिसे भव और भवके भावोंका बिलकुल परिचय नहीं है ऐसा श्री जिनेश्वरदेव द्वारा प्ररूपित यह त्रिकालशुद्ध सहज ज्ञायकतत्त्व, चैतन्यलोक, चैतन्यस्वभाव वह कोई अलौकिक अचिन्त्य महापदार्थ है। उसे किन्हीं शरीरादि बाह्य पदार्थोंका संग तथा भवका परिचय नहीं है। 'श्रुतपरिचितानुभूता' शब्द समयसारमें आते हैं न! अज्ञानीने अनादिकालमें परसे तथा विभावसे विभक्त और स्वभावसे एकरूप ऐसे चैतन्यतत्त्वका गुरुगमसे कभी श्रवण नहीं किया है, उसका परिचय तथा अनुभव नहीं किया है; अपने चैतन्यस्वरूपको भूलकर मात्र कामभोगकी कथाका ही परिचय किया है। प्रभु! अपने सहज शुद्ध त्रैकालिक स्वभावकी ओर दृष्टि कर न! कि जिसे मनका और विकल्पका भी परिचय नहीं है। मन और विकल्पसे पार तेरी प्रभुता अद्भुत है, उसका परिचय कर न! जिससे विकल्प छूटकर तुझे अनुपम आनन्द प्रगट होगा। अहा! ऐसी बातें हैं।

जीवको भवके हेतुभूत विभावका परिचय समयवर्ती पर्यायमें है, त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकवस्तुमें नहीं है। भव अर्थात् चौरासी लाखके अवतार और उसके कारण जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग—यह सब जीवके सहज स्वभावमें नहीं हैं, चैतन्यतत्त्वको उसका परिचय नहीं है।

'चैतन्यतत्त्वको शुभाशुभ परिणति नहीं है, नहीं है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरने जो ज्ञानस्वरूप आत्मा देखा है—अज्ञानी भी आत्मा आत्मा करते हैं, परन्तु उन्होंने आत्माको यथार्थ स्वरूपसे जाना नहीं है—उसको मिथ्यात्व, हिंसा, चोरी, विषयवासना, पैसे कमाना आदि अशुभभावकी तथा देव-शास्त्र-गुरुके प्रति बहुमान, दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा, पूजादि शुभभावकी परिणति वास्तवमें नहीं है, नहीं है। अंतरमें ज्ञायक द्रव्य शुभाशुभपरिणतिसे न्यारा है; ज्ञायकको शुभाशुभ विभावका परिचय नहीं है, नहीं है।

नव तत्त्व हैं न? उनमें शुभाशुभ परिणति तो पुण्य-पाप तत्त्वमें समाती है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक जीव तत्त्व उनसे भिन्न है। सहज ज्ञान तथा सहज आनन्दादि अनंत गुणोंका सागर ऐसे त्रिकालशुद्ध ज्ञायकको शुभाशुभभाव हैं ही नहीं। जीवतत्त्वको क्षणवर्ती पर्यायमें शुभाशुभभाव हैं, परन्तु वे विभाव जीवका स्वभाव नहीं है; इसलिये चैतन्यतत्त्वके स्वभावमें शुभाशुभ परिणति नहीं है। अहा! ऐसी बात है। अरे! कितने तो मात्र बाह्य जानकारीमें रुक गये, कितने ही व्रत-तपादि आत्मज्ञान शून्य बाह्यक्रियामें अटक गये, और अधिकांश तो विषय-कषायादि व्यापार-धंधेमें लगे हुए हैं; परन्तु भाई! जहाँ शुभाशुभभाव भी स्वरूपमें नहीं हैं वहाँ बाह्य क्रियाकी बातें आत्मामें कहाँसे आ गयीं? अरे! इस दुर्लभ मनुष्यभवमें जो करना था वह नहीं किया और जो नहीं करना था वह किया।

यहाँ बहिनने तीन बातें कही हैं—(१) आत्माको जड़-पुद्‌गलस्वरूप शरीर नहीं है, (२) भवका परिचय नहीं है और (३) शुभाशुभ परिणति नहीं है।

प्रश्न :—यदि शुभाशुभ परिणति आत्माको नहीं है तो किसे है?

उत्तर :—शुभाशुभ परिणति आत्माकी क्षणवर्ती पर्यायमें होती है, परन्तु वह आत्माका स्वभावभाव नहीं है; इसलिये वह क्षणिक विभावपरिणति आत्माके नहीं है ऐसा कहा है। विभाव पर्याय तो एक समयकी है और द्रव्यस्वभाव त्रिकालशुद्ध है, इसलिये त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यमें—द्रव्यसामान्यमें—शुभाशुभ पर्यायविशेष नहीं है ऐसा कहा जाता है। अरे! अध्यात्मतत्त्वकी ऐसी बात तो पड़ी रही और उपदेशकोंने लोगोंको 'व्रत अंगीकार करो, तपस्या करो, प्रोषध करो, मन्दिर बनवाओ, प्रतिष्ठा कराओ'—ऐसे बाह्य क्रियाकाण्डमें लगा दिया; परन्तु भाई! उनमें तो कषाय मन्द किया हो तब शुभराग है, धर्म नहीं है—भवभ्रमणका अंत लाये ऐसी वह बात नहीं है।

'उसमें शरीरका, भवका, शुभाशुभभावका संन्यास है।'

विज्ञानघन चैतन्यमूर्ति भगवान आत्माको शरीर, भव और शुभाशुभ परिणति नहीं है; क्योंकि—उन सबका आत्मामें अभाव-त्याग-संन्यास है। अरे! जिसे अभी आत्मा कौन है?—कैसा है?—कहाँ है?—उसकी भी खबर न हो उसे सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रोषध कहाँसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आये? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि 'सामायिक करूँ' ऐसा जो शुभ विकल्प उठता है वह भी आत्माका स्वभावभाव नहीं है। अहा! अंतर ज्ञायकतत्त्वको जाने बिना, भीतर चैतन्यका प्रकाश किये बिना, पूजा, भक्ति, सामायिकादि सब बाह्य क्रियाएँ व्यर्थ हैं—थोथी हैं, चार गतियोंमें भटकनेका मार्ग है। भाई! समस्त विभावरहित निज शुद्ध ज्ञायक आत्माको यथार्थ जानकर उसका अनुभव कर, तब तुझे कल्याणका मार्ग हाथ आयगा।

'जीवने अनंत भवोंमें परिभ्रमण किया, गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूलतत्त्व ज्योंका त्यों ही है, गुण ज्योंके त्यों ही हैं।'

पहले ऐसा कहा है कि जीवको भवका परिचय नहीं है, भवका संन्यास है, और यहाँ कहते हैं कि—'जीवने अनंतभवोंमें परिभ्रमण किया;' क्या यह पूर्वापर विरोध नहीं है? नहीं, पूर्वापर विरोध नहीं है; क्योंकि उन दोनों कथनोंमें अपेक्षाका भेद है। 'जीवको भवका परिचय नहीं है' यह कथन द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे है, और 'जीवने अनंतभवोंमें परिभ्रमण किया', वह कथन पर्याय-अपेक्षासे है। वस्तु द्रव्य-पर्यायात्मक होनेसे दोनों अपेक्षाएँ एकसाथ जीववस्तुमें बराबर लागू होती हैं, उनमें कोई पूर्वापर विरोध नहीं है।

प्रभु ज्ञायकतत्त्वमें ज्ञान और आनन्दादि गुण शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण और शुद्ध होने पर भी पर्याय-अपेक्षासे ज्ञान-दर्शनादि गुण हीनरूप तथा श्रद्धा, चारित्र और सुखादि गुण विपरीतरूपसे परिणमित हुए हैं तो भी आत्माका मूल तत्त्व तो ऐसाका ऐसा ही है। गुण भी शक्ति अपेक्षासे ऐसेके ऐसे शुद्ध और परिपूर्ण हैं। द्रव्यके या गुणके मूल स्वरूपमें परिभ्रमणका, अपूर्णताका अथवा विभावका कोई दाग नहीं है।

गुण शक्ति अपेक्षासे अपरिणामी हैं, परन्तु व्यक्ति (-पर्याय) अपेक्षासे कितने ही गुणोंकी परिणमनमें अल्पता तथा विभाव होता होनेसे गुण हीनरूपसे अथवा विपरीतरूपसे परिणमे ऐसा कहनेमें आता है। ज्ञानगुणका परिणमन मति-श्रुतादि हीनरूप और श्रद्धा, चारित्र तथा आनन्दगुणका परिणमन मिथ्यात्व, अचारित्र एवं दुःखरूप—आकुलतादि विपरीतरूप हुआ है तथापि मूल ज्ञायकतत्त्व और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्योंके त्यों ही हैं, मूल स्वरूपमें विभावका किंचित् भी प्रवेश नहीं हुआ है। अरे! यह बात कैसे बैठे? मिथ्यात्व स्वयं करे और कहे कि मिथ्यात्वका भाव द्रव्यस्वभावमें प्रविष्ट ही नहीं हुआ है। भाई! वस्तुस्वरूप तो त्रिकाल ध्रुव परिपूर्ण है। तीनों काल ज्योंका त्यों शुद्ध परिपूर्ण है, इसलिये 'त्रैकालिक' कहा जाता है। वर्तमान वर्तती हुई पर्यायके कालमें भी वस्तुस्वभाव तो शुद्ध और परिपूर्ण है। वस्तुको अपने मूलस्वरूपका कभी एक समय भी विरह नहीं होता। पर्यायमें भले ही अज्ञान और अस्थिरताके कारण विभाव हो जाय, परन्तु उस काल भी द्रव्य और गुण स्वभावसे—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शक्तिरूपसे—सामर्थ्यरूपसे ज्योंके त्यों शुद्ध और परिपूर्ण हैं। अहा! ऐसा तत्त्व है।

'ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ उससे कहीं उसके सामर्थ्यमें न्यूनता नहीं आयी है।'

निगोदके भवमें—लब्धपर्याप्तक एकेन्द्रियकी पर्यायमें—ज्ञानगुणकी पर्यायका विकास कम होकर सर्वजघन्य विकासरूप—अक्षरके अनन्तवें भाग जितना–रह गया उससे कहीं उस समय भी, ज्ञानगुणके शक्तिरूप परिपूर्ण सामर्थ्यमें किंचित् भी न्यूनता नहीं हुई। चाहे जितने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायादिके विभावभाव किये तथापि द्रव्यसामान्य और उसके गुणोंमें–सामर्थ्यरूप स्वभावमें–न्यूनता नहीं आयी। अहा! ऐसा वस्तुस्वरूप है।

प्रश्न :—यह सब समझनेके लिये हमें क्या करना चाहिये?

उत्तर :—पहले तो यह समझना कि इस वस्तुस्वरूपको यथार्थ समझने पर ही भवभ्रमणका अंत आयेगा। यदि भवमें भटकना बन्द करना हो तो रागादि क्षणिक विभावोंके निकट ही भीतर परिपूर्ण ज्ञान एवं आनन्दादि सामर्थ्यसे परिपूर्ण अमृतसागर भगवान ज्ञायक आत्मा विराजमान है, उसे देख, प्रतीतिमें लेकर उसका अनुभव कर। अंतरमें जाकर परिपूर्ण द्रव्यस्वभावका श्रद्धा, ज्ञान और अनुभवमें स्वीकार कर। द्रव्यसामान्यका स्वीकार करनेवाली–आश्रय लेनेवाली–है तो द्रव्यकी ही वर्तमान निर्मल पर्याय, परन्तु उस क्षणवर्ती निर्मल पर्याय जितना ही द्रव्यसामान्य नहीं है। त्रैकालिक द्रव्यसामान्यके आश्रयसे पर्यायमें निर्मलता प्रगट होती है, पर्यायके आश्रयसे–लक्षसे पर्यायमें निर्मलता प्रगट नहीं होती। इसलिये सामर्थ्यसे भरपूर निज द्रव्यस्वभावका आश्रय कर कि जिससे पर्यायमें पूर्ण निर्मलता प्रगट होकर भवभ्रमणका अंत आये।

किसीको पूछा—यह 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक पढ़ी है? तो कहा—'थोड़ी पढ़ी है।' भाई यह पुस्तक तो खास पढ़ने जैसी है। इसमें सब कुछ है, समस्त सार इसमें आ गया है। पहले पढ़े तो सही कि यह क्या है? फिर समझमें आयगा।

अहा! तत्त्व कोई आश्चर्यकारी है। निगोदके भवमें जीवको अक्षरके अनंतवें भाग जितना ज्ञानका अत्यल्प विकास रहा है तथापि जीवके द्रव्यस्वभावमें या गुणोंमें कहीं न्यूनता नहीं आयी। 'अ–क्षर अर्थात् क्षरण न हो ऐसा जो केवलज्ञान, उसके अनंतवें भाग अर्थात् सर्व जघन्य विकासरूपसे निगोदमें ज्ञानका अत्यल्प विकास है, तथापि उस कालमें भी ज्ञानगुणके त्रैकालिक सामर्थ्यमें किंचित् न्यूनता नहीं आयी। द्रव्य और गुणस्वभाव तो सदैव ज्योंके त्यों परिपूर्ण हैं। वहाँ दृष्टि लगाने जैसी है। आया कुछ समझमें?

ऐसा अद्‌भुत स्वभाव समझमें आया हो, अनुभवमें आया हो, तथापि बोलना न आये,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समझाना न आये; यह बात एक ओर रह गई, उसके साथ कल्याणका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ जो ज्ञायक भगवान है उसकी अद्‌भुततामें समा जानेकी यह बात है। ज्ञायकके ज्ञानगुणकी पर्यायमें भले ही जितनी चाहे हीनता हो अथवा परिपूर्ण केवलज्ञान हो, दोनों स्थितिमें ज्ञानगुण तो ज्योंका त्यों ही उतनेका उतना ही रहता है। अहा! केवलज्ञान किसे कहते हैं? कि ज्ञानगुणकी जो परिपूर्ण निर्मल पर्याय तीनकाल और तीनलोकको जाने, प्रत्येक द्रव्यके अनंत-अनंत असीम-अपार गुणोंको जाने, अनन्त-अनन्त ज्ञेयोंको जाननेवाली ज्ञानगुणकी अनंत पर्यायोंको जाने—सब एक साथ प्रत्यक्ष जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं। अहा! क्या आश्चर्यजनक वस्तु है—'अद्भुतादद्भुतं'! यह बात वीतराग सर्वज्ञ परमात्माके सिवा अन्यत्र कही नहीं है। वर्तमानमें लोगोंको इस बातकी खबर नहीं है। 'यह करो और वह करो, परन्तु भीतर सहज ज्ञान और आनन्दादि सामर्थ्यसे परिपूर्ण निज ज्ञायकतत्त्व क्या वस्तु है यह बात लोगोंके कानोंमें नहीं पड़ी है।' अब आगे कहते हैं कि—

'आनन्दका अनुभव नहीं है इसलिये आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है।'

क्या कहते हैं? कि—जीवको अनादिकालसे पर्यायमें दुःखका-क्लेशका-खेदका-आकुलताका अनुभव है, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दका अनुभव पर्यायमें एक क्षण भी नहीं हुआ है, इसलिये कहीं जीवका आनन्द नामका असाधारण गुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है। निगोदके जीव एक श्वास जितने कालमें अठारहबार जन्म-मरण करते हैं, उनको कितना दुःख होगा? मिथ्यात्वादिभावकलंक प्रचुरा ऐसे वे जीव वहाँ स्वभाव घातका अनन्त दुःख भोगते हैं; उस समय उन्हें पर्यायमें किंचित् भी अनाकुल आनन्द नहीं है इसलिये कहीं आकुलताके—जोकि आनन्दगुणकी विपरीत पर्याय है उसके—पास अंतरमें विद्यमान परिपूर्ण अनाकुलताके सामर्थ्यरूप त्रैकालिक ध्रुव आनन्दगुण कहीं चला गया है—ऐसा नहीं है। आया कुछ समझमें?

अज्ञानीको व्यक्त पर्यायमें आनन्दका अनुभव नहीं है, दुःखका अनुभव है, इसलिये उसके आनन्द नामका गुण है ही नहीं—ऐसा नहीं है। अज्ञानदशामें जीवका आनन्दगुण कृश हो जाता है, नष्ट हो जाता है और परमात्मदशा प्रगट होने पर आनन्दगुण विस्तृत होता है—ऐसा नहीं है। ध्रुव आनन्दगुण तो जीवकी किसी भी अवस्थामें उतनेका उतना-परिपूर्ण रहता है।

अरे! जीवने बाहरी सब शोधें कीं, परन्तु अपनी, अपने चमत्कारी स्वरूपकी शोध कभी नहीं की। वर्तमान प्रगट पर्यायमें आनन्दका अभाव होने पर भी प्रभु! तेरा द्रव्य स्वभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो सदैव पूर्णानन्दसे परिपूर्ण है। अपने द्रव्यस्वभावको यथार्थ जानकर, उसमें लीन होकर, पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव प्रगट कर न! अहा! यह बात तो मक्खन है। पर्यायमें प्रगट आनन्द नहीं है, इसलिये शक्तिरूप आनन्दगुण कहीं चला गया है, घिस गया है—ऐसा नहीं है।

'शक्तिरूपसे सब ज्योंका त्यों रहा है।'

शक्ति कहो, स्वभाव कहो, सामर्थ्य कहो या ताकत कहो—इस रूपमें तो वस्तु—ज्ञायक आत्मा—सदैव ज्योंका त्यों अर्थात् परिपूर्ण ही विद्यमान है। आत्माको पर्यायमें मिथ्यात्व और दुःख होने पर भी स्वरूपमें—सामर्थ्यमें कभी न्यूनता नहीं आयी है। अज्ञानीको पर्यायमें आनन्द व्यक्त नहीं है, इसलिये उसका आनन्दगुण घिस गया है, तथा सर्वज्ञ भगवानको पर्यायमें आनन्द पूर्ण व्यक्त हुआ है इसलिये उनको आनन्दगुण पुष्ट हुआ है—ऐसा नहीं है। दोनोंमें आनन्द शक्ति तो उतनीकी उतनी, ज्योंकी त्यों है। अहा! ऐसा वस्तुस्वभाव त्रिलोकनाथ श्री महावीर भगवान धर्मसभामें इन्द्रो, नरेन्द्रों और यतीन्द्रोंके समक्ष प्रगट करते थे; सर्वज्ञ परमेश्वर श्री सीमंधर परमात्मा वर्तमानमें भी महाविदेहक्षेत्रमें आत्माका परमानन्दस्वभाव इसीप्रकार दिव्यध्वनि द्वारा बतला रहे हैं।

'अनादिकालसे जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलतामें रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्योंके त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती।

जीवमें सहज स्वभावरूप हैं ऐसे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुणस्वरूप जो चैतन्यनिधान वह सर्व परिपूर्ण है; उसमें यह जीव दृष्टि नहीं देता और बाह्यमें—शुभाशुभ विकल्पके जालमें—उलझ रहा है; पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि नहीं करता। आत्माका ज्ञानस्वभाव तो परिपूर्ण है, परन्तु अनादि पर्यायबुद्धिके कारण बाहर भटकता होनेसे वह पर्यायमें अति अल्प जानता है। अज्ञानीको अनन्तबार ग्यारह अंगके ज्ञानका विकास हो चुका है, परन्तु वह ज्ञान भी, साथमें मिथ्यात्व होनेसे, अत्यन्त विपरीत और अति अल्प है। अरे! सम्यग्दृष्टि संयमीको बारह अंगका जो ज्ञान होता है वह विपरीत नहीं है, परन्तु अति अल्प और स्थूल है। जीव अनादि अज्ञानके कारण बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है और आकुलतामें रुक गया है। त्रैकालिक अनाकुल चैतन्यसत्ताकी ओर दृष्टि नहीं है, उसका अंतरमें रुचिपूर्वक स्वीकार नहीं है, 'दया, दान, व्रत, भक्तिके शुभरागसे मुझे लाभ होगा' ऐसी मिथ्यात्वभावजनित आकुलतामें रुक गया है, तथापि ज्ञायक आत्मवस्तु और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्योंके त्यों अपने आप सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा करना पड़ी इसलिये रहे हैं—ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उनकी सुरक्षा करना नहीं पड़ती, स्वयमेव ही सुरक्षित रहे हैं। अहा! ऐसा उपदेश है।

राग आत्माका स्वभाव नहीं है; जो कर्म–नोकर्मरूप पुद्‌गलके सम्बन्धसे हो और टालनेसे टल जाय उसे आत्माका स्वभाव कैसे कहेंगे? जो आत्मामें स्वतःसिद्ध हों और कभी टलें नहीं ऐसे सहज ज्ञान और सहज आनन्दादि गुण ही आत्माका स्वभाव है। अहा! कठिन काम है भाई! यह तो जन्म–मरणका अंत करनेकी बातें हैं। 'गुण ज्योंके त्यों सुरक्षित हैं'— भाषा तो देखो! बिलकुल सरल शब्द! 'सुरक्षित' अर्थात् गुण स्वयमेव ध्रुवरूपसे विद्यमान हैं; ध्रुवकी सुरक्षा करे तो ध्रुव रहे—ऐसा नहीं है। अहा! ऐसी बात है।

कितने ही लोग कहते हैं कि—सोनगढ़में निश्चयकी बातें हैं, व्यवहारका–सामायिक, प्रतिक्रमण, व्रत, तपादि करनेकी तो कोई बात ही नहीं आती। भाई! अज्ञानपूर्वककी क्रियामें धर्म माननेका निषेध तो आता है। आत्मज्ञानके बिना दया, दानादिमें कर्तृत्वका राग है, और रागका जो 'करना' है वह चैतन्यका 'मरना'–भावमरण है। अरेरे! यह बात समझनेका किसे अवकाश है? बनियोंके हाथमें जैनधर्म आया, परन्तु उन्हें वह समझनेकी फुरसत नहीं है। भाई! दया, दानादिका शुभराग भी तेरा स्थान नहीं है, तेरा स्थान तो 'स्वयं ज्योति सुखधाम' है। उस चैतन्यज्योतिमें ज्ञान–आनन्दादि अनंतगुण स्वतः सुरक्षित हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करना पड़ती।

'—ऐसे परमार्थस्वरूपकी सम्यग्दृष्टि जीवको अनुभवयुक्त प्रतीति होती है।'

आत्माके परमार्थस्वरूपकी—पर और विभावसे भिन्न निज ज्ञायक ध्रुवतत्त्वकी—जिसे स्वानुभवरहित श्रद्धा प्रगट हुई हो वह जीव सम्यग्दृष्टि है। सच्चे देव–शास्त्र–गुरुकी तथा जीवादि तत्त्वोंकी जो विकल्प युक्त श्रद्धा उसे व्यवहारसे सम्यक्त्व कहा जाता है, परन्तु वह तो वास्तवमें शुभराग है, आत्माका शुद्धस्वरूप नहीं है। पर्यायमें राग–द्वेषादि विकार होने पर भी जानना अत्यल्प होने पर भी, दुःख होने पर भी, आनन्द अल्प प्रगट हुआ है परन्तु पूर्णरूपसे नहीं, तथापि सम्यग्दृष्टि जीवको अंतरमें पूर्ण रसकससे भरपूर निज परमार्थस्वरूपकी–ज्ञायक महाप्रभुकी–प्रतीति अनुभवसहित होती है। अहा! एक घन्टेमें बहुत अच्छी बात आयी है।

सम्यग्दृष्टि अर्थात् प्रथम भूमिकाका धर्मी। उसको सानुभव ऐसी निर्मल श्रद्धा होती है कि—मेरे द्रव्य और गुण परमार्थसे परिपूर्ण हैं; पर्यायमें चाहे जितनी हीनता एवं विपरीतता हो गई और वर्तमानमें भी है तथापि मेरा द्रव्यस्वभाव ज्योंका त्यों ही है, मेरे गुण भी ज्योंके त्यों हैं, उनमें किंचित् भी न्यूनता, अल्पज्ञता या घात नहीं हुए हैं। अहा! ऐसा है भगवानका कहा हुआ वीतराग विज्ञान, यही विज्ञानका विज्ञान है।

✤

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१४४

दिनांक ८-११-७८

वचनामृत-३७०

जिसे आत्माका करना हो उसे आत्माका ध्येय ही सन्मुख रखने योग्य है। 'कार्यों'की गिनती करनेकी अपेक्षा एक आत्माका ध्येय ही मुख्य रखना वह उत्तम है। प्रवृत्तिरूप 'कार्य' तो भूमिकाके योग्य होते हैं।

आत्माको मुख्य रखकर जो क्रिया हो उसे ज्ञानी देखते रहते हैं। उनके सर्व कार्योंमें 'आत्मा समीप जिसे रहे' ऐसा होता है। ध्येयको वे भूलते नहीं हैं॥३७०॥

'जिसे आत्माका करना हो उसे आत्माका ध्येय ही सन्मुख रखने योग्य है।'

जिसे आत्माका करना हो, परका नहीं, रागका नहीं, पुण्यका नहीं, पर्यायका नहीं, उसे ज्ञान और आनन्दादि अनंत गुणोंसे परिपूर्ण ऐसे निज शुद्धात्माका—ज्ञायक परमभावका—ध्येय ही आगे—ऊर्ध्व रखने योग्य है। अहा! जिसे आत्माका हित करना हो उसे पूर्णानन्दकन्द निज ज्ञायक आत्मा ही—निमित्त नहीं, शुभाशुभ विभाव नहीं, पर्याय या गुणभेद नहीं—ध्येयरूपसे आगे रखना योग्य है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभाव है, वह सम्यग्दर्शनका विषय है। जिसे आत्माका हित-भला-कल्याण करना हो उसे ध्रुव चिन्मय निज आत्माका ध्येय मुख्य रखने जैसा है।

'कार्योंकी गिनती करनेकी अपेक्षा एक आत्माका ध्येय ही मुख्य रखना वह उत्तम है।'

मैंने इतने पुण्य किये, इतनी दया पाली, इतने व्रत-नियम लिये, इतने उपवास, प्रोषध और तपादि किये, इतने शास्त्र पढ़े, इतने लोगोंको उपदेश देकर धर्म प्राप्त कराया; भाई! इसप्रकार कार्योंकी गिनती करनेकी अपेक्षा एक निज शुद्ध आत्माका ध्येय ही-उसे प्राप्त करनेका लक्ष ही-मुख्य रखना श्रेष्ठ है।

जैसे-चंदनगोह दीवारसे चिपक जाती है तो उखड़ती नहीं है, उसीप्रकार निज भगवान ज्ञायक आत्माको-ध्येयको-जिसने ध्यानमें लिया वह दृष्टि ध्येयभूत आत्माके साथ ऐसी चिपक जाती है कि फिर वहाँसे किंचित् भी हटती नहीं है। ऐसी दृष्टि जिसके परिणमित हुई है उसे ध्येयभूत निज शुद्धात्माके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मुख्य नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सौधर्म इन्द्रने भगवान ऋषभदेवकी स्तुति एक हजार आठ नामोंसे की है। स्तुतिका भाव शुभ है, विकल्प है और पुण्यबंधका कारण है। जिसे आत्माको साधना है उसे ऐसे स्तुति-पूजा-भक्ति आदि कार्योंकी गिनतीमें रुकने जैसा नहीं है। अरेरे! धर्मके नाम पर यह दुनिया कहाँ फँस गई है! भाई, धर्मके नाम पर तथाकथित कार्योंकी गिनती करनेकी अपेक्षा एक ज्ञानस्वरूप निज आत्माका ध्येय ही मुख्य रखना—परमानन्द ब्रह्म निज शुद्ध चैतन्यप्रभुको आगे रखना—वही सर्वोत्तम है। इतने मन्दिर बनवाये, धर्मादामें करोड़ों रुपये खर्च किये, इतनी यात्राएँ कीं; भाई! इन सबका क्या अभिमान? यह सब क्रियाएँ तो जड़-पुद्गल परमाणुओंकी हैं। पुद्गलकी क्रिया पुद्गल परमाणुओंके कारण होती है, जीवकी इच्छासे नहीं होती। इच्छा भी जीवकी विकारी पर्याय है, जीवका स्वभावभाव नहीं है। जीवका स्वभाव तो मात्र जानना, देखना और आनन्द है। शुभाशुभ विकल्प आयें उनका ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। अकर्त्ता-ज्ञाता पदार्थ विकल्प कहाँसे करेगा? इसलिये यहाँ कहते हैं कि-विकल्पों और कार्योंकी गिनती करनेकी अपेक्षा एक निज शुद्ध ज्ञायकका लक्ष ही मुख्य रखना उत्तम है।

अहा! वीतरागमार्गकी जाति ही कोई भिन्न है। प्रतिदिन भगवानके पास जाते हैं और पूजा भक्ति करते हैं, किन्तु भाई! भगवानके समवसरणमें भी तू अनंतबार हो आया है—सम्यग्दृष्टि जीव अनंत बार नहीं जाता, क्योंकि सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् वह संसारमें अति अल्पकाल रहता है—परन्तु उन विकल्पों और कार्योंकी गिनती नहीं होती, उनका तो ज्ञाता बनकर आत्माका ध्येय मुख्य रखना ही उत्तम है।

''प्रवृत्तिरूप 'कार्य' तो भूमिकाके योग्य होते हैं।''

चौथे, पाँचवें और छठवें गुणस्थानमें साधक जीवको उस-उस भूमिकाके योग्य रागादिके विकल्प और तदनुरूप बाह्य प्रवृत्तिरूप कार्य होते हैं परन्तु उन्हें उनकी मुख्यता नहीं है; वे कोई साधने योग्य वस्तु नहीं है। ज्ञानी तो बीचमें भूमिकानुसार जो व्यवहार आये उसका मात्र ज्ञाता ही है, कर्ता-भोक्ता या स्वामी नहीं है।

'आत्माको मुख्य रखकर जो क्रिया हो उसे ज्ञानी देखते रहते हैं।'

जो श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरतामें निज शुद्धात्मद्रव्यको ही सदा मुख्य, अग्र रखते हैं, उन्हें ज्ञानी अर्थात् धर्मी कहते हैं। चैतन्य विज्ञानघन ऐसे निज भगवान आत्माको आश्रयरूपसे मुख्य रखकर जो शुभाशुभ क्रियाएँ होती हैं उन्हें ज्ञानी देखता रहता है। अज्ञानीको तो 'मैंने यह किया, ऐसे कार्य करके प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहिये' ऐसा मिथ्याभिमान होता है। ज्ञानी तो प्रवृत्तिके प्रत्येक प्रसंगमें ज्ञातारूप रहकर वर्तता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"उनके सर्व कार्योंमें 'आत्मा समीप जिसे रहे' ऐसा होता है।"

दर्शन, पूजा, भक्ति या व्रत, नियम और तपमें, अरे! सांसारिक रागके कालमें भी धर्मीको दृष्टिमें सदा आत्मा समीप होता है। भगवान ज्ञायक आत्मा उसकी दृष्टिमेंसे कभी छूटता नहीं है। अज्ञानीको भगवान आत्माकी प्रतीति न होनेसे, भले ही वह आँखें बन्द करके ध्यानमें बैठा हो तथापि वह विकल्प जालमें फँसा है, क्योंकि अंतरमें विकल्पातीत ज्ञायक आत्मा क्या वस्तु है, उसकी उसे खबर नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है कि—अंतरंग तपोंमें भी प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग और ध्यानरूप क्रियामें जो बाह्य प्रवर्तन है वह तो बाह्यतपवत् ही जानना.....परन्तु ऐसा बाह्य प्रवर्तन होनेसे जो अंतरंग परिणामोंकी शुद्धता होती है उसका नाम अंतरंग तप जानना और वहाँ तो निर्जरा ही है, बंध नहीं होता। अरे! जिसकी दृष्टि और ज्ञानमें सहज शुद्ध चैतन्यविज्ञानघन निज ज्ञायक पदार्थ यथार्थरूपसे ज्ञात नहीं हुआ है वह किसका ध्यान करेगा? वह तो विकल्पके जालको ही ध्यान मानता रहेगा। अहा! चैतन्यके असंख्य प्रदेशोंमें ज्ञानादि अनंतगुणोंका बृहद् विस्तार करके अंतरमें जो ज्ञायक सम्राट विद्यमान है उसकी ओर तो दृष्टि नहीं है और दया, दान, भक्ति, व्रतादि पामर क्रियाओंमें—तुच्छ शुभ विभावोंमें—धर्म मान बैठता है, परन्तु वह कहीं धर्म नहीं है। ध्येयभूत निज ज्ञायक आत्माकी समीपतासे च्युत होकर शुभभावरूप विभावको धर्म माननेवाला जीव मिथ्यादृष्टि है। जिसे ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि और अनुभव हुआ है वह तो आत्माको मुख्य रखकर जो क्रिया होती है उसे देखता रहता है। भक्ति आदिका राग आये उस काल भी स्व-परप्रकाशक एवं स्वभाव-विभाव प्रकाशक ज्ञानकी पर्यायरूप परिणमित ज्ञानी ज्ञानधारामें वर्तता हुआ उसका ज्ञाता रहता है, कर्ता या स्वामी नहीं होता, धर्मीको सर्व कार्योंमें आत्मा समीप है।

'ध्येयको वे भूलते नहीं हैं।'

सर्व विकल्प आदि कार्योंके समय जिसकी दृष्टिमें भगवान ज्ञायक आत्मा ही अधिक हो, मुख्य हो उसे धर्मी कहते हैं। उसे परके लक्षसे स्वल्प राग होने पर भी दृष्टिका विषय जो निज भगवान आत्मा वह छूटता नहीं है। तत्त्व समझने या समझानेका जो विकल्प उठता है वह भी राग है। उस रागसे मुझे या दूसरोंको लाभ होगा, धर्म होगा-यह बात तो यहाँ है ही नहीं, परन्तु अस्थिरताके कारण हुआ वह राग धर्म या लाभदायक नहीं है। रागका लक्ष छोड़कर स्वभावका आश्रय करना—आत्माको समीप रखना-वही लाभदायक है।

❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३७१

जैसे स्वप्नके लड्डुओंसे भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिकाके जलसे प्यास नहीं बुझती, वैसे ही परपदार्थोंसे सुखी नहीं हुआ जाता।

'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥'

—यही सुखी होनेका उपाय है। विश्वास करो॥३७१॥

'जैसे स्वप्नके लड्डुओंसे भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिकाके जलसे प्यास नहीं बुझती, वैसे ही परपदार्थोंसे सुखी नहीं हुआ जाता।'

स्वप्नमें खाये हुए लड्डुओंसे भूख नहीं मिटती, तृषापीड़ित मृगोंकी प्यास मृगजलसे नहीं छिपती, उसीप्रकार परपदार्थोंसे–शरीर, इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके विषयभूत परसामग्रीसे–सुख नहीं हो सकता। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर और वीतराग देव–शास्त्र–गुरु ये सब पर पदार्थ हैं, उनकी भक्तिका भाव शुभराग है, उससे सुखी नहीं हुआ जाता। उससे सुखकी आशा रखना वह मृगमरीचिकाके जलसे प्यास छिपानेकी आशा रखनेके समान व्यर्थ है। श्री जिनेन्द्रभगवान तो ऐसा कहते हैं कि—अपने स्वरूपसन्मुख देखे बिना मात्र हमारे सन्मुख देखेगा तो तुझे राग होगा, क्योंकि हम भी तेरे लिये परपदार्थ हैं। परपदार्थसे या परपदार्थकी ओरके लक्षसे सुखी नहीं हुआ जाता, मात्र ज्ञान एवं सुखस्वभावी निज आत्माके आश्रयसे ही सुखी हुआ जाता है। इसलिये समयसारमें कहा है न! कि—

'इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे,
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।'

समस्त शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न जो निज शुद्ध ध्रुव ज्ञायकभाव उसमें सदा प्रीतिवान बन, जिनेन्द्रभक्ति आदिका जो शुभभाव आये उसकी भी प्रीति छोड़ दे। जिसने भक्ति आदिके शुभरागको उपादेय माना उसे शुद्ध विज्ञानघन निज भगवान आत्मा हेय हो गया है। और जिसने शुद्ध विज्ञानघन निज चैतन्य परमभावको उपादेयरूपसे स्वीकार किया उसे चाहे तो भगवानकी भक्तिका भाव हो अथवा जिससे तीर्थंकर नामकर्म बँधे ऐसा उच्च शुभभाव हो, तथापि वह हेय है। 'इसमें सदा रतिवंत बन' कहकर ऐसा कहा है कि—ज्ञायकस्वभावमें सदा प्रेम और एकाग्रता रख कि जिससे कभी ध्येयसे च्युत न हो, निज शुद्ध ज्ञायकभावसे सदा सन्तुष्ट और तृप्त हो। धर्मी जीवकी दृष्टि और रमणता निज ज्ञायकमें है, इससे वह उसीमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संतुष्ट है; रागमें, फिर भले ही वह भगवानकी भक्तिका अथवा पंचपरमेष्ठीके स्मरणका हो, संतुष्ट नहीं है। प्रभु! तुझे आत्मासे तृप्ति होगी, इसलिये तू वहाँ जा, उससे तृप्त हो, रागादि विभावकी क्रियामें तृप्ति न मान।

'समाधिशतक'में तो यहाँ तक कहा है कि–अरे! हमें यह जो समझानेका विकल्प उठता है वह भी उन्मत्त जैसी चेष्टा है।

कोई मुझे उपदेश दे, मैं अन्यको उपदेश दूँ,
यह सब मेरी उन्मत्तता है, मैं स्वयं अविकल्प हूँ।

यह, चारित्रमोह जनित उन्माद है, दर्शनमोह जनित नहीं है। रागको अपना मानना, उससे लाभ मानना वह दृष्टिकी विपरीततारूप उन्माद, पागलपन या प्रवंचना है। दृष्टिमें सच्चा ध्येय होने पर भी उपदेश देने आदिका जो विकल्प आये वह चारित्र सम्बन्धी अस्थिरतारूप उन्माद है। उस विकल्पको भी छोड़कर तू ज्ञायकस्वभावमें प्रवेश कर। वहाँ जानेसे तुझे उत्तम सुख होगा। अरेरे! यह बहुमूल्य मनुष्यभव चला जा रहा है, भाई! एकबार मृत्यु अचानक ही आ जायगी, वह समाचार भेजकर नहीं आयेगी अकस्मात आयेगी। इसलिये जो ज्ञान और आनंद आदि गुणोंका स्वामी है, निज चैतन्यमय अखण्ड असंख्य प्रदेशोंमें विराजमान है उस निज शुद्ध ज्ञायकद्रव्यमें प्रवेश कर, उसमें प्रीतिवंत और सन्तुष्ट बन, और उसीसे तृप्त–तृप्त हो, जिससे तुझे कोई आश्चर्यजनक, उत्तम एवं अनुपम सुख होगा।

'—यही सुखी होनेका उपाय है। विश्वास करो।'

अतीन्द्रिय त्रिकालशुद्ध निज ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माका अंतरमें स्वोन्मुखता पूर्वक यथार्थ ग्रहण हो, उसीमें अंतरसे प्रीति, संतोष और तृप्ति हो वही एकमात्र सुखी होनेका उपाय है। श्री जिनेन्द्रभगवान द्वारा कहे गये इस सुखी होनेके उपायका विश्वास कर। इस अतीन्द्रिय ज्ञायक परम पदार्थको जड़ इन्द्रियोंसे अपने–अपने विषयोंको खण्ड–खण्ड ग्रहण करनेवाली भावेन्द्रियोंसे तथा इन्द्रियोंके विषयभूत परपदार्थोंसे—साक्षात् अरिहंत भगवान, उनकी दिव्यध्वनि, उनकी प्रतिमा, मन्दिर, शास्त्र आदि सब इन्द्रियोंके विषयभूत परपदार्थ हैं उन सबसे–भिन्न लक्षमें लेकर, उसका (ज्ञायक परम पदार्थका) आश्रय करना वही सुखी होनेका एकमात्र उपाय है। ज्ञानीको भी अस्थिरताके कारण उपयोगका झुकाव परद्रव्योंके प्रति जाता है इतना राग होता है, परन्तु रुचिमें परका आश्रय नहीं है। अहा! ऐसी बातें तो वीतरागी संत ही कहते हैं। अरे, जो अभी राग और विकल्पके खेलमें लगा है उसे आत्मा हाथ नहीं आयगा। प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? विकल्पकी ओटमें कहाँ छिप गया है? दया–दानादि शुभके प्रेममें तेरा भगवान कहीं भीतर लुप्त हो गया है—छुप गया है। अहा! जिसने अपने सच्चिदानन्द प्रभुको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टिमें लिया है, उसको शुभाशुभ विकल्पोंका कोई भी प्रसंग हो तथापि ध्रुव ज्ञायकका लक्ष नहीं छूटता। ध्रुव ध्येयको लेकर उसमें समा जाना वही सुखी होनेका उपाय है। विश्वास करो।

❋

वचनामृत–३७२

जैसे पातालकुआँ खोदने पर, पत्थरकी आखिरी पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर पानीकी जो ऊँची पिचकारी उड़ती है, उसे देखनेसे पातालके पानीका अन्दरका भारी जोर ख्यालमें आता है, उसीप्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराईमें चैतन्यतत्त्वके तल तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होनेसे, जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है उस पर्यायका वेदन करने पर चैतन्यतत्त्वका अन्दरका अनन्त ध्रुव सामर्थ्य अनुभवमें—स्पष्ट ख्यालमें आता है॥३७२॥

सौराष्ट्रमें बोटाद जंकशनके पास 'जनडा' गाँव है। वहाँ खेतीवाड़ीके लिये कुआँ खोदने पर जरा भी पानी नहीं निकला और किसानने थककर खोदना बन्द कर दिया। वास्तवमें एक पत्थरका पटल आड़े आ गया था। एकबार एक बारात वहाँसे निकली और कुआँ देखकर वृक्षकी छायामें खाने–पीनेके लिये रुक गई। पानी निकालनेके लिये कुएँमें लम्बी रस्सी बाँधकर घड़ा डाला, परन्तु पानी होनेके कोई चिह्न दिखायी नहीं दिये। एक बारातीने एक बड़ा पत्थर उठाकर कुएँमें फेंका। बड़ा पत्थर गिरनेसे वह पत्थरका पटल टूट गया और छेद हो जानेसे पानीकी इतनी जोरदार पिचकारी छूटी कि कुएँके मुहाने पर खड़े लोग भीग गये। अब तो वहाँ पानीका इतना विशाल भण्डार है कि अठारह रहँट लगाने पर भी पानी कभी कम नहीं होता।

पानीकी पिचकारी भले ही पतली हो, परन्तु ऊँचाई तक जोरसे आनेके कारण उसके अन्दरकी तीव्रताका ख्याल आता है, उसीप्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराईमें शुद्ध ज्ञायकतत्त्वके भण्डार तक दृष्टि पहुँच जानेसे सम्यग्दर्शन होने पर जो आंशिक शुद्ध पर्याय प्रगटती है उसका वेदन करने पर चैतन्यमूर्ति ज्ञायकतत्त्वका अंतरंग शक्तिरूप अनन्त अपार ध्रुव सामर्थ्य अनुभवमें—स्पष्ट ख्यालमें आता है।

यह भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्दादि अनंत–अनंत सहज समृद्धियोंका भण्डार सदा अंतरमें विद्यमान है; उसे सूक्ष्म उपयोग द्वारा अर्थात् वर्तमान वर्तती ज्ञानपर्यायको धीर–शांत करके, शुद्ध ज्ञायकतत्त्वके चिंतनकी गहराईमें उतरकर, ग्रहण करनेसे—ज्ञायकका आश्रय लेनेसे—जो सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानरूप अंशतः निर्मल दशा प्रगटती है उसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वसंवेदन करनेसे—भले ही वह निर्मलता आंशिक है, स्वल्प है तथापि—उस ज्ञायक भगवान ध्रुव आत्माका अंतरंग समृद्धिसे भरपूर परिपूर्ण सामर्थ्य स्पष्ट अनुभवमें आता है।

उपयोग ज्ञानगुणकी पर्याय है। उपयोगको सूक्ष्म करके—जीव स्वयं धीर-गम्भीर होकर-गहराईमें अर्थात् जहाँ चैतन्यके असंख्य प्रदेशोंमें उपयोग पर्याय है वहीं—पर्यायके समीप ही—भीतर चैतन्यका जो ध्रुवतल है उसमें दृष्टि पहुँच जानेसे सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूति होते हैं। सम्यग्दर्शन होने पर धर्मकी प्रथम सीढ़ी प्राप्त होती है। लोग कहते हैं कि—देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा और भक्ति निरन्तर करे तो सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु यह बात बिलकुल झूठी है; ज्ञायक स्वभावके आश्रय बिना, उसकी थाह लिये बिना, सम्यग्दर्शनरूपी धर्म-मोक्षमार्गका प्रारम्भ—कदापि नहीं होता।

जिस स्वसन्मुख उपयोग द्वारा आत्माका ग्रहण हो उसे सूक्ष्म कहते हैं और जो उपयोग बाहर जाय, शुभाशुभ भावोंमें लगे उसे स्थूल कहा जाता है। स्थूल उपयोग द्वारा परसे तथा विभावसे भिन्न त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायक पदार्थ-आत्मा-का ग्रहण नहीं होता। समयसारमें अशुभ तथा शुभ दोनों परिणामोंको अत्यन्त स्थूल और मात्र आत्मस्वभावको ही सूक्ष्म कहा है। उपयोगको स्थूल ऐसे शुभाशुभ भावोंसे विमुख करके सूक्ष्म बनाये अर्थात् गहराईमें सूक्ष्म ऐसे शुद्ध ज्ञायक तत्त्वके तल तक ले जाय तो भगवान आत्माका यथार्थरूपसे ग्रहण हो—पकड़में आये। अहा! अत्यन्त अलौकिक बात है।

सूक्ष्म अर्थात् स्वसन्मुख उपयोग द्वारा, गहराईमें—ऊपरी शुभाशुभ भावोंमें नहीं परन्तु उनके पीछे सदा विद्यमान ज्ञानादि अत्यन्त सामर्थ्यसे भरपूर, ध्रुव चैतन्यतलमें—दृष्टि पहुँच जानेसे, सानुभव सम्यग्दर्शन होने पर, शुद्धताका जो अंश प्रगट हुआ उसका उपभोग करनेसे चैतन्यतत्त्वका-ध्रुव ज्ञायक द्रव्यसामान्यका—भीतर शक्तिरूप पड़ा हुआ महान सत्त्व अनुभवमें—स्पष्ट ख्यालमें आता है। अहा! भाषा सादी है, परन्तु उसमें माल भरा है।

ध्रुव ज्ञायक द्रव्यसामान्यमें अनन्तानन्त सामर्थ्य भरा है। अनन्त सामर्थ्ययुक्त ज्ञायक आत्माका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्मका प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति होनेसे ध्रुव ज्ञायकका अनंत सामर्थ्य स्पष्ट अनुभवमें आता है। ध्रुवतत्त्वमें कितना बल, कितनी शक्ति और सामर्थ्य है उसका उपयोगको सूक्ष्म करके तत्त्वकी गहराईमें उतरनेसे सम्यग्दर्शन होने पर स्पष्ट ख्याल आ जाता है। शुभाशुभ भाव राग है, विकल्प है, उसके लक्षसे स्वभावसामर्थ्यका ख्याल नहीं आता। उपयोगको सूक्ष्म करके ध्रुवतलमें ले जाने पर सम्यग्दर्शनरूपी जो तीव्र धारा छूटती है उसके द्वारा निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके भीतर भरे हुए अनन्त ध्रुव बलका स्पष्ट अनुभव होता है कि अहा! कैसा अद्भुत सामर्थ्य है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्माका ध्रुवतल देखने पर उसकी गहराईमें उतरने पर–अरे! उस शाश्वत तलमें पहुँचे कैसे? बहिर्लक्षी स्थूल उपयोग द्वारा भीतर नहीं पहुँचा जाता, उपयोगको सूक्ष्म करे, अन्तरोन्मुख हो तब ध्रुव ज्ञायकतल दृष्टिगोचर होता है, दिखायी देता है—जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा अंशतः स्वरूपाचरण चारित्रकी निर्मल दशा प्रगट होती है उसके साथ स्वानुभूति, आनन्द, शान्ति, स्वच्छत्व, ईश्वरत्व, शुद्धत्व आदि सर्व गुणोंके निर्मल अंश प्रगट होते हैं। उस आंशिक शुद्धताके वेदनमें भगवान आत्माके ध्रुवतलकी सामर्थ्यभरपूर पूर्ण शुद्धता कितनी है उसका एकदम स्पष्ट ख्याल आ जाता है, आंशिक शुद्धताके संवेदन बिना ध्रुवतलके परिपूर्ण सामर्थ्यका ख्याल नहीं आता।

जो ज्ञायक ध्रुवतल है उसमें सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र, सहज आनन्द, सहज शान्ति, सहज स्वच्छता, सहज प्रभुता, सहज पुरुषार्थ आदि अनन्त शक्तियाँ अनन्तानन्त सामर्थ्यसहित भरी पड़ी हैं। ऐसे अनन्तानन्त समृद्धिभरपूर ध्रुव ज्ञायक तलको दृष्टिमें लेने पर, सम्यग्दर्शनका कण फूटनेसे 'वह ज्ञायकतल इतना बड़ा महान तत्त्व है'—ऐसा उसके परिपूर्ण सामर्थ्यका स्पष्ट ख्याल आ जाता है; स्वसन्मुख दृष्टि द्वारा अंशतः शुद्धता विकसित हुए बिना अन्य किसी प्रकार ध्रुवतलके सामर्थ्यका ख्याल नहीं आता।

जिसमें अनन्त धर्म भरे पड़े हैं ऐसे धर्मीमें—भगवान आत्मामें—सम्यग्दर्शनकी निर्मल पर्याय प्रगट हो तथापि परिपूर्ण सामर्थ्ययुक्त श्रद्धागुण तो ज्योंका त्यों है; स्वरूपाचरणचारित्रका अंश अथवा यथाख्यातरूप पूर्ण चारित्र प्रगट हो तथापि भीतर जो चारित्र नामका गुण है वह तो अपने परिपूर्ण सामर्थ्यसहित सदा ज्योंका त्यों है; केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हो तब भी अनन्त सामर्थ्य सहित ज्ञानगुण अंतरमें सदा परिपूर्ण ज्योंका त्यों है; उसीप्रकार पर्यायमें आनन्दका वेदन चाहे जितना व्यक्त हुआ हो, परन्तु परिपूर्ण अनन्त सामर्थ्य सहित त्रैकालिक आनन्द गुण तो अंतरमें सदा ज्योंका त्यों विद्यमान है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर इन सब गुणोंके निर्मल अंशके वेदन द्वारा गुणोंके भीतर भरा हुआ अनंत ध्रुवसामर्थ्य अनुभवमें—स्पष्ट ख्यालमें आता है। अहा! ऐसा है वस्तुस्वरूप। यह (वचनामृत पुस्तक) अपने आप पढ़ ले तो समझमें नहीं आयगी। इसके प्रत्येक बोलमें कितना रहस्य भरा है!

द्रव्य, गुण और पर्याय—यह तीनों मिलकर पूर्ण अखण्ड वस्तु है न? आत्मा भी द्रव्य–गुण–पर्यायस्वरूप पूर्ण अखण्ड वस्तु है। उसके ज्ञानगुणकी पर्यायमें उपयोगकी सूक्ष्मता होनेसे वह सूक्ष्म स्वरूपको—चैतन्यवस्तुके ध्रुवतलको—प्राप्त कर लेती है। चैतन्यके ध्रुवतलको प्राप्त करने पर श्रद्धागुणकी जो सम्यग्दर्शनरूप निर्मलदशा प्रगट होती है उसके साथ ज्ञान, शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता आदि अनन्तानन्त गुणोंके भी निर्मल अंश व्यक्त होते हैं। 'सर्वगुणांश ते सम्यक्त्व'—इस न्यायसे समस्त गुणोंकी आंशिक व्यक्तता, सम्यग्दर्शन होने पर, वेदनमें आती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। अनन्त गुणोंकी आंशिक व्यक्तता भले ही एक-एक गुणकी पृथक्-पृथक्‌रूपसे ख्यालमें न आये, तथापि आंशिक शुद्धिके वेदनमें उन सबका वेदन साथ आ जाता है। चैतन्यकी आंशिक शुद्धिका वेदन करते हुए त्रैकालिक ध्रुववस्तु कितनी है, कितने सामर्थ्यसे भरपूर है, अंशमें इतनी शक्ति है तो त्रैकालिक ध्रुव सत्त्वमें कितनी शक्ति! आदि चैतन्य ज्ञायक तत्त्वके भीतरका अनन्तानन्त ध्रुव सामर्थ्य स्पष्ट ख्यालमें आता है। अहा! तीन लोकके नाथ सर्वज्ञ-वीतरागका यह आदेश है। बहिनके (बहिनश्री चम्पाबेनके) मुखसे यह निकला है। वस्तुकी स्थिति यही है। भाषा बिलकुल सादी-गुजराती और बारह अंगका सार! उन्हें तो पुत्रियों (ब्रह्मचारिणी बहिनों)के लिये कहना था न! उन्हें कहाँ कुछ है?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवका हम पर महान उपकार है, हम तो उनके दासानुदास हैं.....श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ वे आठ दिन रहे थे, इस विषयमें अणुमात्र शंका नहीं है। यह बात ऐसी ही है; कल्पना मत करना, इन्कार नहीं करना; मानों तो भी ऐसी है, नहीं मानो तो भी ऐसी ही है। यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१४५

दिनांक ९-११-७८

वचनामृत–३७३

सब तालोंकी कुंजी एक—'ज्ञायकका अभ्यास करना'। इससे सब ताले खुल जायँगे। जिसे संसारकारागृहसे छूटना हो, मुक्तिपुरीमें जाना हो, उसे मोह–राग–द्वेषरूप ताले खोलनेके लिये ज्ञायकका अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिये॥३७३॥

"सब तालोंकी कुंजी एक—'ज्ञायकका अभ्यास करना'।"

बात बड़ी सूक्ष्म है, मूल रकमकी है न? सब तालोंकी चावी('Masterkey')—एक कि 'ज्ञायकका अभ्यास करना'।

प्रश्न :—'ज्ञायकका अभ्यास करना'—इसका अर्थ क्या?

उत्तर :—ज्ञानस्वरूप असाधारण—शरीर, वाणी, घट, पटादि अजीव पदार्थोंमें न हो ऐसे—ज्ञानलक्षण द्वारा जाननेमें आता, ज्ञान–दर्शन–सुख–वीर्यादि अनन्त गुणोंके पुंजरूप, अमूर्त ऐसा जो आत्मद्रव्य वह सम्पूर्ण उसके ज्ञानगुणकी प्रधानतासे 'ज्ञायक' कहा जाता है। ज्ञायकद्रव्य, उसके ज्ञानादि गुण और ज्ञातृक्रिया आदि उसकी पर्यायें—इसप्रकार उसके द्रव्य–गुण–पर्यायका प्रथम ज्ञान करना चाहिये। त्रैकालिक अखण्ड जीव पदार्थ वह द्रव्य है, उसकी त्रैकालिक अखण्ड शक्तियाँ वे गुण हैं और द्रव्य तथा गुणोंकी वर्तमान परिवर्तित होती अवस्था वह पर्याय है। जिसे आत्मकल्याण करना हो उसे सर्वप्रथम इन तीनोंका स्वरूप जैसा है वैसा समझकर, वर्तमान पर्याय तथा गुण भेदसे रहित त्रैकालिक ध्रुव अभेद द्रव्यसामान्यका—ज्ञायक परमपदार्थका—श्रद्धा–ज्ञानमें आश्रय करना चाहिये। चिदानन्दस्वरूप ध्रुव ज्ञायक देव–शास्त्र–गुरु आदि निमित्तोंसे तो भिन्न है ही, परन्तु उनके लक्षसे होनेवाला जो भक्तिका भाव है वह भी राग है और ज्ञायकसे भिन्न है, क्योंकि वह विभावभाव है, ज्ञायकका स्वभावभाव नहीं है। ज्ञायक विभावसे तो भिन्न है, परन्तु विभावको जाननेवाली जो वर्तमान पर्याय है उतना वह नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञान और आनन्दादि अनन्त समृद्धिसे भरपूर त्रिकालशुद्ध अभेद परमपदार्थ है। उसे श्रद्धा–ज्ञानमें ग्रहण करनेके लिये जो बारम्बार प्रयत्न करे उसे अभ्यास कहते हैं।

ज्ञायक आत्मामें गुणोंके अनन्त भण्डार हैं, परन्तु अनादि मिथ्यात्वसे उसके ताले बन्द हैं, कभी खुले नहीं हैं। उसे अनन्त भण्डारके ताले खोलनेकी कुंजी एक है—'ज्ञायकका अभ्यास

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना'। 'ज्ञायक' वह जीवका त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभाव है और 'अभ्यास' वह जीवद्रव्यकी वर्तमान पर्याय है। वर्तमान पर्याय जो अनादिकालसे बाह्योन्मुख हो रही है, उसे ध्रुव स्वभावोन्मुख–ज्ञायकोन्मुख करना वह सब तालोंकी कुंजी है। देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका विकल्प, भक्ति–व्रत–तप–पंचपरमेष्ठीस्मरण आदिका विकल्प, शास्त्रके अभ्यासका विकल्प—यह सब तो राग है। उससे भिन्न जो ज्ञायक प्रभु उसके सन्मुख होकर श्रद्धा–ज्ञान और एकाग्रताका अभ्यास करना। अहा! ऐसी बात है, यह मूल रकमकी बात है।

प्रश्न :—अभ्यासके बदले ज्ञायकका ध्यान करें तो?

उत्तर :—भाई! ज्ञायक किसे कहा जाता है वह जाने बिना ध्यान किसका करेगा? ध्यान तो एकाग्रताका नाम है; प्रथम तो ज्ञानादि अनन्त गुणके पुंज ऐसे निज त्रिकालशुद्ध ज्ञायककी सन्मुखताका सम्यक् प्रकारसे अभ्यास करके उसमें परिणतिकी जो एकाग्रता हो उसे ध्यान कहते हैं। अहा! यह शान्ति प्रगट होनेका सच्चा उपाय है, इसके सिवा बाकी सब अशान्ति है। अज्ञानी जीवको अनादिसे भले ही दया, दान, भक्ति, प्रभुस्मरण आदि करता हो तथापि, अशान्ति है। वास्तवमें सच्ची अंतरंग शान्ति चाहिये हो, मोक्ष और मोक्षमार्गकी आवश्यकता हो, भवभ्रमणकी पीड़ा दूर करना हो, तो जिसमें भव और भवभ्रमणके हेतुभूत विकारीभाव नहीं हैं, अरे! जो वर्तमान पर्याय जितना नहीं है, उस अनन्त सामर्थ्यवान ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको ग्रहण करनेका अभ्यास अंतर्मुख परिणतिपूर्वक करना चाहिये। नित्यानन्द चैतन्यप्रभुकी ओर रुचिको मोड़ना चाहिये। अहा! ऐसी सूक्ष्म बात है भाई! जगतसे बिलकुल भिन्न बात है।

'इससे सब ताले खुल जायँगे।'

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व आदि अनन्त समृद्धिसे भरपूर निधानोंको अनादि अज्ञानके कारण ताले लगा रखे हैं; ज्ञायकके अन्तर्मुख अभ्याससे वे सब ताले खुल जायँगे। लोग **'Master Key'** कहते हैं न? सब तालोंमें लग जाय ऐसी यह कुंजी है। इस एक त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायक स्वभावमें दृष्टि स्थापित करना, उसके परिपूर्ण शुद्ध स्वरूपको पहिचानकर, उसका विश्वास करके उसमें एकाग्र हो जाना, यही मोक्षका मार्ग है। नित्य स्थिर स्वभावके आश्रयसे दृष्टि स्थिर होती है, परन्तु जो स्वयं अस्थिर है, क्षणिक है, पलट जाना जिसका स्वभाव है ऐसी एक समयकी पर्यायके आश्रयसे दृष्टि कैसे स्थिर होगी? इसलिये ध्रुव चैतन्य ज्ञायकस्वभाव जोकि स्वभावतः स्थिर है उसका आश्रय लेने पर ही दृष्टि स्थिर होगी। ज्ञायकका अभ्यास और दृष्टि होनेसे अनादिके लगे हुए सब ताले खुल जायँगे और अचिंत्य निधान प्रगट होंगे। इसलिये सर्वप्रथम 'मैं रागादिसे भिन्न शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसा अभ्यास सम्यक् प्रकारसे करो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकके अभ्यासकी बात लोगोंको कठिन लगती है; 'एकान्त है.....एकान्त है' कहकर लोग चिल्ल-पों मचाते हैं; 'व्यवहारसे—क्रियाकाण्डसे भी धर्म होता है' ऐसा कहो तब अनेकान्त होगा ऐसा कहते हैं। भाई! दया, दान, पूजा, भक्ति आदि व्यावहारिक भाव तो शुभराग है, आस्रव है और बंधका कारण है; आस्रवभावको धर्म अर्थात् संवर-निर्जरा माननेको भगवानने मना किया है।

प्रश्न :—'प्रचण्ड कर्मकाण्डसे अखण्ड ज्ञानकाण्ड प्रचण्ड होता है' ऐसा शास्त्रमें आता है न?

उत्तर :—वह कथन व्यवहारकी अपेक्षा है। ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे जिसे दृष्टि, ज्ञान और अंशतः स्थिरता परिणमित हुई है ऐसे साधक जीवको, अशक्तिके कारण भूमिकानुसार जो व्यवहार रत्नत्रयरूप-शुभरागरूप-प्रचण्ड कर्मकाण्ड हठरहित वर्तता है उसमें अखण्ड ज्ञानकाण्ड प्रचण्ड होनेके हेतुपनेका व्यवहारसे आरोप किया जाता है; वास्तवमें तो साथ वर्तती स्वभावाश्रित शुद्धि ही हेतु है। प्रचण्ड कर्मकाण्ड अर्थात् व्यवहाररत्नत्रयका शुभराग अखण्ड ज्ञानकाण्डका-उग्र वीतरागपरिणतिका-वास्तवमें कारण नहीं बन सकता; ज्ञायक स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट हुई मन्द शुद्धि ही आगे चलकर उग्र वीतराग परिणतिका-अखण्ड ज्ञानकाण्डका-साधन बनती है। ज्ञानकाण्डके हेतुपनेका व्यवहारसे आरोप मात्र ज्ञानीके भूमिकानुसार शुभभावमें लागू होता है, परन्तु जिसे त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि या अनुभूति नहीं है ऐसे अज्ञानीके शुभभावमें ज्ञानकाण्डके हेतुपनेका आरोप व्यवहारसे भी लागू नहीं हो सकता। अहा! सूक्ष्म बात है भाई! इस बातका लोगोंमें चलन नहीं था और यहाँसे (पूज्य गुरुदेव द्वारा) जब प्रगट हुई तब लोगोंमें खलबली मच गई।

आत्मद्रव्यमें दो भाग हैं—एक त्रैकालिक ध्रुव भाग और दूसरा है वर्तमान पलटता हुआ भाग; आत्मवस्तुको अपने बदलते अंश—परिणमित होते अंश—द्वारा अपने त्रिकालशुद्ध ज्ञायक ध्रुवस्वभावका अभ्यास करना है। पर्यायका काल एक समयका है और ज्ञायक ध्रुवकी अवधि त्रैकालिक है। सर्वकालमें परिपूर्ण ध्रुव ऐसे ज्ञानादि अनन्त सामर्थ्यसे—अनन्त ऋद्धियोंसे—भरपूर ऐसे अनन्त निज द्रव्यसामान्यका—ज्ञायकका—परिणतिको अंतर्मुख करके अभ्यास करने पर, अनन्त गुणोंको रागकी एकताके जो ताले लगा रखे थे वे खुल जाते हैं, और ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, ऐश्वर्य, जीवत्व, कर्ता, कर्मादि अनंत स्वभाव परिणमनमें खिल उठते हैं। अहा! ऐसी बात है भाई!

'जिसे संसार-कारागृहसे छूटना हो, मुक्तिपुरीमें जाना हो, उसे मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलनेके लिये ज्ञायकका अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिये।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिथ्यात्व और रागद्वेषके भाव संसाररूपी कारागृह है। आत्मस्वरूपके सम्बन्धमें भ्रान्ति, विषयानुराग तथा द्वेषरूप अशुभभाव तो संसारकारागृह हैं ही, परन्तु दया, दान, भक्ति, व्रत, तपस्या आदिके जो शुभभाव हैं वे भी संसार हैं, उनसे भी कर्मबन्धरूप बेड़ी लगती है। ज्ञानीको भी शुभभाव आते हैं, परन्तु उनकी रुचि नहीं होती। ज्ञायककी जो रुचि हुई है उससे ज्ञानी च्युत नहीं होते, और अज्ञानी तो, ज्ञायकके अद्भुतस्वभावकी प्रतीति एवं महिमा नहीं होनेसे, अशुभ बदलकर जो शुभभाव करता है उसीकी रुचिमें पड़ा है और मानता है कि हम कुछ तो धर्ममें आ गये, हमने धर्म किया।

संसार तो मोह–राग–द्वेषरूपी भयंकर अंधकूप है। उस कुएँसे, दुःखमय यातनासे जिसे छूटना हो, शाश्वत सुखकी प्राप्ति करना हो, उसको समस्त विभावोंसे भिन्न निज ज्ञायकका अभ्यास करना। पत्नी, पुत्र, परिवार या पैसा कही संसार नहीं है; यदि वह सब संसार हो तो मृत्यु होने पर सबको वह सब तो छूट जाते हैं, तो क्या उसका मोक्ष हो गया कहा जायगा?—नहीं, नहीं। सं+सार अर्थात् स्वरूपमेंसे संसरण होना; स्वरूपसे च्युत होकर शुभाशुभ भावमें जो एकत्वबुद्धि तथा आसक्त परिणतिका होना वह संसार है। जिसे संसाररूपी दुःखमय कारागृहसे छूटना हो, पूर्ण परमानन्द स्वरूप मुक्तिदशा प्रगट करना हो, उसे संसारपरिभ्रमणके हेतुभूत ऐसे मोह–राग–द्वेषके ताले खोलनेके लिये—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रादि निज निधान प्रगट करनेके लिये—ज्ञायकका अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगाना चाहिये।

ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभावसे तो सदा मुक्त ही है, द्रव्यस्वभाव कभी बँधा ही नहीं है, बंध तो मात्र पर्याय–अपेक्षासे है। पर्यायमें जिसे मुक्ति प्राप्त करना हो, परमानन्दमय शाश्वत सिद्धदशाकी आवश्यकता हो, उसे त्रिकाल मुक्त ऐसे निज ज्ञायकका अभ्यास करना। अहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, पाँच पंक्तिका पैरा है, परन्तु भीतर भाव बहुत गहरे हैं।

प्रश्न :—'ज्ञायकका अभ्यास' तो कठिन लगता है, कोई व्रत और प्रतिमाका अभ्यास करनेको कहिये न?

उत्तर :—भाई, व्रत और प्रतिमाके अभ्यासकी क्या बात कहें? सच्चे व्रत और प्रतिमा किन्हें कहा जाता है? कि–प्रथम चिदानन्दमूर्ति निज ज्ञायकका सम्यक् अभ्यास होनेसे मिथ्यात्व और अज्ञानके ताले खुलकर जिसके अंतरमें ध्रुव ज्ञायकके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा अंशतः स्वरूपाचरणचारित्रकी शुद्धि प्रगट हुई हो उस साधक जीवको शुद्धिमें—स्थिरतामें आगे बढ़ने पर साथमें रही चारित्रकी अशक्तिके कारण, व्रत और प्रतिमाके शुभ विकल्प होते हैं; वे शुभ विकल्प बंधका कारण हैं, संवर, निर्जरा या मोक्षका नहीं। जिसे अभी ज्ञायककी प्रतीति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही नहीं है उसके व्रत या प्रतिमा सच्चे नहीं हो सकते। इसलिये भगवानने प्रथम ज्ञायकका अभ्यास करना कहा है, व्रतादिका नहीं। ज्ञायकका अभ्यास अनादि अनभ्यासके कारण कठिन लगता हो, परन्तु यदि अंतरकी सच्ची लगनपूर्वक किया जाय तो वह अभ्यास सरल हो जाता है।

धर्मस्थानकमें जाकर सामायिक, प्रतिक्रमणादि बाह्य क्रिया करता है और उसमें धर्म मानता है, परन्तु भाई! वह सब क्लेश है। यह सुनकर लोग चिल्लपों मचाते हैं, परन्तु भाई! समयसारमें कहा है न! कि–महाव्रत और तपके भारसे टूट मरते हुए क्लेश प्राप्त करते हो तो करो; परन्तु समस्त क्लेश रहित यह ज्ञानपद ज्ञानगुण बिना किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं किया जा सकता। तथा सच्चा धर्मस्थानक तो अपना ध्रुव ज्ञायक आत्मा है; उसमें एकाग्रता होने पर शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है; इसलिये मोह–राग–द्वेषके ताले खोलनेके लिये ज्ञायकका अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगाना।

प्रश्न :—'एक ही कुंजी लगाना' वह तो एकान्त हो गया?

उत्तर :—हाँ, सम्यक् एकान्त ही है। 'अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है।' 'ज्ञायकका अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगाना' किन्तु दूसरी—बाह्य ज्ञान, भंग भेद, पहाड़े, धारणाज्ञान, परद्रव्यके ग्रहण–त्याग, शरीरादिकी क्रिया आदिरूप—झूठी कुंजी नहीं लगाना; —इसप्रकार उसमें 'अनेकान्त' आ गया।

❋

वचनामृत–३७४

शुभ रागकी रुचि वह भी भवकी रुचि है, मोक्षकी रुचि नहीं है। जो मन्दकषायमें सन्तुष्ट होता है, वह अकषायस्वभावी ज्ञायकको जानता नहीं एवं पाता नहीं। गुरुदेव पुकार–पुकारकर कहते हैं कि ज्ञायकका आश्रय करके शुद्ध परिणति प्रगट कर; वही एक पद है, शेष सब अपद है।।३७४।।

'शुभरागकी रुचि वह भी भवकी रुचि है, मोक्षकी रुचि नहीं है।'

मैंने इतनी दया पालन की, इतना सत्य बोला, नववाड़से ब्रह्मचर्यका पालन किया, इतने महाव्रत पाले—ऐसी जिसे रागकी रुचि है उसे भवकी रुचि है, मोक्षकी रुचि नहीं है। शुभराग भी भवका हेतु है, और भगवान ज्ञायक आत्मा तो भव और भवके हेतुस्वरूप भावोंके अभावस्वरूप—अभवस्वरूप है। जिसे भवके हेतुकी रुचि है उसे उसके फलस्वरूप भवकी ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि है। उस न्यायसे जिसे देव–शास्त्र–गुरुकी भक्तिस्वरूप शुभरागकी रुचि है उसे भवकी ही रुचि है, अभवस्वरूप निज ज्ञायककी रुचि नहीं है; और जिसे मुक्तिके आश्रयभूत ज्ञायककी रुचि नहीं है उसे वास्तवमें मोक्षकी ही रुचि नहीं है। ज्ञानीको भी अस्थिरताके कारण व्रतादिके शुभ भाव आते अवश्य हैं, परन्तु अंतरमें उनकी रुचि नहीं है; उसे रुचि तो मात्र त्रिकालशुद्ध ज्ञायकभावकी ही है। अहा! ऐसी बात है; इसमें कोई महान पण्डिताईकी जरूरत है या अनेक शास्त्रोंके अध्ययनकी आवश्यकता है ऐसा कुछ नहीं है।

ढाई द्वीपके बाहर असंख्य तिर्यंच सम्यक्त्वी हैं। हजार योजनका मच्छ भी सम्यक्त्व प्राप्त करता है। उसे अंतरमें ध्रुव ज्ञायककी रुचि हो गई है। भगवान ज्ञायक आत्माके सिवा, रुचिमें रागका एक अंश भी नहीं रुचता। दृष्टिमें तो आलम्बनभूत त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायक ही उसे रुचता है, पर्याय या गुणभेद भी नहीं रुचते।

मिथ्यात्व वह महासंसार है; शुभराग भी संसार है; शुभरागकी रुचि वह महासंसार है। जिसे पूजा, भक्ति आदि शुभभावकी रुचि है उसे शुभाशुभ समस्त विभावसे रहित ऐसे मोक्षकी रुचि नहीं है। शुभरागकी रुचि व० भवकी रुचि है, मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वभाव तो संसारका मूल है ही, परन्तु बहिन तो यहाँ कहती हैं कि—राग भी संसार है। श्री योगीन्दुदेवने परमात्मप्रकाशमें कहा है कि—जिसको शुभराग उपादेय है उसे रागरहित निज शुद्धात्मा हेय है; जिसे शुभभावका—व्यवहाररत्नत्रयका—प्रेम है उसे त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकभावका तिरस्कार है; जिसे ज्ञायकभाव उपादेय है उसे शुभाशुभ समस्त व्यवहार भाव हेय हैं। ज्ञानीको रागभाव आये परन्तु अंतरमें उसे वह हेय है, उसकी रुचि नहीं है।

'जो मन्द कषायमें सन्तुष्ट होता है वह अकषायस्वभावी ज्ञायकको जानता नहीं एवं पाता नहीं है।'

क्या कहते हैं? कि—क्रोध, मान, माया और लोभ—यह चार कषाय हैं। क्रोध और मानका द्वेषमें तथा माया और लोभका रागमें समावेश होता है। जो राग और द्वेषकी मन्दतामें अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभकी मंदतामें सन्तुष्ट हो जाता है वह अपने अकषायस्वभावी ज्ञायक महापदार्थका अनादर–तिरस्कार करता है, उसे भगवान ज्ञायक आत्मा यथार्थरूपसे जाननेमें नहीं आता तथा प्राप्त नहीं होता।

अज्ञानी रागकी मंदतामें सन्तुष्ट होकर मानता है कि–मैंने बहुत कर लिया। क्या किया? कि—व्यापार–धंधा छोड़ा, पत्नी पुत्र एवं परिवारका संग छोड़ा, जीवदया पाली, गरीबोंको दान दिया, मन्दिर बनवाये, प्रतिष्ठाएँ करवायीं, गजरथ चलवाये, अहाहा! कितने महान कार्य किये?—इसप्रकार धर्मके नामकी बाह्यक्रियाओंमें तथा रागकी मंदतामें जो सन्तुष्ट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जाता है वह अंतरमें वीतरागमूर्ति ज्ञायकस्वभावी निज आत्माको जानता नहीं है और प्राप्त नहीं करता। अहा! कैसी सादी गुजराती भाषा है।

अरेरे! मंदकषायके प्रेमी—कितने ही दिगम्बर नामधारी साधु भी—कहते हैं कि—इस वर्तमान पंचमकालमें शुभोपयोग ही होता है, शुद्धोपयोग होता ही नहीं। अरे भाई! तुम यह क्या कहते हो? 'इस कालमें शुद्धोपयोग होता ही नहीं' अर्थात् इस कालमें धर्मध्यान ही नहीं होता? यदि धर्मध्यान नहीं हो तो इस कालमें धर्म ही नहीं है—ऐसा सिद्ध हुआ। भगवानने धर्मध्यानरूप शुद्धोपयोग तो पंचमकालके अंत तक कहा है। धर्मका विच्छेद तो छठवें आरेमें कहा है। मोक्षपाहुडमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने पंचमकालमें शुद्धोपयोगरूप धर्मध्यान कहा है :—

भरते दुषमकाळेय धर्मध्यान मुनिने होय छे;
ते होय छे आत्मस्थने, माने न ते अज्ञानी छे॥6॥

शुभोपयोग तो राग है; उसे शास्त्रमें हेय और विषकुम्भ कहा है। जिसको अंतरमें आत्माश्रित शुद्धिरूप निश्चय परिणमित हुआ है उसके भूमिकानुसार वर्तते शुभरागको व्यवहारसे अमृत कहा जाता है, परन्तु निश्चयदृष्टिसे वह भी विष है। समयसारके मोक्ष–अधिकारमें कहा है कि—

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण, त्यों परिहरण निवृत्ति धारणा।
अरु शुद्धि, निंदा, गर्हणा— यह अष्टविध विषकुंभ है॥३०६॥

इसप्रकार प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित्त, भगवानकी पूजा, दर्शनादि सब शुभ भाव विष हैं, अरे! जिस भावसे तीर्थंकर–नामकर्म बँधता है वह शुभभाव भी विष है; जिसे उसकी रुचि है उसे विषकी–भवकी रुचि है।

क्या कहें? कटु लगे ऐसी बात है। वास्तवमें तो शुभरागमें धर्म और वस्त्र–पात्र सहित मुनिपना मानने और मनवानेवाले समस्त नामधारी जैनसाधु मिथ्यादृष्टि हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने तो सूत्रपाहुडमें कहा है कि—

नहिं वस्त्रधर सिद्धि लहे, वे होय तीर्थंकर भले;
बस नग्न मुक्तिमार्ग है, बाकी सभी उन्मार्ग हैं॥२३॥

अंतरमें जिसे विकल्प रहित आनन्दका नाथ—ज्ञायक जागृत हुआ है उसे यदि भाव तथा द्रव्य निर्ग्रंथदशा–अंतरमें मिथ्यात्व और अविरतिजनित रागादि तथा बाह्यमें शरीरके ऊपर वस्त्रका टुकड़ा भी नहीं ऐसी सहज दशा—प्रगट हो तभी मुक्तिमार्ग अर्थात् मुनिदशा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कही जाती है। उसके सिवा वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मनवानेवाले सब उन्मार्गी हैं। पं. टोडरमलजीने उनको जैनमतमें नहीं, किन्तु अन्यमतमें ही गिना है। भाई! बात कुछ कटु है, परन्तु हितकारी है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने सूत्रपाहुडमें ऐसा कहा है कि—अंतरमें मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबंधी आदि कषायोंकी तीन चौकड़ीके अभावजनित जिसे निर्विकल्प आनन्दमय रमणता और बाह्यमें वस्त्ररहित नग्नपना होता है उसे मोक्ष प्रगटता है; परन्तु जो वस्त्रका टुकड़ा भी रखकर मुनिपना माने, मनाये और माननेवालोंको अच्छा माने वह 'जाइ णिग्गोदं'—निगोदमें जाता है।

जन्म्या प्रमाणे रूप, तलतुषमात्र करमां नव ग्रहे,
थोडुंघणुं पण जो ग्रहे तो प्राप्त थाय निगोदने॥१८॥

भाई! यह तेरे हितकी बात है, अनादरकी बात नहीं है। तूने ऐसे अनन्त भव किये हैं, भाई! तू त्यागी होकर और व्रत लेकर तख्त पर बैठा, इसलिये वर्तमानमें लोग—व्यापार-धंधेमें पड़े हुए, जिन्हें तत्त्वकी खबर नहीं है ऐसे बेचारे साधारण बनिये—तुझे साधु मानेंगे, परन्तु वस्त्रादि परिग्रहरहित दशाको मुनिपना मानने-मनानेका फल बहुत कड़वा होगा। यहाँ तो यह बात चलती है कि-जो मंद कषायमें सन्तुष्ट हो जाता है, वह अपने सहज शुद्ध अकषाय ज्ञायकभावको जानता नहीं है और प्राप्त नहीं करता। दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रभुके नामका स्मरण, शास्त्रपठन आदिमें होनेवाला जो शुभ राग—कषायकी मंदतामें जो जीव सन्तुष्ट हो जाता है, वह वीतरागस्वरूप निज ज्ञायकस्वभावको जानता नहीं है और प्राप्त नहीं करता। फिर बहिनके शब्द हैं कि—

'गुरुदेव पुकार-पुकारकर कहते हैं कि ज्ञायकका आश्रय करके शुद्ध परिणति प्रगट कर; वही एक पद है, शेष सब अपद है।'

त्रिकालशुद्ध, ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त, अपार ऋद्धियोंसे भरपूर, चैतन्य विज्ञानघन ऐसे निज ज्ञायक द्रव्यसामान्यका दृष्टि और ज्ञानमें आश्रय लेकर परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्दमय शुद्धता प्रगट करना ही वीतराग जिनेन्द्रदेव द्वारा प्ररूपित सच्चा धर्म है, इसके सिवा अन्य कोई 'धर्म' है ही नहीं। भले ही ग्यारह अंग पढ़ गया हो, भाषण देकर लाखों लोगोंको सन्तुष्ट करता हो, परन्तु वह कहीं धर्म नहीं है, धर्म तो अंतरकी कोई और ही वस्तु है!

यहाँ बहिनने ज्ञायकका आश्रय लेना कहा और समयसारकी ग्यारहवीं गाथामें भूतार्थका आश्रय करनेको कहा—वे दोनों एक ही बातें हैं। भूतार्थ, सत्यार्थ, परमार्थ, परम भाव, सत्य साहब, पूर्णानन्दका नाथ आदि कुछ भी कहो अथवा ज्ञायकभाव कहो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह सब एक ही है। भूतार्थ ऐसे निज ज्ञायकका आश्रय ले तो शुद्ध दशा प्रगट हो; अन्य कोई धरम-बरम है नहीं।

शुद्ध परिणति प्रगट करनेके लिये त्रिकालशुद्ध ज्ञायक ही एक पद है, बाकी सब अपद है। समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके १३८वें कलशमें कहा है न! कि—हे अंध प्राणियो! अनादिसंसारसे लेकर पर्याय-पर्यायमें यह रागी जीव सदा मत्त वर्तते हुए जिस पदमें सोते हैं—निद्रा ले रहे हैं वह पद अर्थात् स्थान अपद है—अपद है, (तुम्हारा स्थान नहीं है,) ऐसा तुम समझो। इधर आओ-इधर आओ, तुम्हारा पद यह है-यह है जहाँ शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु—ज्ञायकभाव निजरसकी अतिशयताके कारण स्थायीभावत्वको प्राप्त है अर्थात् स्थिर है-अविनाशी है।

ध्रुव ज्ञायक पदका आश्रय करके, उसे विश्वासमें लेकर अंतरमें निर्मल दृष्टि प्रगट कर। ज्ञायकका आश्रय करनेसे परिणतिमें जो शुद्धि प्रगट हुई वही एक पद है, करने योग्य कार्य है; बाकी दया, दान या व्यवहार रत्नत्रयका शुभराग वह सब अपद है, आस्रवभाव है, अशुचि, विपरीत, बंधका कारण और दुःखरूप भाव है। जिसे अंतरमें ज्ञायकके अवलम्बनसे निश्चयरत्नत्रयरूप परिणति प्रगट हुई हो उसीको सच्चे व्यवहार रत्नत्रयके शुभभाव होते हैं, परन्तु वह है अपद और दुःखरूप। अरेरे! लोगोंको अंतरमें धर्मकी खबर नहीं है, इसलिये बाह्यमें आकर्षित होकर अग्निमें पतंगेकी भाँति क्रियाकाण्डमें कूद पड़ते हैं, एक-एक महीनेके उपवास करते हैं, वर्षीतप करते हैं, परन्तु उससे क्या? अंतरमें मिथ्यात्व और आसक्तिका त्याग और स्वभावका ग्रहण क्या?—उसकी खबरके बिना वह काहेका त्यागी है? वह तो स्वधर्मका त्यागी और रागका ग्राही है। उससे विपरीत सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भले ही छह खण्डके राज्यमें हो तथापि वह अंतरमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी रागादिका त्यागी है। वह वास्तवमें यथार्थ त्यागी है। वह अनुक्रमसे शुद्धिकी वृद्धि करते-करते आगे बढ़ता है। त्यागधर्मका प्रारम्भ तो मिथ्यात्वके त्यागसे होता है। उसके बिना बाह्य त्याग करके जिसने रागमें रमणता की है वह तो धर्मका महात्यागी है; उसने वीतरागरूप धर्मका त्याग और शुभरागरूप अधर्मका ग्रहण किया है। अहा! ऐसी बातें हैं। भाई! वाद-विवादसे कहीं अंत नहीं आ सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१४६

दिनांक १०-११-७८

वचनामृत-३७५

इस चैतन्यतत्त्वको पहिचानना चाहिये। चैतन्यको पहिचाननेका अभ्यास करना, भेदज्ञानका अभ्यास करना—वही कर्तव्य है। वह अभ्यास करते-करते आत्माकी रागादिसे भिन्नता भासित हो तो आत्माका स्वरूप प्राप्त हो जाय। आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायकस्वरूप है—उसे पहिचानना चाहिये। जीवको ऐसा भ्रम है कि परद्रव्यका मैं कर सकता हूँ; परन्तु स्वयं परपदार्थमें कुछ नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। स्वयं ज्ञाता है, ज्ञायक है। परपदार्थमें उसका ज्ञान जाता नहीं है और परमेंसे कुछ आता नहीं है। यह समझनेके लिये देव-शास्त्र-गुरु आदि बाह्य निमित्त होते हैं, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि जो प्रगट होता है वह सब अपनेमेंसे ही प्रगट होता है। उस मूलतत्त्वको पहिचानना वही कर्तव्य है। दूसरा बाहरका तो अनंतकालमें बहुत किया है। शुभभावकी सब क्रियाएँ कीं, शुभभावमें धर्म माना, परन्तु धर्म तो आत्माके शुद्धभावमें ही है। शुभ तो विभाव है, आकुलतारूप है, दुःखरूप है, उसमें कहीं शान्ति नहीं है। यद्यपि शुभभाव आये बिना नहीं रहते, तथापि वहाँ शान्ति तो नहीं है। शान्ति हो, सुख हो—आनन्द हो ऐसा तत्त्व तो चैतन्य ही है। निवृत्तिमय चैतन्यपरिणतिमें ही सुख है, बाह्यमें कहीं सुख है ही नहीं। इसलिये चैतन्यतत्त्वको पहिचानकर उसमें स्थिर होनेका प्रयास करना वही यथार्थ श्रेयरूप है। वह एक ही मनुष्य जीवनमें करनेयोग्य-हितरूप-कल्याणरूप है॥३७५॥

'इस चैतन्यतत्त्वको पहिचानना चाहिये।'

क्या कहते हैं? कि—जिसे धर्मका मूल, साधनाका प्रथम सोपान, भवान्तका अमोघ उपाय ऐसा जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना हो, उसे इस प्रत्यक्ष संवेदनगम्य ऐसे निज चैतन्यतत्त्वके स्वरूपको गुरुगमसे बराबर जानना चाहिये। चैतन्यतत्त्व अर्थात् भगवान ज्ञायक आत्मा शरीर, इन्द्रियाँ और वाणी आदिसे बिलकुल भिन्न है। शरीरादि तो मूर्तिक अचेतन पुद्गल द्रव्यका परिणमन है और ज्ञायक आत्मा तो अमूर्तिक, अनादिनिधन, स्वयंसिद्ध, चेतन जीवद्रव्य है; जीवद्रव्य और पुद्गल द्रव्य दोनों एक कैसे हो सकते हैं?—कदापि नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो सकते; दोनों अत्यन्त भिन्न ही हैं। तथा जीवकी दशामें जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि तथा काम क्रोधादि शुभ तथा अशुभ भाव होते हैं उनसे भी यह निज चैतन्य तत्त्व भिन्न है; क्योंकि वे भाव विकारी होनेसे आत्माका स्वभाव नहीं है। सूक्ष्म बात है भाई! अनंतबार मुनिव्रत धारण किये परन्तु अंशतः भी कल्याण नहीं हुआ, क्योंकि पंचमहाव्रतादि शुभपरिणाम तो आस्रवतत्त्व है, वह कोई आत्मा धर्म या संवर-निर्जरातत्त्व नहीं है। जिसे कल्याण करना हो, भवभ्रमणका अंत लाना हो, सच्चा सुख प्राप्त करना हो उसे सर्व प्रथम त्रिकालशुद्ध नित्य ज्ञायक ऐसे इस निज चैतन्यतत्त्वके स्वरूपको समझना चाहिये, उसका ज्ञान करना चाहिये।

'चैतन्यको पहिचाननेका अभ्यास करना, भेदज्ञानका अभ्यास करना—वही कर्तव्य है।'

शुभाशुभ विभाव परिणामोंसे भिन्न तथा ज्ञानलक्षणसे पहिचाननेमें आता यह जो ज्ञायक आत्मा सो मैं हूँ—इसप्रकार निज चैतन्यतत्त्वको जाननेका, समझनेका बारम्बार अभ्यास करना, स्व-परके तथा स्वभाव-विभावके भेदज्ञानका सतत अभ्यास करना—वही वास्तवमें करने योग्य कार्य है। भाई! इस जीवने पूर्वमें अनन्तबार व्रत, तप, पूजा और भक्ति आदि बाहरका सब कुछ किया, परन्तु उससे निज चैतन्यतत्त्वकी पहिचान या स्वभाव-विभावका भेदज्ञान नहीं हुआ; क्योंकि वे तो बहिर्लक्षी शुभभाव हैं, वह कहीं आत्माके धर्म या धर्मका कारण नहीं हैं। सूक्ष्म बात है भाई! आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप चैतन्य विज्ञानघन परम पदार्थ है, उसे रागादिसे भिन्न जानना तथा भिन्न करना ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी रीति है और वही करने योग्य है।

'वह अभ्यास करते-करते आत्माकी रागादिसे भिन्नता भासित हो तो आत्माका स्वरूप प्राप्त हो जाय।'

रागादि क्षणिक विभावभावोंसे भिन्न निज ज्ञायकतत्त्वको जानने तथा भिन्न करनेका अभ्यास करते-करते आत्माकी रागादि समस्त विभावोंसे भिन्नता बराबर समझमें आती है और आत्मस्वरूपका अनुभव होता है।

प्रश्न :—भेदज्ञानका अभ्यास कैसे किया जाय?

उत्तर :—भाई! भगवानने नवतत्त्व कहे हैं न? उसमें यह जो जानना.....जानना ऐसे उपयोगस्वरूप जो अमूर्त पदार्थ है वह जीवतत्त्व है, जो मूर्त अचेतन शरीर तथा कर्मादि हैं वह अजीवतत्त्व है; आत्मभ्रान्ति, हिंसा, झूठ, विषयवासना आदि जीवके भाव पापतत्त्व है और दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा तथा यात्रादिका शुभभाव पुण्यतत्त्व है। पुण्य या पाप वह कहीं आत्माका स्वभावभाव नहीं है, आत्मस्वभाव तो उन समस्त विभावभावोंसे भिन्न त्रिकालशुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप है—इसप्रकार रागादिसे आत्माकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्नताको पहिचान करते-करते आत्माका रागादिसे भिन्न शुद्ध ज्ञायकस्वरूप भासित हो तो आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो जाय। अहा! आत्माको प्राप्त करनेकी यह रीति है।

पहले आत्मज्ञान हुए बिना व्रत-तप-भक्ति आदि सब व्यर्थ है।

प्रश्न :—आत्मज्ञान कैसे हो?

उत्तर :—यह ज्ञानस्वरूप आत्मा शरीर, इन्द्रियाँ, वाणी और कर्मसे तो बिलकुल भिन्न है, परन्तु उसकी पर्यायमें जो रागादिके विकल्प हैं उनसे आत्माको परिणतिमें भिन्न करते-करते तथा अंतरमें चैतन्यस्वभावकी महिमाका मंथन करते-करते आत्माकी जो सानुभव दृष्टि एवं ज्ञान होता है उसीका नाम सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान है। रागादि विभावसे ज्ञायकको परिणतिमें भिन्न करना-ऐसा जो भेदज्ञान, उसका अभ्यास करना वही एक कर्तव्य है।

राज्य छोड़ा, हजारों रानियोंका त्याग किया, गृहस्थपना छोड़कर महाव्रतोंका पालन किया, परन्तु वह तो सब राग है, विकल्प है और आस्रव है। आस्रवभाव तो अशुचि, आत्मस्वभावसे विपरीत, अध्रुव, दुःख और दुःखका कारण हैं, आत्मज्ञानके सिवा अन्यत्र कहीं किंचित् भी सुख नहीं है;—ऐसा समझकर उससे भिन्न निज ज्ञायकको जाननेका अभ्यास करते-करते रागादिसे आत्माकी भिन्नता अंतरमें भासे तो आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो जाय। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभरागसे आत्माको भिन्न करनेके बदले उससे लाभ मानना वह मिथ्यात्वभाव है, वह जैनधर्म नहीं है। भगवानने तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष रहित आत्माके शुद्ध परिणामोंको जैनधर्म कहा है। भावपाहुड़में कहा है न! कि—

पूजादिमां व्रतमां जिनोए पुण्य भाख्युं शासने;
छे धर्म भाख्यो मोहक्षोभविहिन निज परिणामने. ८३.

रागादि विभावसे आत्माको भिन्न करनेका जो अभ्यास उसे भेदज्ञान कहते हैं। श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि-जो कोई सिद्ध हुए हैं वे सब भेदज्ञानसे ही हुए हैं और जो कोई बँधे हैं वे सब भेदज्ञानके अभावसे ही बँधे हैं। इसलिये मोक्षपदकी प्राप्तिके लिये भेदज्ञानका अभ्यास निरन्तर करने योग्य है।

'आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायक स्वरूप है—उसे पहिचानना चाहिये।'

जिसका स्वभाव मात्र देखना-जानना है ऐसे इस भगवान आत्माको चैतन्यतत्त्व कहो, ज्ञायकभाव कहो, नित्यानन्दका नाथ कहो, ध्रुवस्वभाव कहो, सामान्य स्वभाव कहो या त्रैकालिक सादृश्यस्वरूप कहो—सब एक ही है। उस ज्ञातास्वभावी आत्माको—जो कि त्रिकालशुद्ध चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायकस्वरूप है उसे—पहिचानना, उसका यथार्थ ज्ञान करना। अहा! ऐसी बात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। अरे! तत्त्व क्या है और जगत क्या मान बैठा है?......यहाँ तो वीतरागने कहा है तदनुसार ही तत्त्वका कथन होता है।

'जीवको ऐसा भ्रम है कि परद्रव्यका मैं कर सकता हूँ।'

क्या कहते हैं? अज्ञानी जीवको ऐसी भ्रान्ति है कि—चलना-फिरना, खाना-पीना, बोलना, लिखना, पढ़ना आदि जो अजीव शरीरकी क्रियाएँ हैं वह मैं कर सकता हूँ। परन्तु भाई! मोतीके दाने जैसे सुन्दर अक्षर लिखना वह तो जड़-पुद्‌गलकी क्रिया है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है। होशियार व्यक्ति हिसाब अच्छा लिख सकता है—इसप्रकार जड़ अक्षरोंका कर्ता आत्माको मानना वह महान भ्रम है। भगवान आत्मा तो मात्र ज्ञानस्वरूप है, वह परकी क्रिया कैसे कर सकेगा? परद्रव्यमें आत्मा कुछ कर सकता है—ऐसी जो मान्यता है वह मिथ्यात्वरूपी महान पाप है, अनन्त परिभ्रमणका कारण है।

ज्ञायक चैतन्यतत्त्व परद्रव्यको जानेगा या करेगा? दोमेंसे एक करेगा—या तो परका ज्ञाता रहेगा या कर्ता होगा भाई! नवतत्त्वोंमें अजीव एक स्वतंत्र तत्त्व है या नहीं? उस स्वतंत्र अजीवतत्त्व-शरीरादिकी क्रिया जीव करे तो उस काल अजीवने क्या किया? उस समय अजीवतत्त्व क्या अपनी क्रियासे रहित—अक्रिय रहा? क्रियासे रहित कोई द्रव्य रहे—ऐसा कभी हो नहीं सकता। परद्रव्य स्वयं अपनी क्रिया करता है, वहाँ अज्ञानीको ऐसा भ्रम होता है कि 'परद्रव्यका मैं कर सकता हूँ।'

जीवद्रव्य पूर्ण शक्तिशाली है, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह परद्रव्यका कुछ कर सकता है, इसलिये पूर्ण शक्तिशाली है। अरे, आँखकी पलक फेरना भी आत्माकी शक्तिसे बाहर है। चश्मेसे ज्ञान होता है—यह बात तो है ही नहीं, परन्तु चश्मेको आँख पर चढ़नेकी क्रिया भी जड़की है, आत्माकी नहीं। उसका कर्ता आत्माको मानना वह मिथ्यात्व है। भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर श्री अरिहंतदेवका पंथ कोई निराला है! वर्तमानमें तो 'जैन' नामके सम्प्रदायोंमें भी तत्त्वस्वरूप सम्बन्धी बड़ी गुत्थियाँ उत्पन्न हुई हैं। 'मैं इन दाँतोंको चला सकता हूँ, रोटीके टुकडे कर सकता हूँ' आदि परद्रव्यकी क्रियाके कर्तापनेका अज्ञानी जीवको भ्रम है।

प्रश्न :—जीव रोटीके टुकड़े करता हुआ तो प्रत्यक्ष दिखता है न?

उत्तर :—भाई! रोटीके टुकड़े होते हैं—ऐसा दिखता है, उसमें 'जीव करता है' ऐसा कहाँ दिखता है? यदि जीव पर द्रव्यके टुकड़े कर सकता हो तो आकाशके टुकड़े कर दे! रोटीके टुकड़े स्वयं होते हैं तथा जीवकी इच्छा और हाथकी क्रिया अनुकूलरूपसे निमित्त होते हैं, वहाँ संयोगसे देखनेकी दृष्टिवाला अज्ञानी जीव मान बैठता है कि जीवने टुकड़े किये, परन्तु वह तो उसका भ्रम है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'परन्तु स्वयं पर पदार्थमें कुछ कर नहीं सकता।'

शरीर, वाणी, जीवदया, अष्ट द्रव्योंसे पूजा, दानादि परद्रव्यकी क्रिया आत्मा कर नहीं सकता, अधिकसे अधिक उस क्रियाके अनुकूल ऐसा राग अपनी पर्यायमें कर सकता है, परन्तु रागसे परद्रव्यकी क्रिया कर सके—ऐसा तीन कालमें नहीं होता। अपनेमें होनेवाले रागके कालमें परपदार्थकी क्रिया तदनुरूप स्वयं होती है वहाँ अज्ञानी भ्रमसे ऐसा मानता है कि—'मैं करता हूँ'। भगवान आत्मा तो सहज ज्ञानमूर्ति है। आँख तो मात्र देखती ही है, क्या वह गड्ढे या टीले बना सकती है? 'ज्यों नेत्र त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अरे! जाने ही कर्मोदय, निर्जरा, बंध त्यों ही मोक्षको।' परद्रव्यकी क्रिया मैं कर सकता हूँ और रागकी क्रिया मेरा स्वभाव है—ऐसा माननेवाला जीव मूढ़ मिथ्यादृष्टि है; वह जैन नहीं, अजैन है।

घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन;
मति मदिराके पान सो, मतवाला समुझै न।'

त्रिकाल जिनस्वरूप, वीतरागस्वरूप आत्मा भीतर शक्तिरूपसे विराजता है। परिणतिमें रागसे पृथक् होकर जिनस्वरूप आत्माका अनुभव करे वह जैन है। स्वमतिरूपी मदिरापानसे पागल हुआ अज्ञानी जिन और जैनस्वरूप अपने आत्माको नहीं समझता।

'प्रत्येक जीव स्वतंत्र है।'

श्री सर्वज्ञ परमात्माने छह प्रकारके द्रव्य कहे हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। उनमेंसे प्रत्येक द्रव्य रजकण हो या आत्मा हो, अपनी पर्याय करनेमें पूर्ण स्वतंत्र है। पुस्तकका पृष्ठ फिरता है वह स्वयं उसके कारण, अंगुलीसे नहीं। रोटी स्वयं बिलती है, बेलनसे नहीं; दुकानमें पैसोंका लेन-देन पुद्गल स्वतंत्ररूपसे करते हैं, जीवकी इच्छासे नहीं; क्योंकि जगतका प्रत्येक द्रव्य, अरे! प्रत्येक पुद्गलपरमाणु अपनी पर्याय करनेमें सम्पूर्ण स्वतंत्र है। जीव खाना-पीना, चलना-फिरना, बोलना, गाना आदि क्रियाएँ कर सकता है यह बात तीन काल और तीन लोकमें सत्य नहीं है। अहा! ऐसी बातें हैं। कितनोंको यह बात पागल जैसी लगेगी; भाई! यह दुनिया मोह एवं अज्ञानसे पागल हो रही है, उसे ज्ञानीकी बात पागलों जैसी ही लगेगी न? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि—जगतका प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रिया करनेमें सम्पूर्ण स्वतंत्र है, उसमें अन्य किसी द्रव्यका हस्तक्षेप नहीं चलता।

'स्वयं ज्ञाता है, ज्ञायक है।'

भगवान आत्मा स्वयं स्वभावसे ही ज्ञाता है, ज्ञायक है। शरीर, इन्द्रियाँ, मस्तिष्क आदि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं मिट्टीकी भाँति जड़ हैं, वे कुछ जानते नहीं हैं। आत्मामें जाननेकी क्रिया स्वयंसे होती है, इन्द्रियादिसे नहीं।

'पर पदार्थमें उसका ज्ञान जाता नहीं है और परमेंसे कुछ आता नहीं है।'

आत्माका स्व–पर प्रकाशक ज्ञान परपदार्थको जानते हुए उसमें चला नहीं जाता; ज्ञान अपने क्षेत्रमें रहकर परपदार्थको जान लेता है। जाननेके लिये ज्ञान जिस प्रकार परपदार्थमें जाता नहीं है, वैसे ही परमेंसे ज्ञानमें कुछ आता नहीं है। मेरा ज्ञान सर्वत्र फैल जाता है—उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि ज्ञान आत्मामेंसे बाहर निकलकर ज्ञेयभूत पदार्थोंमें प्रविष्ट हो जाता है, ज्ञान तो ज्ञानमें ही—आत्मामें ही रहता है; और ज्ञेयका भी कुछ—द्रव्य, गुण या पर्याय—ज्ञानमें नहीं आता। आत्मा और जगतके पदार्थ स्वयंसिद्ध स्वतंत्र पदार्थ हैं, सब अपनी–अपनी पर्यायरूपसे स्वयं परिणमते हैं। आत्मा और जगतका मात्र ज्ञाता और ज्ञेय—ऐसा सम्बन्ध व्यवहारसे है।

'यह समझनेके लिये देव–शास्त्र–गुरु आदि बाह्य निमित्त होते हैं, परन्तु दर्शन–ज्ञान–चारित्र आदि जो प्रगट होता है, वह सब अपनेमेंसे ही प्रगट होता है।'

क्षुधा, तृषादि अठारह दोषरहित सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा वे देव, शुद्धात्म ज्ञानी, प्रमत्त–अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ, ज्ञान-ध्यानरत मुनिवर, वे गुरु और सर्वज्ञ परमात्माकी वाणी वह शास्त्र; यह तीनों मोक्षमार्ग समझनेके निमित्त हैं, परन्तु मोक्षमार्ग प्रगट करनेका तथा उसमें प्रवर्तनका कार्य तो स्वयं ही करना है।

दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें पर्यूषण पर्वके अवसर पर श्री उमास्वामी आचार्यदेवरचित तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिका होती है। उसमें प्रथम सूत्र 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' है। सम्यग्दर्शन मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी है, वह अपने द्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट होता है, देव–शास्त्र–गुरुके लक्ष से नहीं। देव–शास्त्र–गुरु बाह्य निमित्त होने पर भी सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र सब अपनेमेंसे ही, अपने त्रिकालशुद्ध द्रव्यस्वभावके आश्रयसे ही प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप साधकभाव देव–शास्त्र–गुरु आदि बाह्य निमित्तसे नहीं, परन्तु व्यवहाररत्नत्रयके शुभरागसे भी प्रगट नहीं होता।

प्रश्न :—व्यवहार रत्नत्रयको मोक्षमार्ग कहा जाता है न?

उत्तर :—देवादिकी श्रद्धा, आगमका ज्ञान तथा महाव्रतादिका पालन—यह व्यवहार–रत्नत्रयका शुभराग आस्रव भाव है और वह बंधका कारण है, उसे यथार्थ मोक्षमार्ग कैसे कहा जा सकता है? परन्तु आत्माश्रित वर्तती हुई शुद्ध परिणतिरूप निश्चयमोक्षमार्गके साथ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निचली भूमिकामें, ऐसे विकल्प आते हैं इसलिये उन्हें व्यवहारसे मोक्षमार्ग कहा जाता है; निश्चयसे तो व्यवहार–रत्नत्रयके विकल्प हैं। अहा! कठिन बात है भाई! बात तो घरकी होनेसे 'सरल' है, परन्तु अभ्यास नहीं है इसलिये कठिन कही जाती है। शास्त्रमें 'बोधिदुर्लभ' भावना आती है न?

'उस मूल तत्त्वको पहिचानना ही कर्तव्य है।'

जीवादि नव विशेष तत्त्वोंमें मूलतत्त्व—भूतार्थतत्त्व—आश्रय करने योग्य तत्त्व जो अपना त्रिकालशुद्ध ज्ञायक चैतन्य ध्रुव महापदार्थ है उसे पहिचानना, जानना और अनुभवना ही मुख्य कर्तव्य है। अहा! ऐसी बात है। वर्तमानमें श्री सीमंधरभगवान समवसरणमें गणधर, इन्द्र और नरेन्द्रोंके समक्ष यही बात कह रहे हैं। दो हजार वर्ष पूर्व विक्रम संवत्के प्रारम्भमें—संवत् ४९में—दिगम्बर संत श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ गये थे; आठ दिन रहकर वहाँसे आने पर यह समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्रोंकी रचना की थी; वही यह वाणी है। जगतको कठिन लगती है, परन्तु क्या किया जाय?

छह द्रव्य, पंचास्तिकाय और नवतत्त्वमें—सबसे 'जीव' पहले लिया है, क्योंकि उसमें जाननेका स्वभाव होनेसे सबमें मुख्य है। उसका जाननेका स्वभाव परसे तथा परमें नहीं है। अपनेसे और अपनेमें है। अन्य जो पाँच द्रव्य हैं वे स्वयंको या परको नहीं जानते, उनमें जाननेका स्वभाव ही नहीं है; इसलिये वे जड़ हैं। यह सब समझकर श्रद्धा और ज्ञानके आश्रयभूत मूल ज्ञायकतत्त्वको पहिचानना ही कर्तव्य है।

'दूसरा बाहरका तो अनंतकालमें बहुत किया है।'

आत्मस्वभावकी दृष्टि और ज्ञानके सिवा दूसरा—बाह्य दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत, तपादि शुभ तथा काम, क्रोधादि अशुभ—सब तो अनंत कालमें अनंतबार किया है। वह कुछ अपूर्व नहीं है, अपूर्व तो अंतरमें आत्माकी साधना करना है।

'शुभभावकी सब क्रियाएँ कीं, शुभभावमें धर्म माना, परन्तु धर्म तो आत्माके शुद्धभावमें ही है।'

शुक्ललेश्याके शुभपरिणाम करके जीव अनंतबार नववें ग्रैवेयकका अहमिन्द्र हुआ, परन्तु आत्मज्ञानके बिना लेश भी सुख प्राप्त नहीं किया। शुक्ललेश्या और शुक्लध्यान वे दोनों बिलकुल भिन्न वस्तुएँ हैं। शुक्लध्यान तो सम्यग्दृष्टि साधक संतको श्रेणीमें होता है और शुक्ललेश्या तो मिथ्यादृष्टि अभव्यके भी होती है। मिथ्यादृष्टि जीवको जो–जो शुभभाव सम्भव हैं उन–उन शुभभावोंकी समस्त क्रियाएँ जीवने अनंतबार की हैं ऐसा यहाँ कहना है। तीर्थंकर नामकर्म बाँधने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

योग्य शुभभाव जीवने नहीं किया है, क्योंकि वह भाव सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके पश्चात् ही होता है। यद्यपि शुभभाव भी आस्रव है, अशुचि है, स्वभावसे विपरीत तथा बंधका कारण है।

आत्माके लक्ष बिना पंच महाव्रत, कल्पवृक्षके फूलों-फलोंसे भगवानकी पूजा, हीरोंके दीपकसे आरती आदि अनेक बाह्य क्रियाएँ अनंतबार की हैं, किन्तु वे क्रियाएँ और शुभभाव कहीं धर्म नहीं है, तथापि उन शुभभावोंमें धर्म माना; श्री सम्मेदशिखर, गिरनार, शत्रुंजय आदि तीर्थोंकी यात्राएँ कीं और उन विविध शुभभावोंमें धर्म माना; परन्तु शुभ भावोंमें धर्म मानना वह तो मिथ्यात्व है।

शुभभावमें धर्म नहीं है, धर्म तो त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे होनेवाले आत्माके शुद्धभावमें ही है। अरे! जिसे अभी त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक आत्मा क्या वस्तु है, कहाँ है, उसका आश्रय कैसे प्राप्त होता है आदिकी खबर नहीं है, ध्रुव शुद्ध आत्माको जिसने जाना नहीं है वह जीव शुद्ध ज्ञायकके आश्रयसे शुद्धभावरूप धर्म होनेकी बात कहाँसे लायगा? अनंतबार मुनिदशा धारण की, परन्तु उस शुभ क्रियाका जितना शुभभाव है वह धर्म नहीं है, धर्मका कारण नहीं है; क्योंकि—

'शुभ तो विभाव है, आकुलतारूप है, दुःखरूप है, उसमें कहीं शान्ति नहीं है।'

दया, दान, पूजा, भक्ति आदि शुभ भाव तो विकार है, स्वभावसे विरुद्ध भाव है; वह शुभभाव आकुलतारूप, दुःखरूप है, उसमें कहीं शान्ति नहीं है। व्यापार-धन्धेमें तो अकेला पाप ही है, परन्तु ज्ञानीको जो शुभभाव आता है वह भी विभाव तथा खण्ड-खण्ड दशा है, उसमें कहीं शान्ति नहीं है, निराकुलता या सुख नहीं है।

'यद्यपि शुभभाव आये बिना नहीं रहते, तथापि वहाँ शान्ति तो नहीं है।'

धर्मीको शुभभाव आयें परन्तु उनमें यह एकाग्र होकर रमता नहीं है। अहा! धर्मी तो भीतर तलमें—ज्ञायकस्वभावमें—रमता है। क्या कहा? व्रत, तप, भक्ति, यात्रा एवं नामस्मरण आदि शुभभाव यद्यपि आये बिना नहीं रहते तथापि वहाँ शान्ति, समाधि या सुख तो है ही नहीं।

'शान्ति हो, सुख हो—आनन्द हो ऐसा तत्त्व तो चैतन्य ही है।'

शुभभावमें शान्ति नहीं है तो शान्ति कहाँ है? शान्ति, सुख-आनन्द तो त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायक आत्मामें ही है। जो शान्तिका समुद्र और सुखका—आनन्दका महासागर है ऐसे निज त्रैकालिक चैतन्यतत्त्वका आश्रय ले तो अंतरमेंसे शान्ति और सुख प्राप्त हो। अहा! ऐसी बातें हैं। लोगोंको असह्य लगेंगी, लेकिन क्या हो? अंतरकी बात समझमें नहीं आती है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिये लोग बाह्यमें लग गये हैं; परन्तु भाई! समस्त व्रतादि क्रियाओंमें साथ ही राग है और रागमें तो आकुलता है, दुःख है, उनमें कहीं आत्माकी सच्ची शान्ति या सुख नहीं है। आत्मा तो अकषायस्वरूप है और शुभभाव तो कषायभाव है। शुभभाव तो चारों गतिके जीवोंको होता है—क्षणमें अशुभ और क्षणमें शुभ; परन्तु वह शुभभाव कहीं धर्म नहीं है। अरेरे! दुनिया व्रत और उपवासादि शुभभावोंमें धर्म मानती है, परन्तु भाई! उनमें धूल भी धर्म नहीं है।

धर्म कहो या शान्ति, सुख एवं आनन्द कहो—ऐसा तत्त्व तो शुद्ध चैतन्य ही है। ज्ञानानन्दमूर्ति त्रिकालशुद्ध निजचैतन्यतत्त्वका आश्रय करनेसे ही अंतरमें शान्ति, सुख एवं अनाकुलताकी प्राप्ति होती है।

'निवृत्तिमय चैतन्यपरिणतिमें ही सुख है, बाह्यमें कहीं सुख है ही नहीं।'

शुभाशुभ रागसे रहित निवृत्तिमय चैतन्य परिणति ही सुख है; बाह्यमें—व्रतादिके शुभरागमें—कहीं सुख या शान्ति है ही नहीं।

'इसलिये चैतन्यतत्त्वको पहिचानकर उसमें स्थिर होनेका प्रयास करना वही यथार्थ श्रेयरूप है।'

चैतन्य ज्ञायक तत्त्वमें—आनन्दसागर आत्मामें—अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल भरा है, परन्तु उस ओर दृष्टि जाय तो उसकी महिमा ख्यालमें आये। ज्ञानकी पर्याय त्रैकालिक ध्रुवस्वभावकी ओर—ज्ञायकतत्त्वकी ओर—झुके तो उसकी महिमा समझमें आये। ऐसे ज्ञानानन्दमय चैतन्यतत्त्वकी यथार्थ प्रतीति करके उसमें स्थिर होनेका उद्यम करना। ज्ञायक ध्रुव स्वभावको जानकर उसमें लीनताका प्रयत्न करना ही कल्याणस्वरूप है, श्रेयरूप है। अहा! भगवान आत्माका यथार्थ ज्ञान करके उसमें स्थिर–लीन हो जाना वह श्रेयरूप है।

'वह एक ही मनुष्य–जीवनमें करने योग्य–हितरूप–कल्याणरूप है।'

ज्ञायकस्वभावी भगवान आत्माको पहिचानकर—जानकर उसमें स्थिर हो जाना वह एक ही इस दुर्लभ मनुष्यभवका कर्तव्य है। वही परम हितरूप एवं परम कल्याणस्वरूप है। उसके सिवा जगतमें अन्य कुछ भी कल्याण या हितस्वरूप है ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१४७

दिनांक ११-११-७८

वचनामृत–३७६

पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करनेसे, उसीके आलम्बनसे, पूर्णता प्रगट होती है। इस अखण्ड द्रव्यका आलम्बन ही अखण्ड एक परमपारिणामिक भावका आलम्बन है। ज्ञानीको उस आलम्बनसे प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायोंका—व्यक्त होनेवाली विभूतियोंका—वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभावका भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। सामान्यके आश्रयसे ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिये सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्यके प्रति—अखण्ड परमपारिणामिकभावके प्रति—दृष्टि कर, उसीके ऊपर निरन्तर जोर रख, उसीकी ओर उपयोग ढले ऐसा कर॥३७६॥

'पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करनेसे, उसीके आलम्बनसे, पूर्णता प्रगट होती है।'

इस बोलमें बड़ी सार–सार बात आयी है। आत्मद्रव्य ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्यादि अनन्त पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसा अखण्ड परिपूर्ण अमूर्तिक महापदार्थ है। उसके ज्ञानादि गुण पूर्ण सामर्थ्यवान हैं, क्योंकि स्वभाव सदा सीमा रहित—असीम ही होता है। तथा वस्तुको अनन्तानन्त गुणात्मक कहा, इसलिये वहाँ भीतर अनन्त गुण कहीं पृथक्–पृथक् नहीं हैं; अनन्त गुणोंका अखण्ड—अभेद एक पिण्ड वही वस्तु है। सामर्थ्यकी न्यूनाधिकता तो मात्र पर्यायमें होती है, गुण तो सदैव—जीव सिद्धमें हो या निगोदमें हो—परिपूर्ण सामर्थ्यवान हैं। ऐसे ज्ञानादि पूर्ण गुणोंसे अभेद निज पूर्ण शुद्धात्म द्रव्य पर दृष्टि करनेसे, अनादि–अनन्त ऐसे निज ज्ञायक प्रभुके पूर्ण आलम्बनसे, भगवान आत्माको पर्यायमें पूर्णता—परमात्मदशा—प्रगट होती है। अहा! भाषा तो बड़ी सादी गुजराती है। एक वाक्यमें कितना समा दिया है? उसमें तीन बार 'पूर्ण' शब्द आया है : (१) 'पूर्ण' गुणोंसे अभेद, विपरीत, अधूरी या पूरी पर्यायोंसे अभेद—ऐसा नहीं; (२) 'पूर्ण' आत्मद्रव्य अर्थात् अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण, एक भी गुण कम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं; (३) 'पूर्णता' प्रगट होती है अर्थात् पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसे निज पूर्ण आत्मद्रव्यका परिपूर्ण अवलम्बन लेनेसे पर्यायमें भी पूर्णता प्रगट होती है—केवलज्ञान और सिद्धपदकी प्राप्ति होती है। अहा! यह तो मूल बात है। अन्यमती भी पढ़कर प्रसन्न हो ऐसी यह (वचनामृत-पुस्तक) वस्तु है।

'इस अखण्ड द्रव्यका आलम्बन वही अखण्ड एक परमपारिणामिकभावका आलम्बन है।'

ऊपर कहा कि 'पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य।' परन्तु वह क्या वस्तु है? वह अब कहते हैं :—जो पूर्ण आत्मद्रव्य है वही अखण्ड एक परमपारिणामिक भाव है; उसे अखण्ड द्रव्य कहो, द्रव्यसामान्य कहो, ध्रुव कहो या ज्ञायक कहो—सब एक ही है। उस शुद्धात्मद्रव्य सामान्य पर दृष्टि करनेसे, उसका आलम्बन लेनेसे सम्यग्दर्शनसे लेकर मोक्ष तककी समस्त निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं।

'ज्ञानीको उस आलम्बनसे प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायोंका—व्यक्त होनेवाली विभूतियोंका—वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता–उन पर जोर नहीं होता।'

धर्मी जीवको अखण्ड एक त्रिकालशुद्ध ज्ञायक परमपारिणामिकभावस्वरूप द्रव्यस्वभावके आलम्बनसे जो श्रद्धा और चारित्रगुणकी औपशमिक, श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और वीर्यकी क्षायोपशमिक तथा श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और वीर्यादिकी क्षायिक पर्यायें प्रगट होती हैं—पर्यायमें निर्मलतारूपी विभूतियाँ व्यक्त होती हैं—उनका वेदन, अनुभवन और रसास्वादन होता है परन्तु उन निर्मल पर्यायोंरूप विभूतियोंका आलम्बन नहीं होता, उनका आश्रय अथवा उन पर जोर नहीं होता।

पहले ऐसा कहा कि पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करनेसे, उसीके आलम्बनसे, पूर्ण पर्याय—मोक्षपर्याय—प्रगट होती है; अब कहते हैं कि औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भावसे प्रगट होनेवाली साधकभावकी निर्मलताएँ भी उसी ध्रुव पूर्ण आत्मद्रव्यके आलम्बनसे प्रगट होती हैं। ज्ञानीको उन निर्मल पर्यायोंका वेदन होता है, उनका आलम्बन या उन पर आश्रयपनेका जोर नहीं होता। अहा! ऐसी बात है। पूर्ण प्रगट ऐसी क्षायिकपर्याय तथा अपूर्ण प्रगट ऐसी क्षायोपशमिक पर्याय तथा औपशमिक पर्याय—पूरी और अधूरी दशा दोनों—वेदनमें आती हैं, परन्तु उस वेदनकी पर्यायका आलम्बन धर्मीको नहीं होता। ज्ञानीको द्रव्यका आलम्बन होता है और पर्यायका वेदन होता है, द्रव्यका वेदन नहीं होता और पर्यायका आलम्बन नहीं होता। द्रव्यका वेदन नहीं होता, क्योंकि द्रव्य अर्थात् शुद्ध द्रव्यत्व-सामान्य तो ध्रुव और अपरिणामी है। त्रिकाल ध्रुवद्रव्यके आलम्बनसे औपशमिकादि तीन प्रकारकी जो निर्मलता प्रगट होती है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका वेदन होता है, ध्रुव द्रव्यका वेदन नहीं होता। अरे! सम्प्रदायमें तो ऐसी बातें चलती ही नहीं, आजकल तो मार्ग बिलकुल बदल गया है। सर्वज्ञ भगवानका ऐसा आदेश है कि—अनन्त गुणोंका पिण्ड और सहज ज्ञायकस्वरूप ऐसी जो तेरी वस्तु है वह ऐसी अद्भुत है कि उसके अवलम्बनसे पर्यायमें सहज औपशमिकादि निर्मलता प्रगट होती है; परन्तु वेदन पर्यायका होता है, आलम्बनभूत द्रव्यत्वसामान्यका नहीं।

त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यस्वभावके आश्रयसे श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, शान्ति, आनन्दादि गुणोंकी जो निर्मल पर्यायें होती हैं, उसके वेदनकी यहाँ बात चलती है। रागका भी वेदन होता है, परन्तु उसकी यहाँ बात नहीं है। शक्तिके आलम्बनसे जो व्यक्त हो उसके वेदनकी बात है। राग कहीं शक्तिके—गुणस्वभावके—आलम्बनसे प्रगट नहीं होता, वह तो परलक्षसे या परवशतासे हुई विकृति है। औपशमिकादि भाव तो द्रव्यके आश्रयसे हुई निर्मल व्यक्त दशा है और पुण्य–पापका जो विकार है वह कहीं द्रव्यसामान्य अथवा गुणके आश्रयसे नहीं होता; वह तो पर्यायमें कर्मादि निमित्तके आधीन हुई विकारी दशा है। उसके वेदनकी यहाँ बात नहीं है।

पर्यायका वेदन होता है, परन्तु उसका आलम्बन नहीं होता—उस पर जोर नहीं होता। पर्याय, दशा, अवस्था और हालत—यह सब एकार्थवाचक शब्द है। वह दशा दो प्रकारकी है—धर्म और अधर्म. औपशमिकादि शुद्ध दशा धर्म है और मिथ्यात्व, राग–द्वेष, पुण्य–पाप, व्रत–अव्रत तथा काम–क्रोधादि अशुद्ध दशा अधर्म है। अधर्मदशा निमित्तके वशसे उत्पन्न होती है और औपशमिकादि धर्मरूप दशा स्ववशसे—ध्रुवस्वभावके आलम्बनसे—उत्पन्न होती है। अहा! भाषा तो अत्यन्त सादी है, परन्तु भाव बहुत उच्च हैं। अनन्त कालमें पहले नहीं सुनी हुई अपूर्व बात है, कदाचित् सुननेको मिली तो कानोंसे निकाल दी कि—यह तो निश्चयकी बात है। भाई! निश्चयकी जो बात है वही यथार्थ है और उपादेय बनाने योग्य है, व्यवहारकी बात यथार्थ और उपादेय बनाने जैसी नहीं है। धर्मीको भी जो निमित्ताधीन विकारी पर्याय है उसका वेदन है, परन्तु वह दुःखरूप वेदन है, और जितना त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावके आलम्बनसे प्रगट हुआ निर्मल वेदन है वह सुखरूप वेदन है। अहा! बड़ी बात है! क्या कहा वह समझमें आया? ज्ञानीको व्यक्त होती विभूतियोंका—निर्मल पर्यायोंका—वेदन होता है, परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर आश्रयरूपसे जोर–बल नहीं होता।

'जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है।'

ज्ञानादि पूर्ण गुणोंसे अभेद, अखण्ड, एक, परमपारिणामिकभावस्वरूप निज शुद्ध द्रव्यत्वसामान्य पर ही ज्ञानीका जोर होता है। नियमसारमें कहा है न! कि—औदयिकादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चार भाव विभावभाव हैं! औदयिकभाव तो विभाव है ही, परन्तु क्षायिकभावको भी विभावभाव कहा है। क्यों कहा है? कि—क्षायिकभावमें भी कर्मके अभावकी अपेक्षा होनेसे, वह सहज पारिणामिकभाव नहीं है, विशेष भाव है। विशेष भाव होनेसे औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक—इन तीनों भावोंको विभावभाव कहा जाता है। विशेष दशाके प्रति आलम्बनका जोर नहीं होता, जो तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है।

दृष्टि तो पर्याय है, परन्तु जिसे दृष्टिमें लिया है वह तो द्रव्य अर्थात् भूतार्थ त्रैकालिक परमभाव है। पर्यायने जब उसे दृष्टिमें लिया तब पर्यायमें औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावकी व्यक्तता हुई। अहा! ऐसा मार्ग है। सम्यग्दृष्टिको सदा अखण्ड एक शुद्ध द्रव्य पर ही दृष्टि होती है; आश्रय, आलम्बन या जोर भूतार्थस्वरूप परमपारिणामिकभावका अर्थात् पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसे निज अखण्ड द्रव्यस्वभावका ही होता है, क्षायिक पर्यायका भी नहीं। अहा! ऐसी बातें! ऐसा उपदेश कहाँसे निकाला? ऐसा तो हमने कहीं सुना नहीं था। अरे भाई! यह मार्ग तो अनादिका है, महाविदेहक्षेत्रमें प्रभुके पास यह मार्ग वर्तता है। यह तो बहिन (बहिनश्री चम्पाबेन) रात्रिचर्चामें पुत्रियों (ब्रह्मचारी बहिनों)से ऐसी अनुभवसिद्ध बातें करती थीं वह लिखनेसे प्रगट हो गया है।

द्रव्यके आलम्बनसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उस पर जोर नहीं देना कि—'यदि ऐसा करूँगा तो उसके (पर्यायके) आश्रयसे धर्ममें आगे बढ़ जाऊँगा।' अरेरे! धर्मके नाम पर भी विकारका आधार, अवलम्बन और अभ्यास! परन्तु अंतरमें विकाररहित त्रैकालिक भूतार्थ वस्तु क्या है उसकी खबर नहीं है। अहा! ऐसी बात भाग्यशालीके कानोंमें पड़ती है, भाई! क्या किया जाय? महाविदेहमें सर्वज्ञप्रभु श्री सीमंधरभगवान साक्षात् विराज रहे हैं, उनकी यह वाणी है। बहिन भी वहाँ सुननेको जाती थीं; बहिनका आत्मा वहा सेठका पुत्र था। वे कहती हैं कि भगवानने तो ऐसा कहा है कि—पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा शाश्वत वस्तु है, पदार्थ है, तत्त्व है, अस्तित्ववान वस्तु है। वह स्वभावसे ही शुद्ध और परिपूर्ण है, पर्यायमें जो अशुद्धता और अपूर्णता है वह उसका स्वभाव नहीं है। स्वभावके आलम्बनसे जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है उसका आत्माको वेदन होता हैं, परन्तु आलम्बन नहीं। इसलिये अधूरी या पूरी किसी पर्याय पर जोर नहीं देना, त्रिकालशुद्ध द्रव्यत्वसामान्य पर ही जोर देना।

भगवान आत्मामें ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुण हैं; उसकी सत्ता तो अनादि-अनन्त रहनेवाली है। अरेरे! ऐसी अद्भुत वस्तुका आश्रय नहीं लिया और बाह्यमें—पर्यायके प्रेममें—जीवन गँवा दिया, प्रभु! कहाँ जायगा? चार गति और चौरासीके अवतारमें जहाँ-जहाँ भटकता फिरेगा! करोड़पति मरकर सुअरमें, कौएमें, चींटीमें या नरकादिमें जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मांस भक्षणके तीव्र संक्लेश परिणाम हों वह नरकमें जाता है। वणिक मांस नहीं खाते। यहाँ तो द्रव्यस्वभावके आलम्बन और बल द्वारा भवका अभाव करनेकी बात है।

'क्षायिक भावका भी आश्रय या अवलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेष भाव है।'

सम्यक्त्व, चारित्रादिके क्षायिकभावका भी आश्रय, आलम्बन या आधार नहीं लिया जाता, क्योंकि वह क्षायिकभाव भी निर्मल पर्याय है, आत्माका विशेषभाव है, सामान्य द्रव्यस्वभाव नहीं है। पलटती पर्याय वह विशेषभाव है और नित्यस्थायी द्रव्य वह सामान्यभाव है। विशेषके बिना सामान्य कभी होता नहीं है, तथापि आलम्बन तो सामान्यका ही लिया जाता है, विशेषका नहीं। विशेष अपना हो या परका हो—कोई भी विशेष अपने-अपने सामान्यके बिना नहीं होता। क्षायिक सम्यक्त्व हो या केवलज्ञान हो, परन्तु वह विशेषभाव है, सामान्यभाव नहीं। त्रिकाल एकरूप रहनेवाला वस्तुका सदृश स्वरूप वह सामान्य है और यह जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि वस्तुकी पलटती पर्याय है वह विशेष है। सामान्य और विशेष—दोनों मिलकर वस्तु सम्पूर्ण स्वरूप है। जीवादि सर्व पदार्थोंमें पर्यायरूप विशेष है वह परके कारण नहीं है, किन्तु सामान्यकी भाँति विशेष भी वस्तुगत स्वभाव है। नयदृष्टिसे वस्तु सामान्य या विशेषरूपसे अंशात्मक दिखती है और प्रमाणदृष्टिसे वही वस्तु उभयात्मक दिखती है। अरे! जीवोंको यह बात सुननेमें भी नहीं आयी है, सुननेमें आये तो विचारमें आये और विचारमें आये तो अंतर्मुख पुरुषार्थ करें, परन्तु जब अंतरकी वस्तुका श्रवण ही नहीं किया तब अंतरमें जायगा कहाँसे? यहाँ कहते हैं कि स्वभावका पूर्ण आश्रय लेने पर जो क्षायिकभावरूप पूर्ण पर्याय प्रगट होती है उसका भी अवलम्बन नहीं किया जाता, क्योंकि वह तो विशेष भाव है। विशेषके आश्रयसे रागका विकल्प उठता है, शुद्धि प्रगट नहीं होती। जहाँ क्षायिकभावका भी आलम्बन लेना योग्य नहीं है वहाँ व्रतादि औदयिकभावके आलम्बनकी बातें तो कहीं दूर रह गई, उनकी तो यहाँ बात ही नहीं है।

त्रैकालिक द्रव्यस्वभावके आश्रयसे ही साधनाकी नवीन पर्याय प्रगट होती है। व्यवहाररत्नत्रयके शुभरागसे तो नहीं, किन्तु पूर्वकी निर्मल पर्यायसे भी नवीन पर्याय हो ऐसा नहीं है। नियमसारमें क्षायिकभावको भी विभावभाव कहा है। यहाँ विभावभावका अर्थ मलिनभाव नहीं, किन्तु विशेष भाव है। शुद्ध द्रव्य है वह अखण्ड सामान्य है और पर्याय है वह विशेष है। विशेष भाव तो औपशमिक तथा क्षायोपशमिकभाव भी है, किन्तु क्षायिकभावकी बात चलती है।

भीतर स्वभावकी दृष्टि होनेसे सम्यग्दर्शन होता है, अंतरमें विशेष स्थिरता और बाह्यमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहज नग्नदशा होने पर तुरन्त ही ध्यानमें सप्तम गुणस्थान आता है, अंतरमें पूर्ण स्थिरता होने पर केवलज्ञान प्रगट होता है;—ऐसी पूर्ण पर्यायका वेदन प्रगट हो तथापि उसका आलम्बन नहीं होता। क्या कहा? अरे, क्षायिकभावका भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता, क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है।

'सामान्यके आश्रयसे ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है।'

यह पैरा बहुत अच्छा आया है। जिसे अखण्ड, पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य और परमपारिणामिक भाव कहा था उसीको यहाँ 'सामान्य' कहा है। उस शुद्धात्म-द्रव्यसामान्यके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप शुद्ध विशेष प्रगट होता है, किसी निमित्त, व्यवहार या पर्यायके आश्रयसे नहीं।

प्रश्न :—इसमें 'एकान्त' नहीं हो जायगा?

उत्तर :—भाई! यह 'सम्यक् एकान्त' ही सच्चा 'अनेकान्त' है। कथंचित् सामान्यके आश्रयसे तथा कथंचित् निमित्त, व्यवहार या पर्यायके आश्रयसे शुद्ध विशेष प्रगट हो ऐसा 'अनेकान्त' नहीं है। आश्रय और आलम्बन तो सदा एकमात्र भूतार्थका ही–सामान्यका ही होता है। भूतार्थस्वरूप निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके आश्रयसे ही मोक्षमार्गस्वरूप शुद्ध विशेष प्रगट होता है और देव–गुरु आदि निमित्त, व्रतादि व्यवहार तथा औपशमिकादि निर्मल पर्यायके आश्रयसे—अरे! गुणगुणी–भेदके आश्रयसे भी–सम्यग्दर्शनादि शुद्ध विशेष प्रगट नहीं होता—यही सच्चा 'अनेकान्त' है। सामान्यद्रव्यस्वभावके आश्रयसे ही औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भावस्वरूप शुद्ध विशेष प्रगट हो—यही सच्चा 'सम्यक् एकान्त'रूप वीतरागमार्ग है। अहा! इस पैरेमें तो अमृत बहाया है!

धर्मरूप शुद्ध विशेष प्रगट कहाँसे होगा?—कि सामान्यद्रव्यस्वभावके आश्रयसे। अहा! तीनलोकके नाथका—जिनेन्द्रदेवका—जो आदेश है वही यह वाणी है। आजकल तो यह बात सुननेको मिलना भी कठिन है। प्रभु! तू कौन है? कितना है? तेरा सामान्यस्वरूप क्या है?—तो कहते हैं कि तू अंतरमें अनन्तानन्त पूर्ण गुणोंसे भरा हुआ अभेद एक अखण्ड द्रव्य है। उस अखण्ड द्रव्यको ही औपशमिकादि पर्याय रहित अखण्ड परमपारिणामिकभाव अर्थात् ज्ञायकभाव कहा है। उस ज्ञायकभावस्वरूप द्रव्यसामान्यके आश्रयसे ही औपशमिक, क्षायोपशमिकादि मोक्षमार्गरूप शुद्ध विशेष प्रगट होता है।

त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवका जो आदेश है, वह यहाँ बहिन (चम्पाबेन) कह रही हैं कि—प्रभु! तू शरीर, वाणी, मन एवं कर्मसे बिलकुल भिन्न है, अंतरमें दया, दान, व्रत और

13

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तपके जो शुभभाव होते हैं उन विभावभावोंसे भी तेरा स्वभाव, तेरी मूल वस्तु, तेरा शुद्ध अस्तित्व भिन्न है। परसे तथा विभावसे भिन्न त्रिकालशुद्ध ज्ञायकभावस्वरूप जो तेरा 'सामान्य' उसके आश्रयसे धर्मपर्यायरूप शुद्ध 'विशेष' प्रगट होता है, किसी निमित्त, दया–दानादि विभावके आश्रयसे तो कदापि नहीं, परन्तु 'सामान्य'के आश्रयसे प्रगट होनेवाले शुद्ध विशेषके आश्रयसे भी नवीन शुद्ध विशेष प्रगट नहीं होता। अहा! यह बात भगवान परमेश्वर गणधर, मुनि, इन्द्र और नरेन्द्रोंके समक्ष कहते थे। वर्तमानमें महाविदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधर परमात्मा भी जो कहते हैं वह यही बात है। जिनेश्वरदेव द्वारा कहे गये मार्गमें रहनेवालोंको भी इस अध्यात्मतत्त्वकी कोई खबर नहीं है; क्या किया जाय? वास्तवमें जिनेश्वरदेव द्वारा कहा गया ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

जिनका कोई पार नहीं है ऐसे सहज ज्ञान, सहज आनन्द, सहज शान्ति आदि अनन्तानन्त परिपूर्ण गुणोंसे अभेद एकरूप ऐसा जो निज शुद्धात्म द्रव्य वह 'सामान्य' है, और उसके आश्रयसे धर्मकी विशेष पर्यायें सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र और केवलज्ञानादि प्रगट होते हैं। उन विशेष पर्यायोंका वेदन होता है परन्तु उनके अवलम्बनसे नवीन शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती। द्रव्यत्वसामान्यके आश्रयसे ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुव ज्ञायकके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है। निर्मल पर्यायका प्रगट होना, रहना और बढ़ना—सब त्रिकालशुद्ध द्रव्यसामान्यके आश्रयसे ही होता है। अहा! मार्ग तो यह है भाई! इसके बिना चार गतियोंमें भटकता रहेगा। लाखों–करोड़ों रुपयेका दान करे, जीवोंकी दया पाले, परन्तु वह कोई मूल वस्तु नहीं है, रागकी क्रिया है, धर्म नहीं है। तब फिर धर्मकी पर्याय कैसे प्रगट होगी?.....कि—ध्रुवसामान्यके आश्रयसे।

प्रश्न :—तो क्या व्रत, भक्ति, तीर्थयात्रादि धर्मकी क्रियाएँ नहीं हैं?

उत्तर :—भाई! धर्मकी क्रिया तो अंतरमें शुद्धता, पवित्रता एवं आनन्दकी दशा प्रगट हो उसे कहते हैं। धर्मकी क्रिया बाह्यमें अथवा बाह्यसाधनोंसे नहीं होती, परन्तु आत्मामें और आत्मासे होती है, त्रैकालिक 'सामान्य'के आलम्बनसे होती है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकके आश्रयसे ही धर्मकी पर्याय होती है। अरे! अभी द्रव्य क्या, गुण क्या और पर्याय क्या—उनके नामकी भी खबर नहीं है, तो उनके स्वरूपकी समझ कहाँसे लायगा? पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसा पूर्ण आत्मद्रव्य वह धर्मी, उसके त्रैकालिक ध्रुव गुण वे धर्म और उन पूर्ण गुणधर्मोंसे अभेद ऐसे निज आत्मद्रव्यसामान्यके आलम्बनसे जो निर्मलता प्रगट हुई वह धर्मकी पर्याय। अहा! इसमें द्रव्य–गुण–पर्याय तीनों आ गये।

ऐसी बात सुननेको नहीं मिलती, इसलिये अपनी दृष्टिसे–समझसे चलाये रखता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्रत, तप और यात्रा मानो धर्म हो इसप्रकार उनमें लग जाता है, परन्तु उनमें धूल भी धर्म नहीं है। कषायोंको क्षीण किया हो तो शुभराग है, पुण्य है। उसे पुण्य तो व्यवहारसे कहा जाता है, वास्तवमें तो आत्मस्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई पवित्रता ही निश्चयसे पुण्य है। शुभभाव भी राग है और जो राग है वह शुद्ध स्वरूपसे पतित होनेरूप भाव है, इसलिये परमार्थसे पाप है। अहा! कठिन बात है प्रभु! सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि हमें जो केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयरूप पर्याय प्रगट हुई वह विशेष पर्याय हुई कहाँसे? त्रैकालिक द्रव्यस्वभावके आलम्बनसे हुई है।

अभी तो 'द्रव्य'का अर्थ क्या?—यह भी खबर नहीं है। द्रव्यका अर्थ क्या पैसा होगा? भाई! यहाँ पैसेकी बात नहीं है; यहाँ तो 'द्रव्य' अर्थात् समस्त पर्यायोंसे रहित और पूर्ण अनंतगुणोंसे अभेद ऐसी पूर्ण शुद्ध आत्मवस्तु है। उस पर दृष्टि करनेसे उसीके आलम्बनसे शुद्धताका प्रारम्भ, वृद्धि एवं पूर्णता होती है। अहा! ऐसी बात है। नहीं समझेगा उसे तो पागल जैसी लगेगी। समाजमें तो एकदम होहा और हरीफाई (प्रतियोगिता) चलती हो कि—यह करूँ और वह करूँ। भाई 'करूँ–करूँ' में तो राग है और रागका 'करना' वह तो चैतन्यका 'मरना'—भावमरण है। चैतन्यमूर्ति ज्ञायकको 'राग करनेका कार्य' सौंपना वह तो चक्रवर्तीको 'कचरा उठानेका कार्य' सौंपने जैसा है।

अहा! चक्रवर्तीके पच्चीस–पच्चीस वर्षके राजकुमार–पुण्यकी प्रतिमूर्ति–समस्त बाह्य ऋद्धिको छोड़कर, उपसर्ग–परिषहोंकी परवाह किये बिना, निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यके आश्रयसे, शुद्धपर्यायरूप विशेषको अधिक विकसित करनेके लिये वनमें चले गये, तो उन्हें शुद्धात्मद्रव्यसामान्य सबसे महिमावान, सबसे अधिक आश्चर्यकारी लगा होगा तथा अन्य सब तुच्छ भासित हुआ होगा, तभी चले गये होंगे न? इसलिये हे जीव! तू भी ऐसे आश्चर्यकारी 'द्रव्यत्वसामान्य'की महिमा लाकर उसके आलम्बनसे निर्मल पर्यायरूप विशेषको प्रगट कर।

पहले ऐसा कहा कि—पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसा जो पूर्ण आत्मद्रव्य; फिर उसीको परमपारिणामिक भाव और सामान्य कहा; अब उसे 'ध्रुव' कहते हैं, ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है। 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्'में जो उत्पाद और व्यय है वह तो पलटता अंश–पर्याय है, और जो 'ध्रौव्य' अंश है वह त्रैकालिक शुद्ध 'सामान्य' है। उस ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल पर्यायका उत्पाद होता है।

'इसलिये सब छोड़कर एक शुद्धात्मद्रव्यके प्रति—अखण्ड परमपारिणामिकभावके प्रति–दृष्टि कर, उसीके ऊपर निरन्तर जोर रख, उसीकी ओर उपयोग ढले ऐसा कर।'

इसलिये सब छोड़कर–विषयानुराग और उसके आलम्बनभूत परपदार्थोंका आश्रय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

छोड़कर, धर्मानुराग और उसके निमित्तभूत देव–शास्त्र–गुरुका आश्रय छोड़कर, बुद्धिके विकासका अरे! समस्त अधूरी–पूरी पर्यायोंका भी आश्रय छोड़कर—एक अखण्ड परम पारिणामिकभावस्वरूप त्रैकालिक निज शुद्धात्मद्रव्य—सकलविमल एक ज्ञायक परमभाव—के प्रति दृष्टि कर; पूर्णानन्दका नाथ भगवान ज्ञायक अंतरमें अनन्तानन्त गुणोंके वैभवसहित विराजता है वहाँ दृष्टि लगा; उसी पर निरन्तर प्रतीतिका जोर रख; अचिन्त्य असाधारण महिमायुक्त ऐसे उस निज द्रव्यसामान्यकी ओर उपयोग झुके ऐसा कर। वर्तमान जो ज्ञानका जानने–देखनेका भाव, वह अंतरमें ध्रुव ज्ञायककी ओर उन्मुख हो ऐसा कर।

जो देखने–जाननेवाला दूसरेको—निमित्तको तथा रागको—देखने–जाननेमें लग गया है, उसे देखने–जाननेवालेका वर्तमान व्यापार अंतर्मुख होकर स्वयं देखने–जाननेवालेको देखे–जाने ऐसा कर। भीतर ज्ञायकतत्त्व कौन है, उसका स्वरूप और महिमा कैसी है—उसे अन्तर्मुख होकर जाने बिना कल्याण नहीं होगा, उसके बिना धर्म नहीं होगा, संसारका अन्त नहीं आयगा।

अहा! ३७६ वाँ बोल बहुत अच्छा आया है, बारह अंगका सार है। पूर्णानन्दका नाथ जो त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रयसे प्रगट होनेवाली जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप धर्मकी पर्याय उसका भी आश्रय लेना योग्य नहीं है, उस पर जोर देना उचित नहीं है, क्योंकि पर्यायके आश्रयसे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती। इसलिये सदा अंतरमें स्थित निज शुद्धात्मद्रव्य—अखण्ड परमपारिणामिक भाव—के प्रति दृष्टि कर, जोर भी वहीं लगा। प्रगट पर्यायमें जोर नहीं लगाना। अहा! यह बोल बहुत अच्छा आ गया है। त्रैकालिक आनन्दकन्द ज्ञायककी ओर ही उपयोगको—जाननेके वर्तमान व्यापारको—मोड़कर ध्रुवस्वभावकी ओर ले जा। 'यह किया और वह किया', इसप्रकार जो उपयोग बाहरकी माथापच्चीमें लगा है, परमें और शुभाशुभ विभावमें रुक गया है, उसे अंतरमें लगा दे। ऐसा करनेसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होगी, बढ़ेगी और पूर्ण होगी।

❀

आत्मामें रोटी आदि किसी भी जड़ पदार्थका ग्रहण-त्याग नहीं है। मैं निरालम्बी ज्ञायकस्वभावी हूँ, ऐसी श्रद्धाके बलसे अंतर्स्वरूपमें एकाग्र होने पर आहारादिका विकल्प छूट जाता है; वह तप है और अंतरकी लीनतामें जो आनन्द है, वह तपश्चर्याका फल है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

प्रवचन–१४८

दिनांक १२-११-७८

वचनामृत–३७७

स्वभावमेंसे विशेष आनन्द प्रगट करनेके लिये मुनिराज जंगलमें बसे हैं। उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभावमें लीनता वर्तती है—दिन–रात रोमरोममें एक आत्मा ही रम रहा है। शरीर है किन्तु शरीरकी कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है। उत्सर्ग एवं अपवादकी मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। आत्माका पोषण करके निज स्वभावभावोंको पुष्ट करते हुए विभावभावोंका शोषण करते हैं। जिस प्रकार माताका पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर अधिक जोरसे पल्ला पकड़ लेता है, उसीप्रकार मुनि परीषह–उपसर्ग आने पर प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्यको पकड़ लेते हैं। 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे!' ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टिको वर्तता है॥३७७॥

'स्वभावमेंसे विशेष आनन्द प्रगट करनेके लिये मुनिराज जंगलमें बसे हैं।'

सम्यग्दृष्टि जीवको कैसी भावना, कैसे मनोरथ होते हैं यह बात बहिनने इस बोलमें बतलायी है। निमित्तकी, शुभाशुभ विभावकी तथा अधूरी–पूरी पर्यायकी बुद्धि, रुचि और प्रेम छोड़कर सम्यग्दृष्टि जीवको सहज शुद्ध त्रैकालिक निज ज्ञायकस्वभावकी रुचि, बुद्धि और प्रीति परिणमित हो गई है; अंतरमें सिद्धसदृश अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः स्वाद आता है। उस स्वादको–अतीन्द्रिय आनन्दको—स्वभावके आलम्बनसे विशेष प्रगट करनेके लिये मुनिराज एकान्त निर्जन जंगलमें वास करते हैं। सम्यग्दृष्टिको मुनिराज होने की—'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ मैं?' ऐसी—भावना अंतरमें वर्तती रहती है।

'आत्मावलोकन' ग्रन्थमें 'कर्म है तो विकार है' ऐसा जो कहा है उसका क्या आशय है? शुभाशुभ विकार कर्म निमित्तक अनित्य भाव है, स्वाभाविक भाव नहीं है; विकार नैमित्तिक भाव होनेसे वह स्वभावके अवलम्बनसे दूर हो सकता है, नित्यानन्द भगवान आत्माका स्वभाव नहीं है, वह तो कर्मोदयके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाला क्षणिक औपाधिक भाव है ऐसा बतलानेका वहां आशय है—और स्वभावके आश्रयसे टालने पर टल जाता है वह बतलानेके लिये—उसका औपाधिकपना समझानेके लिये—'कर्म है तो विकार है' ऐसा कहा है। कर्म

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकार कराता है अथवा जब तक कर्म है तब तक विकार करना पड़ता है—ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

शास्त्रमें पुण्य–पाप, जीवस्थान, गुणस्थान, मार्गणास्थान आदिको पौद्गलिक कहा है। उसका अर्थ यह है कि जीवको पुण्य–पाप आदि भाव पुद्गलकर्मके सम्बन्धसे होते हैं, वे आत्माके स्वभावभाव नहीं हैं। उनका आत्माके साथ नित्य तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वे कर्मके आश्रयसे उत्पन्न हुए क्षणिक औपाधिक भाव हैं। यदि उनका जीवके साथ नित्य तादात्म्यसम्बन्ध हो तो वे विभाव जीवका स्वभाव सिद्ध हों और उससे उनका कभी नाश नहीं होगा; तथा जहाँ–जहाँ जीव हो वहाँ–वहाँ पुण्य–पाप होंगे और पुण्य–पापरहित जीव नहीं होता—ऐसा होगा, परन्तु ऐसा वस्तुका स्वरूप ही नहीं है; क्योंकि सिद्धदशामें जीव है, परन्तु पुण्य–पाप नहीं हैं, पुण्य–पापके बिना भी वहाँ जीव है। इसलिये विभावके साथ जीवका नित्य तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, वह मात्र क्षणिक औपाधिकभाव है, स्वभावके आश्रयसे टालने पर टल जाता है और पुद्गलकर्मके सम्बन्धसे हुआ है उतना बतलानेके लिये विभावको पौद्गलिक कहा है। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि पुण्य–पापका भाव पुद्गल है अथवा पुद्गलने कराया है।

पुण्य–पापके भावोंको, जीवका स्वभाव नहीं होने पर भी, जीवके कहना वह व्यवहारनयका कथन है। पंथी लुटने पर पंथ लुट रहा है ऐसा लोग कहते हैं; उसीप्रकार एक समयका सम्बन्ध देखकर पुण्य–पाप जीवके हैं ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है। निश्चयसे त्रैकालिक ज्ञायकभावके साथ विभावको तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। विभावको पुद्गलकर्मके साथ सम्बन्ध है, क्योंकि जहाँ–जहाँ विभाव हैं वहाँ–वहाँ पुद्गलकर्म है, पुद्गलकर्मके बिना विभाव नहीं होते। इस कथनसे कोई ऐसा आशय निकाले कि 'कर्मके कारण विभाव होते हैं,' तो ऐसा नहीं है। विभाव होते हैं जीवके ही अपराधसे, परन्तु वे होते हैं निमित्तके आश्रयसे; स्वभावके आश्रयसे विभाव नहीं होते। बस, उस कथनका इतना ही अर्थ है। विकारका उपादानकारण जीव स्वयं ही है, परन्तु उस समय उसका लक्ष निमित्त पर है। पुद्गलकर्मके लक्षसे हुआ होनेसे वह विकार पुद्गलका है ऐसा भी कहा जाता है। अहा! ऐसी बात है; एक न्याय बदल जाय तो सम्पूर्ण वस्तु बदल जाती है, भाई!

यहाँ तो बहिन मुनिराजकी बात कहती हैं। स्वभावमेंसे विशेष आनन्द प्रगट करनेके लिये मुनिराज वनमें निवास करते हैं। शुभाशुभ विभाव और पर्यायकी रुचि छोड़कर जिसने अभेद ज्ञायककी रुचि प्रगट की है, उसे ज्ञायकमें विद्यमान सर्व शक्तियोंका निर्मल अंश एक साथ व्यक्त हो गया है। उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्यादिके अंशोंके साथ अतीन्द्रिय आनन्दका अंश भी व्यक्त हुआ है। सम्यग्दर्शन होने पर आनन्दसागर ध्रुव चैतन्यके आश्रयसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो आनन्दांश प्रगट हुआ उसमें अतिशय वृद्धि करनेके लिये मुनिराज—जहाँ सिंह गर्जना करते हों, हाथी चिंघाड़ते हों, काले नाग फुफकारते हों ऐसे—घोर वनमें एकाकी, आनन्दमूर्ति ज्ञायकमें ही वस गये हैं। स्वभावमेंसे विशेष-विशेष स्वरूपानन्द प्रगट करने हेतु मुनिराज एकान्त निर्जन वनमें जा वसे हैं। ऐसी दशा कब प्रगट होगी वह भावना सम्यग्दृष्टिको होती है।

'उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभावमें लीनता वर्तती है,—दिन-रात रोमरोममें एक आत्मा ही रम रहा है।'

परिणतिमें आनन्दकी वृद्धि करनेके लिये मुनिराजको परमपारिणामिक भावस्वरूप त्रैकालिक ध्रुव निज सहज ज्ञायकभावमें निरन्तर निमग्नता वर्तती है; भूमिकानुसार महाव्रतादिके परिणाम वर्तते हैं, परन्तु वह कहीं परमार्थतः मुनिपना नहीं है। ज्ञायक शुद्ध परमभावके आलम्बनसे अविरत सम्यग्दृष्टिको आनन्दांशयुक्त जो लीनता वर्तती है, उसकी अपेक्षा एकान्त वनमें वास करके साधना करनेवाले मुनिराजको अतीन्द्रिय आनन्दकी जननी स्वरूपलीनता बहुत बढ़ गई होती है। श्रीमद्ने भावना भायी है न!—

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसनने मनमां नहिं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।......अपूर्व०

ज्ञानीको लक्ष्मी या पुत्र-परिवारमें वृद्धिकी भावना नहीं होती; अंतरमें स्वभावके आश्रयसे आनन्दका सागर उछल पड़े ऐसी भावना ही होती है; और उसके लिये ज्ञानी मुनिराजको स्वभावमें सतत लीनता वर्तती है, दिन-रात रोम-रोममें एक शुद्ध ज्ञायकभाव ही रम रहा है। अरे! जाग्रत हुआ आत्मा निद्रावस्थामें भी जाग्रत वर्तता है। अहा! ऐसी अद्भुत है मुनिराजकी दशा!

बहिनकी इस 'वचनामृत' पुस्तकमेंसे मुनिदशासे सम्बन्धित बोलोंका संग्रह करके 'धन्य मुनिदशा!' नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित की गई है। जगतमें धन्य दशा कौनसी है? स्वर्गकी दशा, चक्रवर्तीकी पदवी या लक्ष्मीपतिकी दशा क्या धन्य है?—यह दशाएँ धन्य नहीं हैं भाई! यह तो सब जड़के संयोग हैं, उनकी स्थिति कितनी? सम्यक्त्वीको भले ही वह चक्रवर्तीके वैभवमें पड़ा हो तथापि अंतरमें तो 'सदननिवासी तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी' इस न्यायसे रागसे भिन्नताकी भावना ही सदा वर्तती है, और दिन-रात रोम रोममें जहाँ एक शुद्ध आत्मा ही रम रहा है—ऐसी मुनिदशा हम कब प्राप्त करेंगे उसका मनोरथ भी वर्तता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहता है। मुनिराजको तो रोम-रोममें आनन्द-आनन्द वर्तता है—एक शुद्ध ज्ञायकभाव ही रम रहा है।

'शरीर है परन्तु शरीरकी कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत ऐसी दशा है।'

अशरीरी ज्ञायक भगवान आत्माकी जिन्हें दृष्टि, ज्ञान और रमणता वर्त रही है ऐसे निर्ग्रंथ मुनिराजको 'मात्र देह वह संयम हेतु हो भला'—संयममें निमित्तभूत शरीर है, किन्तु शरीरकी भी चिन्ता नहीं है, शरीरातीत जैसी दशा हो गई है। ऐसी साधनामग्न दशाकी भावना सम्यक्त्वीको होती है। श्रावकको भी संयमका मनोरथ होता है। श्रीमद्ने भी दिगम्बर दशाकी भावना भायी है न!—

नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता,
अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो;
केश रोम नखके अंगे श्रृंगार नहि,
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जो।.....अपूर्व।

अहा! मुनिराजको शरीर है, किन्तु शरीरकी कोई परवाह नहीं है, एक निजात्मसाधनाके सिवा उन्हें कुछ नहीं चाहिये। संघ, शिष्य या संस्थाकी तो नहीं, किन्तु कथंचित् संयमके हेतुभूत ऐसे शरीरकी भी कोई परवाह नहीं है। 'शरीर होने पर भी शरीरातीत दशा वर्तती है।'—ऐसी सहजदशा हो गई है।

'उत्सर्ग एवं अपवादकी मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं।'

मुनिराज निश्चय और व्यवहारके सुमेल पूर्वक साधना साधते हैं। उत्सर्ग अर्थात् आनन्दमय निर्विकल्प शुद्धिमें रहना, और अपवाद अर्थात् आनन्दमय निर्विकल्प शुद्धिमें विशेष स्थिर नहीं रह सकते, इसलिये किंचित् व्यवहार-रत्नत्रयके विकल्पमें आना होता है। अट्ठाईस मूलगुणरूप विकल्पमें आने पर भी उस कालमें ध्येय तो उत्सर्गमें—आनन्दमय उग्र शुद्ध परिणतिमें—ही जानेका है। अंतरमें—उत्सर्गमें जानेकी वे हठ नहीं करते तथा शिथिलता करके बाह्यमें—अपवादमें—व्यवहारमें रहनेका भाव नहीं करते। उनकी भावना सहजरूपसे उत्सर्ग एवं अपवादकी मैत्रीपूर्वक वर्तती रहती है। अंतरके आनन्दमें सहजरूपसे रमते-रहनेवाले मुनिराज अंदरमें जब विशेष नहीं रह सकते तब हठके बिना सहजरूपसे भूमिकानुसार शुभभावमें आते हैं किन्तु शुभभावमें रहना है—ऐसा ध्येय नहीं है। अहा! ऐसा वीतरागका मार्ग है।

'आत्माका पोषण करके निज स्वभावभावोंको पुष्ट करते हुए विभावभावोंका शोषण करते हैं।'

ज्ञायकस्वभावका उग्र आश्रय लेकर आनन्द और शान्तिकी वृद्धि करना ही 'आत्माका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पोषण' है। मुनिराज आत्माका आनन्द और शान्तिमय पोषण करके दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, ध्यानादि साधनाकी निर्मल शुद्धियोंको—निजस्वभावभावोंको–पुष्ट करते हुए राग–द्वेष, प्रमाद, कषायादि विभावोंका शोषण करते हैं। पोषण और शोषण करते हैं, परन्तु किसका? स्वभावका—निर्मल शुद्धियोंका पोषण और विभावका शोषण अर्थात् नाश करते हैं। विकृत दशाओंका नाश और अविकृत दशाओंकी–शुद्धिकी—वृद्धि होती जाती है।

'जिस प्रकार माताका पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर अधिक जोरसे पल्ला पकड़ लेता है, उसीप्रकार मुनि परीषह–उपसर्ग आने पर प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्यको पकड़ लेते हैं।'

माताकी साड़ीका पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक, कोई भौंकता हुआ कुत्ता निकट आ जाय अथवा दूसरी कोई कठिनाई आये तो पकड़े हुए पल्लेको अधिक जोरसे पकड़ लेता है; उसीप्रकार मुनिराज परिषह या उपसर्गमें—प्रतिकूलताके संयोगोंके समयमें—यद्यपि कोई वस्तु प्रतिकूल है ही नहीं, परन्तु दुनिया उन्हें प्रतिकूल कहती है इस अपेक्षासे बात कही है, वास्तवमें तो वे मात्र ज्ञेय हैं,—साँप, बिच्छू तथा चलते हुए मनुष्योंको भी उड़ा दे ऐसी भयंकर आँधी आदि प्रतिकूल संयोगोंके आने पर स्वसन्मुखताके प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निज शुद्धात्मद्रव्यका अवलम्बन लेकर प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्दमें झूलते रहते हैं; भगवान ज्ञायकका आश्रय विशेष उग्रतापूर्वक लेकर अंतरमें उतर जाते हैं। अहा! धन्य वह दशा! वह दशा प्रगट करने पर ही उद्धार है! उसके बिना मुक्ति नहीं होती।

कामधेनु गायको जब भी दुहें तब दूध देती है; उसीप्रकार मुनिराजका आत्मा कामधेनु गाय जैसा है कि जब भी वह अंतर्मुख एकाग्र होते हैं तब अंतरसे अतीन्द्रिय आनन्द झरता है, क्योंकि चाहे जैसी प्रतिकूलताके समय भी वे प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मक द्रव्यसे चिपटते हैं; उनको पंचमकाल, दुर्बल संहनन, सेवकोंका अभाव आदि कुछ भी बाधक नहीं होते। अहा!—

चलो सखी तहँ जाइये, जहाँ न अपना कोई,
खावें जन्तु शरीरको, मरें न रोवे कोई।

शरीरका अंत हो जाय तो वहाँ कोई रोनेवाला न हो। कोई अपना न हो। किसी पर्वतकी गुफामें अंतर आनन्दमें लीन होकर पड़े हों, देखो! ऐसा मुनिपना वह एक वस्तुस्थिति है। ऐसी दशा प्रगट करनी होगी प्रभु! इसके बिना मुक्ति नहीं है भाई! मात्र सम्यग्दर्शन और ज्ञानसे मुक्ति नहीं होती। श्रावकके तीन मनोरथ होते हैं :—कब परिग्रह छोड़ूँ? कब मुनिदशा धारण करूँ? और कब समाधिमरण हो? मुनिराज परीषह और उपसर्ग आने पर,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रचुर अंतरंग पुरुषार्थपूर्वक निज ज्ञायकभावका आलम्बन लेते हैं।

" 'ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे ?' ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टिको वर्तता है।"

धर्मीजीवको—

कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ मैं ?
सर्व सम्बन्धका बंधन तीक्ष्ण छेदकर,
कब विचरूँगा महत् पुरुषके पंथ पर ?
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आयगा ?

—ऐसी पवित्र मुनिदशा अंतरसे प्रगट करनेका मनोरथ वर्तता है।

❃

वचनामृत–३७८

जिसे स्वभावकी महिमा जागी है ऐसे सच्चे आत्मार्थीको विषय–कषायोंकी महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। उसे चैतन्यस्वभावकी समझमें निमित्तभूत देव–शास्त्र–गुरुकी महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए उसे निरंतर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करनेका खटका लगा ही रहता है।

गृहस्थाश्रममें स्थित ज्ञानीको शुभाशुभ भावसे भिन्न ज्ञायकका अवलम्बन करनेवाली ज्ञातृत्वधारा निरंतर वर्तती रहती है। परन्तु पुरुषार्थकी निर्बलताके कारण अस्थिरतारूप विभावपरिणति बनी हुई है इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। स्वरूपमें स्थिर नहीं रहा जाता इसलिये वे विविध शुभभावोंसे युक्त होते हैं :—'मुझे देव–गुरुकी सदा समीपता हो, गुरुके चरणकमलकी सेवा हो' इत्यादि प्रकारसे जिनेन्द्रभक्ति–स्तवन–पूजन एवं गुरुसेवाके भाव होते हैं तथा शास्त्रस्वाध्यायके, ध्यानके, दानके, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादिके शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। इन सब भावोंके बीच ज्ञातृत्व परिणतिकी धारा तो सतत चलती ही रहती है।

निजस्वरूपधाममें रमनेवाले मुनिराजको भी पूर्ण वीतरागदशाका अभाव होनेसे विविध शुभभाव होते हैं :—उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति–श्रुतभक्ति–गुरुभक्तिके उल्लासमय भाव भी आते हैं। हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होनेसे, आपके चरणकमलकी प्राप्ति होनेसे, मुझे क्या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं प्राप्त हुआ? अर्थात् आप मिलनेसे मुझे सब कुछ मिल गया। ऐसे अनेक प्रकारसे श्री पद्मनन्दि आदि मुनिवरोंने जिनेन्द्रभक्तिके स्रोत बहाये हैं।—ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके शुभभाव मुनिराजको भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायकके उग्र आलम्बनसे मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत चलती ही रहती है।

साधकको–मुनिको तथा सम्यग्दृष्टि श्रावकको—जो शुभभाव आते हैं वे ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्धस्वभाववाले होनेके कारण उनका आकुलतारूपसे—दुःखरूपसे वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिकामें आये बिना नहीं रहते।

साधककी दशा एकसाथ त्रिपटी (–तीन विशेषताओंवाली) है :—एक तो, उसे ज्ञायकका आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्यके प्रति जोर निरंतर वर्तता है जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांशकी भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांशका सुखरूप वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावोंका समावेश है उसका—दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदन होता है।

साधकको शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं। यों तो साधकके वे भाव हठरहित सहजदशाके हैं, अज्ञानीकी भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभवमें दुःख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भयसे जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। शुभभावोंके साथ–साथ वर्तती, ज्ञायकका अवलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति वही साधकको सुखरूप ज्ञात होती है।

जिस प्रकार हाथीके बाहरके दाँत—दिखानेके दाँत अलग होते हैं और भीतरके दाँत—चबानेके दाँत अलग होते हैं; उसी प्रकार साधकको बाह्यमें उत्साहके कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें वे अलग होते हैं और अंतरमें आत्मशान्तिका—आत्मतृप्तिका स्वाभाविक परिणमन अलग होता है। बाह्य क्रियाके आधारसे साधकका अंतर नहीं पहिचाना जाता॥३७८॥

'जिसे स्वभावकी महिमा जागी है ऐसे सच्चे आत्मार्थीको विषय–कषायोंकी महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान, आनन्दादि अनंतानंत गुणोंका भण्डार ऐसे निजात्मस्वभावकी—अपने चिन्मय शुद्ध अस्तित्वकी—जिसको अंतरसे सच्ची महिमा जाग्रत हुई है, 'काम एक आत्मार्थका, अन्य नहीं मन रोग' ऐसी आत्माको समझनेकी जिसे तीक्ष्ण जिज्ञासा जाग्रत हुई है, निज शुद्धात्मस्वभावके सिवा अन्यकी—शरीर, इन्द्रियाँ, प्रतिष्ठा, लक्ष्मी, मकान, स्त्री, पुत्र, चक्रवर्ती और इन्द्रों जैसे भोगोपभोग आदि परपदार्थोंकी तथा शुभ-अशुभ परभावोंकी-महिमा जिसके अंतरसे छूट गई है, ऐसे सच्चे आत्मार्थीको विषय-कषायोंकी महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है।

दुनियामें तो वेतन या कमायी बढ़ जाये तो कहता है कि 'आज तो बनाओ पकवान।' अरे भाई! थोड़ी आमदनी बढ़ी उसमें इतना उत्साहित हो गया? पैसेका आना वह तो पुण्यका फल है। जिसे पुण्यकी महिमा है उसे तो जड़की महिमा है, आत्माकी महिमा नहीं है; वह जीव मिथ्यादृष्टि है। जिसे अंतरसे आत्माकी महिमा हो उसे 'आत्मार्थी' कहते हैं। अनंत गुणोंसे समृद्ध निज चैतन्यरत्नकी जिसे अंतरसे महिमा आयी है, ऐसे सम्यग्दृष्टि इन्द्रको करोड़ों अप्सराओंका भोग हो, अद्‌भुत स्वर्गीय वैभव हो, तथापि उस सबकी महिमा उसके अंतरसे मिट गई है। ज्ञानीको राग आता है, किन्तु वह उसे काले नाग जैसा भयावह लगता है। स्वभावकी महिमा और विषय-कषायकी महिमा—ऐसी दो तलवारें एक म्यानमें नहीं रह सकतीं। जिसको पुण्य-पापके भावोंकी तथा अनुकूल संयोगोंकी महिमा एवं आश्चर्य मिट गया है और मात्र आत्मस्वभाव साधनेका ही प्रयोजन है वही सच्चा आत्मार्थी है।

प्रश्न :—क्या असली और नकली—ऐसे दो प्रकारके 'आत्मार्थी' होते हैं?

उत्तर :—भाई! कितनोंको अंतरसे आत्माकी सच्ची रुचि नहीं होती फिर भी आत्मार्थी कहलाते हैं न? इसलिये यहाँ जिसको स्वभावकी महिमा जाग्रत हुई है उसे सच्चा असली आत्मार्थी कहा है।

जो सच्चा आत्मार्थी हो उसे इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंकी, विषय-वासनाओंकी तथा कषायोंकी महिमा टूटकर उनकी तुच्छता भासित होती है। जो आत्मार्थी न हो उसे बाहरकी—दुनियासे सम्मान प्राप्त करनेकी अपनी योग्यताकी, प्रसिद्धिकी, करोड़पती बननेकी आदि बाह्य वस्तुओंकी—महिमा भासती है, निज शुद्धात्मस्वभावकी अचिन्त्य महिमा भासित नहीं होती। ज्ञानीको शुभभाव आये, उनसे तीर्थंकरत्व आदिका उच्च पुण्य बंध होता है, इन्द्रपद आदि पदवियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु अंतरमें उनकी महिमा नहीं है। अहा! इस बोलमें बहिनने बहुत अच्छी बात कही है; आत्मार्थीसे प्रारम्भ करके ठेठ मुनिदशाकी बातें ली हैं।

पाँच इन्द्रियोंके विषयोंकी मिठास तथा क्रोध-मान-माया-लोभकी महिमा जिसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरसे उड़ गई है, उसे एकमात्र त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकभाव ही महिमा करने योग्य लगती है, शेष सब जगत तुच्छ भासित होता है। जिसे जगत—विषय-कषाय अधिक लगते हैं उसे आत्माकी महिमा नहीं है।

'उसे चैतन्यस्वभावकी समझमें निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आती है।'

आत्मार्थी जीवको निश्चयसे तो अंतरंग ध्रुव चैतन्यस्वभावकी महिमा है, परन्तु उसे तथा विकल्पके कालमें ज्ञानीको भी, व्यवहारसे चैतन्यस्वभावको समझनेमें निमित्तभूत ऐसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आती है। 'अरहंत श्रुतसिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ' तथा जासों पूजूँ परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन'—सर्वप्रथम देव, फिर जिनवाणी और तत्पश्चात् निर्ग्रन्थगुरु—इन तीनोंकी महिमा ज्ञानीको आती है, परन्तु स्वभावकी महिमाको छोड़कर नहीं; अंतरमें स्वभावकी महिमा सर्वदा अधिक है। सर्वदा अधिकरूप वर्तते स्वभावकी महिमाके समय भी ऐसे ज्ञायक स्वभावको समझनेमें उपकारी ऐसे देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आती है।

'कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करनेका खटका लगा ही रहता है।'

व्यापार, राज्य, कुटुम्ब, समाज या स्वाध्याय-पूजा-भक्ति आदि कोई भी कार्य करते हुए सच्चे आत्मार्थीको निरंतर अंतरमें परमानन्दमूर्ति ऐसे सदा शुद्ध निज ज्ञायकभावकी प्राप्ति करनेका—परिणतिमें शुद्धस्वभावको ग्रहण करनेका—खटका लगा ही रहता है। अंतरमें एकमात्र चैतन्यस्वभावकी खटक, तड़प, लगन, उत्कंठा, तीव्र पिपासा सतत लगी ही रहती है।

'गृहस्थाश्रममें स्थित ज्ञानीको शुभाशुभ भावसे भिन्न ज्ञायकका अवलम्बन करनेवाली ज्ञातृत्वधारा निरंतर वर्तती रहती है।'

घरसंसारमें वास करनेवाले आत्मज्ञानीको भक्ति-पूजा, दया-दानादि शुभ तथा विषय-कषायके अशुभभाव आते हैं, परन्तु उस समय भी, अरे! सदा शुभाशुभ भावसे भिन्न ज्ञायक परमभावका अवलम्बन लेनेवाली ज्ञातापनेकी परिणति वर्तती रहती है। समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके ११०वें कळशमें आता है न! कि—

"जब तक यथाख्यात चारित्र नहीं होता तब तक सम्यग्दृष्टिको दो धाराएँ रहती हैं—शुभाशुभ कर्मधारा और ज्ञानधारा। उन दोनोंके एकसाथ रहनेमें कुछ भी विरोध नहीं है। उस स्थितिमें कर्म अपना कार्य करते हैं और ज्ञान अपना कार्य करता है। जितने अंशमें शुभाशुभ कर्मधारा है उतने अंशमें कर्मबंध होता है और जितने अंशमें ज्ञानधारा है उतने अंशमें कर्मोंका नाश होता जाता है। विषय-कषायके विकल्प या व्रत-नियमके विकल्प-शुद्धस्वरूपका विचार तक-कर्मबंधका कारण है; शुद्ध परिणतिरूप ज्ञानधारा ही मोक्षका कारण है।"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभावसन्मुखताकी जो निर्मलदशा हुई वह तो निरंतर चल ही रही है; अशुभभावके समय भी 'मैं तो सहज ज्ञायकतत्त्व ही हूँ' ऐसी चैतन्यके शुद्ध परिणमनकी धारा चल ही रही है। ज्ञायकके आश्रयसे परिणमित ज्ञाता-द्रष्टापनेकी जो निर्मलधारा वह तो ज्ञानीको गृहस्थ दशामें भी सतत वर्तती है।

'परन्तु पुरुषार्थकी निर्बलताके कारण अस्थिरतारूप विभावपरिणति बनी हुई है, इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं।'

परिणतिमें पुरुषार्थकी अल्पताके कारण आसक्तिरूप अस्थिरता होनेसे ज्ञानी गृहस्थको गृहसंसार सम्बन्धी, व्यापार-धन्धेके अशुभ तथा वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी उपासना, स्वाध्यायादि सम्बन्धी शुभ परिणाम होते हैं। अंतरमें चैतन्य ज्ञायक भगवानको देखा, जाना, अनुभव किया है, परन्तु पुरुषार्थकी मन्दता होनेसे उसमें विशेष स्थिर नहीं हो सकता, इसलिये उसे गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ भाव आते हैं।

'स्वरूपमें स्थिर नहीं रहा जाता इसलिये वे विविध शुभभावोंमें युक्त होते हैं :—'मुझे देव-गुरुकी सदा समीपता हो, गुरुके चरणकमलकी सेवा हो' इत्यादि प्रकारसे जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन एवं गुरुसेवाके भाव होते हैं तथा शास्त्रस्वाध्यायके, ध्यानके, दानके, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादिके शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं।''

ज्ञानानन्दस्वरूप निज स्वभावमें विशेष स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिये ज्ञानी गृहस्थ अनेक प्रकारके निज भूमिकाके योग्य शुभभावोंमें युक्त होता है। वीतराग देव-गुरुका सत्समागम, गुरुकी सेवा-सुश्रूषा, जिनेन्द्रदेवकी भक्ति-स्तुति-पूजा, गुरुवाणीश्रवण, शास्त्राभ्यास, ध्यान, गुरुको आहारदान, भूमिकानुसार अणुव्रत तथा अनशनादि तप आदिके शुभभाव ज्ञानी श्रावकको बिना हठके सहजरूपसे आते हैं। अहा! प्रवचनसारके प्रारम्भमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवको पंचपरमेष्ठीके प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! पाँचों परमेष्ठी भगवन्तोंका स्मरण करके भक्तिपूर्वक कैसा नमस्कार किया है! तीनों कालके तीर्थंकर भगवन्तोंको—साथ ही साथ मनुष्यक्षेत्रमें वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तोंका पृथक् स्मरण करके—'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक-प्रत्येकको मैं वंदन करता हूँ' ऐसा कहकर अति भक्तिभीने चित्तसे आचार्य भगवंत नमित हो गये हैं। ऐसे भक्तिके भाव मुनिराजको तथा ज्ञानी धर्मात्माको आये बिना नहीं रहते। ऐसे भक्ति आदिके शुभभाव आयें तब भी ज्ञानीको ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है, शुभभाव तो ऊपर-ऊपर तैरते हैं तथा स्वभावसे विपरीत वेदनमें आते हैं।

'मुझे देव-गुरुकी सदा समीपता हो' आदि भावनाके समय भी अंतरमें तो शुद्धात्मा ही समीप वर्तता है, परन्तु व्यवहारसे 'देव-गुरु समीप हों' ऐसी भावना ज्ञानी गृहस्थको आती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। निर्ग्रंथ गुरुको नवधा भक्तिपूर्वक निर्दोष आहार–जल देनेका भाव व्यवहारसे आता है, निश्चयसे तो स्वभावके आश्रयसे प्रगट की हुई शुद्धि अपनेको देना वही सम्प्रदान अर्थात् सच्चा दान है। ज्ञानादि अनंत गुणसागर भगवान आत्मामें एकाग्रता होकर परिणतिमें जो आनन्द और शान्ति प्रगट हुई उसे अपनेमें बनाए रखना वह सच्चा दान है, परन्तु ज्ञानी श्रावकको ऐसे व्यवहार दानका भी विकल्प आता है। पाँचवें गुणस्थानकी भूमिकानुसार अहिंसादि बारह अणुव्रतोंके, स्वाध्यायके, ध्यानके विकल्प आते हैं, परन्तु वे बंधका कारण हैं, मुक्तिका कारण नहीं हैं। भावपाहुडमें कहा है न! कि—

पूजादिमां व्रतमां जिनोए पुण्य भाख्युं शासने;
छे धर्म भाख्यो मोहक्षोभविहिन निज परिणामने.

(भावपाहुड गाथा–८३)

व्रतादि शुभ भावोंसे तो भगवानने पुण्यबंध कहा है, धर्म नहीं कहा; धर्म तो ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाले मोहक्षोभरहित शुद्ध परिणामको कहा है। ज्ञानीको भूमिकानुसार शुभभाव आते हैं, किन्तु उस समय उसके अंतरमें जो ज्ञातृत्वधारा निरंतर चल रही है वही धर्म है, शुभराग नहीं।

'इन सब भावोंके बीच ज्ञातृत्वपरिणतिकी धारा तो सतत चलती ही रहती है।'

ज्ञानी श्रावकको भूमिकानुसार व्रत–तपादिके भाव बिना हठके आते हैं तब भी—उन समस्त शुभ भावोंमें भी—उसके अंतरमें स्वभावके आश्रयसे 'मैं मात्र ज्ञाताद्रष्टा हूँ' ऐसी परिणमनकी धारा तो सतत चलती ही रहती है। अहा! पहले सच्चे आत्मार्थीकी तथा उसको स्वभावप्राप्तिके लिये खटकेकी बात की, तत्पश्चात् गृहस्थाश्रममें रहनेवाले ज्ञानीकी बात कही, अब मुनिराजकी बात कहते हैं।

जिस प्रकार घोर निद्रामें पड़े हुएको अपने आसपासकी दुनियाकी खबर नहीं रहती, उसीप्रकार चैतन्यकी अत्यन्त शान्तिमें स्थिर हुए मुनिवरोंको जगतके बाह्य विषयोंमें किंचित् भी आसक्ति नहीं होती; भीतर स्वरूपकी लीनतासे बाहर निकलना बिलकुल अच्छा नहीं लगता; उनके आसपास वनके वाघ और सिंह दहाड़ते हों फिर भी उनसे जरा भी भयभीत नहीं होते और न ही स्वरूपकी स्थिरतासे किंचित् डिगते हैं। अहा! धन्य वह अद्भुत दशा!

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१४९

दिनांक १३-११-७८

वचनामृत–३७८ (चालू)

'निज स्वरूपधाममें रमनेवाले मुनिराजको भी पूर्ण वीतरागदशाका अभाव होनेसे विविध शुभ भाव होते हैं :—उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभ भाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति–श्रुतभक्ति–गुरुभक्तिके उल्लासमय भाव भी आते हैं।'

निज सुखस्वरूप धाममें निवास करनेवाले मुनिराजको भी अनेक प्रकारके शुभ भाव आते हैं। यहाँ 'भी' शब्द क्यों आया? कि—चौथे गुणस्थानमें अविरति सम्यग्दृष्टिको और पाँचवें गुणस्थानमें देशविरति श्रावकको तो अंतरमें ज्ञातृत्वधारा सतत वर्तती होने पर भी, उस–उस भूमिकाके योग्य शुभ भाव आते हैं, परन्तु मुनिराज स्वरूप स्थिरतामें आगे बढ़ गये हैं इसलिये उनके शुभ भाव बिलकुल नहीं होता—ऐसा नहीं है। तीन कषायके अभाव जनित वीतरागता प्रगट होने पर भी अभी उन्हें पूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं हुई है, इसलिये महाव्रत, समिति, सामायिक आदि षट् आवश्यक, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यानादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं।

अहा! मुनिराज किन्हें कहा जाता है? 'सुखधाम अनंत सुसंत चहीं, दिन रात रहें तद् ध्यान महीं'......मुनिराजको तो मुख्यतः दो कार्य होते हैं—ध्यान और स्वाध्याय। पूर्ण वीतरागदशाका अभाव होनेसे उनको अट्ठाईस मूलगुण आदि तथा सर्वज्ञ वीतराग, जिनेन्द्रदेव, आप्तप्रणीत वीतराग श्रुत एवं वीतराग निर्ग्रन्थ गुरुकी भक्ति, उपासना आदिके उल्लासमय शुभ भाव भी आते हैं। भूमिकानुसार ऐसे विविध भावोंके समय भी उनको निज शुद्धात्मद्रव्यके उग्र आलम्बनजनित मुनि योग्य उग्र ज्ञानधारा तो सतत चलती ही रहती है।

सर्वत्र 'वीतरागता' ही जैनधर्म है। अविरत सम्यग्दृष्टि हो, देशविरत श्रावक हो या सर्वविरत मुनिराज हों, सर्वत्र—भूमिकाके योग्य शुभभाव होने पर भी—परिणतिमें जितनी वीतरागता परिणमित हुई है उतना धर्म है, साथमें वर्तता हुआ शुभराग वह कहीं धर्म या धर्मका परमार्थ साधन नहीं है। पहले सच्चे आत्मार्थीकी और सम्यग्दृष्टि गृहस्थकी बात की, अब यहाँ निजस्वरूपधाममें रमनेवाले सर्वविरत मुनिराजकी बात करते हैं।

सुखनिधान निज ज्ञायक–उद्यानमें रमनेवाले मुनिराजको भी अभी पूर्ण वीतराग

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वज्ञदशा प्रगट नहीं हुई है; पूर्ण दशा तो अरिहंत परमात्माको प्रगटी है। पूर्ण वीतराग दशा प्रगट नहीं है फिर भी, मुनिराजको वीतरागस्वभावी निज ज्ञायक भगवानके उग्र आलम्बनसे अत्यन्त वीतरागता उत्पन्न हुई है। 'आत्मावलोकन'के 'गुरु–अधिकार'की गाथामें आता है न! कि—

वियरायं वियरायं जीयस्स णिय ससरूवो वियरायं।
मुहु मुहु गणदि वियरायं, सो गुरुपयं भासदि सया॥

जीवका निज स्वरूप वीतराग है—ऐसा जो बारम्बार कहते हैं वे ही सदा गुरुपद पर शोभते हैं। मुनिराज अपनेको वीतरागरूप अनुभवते ही हैं, परन्तु यदि दूसरोंको उपदेश दें तो अन्य सब छोड़कर मात्र जीवके एक निज वीतरागस्वरूपका ही बारम्बार कथन करते हैं। उनको दूसरा कोई अभ्यास नहीं है, यह एक ही अभ्यास है। स्वयं भी अंतरंगमें अपनेको वीतरागरूप अभ्यासते हैं और बाह्यमें भी जब बोलनेका विकल्प आये तब 'आत्माका स्वरूप वीतराग है' यही वचन बोलते हैं। इसी कारण उनको गुरुपदवी शोभती है, अन्य सरागीको नहीं। जिनके उपदेशमें ऐसा आये कि व्रत, तप, भक्ति, स्वाध्यायादि शुभराग करनेसे धर्म होता है वह मुनि नहीं है, धर्मी नहीं है, उसका उपदेश तत्त्वसे विपरीत है। रागसे—भले ही वह शुक्ललेश्यारूप हो—कदापि धर्म नहीं होता, क्योंकि वह तो आस्रव है, बंधका कारण है; और धर्म तो संवर–निर्जरास्वरूप है तथा मोक्षका कारण है; शुभ राग और धर्म—दोनोंका स्वरूप परस्पर विपरीत है।

राग और ज्ञान (धर्म)—दोनोंका स्वरूप अन्योन्य विरुद्ध होने पर भी साधकको—ज्ञानी गृहस्थ तथा मुनिराजको भी, पूर्ण वीतरागदशाका अभाव होनेसे, भिन्न–भिन्न प्रकारके—कभी व्रतके, कभी भक्तिके, पूजाके अथवा भगवत्स्मरणके, कभी अट्ठाईस मूल गुणके, कभी पंचाचारमेंसे ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार तथा वीर्याचारके, कभी शास्त्रस्वाध्यायके और कभी तत्त्वचिंतन एवं ध्यानके—शुभभाव आते हैं। 'मैं ध्यान करूँ, मैं ध्रुव शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसे विकल्प भी—आत्माके शुद्धस्वरूपका विचार तक—शुभराग, आस्रव और बंधका कारण है।

शुभराग आस्रव और बंधका कारण होने पर भी ज्ञानी धर्मात्माको भी—मुनिराजको भी—जिनेन्द्रभक्ति, श्रुतभक्ति एवं गुरुभक्तिके उल्लासमयभाव, अंतरमें समस्त रागके प्रति हेयबुद्धि रखकर आते हैं, क्योंकि साधकदशा अभी अधूरी है, पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई है। पूर्ण वीतरागको वंद्य–वंदक भाव नहीं होते, अरे! अप्रमत्तदशा होते ही बुद्धिपूर्वकके विकल्पका अभाव होनेसे वंद्य–वंदकका व्यवहार छूट जाता है; परन्तु सविकल्प दशामें ज्ञानी गृहस्थको 'वसुविधि अर्घ संजोयकैं, अति उछाह मन कीन, जासौं पूजौं परमपद, देव–शास्त्र–गुरु तीन'—इसप्रकार पूजन सामग्रीसे और मुनिराजको भावसे जिनेन्द्रभक्ति, श्रुतभक्ति एवं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरुभक्तिके उल्लासमय शुभभाव भी, अंतरमें ज्ञानधारारूप वीतराग परिणतिकी विशेष महिमा रखकर आते हैं।

निज स्वरूप धामका क्षेत्र है असंख्य प्रदेशोंमें, परन्तु उसमें गुण हैं अपरिमित–अनंत। प्रत्येक गुणका स्वभाव भी अनन्त है: ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, आनन्द अनन्त। जो स्वभाव हो उसे अन्त, मर्यादा, हद या सीमा नहीं होती। असीम स्वभावस्वरूप निज ज्ञायकधाममें रमनेवाले मुनिराजको भी, पूर्ण वीतरागस्वरूप परमात्मदशा प्रगट नहीं हुई है इसलिये, भूमिकानुसार व्रतादिके तथा ध्यानादिके शुभभाव आते हैं। मिश्र भूमिका होनेसे शुद्धभावका तथा थोड़ा शुभभावका वेदन है, परन्तु वेदनका आलम्बन नहीं है। जिसका आलम्बन उसका वेदन नहीं और जिसका वेदन उसका आलम्बन नहीं। व्यवहार रत्नत्रयस्वरूप शुभभाव अवलम्बन लेने योग्य नहीं है, अवलम्बन लेने योग्य तो त्रिकालशुद्ध ज्ञायक स्वरूप निज चैतन्यधाम है।

" 'हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होनेसे, आपके चरणकमलकी प्राप्ति होनेसे, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ? अर्थात् आप मिलनेसे मुझे सब कुछ मिल गया। ऐसे अनेक प्रकारसे श्री पद्मनन्दि आदि मुनिवरोंने जिनेन्द्र भक्तिके स्रोत बहाये हैं।"

जिन्हें निज ज्ञायक परमभावके उग्र आश्रयसे अंतरमें तीनकषायके अभावस्वरूप शुद्धता परिणमित हुई है ऐसे श्री पद्मनन्दि आदि निर्ग्रंथ मुनिवर भी, पर्यायमें पूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं होनेसे, उल्लसित भावपूर्वक जिनेन्द्रभक्तिके स्रोत बहाते हुए कहते हैं कि—'हे जिनेन्द्र! हे वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा! आपके दर्शन होनेसे, आपके चरणकमलकी प्राप्ति होनेसे, मुझे क्या प्राप्त नहीं हुआ? अरे! आपके मिलनेसे मुझे सब कुछ मिल गया, जगतकी सर्वोत्कृष्ट वस्तु निज ज्ञायकदेवकी प्राप्ति हो गई, स्वर्ग-मोक्षका दाता मोक्षमार्ग मिल गया। हे नाथ! आपके चरणकमलकी प्राप्ति होनेसे मुझे चौदह ब्रह्माण्डका राज्य भी जिसके समक्ष तुच्छ है ऐसी, निजशुद्धात्मदृष्टि और वीतरागताकी प्राप्ति हो गई; इससे विशेष मुझे और क्या चाहिये?' यह उल्लासमय भक्तिभाव है तो शुभराग, आस्रव और बंधका कारण, परन्तु साधक दशामें ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते। अशक्ति भावसे पर्यायमें उसका वेदन है, परन्तु दृष्टिमें उसका आलम्बन नहीं है। वेदनमें सविकल्प दशा है उस समय भी अंतरमें आलम्बन तो त्रिकालशुद्ध ध्रुवज्ञायकका ही। पर्यायमें चाहे तो शुभका अथवा शुद्धका वेदन हो, अरे! मुनिराजको कदाचित् अल्प आर्तध्यान और ज्ञानी श्रावकको अल्प रौद्रध्यान भी आ जाय, उस समय भी आलम्बन तो ध्रुवका ही है। शुभ, अशुभ या शुद्धपर्यायका वेदन है, किन्तु आलम्बन नहीं है। साधनामें मुख्यता पर्यायकी नहीं किन्तु आश्रयभूत ध्रुव द्रव्यस्वभावकी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'—ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके शुभभाव मुनिराजको भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायकके उग्र आलम्बनसे मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत चलती ही रहती है।'

मैं मुनि हूँ इसलिये मुझे व्रत-तप, जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन तथा स्वाध्याय-ध्यानादि शुभभाव करना चाहिये, ऐसे भाव नहीं करूँगा तो मेरी दुर्गति होगी, पापकर्मका बंधन होगा, प्रतिष्ठामें हानि होगी—ऐसे हठपूर्वक नहीं, परन्तु सहजरूपसे ऐसे अनेक प्रकारके शुभभाव भूमिकानुसार मुनिराजको भी आते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत श्रावक या सर्वविरत मुनिराज—सबको अपनी-अपनी भूमिकानुसार वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी महिमाके तथा अन्य अनेक प्रकारके जो शुभभाव आते हैं, वे सहजरूपसे बिना हठके आते हैं। शुभभावके समय भी अंतरमें उन्हें उनके प्रति कर्तृत्वबुद्धि या उपादेयबुद्धि नहीं है। उस समय भी साथ-साथ ज्ञायकके आलम्बनस्वरूप ज्ञातृत्वधारा तो अंतरमें भूमिकानुसार सतत चल ही रही है।

साधकका परिणमन मिश्रभावरूप है, जितना ज्ञायकके आलम्बनस्वरूप है उतनी ज्ञानधारा है और जितना उदयके अनुरूप-शुभाशुभ भावरूप—है उतनी कर्मधारा है। ज्ञानी मुनिराजको सतत वर्तती निजस्वरूपके उग्र आलम्बनस्वरूप ज्ञातृत्वधाराके साथ जो अनेक प्रकारके शुभभाव आते हैं वे हठके बिना, सहजरूपसे आते हैं, परन्तु उनके प्रति कर्तृत्व, स्वामित्व या उपादेयपना अणुमात्र भी नहीं है। ज्ञानीको प्रत्येक भावमें जो ज्ञानधारा है वह धर्मधारा है और जो कर्मधारा है वह अधर्मधारा है। शुभ और अशुभभाव दोनों अधर्मधारा है और मात्र एक शुद्धभाव ही धर्मधारा है। अरेरे! लोगोंको यह बात कठिन लगती है, इसलिये विरोध करते हैं और कहते हैं कि—'सोनगढ़ निमित्त और शुभभावोंसे धर्म होता है ऐसा नहीं मानता।' जो निमित्तसे और रागसे धर्म मानते हों उनकी दृष्टिमें सोनगढ़की बात विरुद्ध लगेगी—यह बात सच्ची है। भाई! निमित्तसे और शुभरागसे कभी धर्म नहीं होता, धर्म तो त्रिकाल वीतराग स्वरूप निर्विकल्प निज ज्ञायक भगवान आत्माके अंतर्मुख आलम्बनसे ही होता है; निज स्वभावके आलम्बन बिना अन्य किसी उपायसे धर्म नहीं होता।

ज्ञानीको अंतरमें धर्मपरिणतिके साथ-साथ भूमिकानुसार शुभाशुभ विभावभाव आते हैं; चौथे गुणस्थानमें देव-शास्त्र-गुरुके प्रति महिमाके तथा विषयके और व्यापार-धंधेके, पाँचवें गुणस्थानमें अणुव्रतादिके और विषय-वासनाके तथा छठवें गुणस्थानमें मुनिराजको व्रत-तपके तथा कदाचित् आर्तध्यानके भाव आते हैं, उस समय भी सबको अपनी-अपनी भूमिकानुसार अर्थात् मुनिराजके अंतरमें ज्ञानधारा अति विशेष है, गृहस्थ श्रावकको उनकी अपेक्षा अनन्तवें भाग है। सम्यग्दृष्टि राजा युद्धमें हो उस समय भी उसके अंतरमें सम्यग्दर्शन-ज्ञानधारा चलती ही रहती है। अहा! ऐसा है वीतरागका मार्ग! लोगोंको इसमें एकान्त लगता है, क्योंकि इसमें व्रतादिकी क्रिया तथा शुभभाव धर्म या धर्मका कारण है—ऐसा नहीं आता। भाई! यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मान्यता तो अनादिकालीन मिथ्यात्वशल्य है। ऐसी क्रियाएँ और शुभराग तो जीव पूर्वमें अनन्तबार कर चुका है, वह कुछ अपूर्व नहीं है। अपूर्व तो निज शुद्ध ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे वीतरागी ज्ञानधारा प्रगट करना है। मुनिराजको तो स्वभावका आश्रय उग्ररूपसे वर्तता होनेके कारण भले ही अनेक प्रकारके शुभ भाव हठरहित आते हैं, तथापि साथ ही साथ ज्ञायकके प्रचुर एवं प्रबल आलम्बनसे मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत चलती ही रहती है।

'साधकको—मुनिको तथा सम्यग्दृष्टि श्रावकको—जो शुभभाव आते हैं वे ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्धस्वभाववाले होनेके कारण उनका आकुलतारूपसे—दुःखरूपसे वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिकामें आये बिना नहीं रहते।'

भगवान ज्ञायक आत्मा वीतरागतारूप अमृतका सागर है, उसके अवलम्बनसे परिणतिमें जो वीतरागता हुई वह तो अकषाय आनन्दकी धारा है। साधकको—मुनिको, श्रावकको तथा अविरति सम्यग्दृष्टिको—ज्ञातृत्व परिणति मन्द होनेसे, साथ जो शुभ भाव होते हैं वे अकषाय आनन्दधारासे विरुद्ध स्वभाववाले होनेके कारण आकुलतारूप—दुःखरूपसे वेदनमें आते हैं, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि वे भूमिकामें आये, बिना नहीं रहते। अरे! सोनगढ़की (पूज्य गुरुदेवकी) बात लोगोंको कठिन लगती है, परन्तु भाई! यह बात सोनगढ़की है या भगवानके घरकी? भगवानने तो प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि शुभभावोंको विषकुम्भ कहा है, अमृतका कुम्भ तो आनन्दामृतसागर निजज्ञायक ऐसे स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली निर्मल ज्ञानधाराको कहा है।

ज्ञानीको जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपरमणतारूप चारित्र है वह अमृतधारा है; उसे जो शुभभाव आते हैं वे रागस्वरूप होनेसे विरुद्ध स्वभाववाले हैं, विषधारा हैं। लोग तो—अरे! उपदेशक साधु, त्यागी और पण्डित भी—विरुद्धस्वभाववाले शुभभावोंसे लाभ होता है, धर्म होता है—ऐसा मानते और मनवाते हैं। प्रभु! यह तुझे शोभा नहीं देता। शुभभावरूप मलिनभावोंसे शुद्ध भावरूप निर्मलता प्रगट होती है, ऐसा मानना और मनवाना तुझे शोभा नहीं देता भाई! शुभभाव तो आकुलता हैं और आकुलता दुःख है। दुःखरूप भाव तो अनाकुल सुखरूप ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्ध हैं। मुनिराजको, श्रावकको या सम्यक्त्वीको, निराकुल ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्धस्वभाववाले होने पर भी विविध शुभभाव आते हैं, परन्तु उनका वेदन दुःखरूप होता है, हेयरूप लगते हैं। ज्ञानीको भी निचली दशामें उतना राग–दुःखका वेदन कथंचित् है। ज्ञानीको दुःखका वेदन सर्वथा नहीं होता—यह बात बराबर नहीं है। जब तक पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई हो तब तक ज्ञानीको—मुनिराजको भी—शुभराग आता है, परन्तु उसका दुःखरूप वेदन होता है, वह हेयरूप लगता है।

पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट नहीं हुई हो तब तक मिश्रधारारूप साधकदशामें जो वीतरागता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमित हुई है वह अनाकुल आनन्दरूप है और अस्थिरताका जो राग शेष रह गया है वह आकुलतारूप–दुःखरूप है। क्षपकश्रेणीमें भी जो अबुद्धिपूर्वक राग है वह दुःखरूप है। शुभ हो या अशुभ हो, राग मात्र ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्धस्वभाववाला होनेसे दुःखरूप है। ज्ञानीको शुभभावोंका दुःखरूप वेदन होता है, हेयरूप लगते हैं; एकमात्र निज ज्ञायकस्वभावके आलम्बनसे प्रगट हुई ज्ञातृत्वधारा ही सुखरूप तथा उपादेयरूप वेदनमें आती है और लगती है। ज्ञायकके आलम्बनसे जो ज्ञानधारा प्रगट हुई उसका वेदन सुखरूप है और उसके साथ जो व्रतादिका शुभभाव आया—कर्मधारा, उदयधारा प्रगट हुई—उसका वेदन ज्ञानधाराके विरुद्ध दुःखरूप—आकुलतारूप है।

धर्मीको शुभराग आता है, परन्तु 'यह राग–आग दहै सदा'—इस न्यायसे वह भट्ठी समान दुःखरूप लगता है। रागकी एकता तोड़कर और स्वभावकी एकता करके जिसने पर्यायमें अंशतः वीतरागता एवं निर्विकल्प आनन्द प्रगट किया है उसे मिश्रभावरूप पर्यायके एक भागमें, अस्थिरताके कारण, राग और दुःख भी है।

यहाँ साधककी बात ली है न! मुनि, श्रावक और सम्यक्त्वी—तीनों साधक हैं। अहा! भाषा सादी और माल उच्च प्रकारका! जो भी इन्हें (बहिनश्रीके वचनामृत) पढ़ता है उसे ऐसा लग जाता है कि 'अहाहा! बड़ी सरस बात है।' यह वस्तु तो प्राकृतिकरूपसे सहज ही आ गई है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि साधकको पूर्ण वीतरागदशाके अभावमें व्रत, तप, भक्ति, स्वाध्याय, आदिके विविध शुभभाव आते हैं, परन्तु वे त्रिकालशुद्ध ज्ञायकके आश्रयसे प्रगट हुई ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्ध स्वभाववाले—राग स्वभाववाले—होनेसे उनका आकुलतारूपसे—दुःखरूपसे वेदन होता है, हेयरूप लगते हैं। बिना हठके उस प्रकारके रागका आना वह, सराग भूमिकाका स्वरूप है। छहढालामें आता है न! कि—

मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

—इसका अर्थ क्या हुआ? कि—अनंतबार पंचमहाव्रत धारण किये, अट्ठाईस मूलगुणोंका निर्दोष पालन किया, परन्तु उनसे पुण्यबंध हुआ, स्वर्गमें गया; परन्तु निज आतमज्ञानके बिना अंशमात्र भी सुख प्राप्त नहीं कर सका। इसलिये, सिद्ध हुआ कि महाव्रतादि शुभभाव शुद्धज्ञानपरिणतिसे विरुद्ध स्वभाववाले होनेसे दुःखरूप हैं, मात्र आत्मज्ञान अर्थात् ज्ञातृत्वपरिणति ही सुखरूप है।

अहा! ऐसा निरालम्बी तत्त्व वह परके तथा विभावके आलम्बनसे प्रगट नहीं होता। अन्यके आलम्बनसे तो कदापि नहीं, किन्तु वीतराग देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनसे तथा शरीर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा यावज्जीवन व्रत और ब्रह्मचर्य पालनके शुभभावोंसे भी सम्यक्त्व नहीं होता; क्योंकि शरीरकी क्रिया तो जड़ है और शुभभाव तो राग है। शरीरादि जड़से भिन्न तथा रागादि विभावसे रहित त्रिकालशुद्ध वीतरागमूर्ति जिनस्वरूपी ज्ञायक प्रभु जो अंतरमें पारिणामिकभावसे सदा विराजमान है, उसके आलम्बनसे ही परिणतिमें वीतरागभाव प्रगट होता है। अपने वीतरागस्वभावके अवलम्बन बिना, परके अवलम्बनसे तो रागादि विभाव ही होते हैं। साधकको, अधूरी भूमिका है इसलिये राग—श्रावकको अणुव्रतादिके तथा मुनिराजको महाव्रतादिके शुभभाव—आता है, परन्तु वह साधनामय ज्ञानपरिणतिसे विरुद्ध स्वभाववाला होनेके कारण आकुलतारूपसे—दुःखरूपसे वेदनमें आता है, हेयरूप वर्तता है।

ज्ञानी धर्मात्माको—गृहस्थ हो या मुनि हो—जिनसे तीर्थंकर नामकर्म बँधे ऐसे दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नतादि शुभभाव आते हैं, परन्तु उनका वेदन दुःखरूप—आकुलतारूप है, क्योंकि शुभभाव तो आस्रव और बंधका कारण है, उनसे धर्म अर्थात् वीतरागपरिणति नहीं होती। निश्चयसे तो वह शुभराग पुण्य है—अधर्म है; धर्म तो अबद्ध द्रव्यस्वभावके आलम्बनसे जो अबद्ध परिणाम—वीतराग दशा हो वह है। सम्मेदशिखर आदि तीर्थोंकी यात्राका भाव भी शुभराग है, दुःख है। 'एकबार वन्दे जो कोई, ताहि नरक–पशुगति नहिं होई,' परन्तु उसमें क्या? शुभभाव हो तो मनुष्यादि भव मिलेंगे, उनसे कहीं भवका अभाव नहीं होगा। रागभाव शुभ हो या अशुभ हो वह आग है, भट्टी है। शुभरागको भट्टी कहा वहाँ एक भाई भड़क उठे। वे कहने लगे कि 'ज्ञानी रागको–दुःखको वेदते हैं या छेदते हैं? ज्ञानी रागका—दुःखका वेदन नहीं करते छेदन करते हैं। भाई ! ज्ञानीको रागका स्वामित्व या कर्तृत्व नहीं है, परन्तु जब तक पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई तब तक अस्थिरताजनित रागका वेदन ज्ञानीको भी होता है, स्वरूपस्थिरताका विशेष पुरुषार्थ अंतरसे सहज हो तब रागका छेदन होता है। यहाँ बहिनके बोलमें स्पष्ट कहा है कि—साधकको जो शुभभाव आते हैं वे ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्ध स्वभाववाले होनेके कारण, आकुलतारूपसे–दुःखरूपसे वेदनमें आते हैं, हेयरूप लगते हैं, तथापि भूमिकानुसार वे आये बिना नहीं रहते। मुनिराजको भी जितना रागरूप परिणमन है उतना दुःखरूप वेदन है। 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय'में कहा है कि—जितनी रागादि विभावभावोंकी उत्पत्ति है उतनी स्वरूपहिंसा है, रागादिकी अनुत्पत्ति ही अहिंसा, अनाकुलता और सुख है। अहा! वीतरागकी ऐसी बाते हैं।

आनन्दका पूर्ण वेदन परमात्माको, दुःखका पूर्ण वेदन मिथ्यादृष्टिको होता है; साधकको—मुनिको भी—आनन्दका पूर्ण वेदन नहीं है, जितना शुभरागांश है उतना दुःख है। परमात्माको अंशमात्र दुःख नहीं है, मिथ्यादृष्टिको अंशतः भी सुख नहीं है। साधकको, दशामें अपूर्णता होनेसे, अभी बाधकपना है। जितना बाधकभाव–शुभराग है उतना दुःख है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ स्पष्ट कहा है कि—अनेक प्रकारके शुभभाव मुनिराजको भी बिना हठके आते हैं, परन्तु वे अंतरमें सतत वर्तती हुई उग्र ज्ञातृत्वधारासे विरुद्ध स्वभाववाले होनेसे आकुलतारूपसे–दुःखरूपसे वेदनमें आते हैं। अहा, यह वाणी! 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' से भी यह (बहिनश्रीके वचनामृत) ऊँची वस्तु है। इसमें तो अकेला माल–सार ही भरा है।

'साधककी दशा एकसाथ त्रिपटी (–तीन विशेषताओंवाली) है :—एक तो, उसे ज्ञायकका आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्यके प्रति जोर निरंतर वर्तता है जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांशकी भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांशका सुखरूपसे वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्धपर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावोंका समावेश है उसका—दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदन होता है।'

अहा! असली माल आया है! ज्ञानी धर्मात्माकी साधनामें एकसाथ तीन विशेषताएँ हैं। एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि—उसे ज्ञायकका आश्रय अर्थात् निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी ओरका बल—'मैं मात्र शुद्ध ज्ञायक हूँ, परका कर्ता–हर्ता–धर्ता या स्वामी नहीं हूँ तथा शुभाशुभ विभाव मेरा स्वभाव नहीं हैं,' ऐसा सानुभव श्रद्धाका बल–उपयोग अंतरमें हो बाह्यमें—सदैव सतत वर्तता है। भगवान आत्माको उसके स्व–पर प्रकाशक असाधारण ज्ञानस्वभावकी प्रधानतासे 'ज्ञायक' कहा है। ज्ञानीको युद्ध या विषयवासनाके समय भी ध्येयभूत—आलम्बनभूत—ध्रुव ज्ञायकका जोर एक क्षण भी हटता नहीं है। अहा! अजर प्याला है! अजर–अमर हो जानेकी बातें हैं। सतत वर्तते हुए निज शुद्ध द्रव्याश्रित बलके समय ज्ञानीको दशामें अंशतः शुद्धतारूप ज्ञानधारा और अंशतः शुभाशुभरूप कर्मधारा भी वर्तती है, परन्तु उसे उन दोनों पर्यायरूप अंशोकी उपेक्षा होती है, उनका आलम्बन या उनके प्रति आश्रयरूप बल नहीं होता।

द्रव्यदृष्टि प्रगट होने पर साथ जो ज्ञान, आनन्दादि सर्व गुणांश–शुद्धता—पर्यायमें प्रगट हुआ है उसकी भी उपेक्षा है, पर्यायांशका आश्रय, आलम्बन या आदर नहीं है, आदर ने जोर तो मात्र एक निज त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायकभावका ही है; एक क्षण भी ज्ञायकभावकी ओरका आश्रय (जोर) हट जाय तो साधककी साधना ही छूट जाय, मिथ्यादृष्टि हो जाय। अहा! ऐसा है वीतरागका मार्ग! वीतरागका मार्ग अर्थात् जिनस्वरूप निज प्रभुका—ज्ञायक द्रव्यका—भाई! लोगोंने तो—अरे! आजके उपदेशकोंने भी—रागमें धर्म मनवा दिया है। वे कहते हैं कि सम्यग्दर्शनकी हमें खबर नहीं पड़ती, इसलिये बाह्यक्रिया–व्रत, तप, उपवास, सामायिकादि—करो, धर्म हो जायगा। भाई! 'सम्यग्दर्शनकी खबर नहीं पड़ती' यही बतलाता है कि तू अभी मिथ्यात्वमें पड़ा है; मिथ्यादृष्टिको अंशतः भी धर्म नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ तो कहते हैं धर्मात्माको अपने ध्रुव ज्ञायक प्रभुके आश्रयरूप जो सतत जोर वर्तता है, उसकी उसे खबर पड़ती है, उसे ध्रुव स्वभावके आलम्बनसे पर्यायमें जो शुद्धता प्रगट हुई है, उसका अतीन्द्रिय वेदन भी होता है, परन्तु उस प्रगट हुई शुद्धता और शेष रही अशुद्धता—दोनों पर्यायांशके प्रति उपेक्षा वर्तती है। चारित्र भी द्रव्यस्वभावके विशेष आलम्बनसे प्रगट होता है; द्रव्यदृष्टिमें उसका (चारित्रका) आश्रय नहीं है, अवलम्बन नहीं है; अवलम्बन और आश्रय तो प्रारम्भसे अंत तक एक मात्र त्रिकालशुद्ध निजज्ञायक ध्रुवस्वभावका ही है। ध्रुव पर बाँधी हुई दृष्टिकी डोर कभी हटती नहीं है।

साधकको एक साथ वर्तती हुई त्रिपटी दशामें दूसरी विशेषता यह है कि—पर्यायमें ध्रुव स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई शुद्धताका सुखरूप वेदन होता है, और तीसरी विशेषता यह है कि—अशुद्धपर्यायांश, जिसमें व्रत, तप, पूजा, भक्ति, शास्त्रस्वाध्याय आदि शुभभावोंका समावेश होता है उसका दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदन होता है। यहाँ अशुद्धतामें शुभभावकी मुख्यतासे कहा है, वैसे ज्ञानी गृहस्थको पर्यायमें वर्तते हुए समस्त अशुभ तथा शुभभावोंका दुःखरूप वेदन होता है।

साधनाके आश्रयभूत भगवान ज्ञायक आत्माका ध्रुवस्वभाव बिलकुल पूर्ण वीतरागस्वरूप है, उसमें रागका कण भी नहीं है; उसके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली साधकदशा वीतरागभावका अंश है और ध्रुवस्वभावके परिपूर्ण आश्रयसे प्रगट होनेवाली दशा भी पूर्ण वीतरागता एवं केवलज्ञानस्वरूप है। इसप्रकार तीनोंमें—आश्रयमें, साधकदशामें और साध्यदशामें मात्र वीतरागता ही आती है। साधकदशामें अंशतः वीतरागताके साथ, अल्प रागांश है, परन्तु वह दुःखरूपसे तथा हेयरूपसे वेदनमें आता है। साधकको पर्यायमें जो अशुद्धता है वह कर्तव्यकी अपेक्षासे उपादेय होने पर भी आश्रय-अपेक्षासे उसकी बिलकुल उपेक्षा है, क्योंकि शुद्धपर्यायके आश्रयसे भी नवीन शुद्धता प्रगटती या बढ़ती नहीं है, मात्र ध्रुव द्रव्यस्वभावके आश्रयसे ही पर्यायमें शुद्धताकी प्रगटता, स्थिरता, वृद्धि एवं पूर्णता होती है। अहाहा! यह त्रिपटीका कितना सुन्दर वर्णन है! यह बात अनेकोंबार कहीं जा चुकी है, परन्तु बहिनने यहाँ यह बात थोड़े शब्दोंमें बिलकुल सादी भाषामें कही है। ज्ञानीको निरंतर ज्ञायकका आश्रय (जोर) होता है; शुद्ध और अशुद्ध पर्यायकी उपेक्षा होने पर भी उसका वेदन है, शुद्धताका सुखरूप वेदन होता है और अशुद्धताका दुःखरूप। अहा! वस्तुका ऐसा स्वरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१५०

दिनांक १४-११-७८

वचनामृत–३७८ (चालू)

'साधकको शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं–इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं।'

क्या कहते हैं? जिसे त्रिकालशुद्ध निज ध्रुवज्ञायक द्रव्यसामान्यके आश्रयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपरमणता और अतीन्द्रिय आनन्द आदि निर्मल दशा प्रगट हुई है ऐसे साधक जीवको जो दया, दान, व्रत, तप, पूजा, भक्ति एवं स्वाध्यायादि शुभभाव आते हैं वे उपाधिरूप लगते हैं, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वे शुभभाव हठपूर्वक होते हैं। साधकको स्वभावाश्रित जो रत्नत्रयरूप शुद्धता वर्तती है वही मोक्षमार्ग है, साथमें जो हठ बिना शुभभाव वर्तते हैं वे कोई मोक्षमार्ग नहीं है। 'एक होय तीन कालमें, परमारथका पंथ।' तीनोंकाल वीतरागता वह एक ही मोक्षमार्ग है।

साधक कैसे होता है वह बात पहले कही, अब कहते हैं कि साधकको क्या होता है? भगवान आत्मा रागादि विभावसे भिन्न है, परन्तु एक समयवर्ती जो अधूरी–पूरी निर्मल पर्यायें उन जितना ही नहीं है; वह तो त्रिकालशुद्ध परिपूर्ण ज्ञायक द्रव्यसामान्य है। उसे दृष्टिमें लेनेसे, उसीका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्रादि संवर–निर्जरारूप निर्मल पर्यायें—धर्म—प्रगट होती हैं। लोग तो, अरे! उपदेशक भी, दया–दानादि शुभ भावको धर्म तथा धर्मका कारण मानते हैं। अरेरे! धर्मकी बातमें बहुत फेर पड़ गया है; लेकिन क्या किया जाय? साधकको दया, दान, व्रत, तपादिके शुभभाव भूमिकानुसार आते अवश्य हैं, परन्तु उसे वे भाव दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदनमें आते हैं।

प्रश्न :—ऐसा कहोगे तो कोई व्रतादि धारण नहीं करेगा?

उत्तर :—भाई! व्रतादिमें बाहरकी क्रिया तो कौन कर सकता है? जिसे अंतरमें स्वभावके आश्रयसे स्वरूपदृष्टि एवं स्वरूपस्थिरता परिणमित हुई है उस साधक जीवको निचली भूमिकामें ऐसे शुभभाव दुःखरूप तथा उपाधिरूप लगते हैं तथापि आये बिना नहीं रहते। उपवास करूँ, भगवानकी भक्ति करूँ—आदि शुभभाव आते भी हैं और उपाधिरूप भी लगते हैं; उपाधिरूप लगते हैं उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वे शुभभाव हठपूर्वक होते

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। भूमिकाके अनुरूप ऐसे वे शुभभाव बिना हठके सहजरूपसे आते हैं।

"यों तो साधकके भाव हठरहित सहजदशाके हैं, अज्ञानीकी भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभवमें दुःख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भयसे जबरन् कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते।"

साधक जीवको निज ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे पर्यायमें शुद्धता–वीतरागता–परिणमित हुई है, किन्तु पुरुषार्थकी अशक्ति होनेसे अभी पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई। साधकदशा अधूरी होनेके कारण मिश्रभावरूप है। एक ही परिणतिमें अंशतः शुद्धता (ज्ञानधारा) और अंशतः अशुद्धता (कर्मधारा) है। ज्ञानधाराके साथ वर्तती हुई कर्मधाराके अवयवरूप–भूमिकाकी उस–उस शुद्धिके साथ सुमेलवाले—जो व्रतादि शुभभाव आते हैं वे हठरहित सहज दशाके हैं। ज्ञायकभावके आलम्बनके बलसे परिणमित हुई साधनारूप अंतरंग शुद्धिके कारण साधकका जीवन ही—परिणमन ही—ऐसा सहज हो जाता है कि अपूर्णताके कारण वर्तते हुए विकल्पके कालमें, उच्च भूमिकाका पुरुषार्थ नहीं चलनेके कारण तथा निचली भूमिकाका अतिक्रमण कर लिया होनेसे, भूमिकानुसार विविध प्रकारके शुभभाव हठके बिना सहज आते हैं। मुनिराजको गृहस्थोचित–अविरतिके—व्यापार धंधेके अथवा जिनेन्द्र–अभिषेक एवं द्रव्यपूजाके—भाव, अंतरमें तीन कषायके अभावके बलसे प्रगट हुई स्वरूपस्थिरतारूप सहज शुद्धिके कारण, उत्पन्न नहीं होनेसे तथा स्वरूपरमणतामें पूर्णरूपसे स्थिर हो जानेका पुरुषार्थ—अशक्तिके कारण–चलता नहीं होनेसे, उनका जीवन ही ऐसा हो गया है कि उनको व्रत, तप, समिति, गुप्ति या ध्यानादिके विकल्प सहजरूपसे उठते हैं। हठरहित सहजरूपसे ऐसे शुभ विकल्प आते हैं तथापि वे हैं दुःखरूप और हेयरूप।

अहा! प्रारम्भसे अंत तक सब बिलकुल स्पष्ट आया है। यह ऐसी असाधारण पुस्तक है कि बेड़ा पार हो जाये! अति संक्षेपमें पूरा सत्यका संग्रह है। इस पूरी पुस्तकमें इतना अधिक भरा है कि जो भी पढ़ता है वह कहता है कि—'अहा! ऐसा तत्त्व, फिर भी कैसी सादी भाषा! पुस्तकको छोड़नेका मन नहीं होता।' वैसे तो जिन्हें आग्रह हो उन्हें ऐसा लगेगा कि ऐसा क्यों? भाई! यह तो सहज अनुभवकी वाणी है।

तथा, वे दुःखरूप तथा हेयरूप लगने पर (भूमिकाके योग्य) शुभभाव, अज्ञानीकी भाँति 'यह दया, दान, पूजा, भक्ति आदिके भाव नहीं करूँगा तो परभवमें दुःख सहन करने पड़ेंगे' ऐसे भयसे जबरन् कष्टपूर्वक—आर्तध्यान हो इसप्रकार—किये नहीं जाते; तथापि ज्ञानी धर्मात्माको वे सुखरूप भी नहीं लगते। वे शुभभाव खेदपूर्वक नहीं किये जाते और हठरहित सहज दशाके हैं, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वे सुखरूप, धर्मरूप या मोक्षका कारण हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुखरूप, धर्मरूप और मोक्षका कारण तो तीनोंकाल एक शुद्ध वीतरागभाव ही है।

आजकल इस कालमें शुभभाव ही होता है ऐसा उपदेशक—दिगम्बर मुनि तक—कहते हैं; इसलिये लोगोंको यहाँका—सोनगढ़का कथन—असह्य लगता है। इतने कष्ट सहन करें, परीषह सहन करें वह धर्म नहीं? भाई! जहाँ निज ज्ञानानन्दस्वभावकी प्रतीति नहीं है, स्वभावके आश्रयसे पर्यायमें चिदानन्दका किंचित् विकास नहीं हुआ है वहाँ, यह सब कष्ट सहन करो तो करो, परन्तु अंशमात्र भी धर्म नहीं है। समयसारके निर्जरा-अधिकारमें कहा है न! कि—

'क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।.....और अन्य कोई जीव महाव्रत तथा तपके भारसे दीर्घकाल तक टूट मरते हुए क्लेश पाता है तो पाओ; परन्तु जो साक्षात् मोक्षस्वरूप है, रोगादि समस्त क्लेशरहित पद है और स्वयं संवेद्यमान है ऐसा यह ज्ञान तो ज्ञानगुणके बिना किसी भी प्रकार वे प्राप्त कर ही नहीं सकते। ज्ञान है वह साक्षात् मोक्ष है; वह ज्ञानसे ही प्राप्त होता है, अन्य किसी क्रियाकाण्डसे उसकी प्राप्ति नहीं होती।'

ज्ञानी साधक जीवको महाव्रत तथा तपादि शुभभाव होते हैं, परन्तु वे हठरहित सहज आते हैं, जबरन् कष्टपूर्वक-खेदपूर्वक करना पड़ते हैं ऐसा नहीं है। सहजरूपसे आते हैं तथापि वे सुखरूप नहीं लगते। अहा! ऐसी बातें असह्य लगती हैं। वणिकोंके हाथमें जैनधर्म आया, परन्तु वे घुस गये व्यापारके व्यूहमें; जैनधर्मका यथार्थ स्वरूप क्या है उसका विचार करनेका अवकाश भी नहीं मिलता। भाई! इन सब व्यापारादिके परिणामोंसे पृथक् होकर—परिणामोंसे भाई! व्यापारादिकी बाह्यक्रिया तो कोई आत्मा किंचित् भी नहीं कर सकता—अंतरमें ज्ञानानन्दस्वरूप त्रिकालशुद्ध तीनलोकके नाथको—निज ज्ञायक प्रभुको जाग्रत करना यही सर्व प्रथम धर्म है। व्यापारादिका राग तो कृत्रिम, विकार तथा ऊपरी वेश है, वह कहीं आत्माके मूल स्वरूपमें नहीं है, वह तो क्षणिक विकारी पर्याय है। ज्ञानीको पर्यायबुद्धि नहीं होती। उसे सहजरूपसे हठरहित शुभभाव आते हैं, तथापि वे सुखरूप नहीं लगते।

'शुभ भावोंके साथ-साथ वर्तती, ज्ञायकका अवलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति वही साधकको सुखरूप ज्ञात होती है।'

भूमिकानुसार हठरहित सहजरूपसे वर्तते विविध शुभभावोंके साथ-साथ वर्तती, निज शुद्धात्मद्रव्य सामान्यका—ज्ञायकका—अवलम्बन लेनेवाली जो यथोचित—अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत श्रावक तथा सर्वविरत मुनिराजको उचित—साधनामय शुद्ध परिणति ही उस-उस साधकको सुखरूप लगती है। ज्ञानी धर्मात्माको ज्ञानानन्दस्वरूप निज चैतन्य भगवानका अवलम्बन लेनेवाली यथोचित निर्मल परिणति प्रगट हुई है, इसलिये स्वभाव-अवलम्बी वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्मल परिणति सुखरूप लगती है; और जितना रागांश अभी शेष है उतना दुःख है। भगवान कहते हैं कि—हम भी तेरे लिये पर द्रव्य हैं। जितना देव–शास्त्र–गुरु आदि पर द्रव्योंकी ओर लक्ष जाता है उतना राग, दुःख तथा चैतन्यकी दुर्गति है। मोक्षप्राभृतमें कहा है न! कि—

परद्रव्यथी दुर्गति, खरे सुगति स्वद्रव्यथी थाय छे;
अे जाणी, निजद्रव्ये रमो, परद्रव्यथी विरमो तमे।।१६।।

प्रभु! तेरी प्रभुतामें अतीन्द्रिय ज्ञान, शान्ति तथा आनन्दादि निधान भरे पड़े हैं; उन पर दृष्टि देनेसे तेरी पर्यायमें शान्ति एवं आनन्दका अंश प्रगट होगा। ज्ञानीको वह परिणति सुखरूप लगती है और साथ जो शुभराग आता है वह दुःखरूप लगता है। अहा! ऐसी बात है। यह वस्तु अति दुर्लभ है। वैसे तो सहज है; क्योंकि अपना स्वरूप है न! परन्तु अभ्यास नहीं होनेसे दुर्लभ लगती है। अरेरे! क्या किया जाय? दुर्लभ है फिर भी इसे करना ही पड़ेगा।

'जिस प्रकार हाथीके बाहरके दाँत—दिखानेके दाँत—अलग होते हैं और भीतरके दाँत—चबानेके दाँत अलग होते हैं, उसीप्रकार साधकको बाह्यमें उत्साहके कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें वे अलग होते हैं और अंतरमें आत्मशान्तिका—आत्मतृप्तिका स्वाभाविक परिणमन अलग होता है।'

हाथीके बाहरके, दिखानेके, शोभाके दाँत—दन्तशूल अलग होते हैं और भीतरके चबानेके दाँत अलग होते हैं; उसीप्रकार सम्यक्त्वी, श्रावक या मुनिको बाह्यमें जो उत्साहजनित कार्य या शुभपरिणाम दिखायी दें वे अलग होते हैं और भीतर स्वभावके आलम्बनसे प्रगट हुई आत्मशान्तिका—आत्मतृप्तिका स्वाभाविक परिणमन अलग होता है। शुभभावके परिणमनसे आत्मतृप्तिरूप शुद्ध परिणमन अलग होता है। अहा! दोनों एक समयमें और मिश्रभावरूप एक ही दशामें? सूक्ष्म बात है भाई!

सर्वज्ञदेवने जैन शासनमें जो भगवान आत्मा कहा है उसकी यह बात है। अज्ञानी समझे बिना 'आत्मा–आत्मा' करता है उसकी यह बात नहीं है। भगवान सर्वज्ञदेवने जैसा आत्मा देखा और कहा है, वैसे अपने आत्माको जब जीव देखता है तब अंतरमें आत्मशान्ति–आत्मतृप्तिका अनुभव होता है। वह शान्तिकी धारा–ज्ञानधारा–ज्ञानीको सुखरूप लगती है। साथमें जो शुभराग आता है वह ऊपरी तथा दुःखरूप लगता है। साधकको, शुद्ध और शुभ दोनों परिणमन एक काल और एक दशामें होने पर भी, बाहरी उत्साहके कार्य एवं अंतरमें आत्मतृप्तिका स्वाभाविक परिणमन भिन्न होते हैं। आत्मतृप्ति सुखरूप लगती है और उत्साहके कार्य—शुभराग दुःखरूप लगते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'बाह्य क्रियाके आधारसे साधकका अंतर नहीं पहिचाना जाता।'

बाह्यमें अज्ञानी कदाचित् पूजा, भक्ति, शास्त्रस्वाध्यायादि धर्मकी क्रियाएँ करता दिखायी दे और ज्ञानी व्यापार, विवाहादि पापकी क्रियाएँ करता दिखे; अविरत सम्यग्दृष्टि कदाचित् धर्मश्रवण करता और देशविरत श्रावक विषयोपभोग करता दिखायी दे; श्रावक कदाचित् सामायिककी क्रिया करता दिखे और मुनिराज आहार करते दिखायी दें; —इसप्रकार बाह्यक्रियाके आधारसे अंतरंग परिणतिका माप नहीं है। ज्ञानानन्द प्रभुके आश्रयसे प्रगट हुई शुद्ध परिणतिका ख्याल एकान्त बाह्यक्रियाके आधारसे नहीं आ सकता। श्रीमद्ने भी कहा है न! कि—महापुरुषके आचरण देखनेकी अपेक्षा उनका अंतःकरण देखना वह विशेष परीक्षा है। बहिनने भी ऐसा ही कहा है कि बाह्यक्रियाके आधारसे साधकके अंतरकी पहिचान नहीं होती। अहा! यह बोल बड़ा है, इसमें अनेक गहरे भाव आ गये हैं।

❋

वचनामृत–३७९

जगतमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है। उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं। वह गुणमणियोंका भण्डार है। ऐसे दिव्यस्वरूप आत्माकी दिव्यताको तू नहीं पहिचानता और परवस्तुको मूल्यवान मानकर उसे प्राप्त करनेका परिश्रम कर रहा है! परवस्तु तीन कालमें कभी किसीकी नहीं हुई है; तू व्यर्थ भ्रमणासे उसे अपनी बनानेका प्रयत्न करके अपना अहित कर रहा है॥३७९॥

'जगतमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है।'

'जगत' शब्द द्वारा प्रथम छह प्रकारके द्रव्योंके समुदायरूप विश्वका अस्तित्व कहा। अपने–अपने मूल स्वरूपमें स्थायी रहकर प्रतिक्षण नवीन–नवीन पर्यायरूपसे जो जन्म लें—परिणमन करें–उत्पन्न हों ऐसे जीव–पुद्गलादि छह द्रव्योंके समूहको जगत कहते हैं। जगतमें उच्चसे उच्च, अच्छीसे अच्छी वस्तु, सर्वोत्कृष्ट महिमायुक्त पदार्थ तेरा ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा ही है। देव–शास्त्र–गुरु सर्वोत्कृष्ट निज ज्ञायक पदार्थको समझनेमें उत्कृष्ट निमित्त होनेके कारण व्यवहारसे सर्वोत्कृष्ट–लोकोत्तम कहे जाते हैं, परन्तु वे भी परवस्तु होनेसे इस (अपने) आत्माके लिये परमार्थतः सर्वोत्कृष्ट वस्तु नहीं हैं। निश्चयसे तो अपना त्रिकालशुद्ध परमानन्दपिण्ड निज ज्ञायक आत्मा ही लोकोत्तर–सर्वोत्कृष्ट परमपदार्थ है।

अरेरे! कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि साधकको तो व्यवहार ही होता है, निश्चय तो सिद्धको होता है। अरेरे! यह तो अन्यायकी पराकाष्ठा है! स्वभावके आश्रयरूप श्रद्धा, ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और चारित्रका अंशतः शुद्ध परिणमन—निश्चय—न हो तो वह साधक ही कैसे कहा जायगा? अरे! क्या किया जाय? तीनलोकके नाथकी अनुपस्थिति, पुण्यका भी अभाव; इतना पुण्य नहीं है कि देव आकर कहें कि 'यह सच्चा है।' विश्वधर्म किसे कहते हैं? जैनधर्म अर्थात् आत्मधर्म ही विश्वधर्म है। लोग कहते हैं कि 'जैनधर्म' तो वणिकोंका धर्म हैं। पूजा, भक्ति, व्रत, उपवासादि क्रियाएँ करना वह वणिकोंका धर्म है। भाई! व्रतादिकी बाह्यक्रिया या शुभराग 'धर्म' नहीं है, धर्म तो मोह–राग–द्वेषरहित आत्माका वीतराग परिणाम है। वीतरागभाव वह वणिकोंका नहीं, परन्तु आत्माका धर्म है। जैनधर्म कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, वस्तुधर्म है।

चिन्तामणि, कल्पवेलि, कामधेनु, सुरतरु आदि सर्व उपमाएँ जिसके समक्ष तुच्छ भासित हों ऐसा तेरा अभेद ज्ञायक आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट है, तेरे लिये जगतकी अन्य कोई वस्तु सार या उत्कृष्ट नहीं है; देव–गुरु आदि निमित्त, शुभराग, एक समयकी पर्याय अथवा गुण–गुणी भेद आदि कोई उत्कृष्ट नहीं है।

'उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं।'

भगवान आत्मा शरीरसे, वाणीसे, कर्मसे तथा पुण्य–पापके भावोंसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप अभेद चैतन्यरससे भरपूर है। परद्रव्यमें लक्ष जायगा तो शुभाशुभ विकल्प उठेंगे और अभेद चैतन्यरससे तथा आनन्दसे भरपूर सर्वोत्कृष्ट निज ज्ञायककी ओर दृष्टि करेगा तो तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं अनुपम आत्मशान्ति होगी। अहा! क्या हो?.....स्वयं, सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर होने पर भी अपनेको भूल गया है। जैसे कोई मनुष्य अपनी ही मुट्ठीमें रखे हुए सोनेको भूल गया हो, वह पुनः याद करके उस सोनेको देखे, वैसे ही यह आत्मा अपने ज्ञानानन्दभरपूर परमेश्वर आत्माको भूल गया था उसे जानकर, उसका श्रद्धान करके तथा उसका आचरण करके सम्यक् प्रकारसे एक आत्माराम होता हुआ स्वयं अपनेको अनुभवमें प्राप्त करता है।

ज्ञानरस, दर्शनरस, आनन्दरस, वीर्यरस आदि अनन्तानन्त गुणरसरूप अभेद एक शुद्ध चैतन्यरस जिसमें भरा पड़ा है ऐसा सर्वोत्कृष्ट पदार्थ भगवान आत्मा 'अरस' है। उसमें खट्टा, मीठा आदि मूर्तिक रस नहीं हैं, इसलिये वह 'अरस' है और चैतन्यरससे परिपूर्ण होनेके कारण 'सरस' है। आत्मामें चैतन्यरस एवं आनन्दरस, कोठीमें जुआरकी भाँति नहीं, किन्तु मिश्रीमें मिठास एवं सफेदीकी भाँति, सदा भरपूर हैं।

'वह गुणमणियोंका भण्डार है।'

भगवान ज्ञायक आत्मा अनन्तानन्त गुणमणियोंका भण्डार है। चैतन्यस्वरूप गुणमणियोंमें सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, आनन्द, शान्ति आदि गुण मुख्य हैं। सर्वोत्कृष्ट ज्ञानादि गुणमणियोंका भण्डार ऐसे निज ज्ञायक आत्माका लक्ष करनेसे, उसका आलम्बन लेनेसे, वे गुणमणियाँ पर्यायमें निर्मलरूपसे परिणमती हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ऐसे दिव्यस्वरूप आत्माकी दिव्यताको तू नहीं पहिचानता और परवस्तुको मूल्यवान मानकर उसे प्राप्त करनेका परिश्रम कर रहा है।'

अपनी दिव्यताकी महत्ता भासे बिना परवस्तुकी महत्ता हृदयसे दूर नहीं होती। जैसे–अजायबघरमें विभिन्न प्रकारकी नई–नई वस्तुएँ देखनेको मिलती हैं, वैसे ही गुणमणियोंका भण्डार तेरा आत्मा भी अद्‌भुत अमूर्तिक अजायबघर है। अनन्तानन्त दिव्यतासे परिपूर्ण अपने दिव्यस्वरूपको तू अन्तर्मुख दृष्टि करके पहिचानता नहीं है और शरीरादि मूर्तिक अचेतन परवस्तुओंको मूल्यवान मानकर उन्हें प्राप्त करने तथा उनकी रक्षा करनेका व्यर्थ परिश्रम कर रहा है। भीतरके अमूल्यतत्त्वका मूल्य भासित हुए बिना परका मूल्य अंतरसे नहीं जाता। शरीर अच्छा है, प्रतिष्ठा बनी हुई है, राग और शुभभाव बराबर है—ऐसे पर तथा विभावमें अटक गया है, परन्तु भीतर स्वयं उनसे भिन्न महामूल्यवान वस्तु है उसका मूल्यांकन नहीं किया। परको मूल्यवान मानकर उसे प्राप्त करनेका परिश्रम कर रहा है। शरीर अति सुन्दर है, वाणी बहुत अच्छी है, मकान बड़ा विशाल है, प्रतिष्ठा अच्छी है, पैसा खूब है—इसप्रकार परवस्तुओंको मूल्यवान मानकर उन्हें प्राप्त करनेके लिये दिन–रात मेहनत कर रहा है। यह कमा लूँ और वह प्राप्त कर लूँ इसप्रकार परमें उछलकूद करता है, परन्तु अंतरमें जो अपना ज्ञायक प्रभु विराज रहा है उसकी दिव्यताको देखनेका–पहिचाननेका प्रयत्न भी नहीं करता। भीतर महामूल्यवान वस्तु है उसका मूल्य—महिमा न करके बाह्य वस्तुएँ प्राप्त करनेका मिथ्या प्रयत्न कर रहा है।

'परवस्तु तीन कालमें कभी किसीकी नहीं हुई है, तू व्यर्थ भ्रमणासे उसे अपनी बनानेका प्रयत्न करके अपना अहित कर रहा है।'

शरीर, पत्नी, पुत्र, पैसा, प्रतिष्ठा, कीर्ति आदि परपदार्थ तीन कालमें कभी आत्माके हुए हैं? सोलह हजार देव जिसकी सेवा करते थे, अप्सराएं जैसी जिसकी छियानवे हजार रानियाँ थीं ऐसा विषयलोलुप ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मणि–रत्नोंके पलंग पर सोता–सोता 'कुरुमती! कुरुमती!' इसप्रकार स्त्रीरत्न–पटरानीके लिये विलखते–बिलखते मरकर सातवें नरकमें गया। कोई शरण हुआ उसे? सातवें नरकमें तो अभी उसे एक पल्योपम जितना समय भी नहीं बीता है; वहाँ तेतीस सागरोपमकाल तक दुःख भोगना है। भाई! नरकमें कैसे भयंकर दुःख होते हैं उनका कभी विचार किया है? जिसके एक क्षणके दुःखोंका करोड़ों जिह्वाओं द्वारा करोड़ों भवोंमें वर्णन नहीं किया जा सकता ऐसे नरकके तेतीस सागरकी स्थितिमें वह छियानवे हजार स्त्रियोंका स्वामी, मिथ्यात्वशल्य और तीव्र कषायानुरागके कारण जा पड़ा है। अहो! मिथ्यात्वके गर्भमें ऐसे अनन्त भव विद्यमान हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्माका मूल्य भासित न हो और परका मूल्य भासे वह मिथ्यात्वभाव है। कभी साठ वर्षकी उम्रमें पुत्रकी प्राप्ति हुई हो तो संतुष्ट-संतुष्ट हो जाता है कि 'अब मेरा नाम रह जायगा, मेरे वंशकी वृद्धि होगी।' अरे भाई! यह तू क्या कर रहा है? किसका नाम और किसका वंश? तू परवस्तुका सम्बन्ध चाहता है, किन्तु क्या परवस्तु तीनकालमें किसीकी हुई है? परवस्तु कभी किसीकी हुई नहीं है और स्ववस्तु-ज्ञायकवस्तु—कभी किसीकी गई नहीं है। अपनी स्ववस्तुको तू अंतरसे पहिचानकर ग्रहण करे तो वह कभी जा नहीं सकती। ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्तानन्त गुणमणियोंका भण्डार ऐसा निज ज्ञायकप्रभुके सामने दृष्टि कर, वहाँ दृष्टि लगा, उसे 'अपना' मान तो वह कभी परिणतिमेंसे नहीं जायगा; परन्तु यदि परको 'अपना' मानेगा तो वह कभी तेरे नहीं होगे। परवस्तु तो कभी तेरी नहीं होगी, परन्तु परके लक्षसे होनेवाला राग भी तेरा नहीं होगा। रुचते-इच्छित-रागको रखना चाहेगा तब भी वह रखनेसे रहेगा नहीं। ज़ैसे शरीर, स्त्री, पुत्र, प्रतिष्ठादि वस्तुएँ आत्मासे पर हैं, वैसे राग भी, आत्माका स्वभाव नहीं होनेसे, आत्मासे भिन्न है।

परवस्तु तीनकालमें कभी आत्माकी हुई नहीं है, तू व्यर्थ ही भ्रान्तिमें पड़कर उसे अपना बनानेका प्रयत्न कर रहा है; ऐसा करनेसे तेरा अहित ही हो रहा है। सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि गुणरत्नोंसे सदा भरपूर ऐसा अपना स्वरूप जो कि नित्य है और अपना होकर नित्यस्थायी रहेगा उसकी तो खबर नहीं है, इसलिये तू भ्रमपूर्वक पर वस्तुको नित्य रखनेका प्रयत्न कर रहा है, परन्तु उससे तुझे क्या लाभ है? उल्टा तेरा बुरा-अहित हो रहा है। 'अभी तो पैसा कमा लें, यह पैसा वृद्धावस्थामें काम आयगा', अरे भाई! यह तू क्या कह रहा है? अंतरकी स्ववस्तुको, जो शाश्वत है और सदा रहनेवाली है उसे भूलकर परवस्तुको अपनी बनानेका प्रयत्न कर रहा है, परन्तु वह कभी तेरी हुई नहीं थी, हुई नहीं है और होगी नहीं। उस मिथ्या प्रयत्नसे तू अपना अत्यन्त अहित कर रहा है, अनन्त भवभ्रमणके कारणरूप भ्रान्तिका—मिथ्यात्वका—सेवन कर रहा है।

एक शुद्ध ज्ञायकभावका स्वभाव तीनोंकालको युगपद् जानना है। जीवने अनादिसे अपने सर्वज्ञस्वभावको कभी जाना नहीं है। परिभ्रमणके प्रत्येक भवमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावके जिन-जिन प्रसंगोंमें आया वहाँ-वहाँ उतना जानकर अनन्त भव किये, परन्तु एकसमयमें तीनकालको जाननेवाले ऐसे स्वयंको नहीं जाना। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि परवस्तु वह कहीं आत्माकी वस्तु नहीं है। 'मैंने इतने श्रावक बनाये,' 'इतने लोग मुझे मानते हैं'—भाई! यह सब क्या है? तू व्यर्थ भ्रममें पड़कर अपना अहित कर रहा है।

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१५१

दिनांक १५-११-७८

वचनामृत–३८०

जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगती, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसीप्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नोंकी चमक प्रगट होगी॥३८०॥

'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगती, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसीप्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।'

इस ३८०वें बोलमें अत्यन्त सरल दृष्टान्तसे सिद्ध किया है। सोनेको कभी जंग नहीं लगती। सोना कभी कीचड़में पड़ा हो तब भी क्या उसे जंग लगेगी? जंग तो लोहा, पीतल या ताँबे को लगती है सोनेको कभी नहीं। दूसरा दृष्टान्त अग्निका दिया है। क्या अग्निको कभी दीमक लगती है? दीमक तो बिलकुल नर्म, गरीब जाति है, थोड़ी तेज धूप तो हो एकदम जल्दी मर जाती है; अग्निके निकट आते ही जो सरसर करके मर जाती है वह दीमक अग्निको कैसे लगेगी? दीमक तो पुस्तक या लकड़ी आदिको लगती है, परन्तु अग्निको कदापि नहीं लगती।

इसीप्रकार जैसे सुवर्णको जंग नहीं लगती और अग्निको दीमक नहीं लगती, उसीप्रकार आनन्दकन्द ऐसे इस ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। ज्ञायकस्वभाव, द्रव्यस्वभाव, शुद्धात्म द्रव्यसामान्य, ध्रुव परमभाव, कारणपरमात्मा या निज शुद्ध अस्तित्वसामान्य—सबका एक ही अर्थ है। सहज एकत्वमें सदा सुस्थित ऐसे भगवान ज्ञायकमें—द्रव्यस्वभावमें–कभी आवरण नहीं आता। मूल द्रव्यस्वभावको यदि आवरण आ जाय तो वस्तु ही अवस्तु हो जाय—वस्तुका ही नाश हो जाय। ज्ञानावरणीयादि आवरणके निमित्तपनेका और रागादि विभावका सम्बन्ध जीवकी एक समयवर्ती पर्यायके साथ है, त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावी ध्रुव वस्तुसामान्यके साथ नहीं; इसलिए ज्ञायकवस्तुको कभी आवरण नहीं आता। अहाहा! यह तो मूल वस्तु है।

जिसका जो स्वभाव हो वह सदा परिपूर्ण ही होता है; स्वभावको कभी अपूर्णता–न्यूनता–मर्यादा–सीमा–हद नहीं होती। ज्ञान और आनन्दादि अनन्त चेतन गुणोंके

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रसकन्दस्वरूप ध्रुव ज्ञायकस्वभावमें भी कभी न्यूनता नहीं आती। जीवको न्यूनता तो ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदिमें पर्याय-अपेक्षासे आती है, त्रिकाल परिपूर्ण ध्रुव द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे नहीं। ज्ञायकवस्तु स्वभावसे तो सदा परिपूर्ण अर्थात् शक्तिरूपसे केवलज्ञानादिका कन्द ही है, उसमें कभी न्यूनता नहीं आती।

ज्ञायकस्वभावमें अशुद्धि भी नहीं आती। वस्तुस्वभावमें अशुद्धि कैसी? चाँदी, ताँबा आदि अन्य धातुके मिलापसे सोनेमें पर्याय-अपेक्षासे अशुद्धि आती है, अकेले सोनेमें अशुद्धि कैसे आयगी? आत्माको कर्म-नोकर्मके अनादि-प्रवाहरूप संयोगके निमित्तसे एक समयवर्ती पर्यायमें रागादिरूप या मनुष्यादिरूप अशुद्धि है, परन्तु वस्तु-ज्ञायकस्वभाव-तो त्रिकालशुद्ध-शुद्ध ही है। त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावमें-द्रव्यसामान्यमें-कभी अशुद्धि नहीं आती।

जिस प्रकार सोनेको जंग नहीं लगती और अग्निको दीमक नहीं लगती, वैसे ही त्रिकाल निरावरण, परिपूर्ण और त्रिकालशुद्ध ऐसे ज्ञायकस्वभावमें आवरण अपूर्णता या अशुद्धि नहीं आती। अहाहा! यह तो अकेला माल ही माल है।

'तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नोंकी चमक प्रगट होगी।'

त्रिकाल निरावरण, परिपूर्ण एवं शुद्ध निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावको गुरुगमसे बराबर समझकर उस पर दृष्टि दे तो तुझे सम्यग्दर्शन-आत्मावलोकन-आत्मसाक्षात्कार प्रगट होगा। अहा! भगवान आत्माके ध्रुव ज्ञायकस्वभावको आवरण, न्यूनता या अशुद्धि कभी नहीं आयी है। तू ऐसे सहज शुद्ध परिपूर्ण ज्ञायकतत्त्वको सम्यक्प्रकारसे पहिचानकर उसमें लीन हो, उसका यथार्थ ज्ञान करके उसमें निमग्न हो जा तो तेरे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुखादि सर्व गुणरत्नोंकी चमक प्रगट होगी। ज्ञायकको जाने—साक्षात् करे—वही सच्चा 'ज्ञान' है; ज्ञायकसे च्युत होकर जो बाह्य ज्ञातृत्व है वह सब धारणा और बोझ है, 'ज्ञान' नहीं है।

यह सूक्ष्म बात समझमें नहीं आती, इसलिये लोग कहते हैं कि—यह तो निश्चयकी बात है, परन्तु 'व्यवहारसे धर्म होता है' ऐसा कुछ बतलाओ न! भाई! व्यवहारसे अर्थात् शुभरागसे कदापि धर्म (शुद्धभाव) नहीं होता; परन्तु जो अबुध शिष्य अभेद तत्त्वको नहीं समझ सकता उसे अभेदमें भेद उत्पन्न करके समझानेकी जो रीति है उसे व्यवहार कहते हैं। समयसारकी आठवीं गाथाके व्याख्यानमें बहुत स्पष्टीकरण आ गया है। वहाँ कहा है कि :— 'ब्राह्मणको म्लेच्छ नहीं होना—इस वचनसे व्यवहारनय अनुसरण योग्य नहीं है।' अभेद ज्ञायकतत्त्वमें, समझानेके लिये जितने भेद-भंग किये जायँ वे अनुसरण योग्य-आश्रय योग्य-नहीं हैं। समयवर्ती पर्यायमें राग है, व्यवहाररत्नत्रयका विकल्प है, ज्ञानधारा और कर्मधारारूप मिश्रभाव है, न्यून-अधिक विकास है, परन्तु वह सब—अरे! प्रति समय परिणमती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञानादि पूर्ण पर्यायें भी—आश्रय करने योग्य नहीं हैं। आश्रय करने योग्य, आलम्बन लेने योग्य तो त्रिकालशुद्ध नित्य ज्ञायकभाव है। उसे पहिचान, उसका आश्रय ले। अहा! ऐसी बात है!

चिदानन्दघन ध्रुव ज्ञायकस्वभावको—जिसमें कभी आवरण नहीं है, कभी न्यूनता नहीं है और कभी अशुद्धता नहीं है ऐसी निज अनुपम वस्तुको—पहिचानकर उसमें ओतप्रोत हो जा तो तेरे सर्व गुणोंकी पर्यायमें निर्मलताकी कोई अद्‌भुत चमक प्रगट होगी। ध्रुव ज्ञायकस्वभाव सो द्रव्य और सहज ज्ञान तथा सहजानन्द आदि उसकी शक्तियाँ वे गुण; द्रव्यस्वभावको जिसप्रकार आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं है वैसे ही उसके त्रिकालशुद्ध सर्व गुणोंको भी आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं है। अनन्त गुणस्वरूप ज्ञायक आत्माको पहिचानकर उसमें लीन हो। लीन होनेकी क्रिया वह आत्माकी पर्याय है। गुण सब परिपूर्ण हैं, द्रव्यस्वभावमें लीनता होने पर उन सर्व गुणोंकी स्वभावभूत चमक पर्यायमें प्रगट होगी। अहाहा! ऐसी सादी भाषा!

'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा है न? ज्ञानादि सर्वगुणोंकी पर्यायमें शक्तिमेंसे यथायोग्य व्यक्ति होगी। द्रव्य और गुण तो—ज्ञायकस्वभाव तो—अनावरण, पूर्ण एवं शुद्ध अस्तित्व धारण करनेवाली 'सत्' वस्तु है, परन्तु उसे पहिचानकर उसमें एकाग्रता होने पर उसकी पर्यायमें भी शुद्धताकी चमक प्रगट होगी। पहिचाननेका कार्य पर्यायमें होता है। ध्रौव्यमें तो कोई क्रिया नहीं होती, इसलिये द्रव्य अर्थात् ध्रौव्यको पहिचाननेका कार्य ध्रौव्यसे-द्रव्यसे नहीं हो सकता, पर्यायसे होता है। तू द्रव्यको-ज्ञायकस्वभावको-पहिचाननेरूप पर्यायमें परिणमित होकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नोंकी निर्मल चमक पर्यायमें प्रगट होगी।

लोग तो ऐसा मानते हैं कि दया, दानादि या पूजा, प्रतिष्ठादि व्यवहार करते-करते कल्याण हो जायगा। शास्त्रमें भी ऐसा आता है कि ज्ञानी जव (जौ) जितनी भी प्रतिमाकी स्थापना करे तो उसके पुण्यकी महिमा सरस्वती भी नहीं कर सकती। परन्तु उसका अर्थ क्या? कि—जिसे आत्मज्ञान हुआ है, 'मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ' ऐसा स्वसंवेदन जिसको प्रगट हुआ है ऐसे ज्ञानीको निचली भूमिकामें विकल्पके समय, अंतरमें वीतरागदेवका सहज बहुमान होनेसे, प्रतिमास्थापनादिके शुभभाव आते हैं, परन्तु उन शुभभावोंसे पुण्यानुबंधी पुण्यबंध होता है, उससे आत्माके धर्मका (शुद्धताका) लाभ नहीं होता। शुभभावके समय भी ज्ञानीकी दृष्टि त्रिकालशुद्ध निज चैतन्य पर पड़ी है। चैतन्यके आलम्बनसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, वह शुभभावको जानती है, परन्तु वह शुभभाव अच्छा है, मेरा है और मेरा कर्तव्य है—ऐसा नहीं जानती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरेरे! चौरासी लाख योनियोंमें अवतरित होनेका कारण मिथ्यात्व-पर्यायबुद्धि है। भगवान आत्मा स्वभावसे सदा निरावरण, पूर्ण एवं शुद्ध है, उसे पहिचानकर ज्ञानमें ज्ञेय बना दे, उसमें लीन हो, तो तेरे परिभ्रमणका शीघ्र अन्त आ जायगा। जैसा त्रिकालशुद्ध स्वभाव है वैसी दृष्टि जहाँ हुई वहाँ शुभाशुभ विकल्प-दशा जो ऊपर-ऊपर तैरती थी वह निकल जाती है और पर्यायमें स्वभावसमान निर्मल चमक प्रगट होती है। अहा! ऐसी बातें हैं! भाषा बिलकुल सादी और मात्र बारह अंगका सार है।

तू अपने ज्ञायक द्रव्यसामान्यको पहिचानकर उसमें लीन हो तो उसमें भरे हुए तेरे शक्तिरूप गुप्त सर्व गुणरत्नोंकी चमक पर्यायमें प्रगट होगी; अंतरमें शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसी समस्त शक्तियोंकी चमक प्रगट होगी। अहा! ऐसी बात है! क्या हो? ऐसी बात समझनेवाले जगतमें अल्प ही होते हैं। 'योगसार'में कहा है न!

विरला जाणे तत्त्वने, वळी सांभळे कोई,
विरला ध्यावे तत्त्वने, विरला धारे कोई।

अहा! यह ३४०वाँ बोल है तो छोटा, परन्तु भावोंकी गहरायी कितनी है! द्रव्य, गुण और पर्याय—तीनोंकी बात आ गई है। यह तत्त्व समझे बिना बाह्यमें लाखों-करोड़ों रुपयेका दान करे, परन्तु वह कोई धर्म नहीं है; अंतरमें लोभ कम किया हो तो शुभभाव है, मान-प्रतिष्ठाके लिये किया हो तो पाप है। अहा! ऐसी बातें बड़ी असह्य हैं! यहाँ (इस बोलमें) संक्षेपमें सार भर दिया है। प्रारम्भसे पूर्णता तककी बात कह दी है।

❋

वचनामृत-३८१

जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वाद-विवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादिसे वस्तुकी तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञानको विचारोंमें विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्माके अस्तित्वको न पकड़े और तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेयनिमग्न रहता है, जो-जो बाहरका जाने उसमें तल्लीन हो जाता है, मानों ज्ञान बाहरसे आता हो ऐसा भाव वेदता रहता है। सब पढ़ गया, अनेक युक्ति-न्याय जाने, अनेक विचार किये, परन्तु जाननेवालेको नहीं जाना, ज्ञानकी असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जाननेका फल क्या? शास्त्राभ्यासादिका प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्माको जानना है।३८१।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वाद-विवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादिसे वस्तुकी तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञानको विचारोंमें विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्माके अस्तित्वको न पकड़े और तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेयनिमग्न रहता है, जो-जो बाहरका जाने उसमें तल्लीन हो जाता है, मानों ज्ञान बाहरसे आता हो ऐसा भाव वेदता रहता है।'

जीव भले ही चाहे जितने धर्मके शस्त्र पढ़ डाले, अहाहा! देखो तो सही, द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु ग्यारह अंग तथा नवपूर्व पढ़ जाय, शास्त्रोंके विविध विषयोंको वाद-विवाद द्वारा स्थापित करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादिसे व्याप्तिज्ञान द्वारा वस्तुकी तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञानको चारों ओरसे विशेष-विशेष विचारोंमें फेरे—वांचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, परिवर्तना आदि स्वाध्यायके अंगोंमेंसे उपयोगको निवृत्त न होने दे, परन्तु यदि वह जीव स्वोन्मुख होकर अंतरमें सहजज्ञानस्वरूप निज आत्माके अस्तित्वको न पकड़े, जागता जीव विद्यमान है उसे न जाने, अस्तित्वस्वरूप त्रिकालशुद्ध निजवस्तुको स्वीकार न करे, वर्तमान परिणमनको द्रव्यस्वभावमें उन्मुख न करे, तो बाहरी जानकारीसे क्या लाभ होगा?

अपनी वर्तमान परिणति द्वारा अपने त्रैकालिक ज्ञायक अस्तित्वमें 'अहं'पना आ जाना चाहिये, शास्त्रादिके बहिर्लक्षी ज्ञानमें जो 'मैं'पना है वह मिथ्यात्वभाव है; महान वाद-विवाद करे, अनेक प्रकारकी तर्कणा आती हो, परन्तु उससे क्या? पूर्णानन्दके स्वामी ऐसे निज भगवान आत्माको ग्रहण न करे, सत्-सत्-सत्स्वरूप परिपूर्ण प्रभुको न पकड़े, ज्ञानानन्दमय आत्माके अस्तित्वरूप परिणमित न हो तो वह ज्ञेयनिमग्न रहता है; तब तक बहिर्लक्षवाले उस जीवने आत्माका कुछ भी हित नहीं किया है।

धारणाके बलसे लाखों शास्त्र कण्ठस्थ कर ले और बारम्बार उन्हें फेर जाय-पढ़ जाय, परन्तु अपने ज्ञायकप्रभुको लक्षमें न ले, ग्रहण न करे, दृष्टिमें उसका आश्रय न ले तथा दृष्टिमें उसका आश्रय करके तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेयविमूढ़ मिथ्यादृष्टि रहता है। बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञान, लाखों-करोड़ो श्लोकोंकी धारणा आदि परज्ञेय निमग्न ज्ञान है, उसमें स्वज्ञेयनिमग्नता अर्थात् ज्ञाननिमग्नता नहीं आयी। ज्ञानस्वरूप आत्माके शुद्ध अस्तित्वके ग्रहणरूप तथा तद्रूप परिणमनस्वरूप जो ज्ञान प्रगट हो वह स्वज्ञेयनिमग्न ज्ञान यथार्थ है। जीव यदि बाह्यमें—शास्त्रोंके पठन-पाठन-मननमें रुक गया है, परन्तु अन्तर्मुख होकर ज्ञानस्वरूप निज आत्माको ग्रहण करके तद्रूप परिणमित नहीं होता तो वह परज्ञेयनिमग्न रहता है। अहा! शुभाशुभ रागमें जो निमग्न हो वह तो मिथ्यादृष्टि है ही, परन्तु यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जो शास्त्रोंको ज्ञातृत्वमें रुक गया हो वह भी परज्ञेयनिमग्न मिथ्यादृष्टि है।

जब हम स्थानकवासी सम्प्रदायमें थे तब प्रातःकाल जल्दी उठकर तीन-तीन घन्टेमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

डेढ़से दो हजार श्लोकोंका स्वाध्याय करते थे, परन्तु वह तो बाहरकी बात है; वह कोई मूलवस्तु नहीं है। जैसे भोगोपभोगकी परवस्तु अनादिसे अनन्तबार प्राप्त हुई है, राग और निमित्त भी अनादिसे चले आते हैं-मिले हैं, वैसे ही ग्यारह अंग और नवपूर्वका ज्ञान भी अनादिकालमें अनंतबार हो चुका है। शास्त्र पढ़ा हो और तत्त्वकी अनेक बातें करना आये, इसलिये वह स्वज्ञेयमें निमग्न है—ऐसा नहीं है। रागमें निमग्न तो मिथ्यादृष्टि है ही, परन्तु परलक्षी शास्त्रज्ञानमें निमग्न भी मिथ्यादृष्टि है। अहा! अद्भुत बात कही है। सार-सार बतलाया है।

यहाँ बहिनने दो बातें कही हैं :—(१) शास्त्र पढ़े, वाद-विवाद करना आये, प्रमाण-नय-निक्षेपादिसे वस्तुकी तर्कणा करे-तर्कणा करे कि निश्चयसे आत्मा अभेद एकरूप है और व्यवहारसे भेद एवं अनेकरूप है; धारणारूप ज्ञानको विचारोंमें बारम्बार फेरे-रटे, परन्तु यदि उसने निज ज्ञायक आत्माके अस्तित्वका ग्रहण नहीं किया और उसरूप परिणति प्रगट नहीं की तो वह जीव ज्ञेयनिमग्न है, ज्ञाननिमग्न नहीं है। (२) परन्तु यदि वह ज्ञानस्वरूप आत्माके अस्तित्वको ग्रहण करके तद्रूप परिणमित हो तो वह ज्ञाननिमग्न-ज्ञायकनिमग्न-स्वभावसमारूढ़ है। अहा! बड़ी अच्छी बात आयी है। सीधी-सादी भाषा, संक्षिप्त शब्दोंमें अहा! रामबाण है!

स्वज्ञेय ऐसा जो निजभगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शुद्धस्वरूप, पवित्रस्वरूप परिपूर्ण प्रभु है, उसे पहिचानकर उसमें निमग्न अर्थात् तद्रूप परिणमन न हो तो शास्त्रादिके ज्ञातृत्ववाला जीव परज्ञेयमें निमग्न है, मिथ्यादृष्टि है। इस ओरके (आत्माके अस्तित्वके) ज्ञानमें जो निमग्न न हो वह परज्ञेय निमग्न अज्ञानी है, तथा इस ओर जो पूर्णानन्दका स्वामी भगवान ज्ञायक स्वभाव उसमें जो निमग्न है—उसे ग्रहण करके तद्रूप परिणमन प्रगट किया है—वह स्वज्ञेयनिमग्न है अर्थात् ज्ञाननिमग्न ज्ञानी है। जिसकी दृष्टिका झुकाव त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावकी ओर नहीं है वह शास्त्रज्ञानी परज्ञेयोंमें निमग्न है; यदि वह परज्ञेयोंमें निमग्न न हो तो ऐसा शास्त्रज्ञान तो अनन्तबार किया है, स्वज्ञेयनिमग्नपना क्यों नहीं आया? परज्ञेयनिमग्नतासे स्वज्ञेयनिमग्नताका लाभ कभी नहीं होता।

क्या कहा? पूर्णानन्द प्रभु ज्ञायककी ओर दृष्टि करके उसमें लीन होना था, वह तो नहीं हुआ, परन्तु बाहरमें—शास्त्रज्ञानमें—अटक गया; परन्तु भाई! समयसारमें तो आचारांगादि शास्त्रज्ञानको शब्दश्रुत कहा है। आत्मज्ञान नहीं कहा। अहा! मात्र ज्ञानस्वभावके परिपूर्ण निजप्रभुको नहीं पहिचाना, उस ओर दृष्टि नहीं दी और तद्रूप परिणमन नहीं किया, इसलिये वह परज्ञेयनिमग्न रह गया। अपनेमें 'है' उसकी प्राप्ति करना है और 'नहीं है' उसको छोड़ देना है। बहिर्लक्षी 'शास्त्रज्ञान' भी आत्मज्ञान नहीं है। अरे! आज कल तो थोड़ा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शास्त्रज्ञान होने पर भी मान बैठते हैं कि हम ज्ञानी हो गये; आगे बढ़ गये; परन्तु आत्माके ग्रहण तथा परिणमनके बिना वह जीव मिथ्या अभिप्रायमें मग्न है।

ज्ञेय निमग्न जीवको जो भी बाहरी ज्ञान होता है, उसीमें वह तल्लीन हो जाता है। अंतरमें आत्माका ज्ञान तो है नहीं, और बाहर जो-जो जाननेमें आये—चारों अनुयोगोंका अभ्यास करे, उसमें उसकी मति तल्लीन-शास्त्राकार हो जाती है, भीतर जो ध्रुव ज्ञायक भगवान विद्यमान है, वह तो लक्षमें ही नहीं आया। शास्त्राभ्यास करते हुए उसे-ज्ञेयनिमग्न जीवको ऐसा वेदन होता है मानों शास्त्रमेंसे ज्ञान आ रहा हो। वास्तवमें तो ज्ञानका विकास अंतरसे होता है, परन्तु जिसे ज्ञानस्वरूप आत्माका अस्तित्वभासित नहीं हुआ उसे ऐसे ही भावका वेदन होता है कि ज्ञान बाहरसे-ज्ञेयमेंसे-शास्त्रमेंसे आता है। वह जीव ज्ञेयनिमग्न मिथ्यादृष्टि है।

'सब पढ़ गया, अनेक युक्ति-न्याय जाने, अनेक विचार किये, परन्तु जाननेवालेको नहीं जाना, ज्ञानकी असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जाननेका फल क्या?'

श्रीमद् राजचन्द्रजीने कहा है कि—

'नहि अन्य स्थाने ज्ञान भाख्युं, ज्ञान ज्ञानीमां कळो;
निज कल्पनाथी कोटि शास्त्रों, मात्र मननो आमळो;
जिनवर कहे छे ज्ञान तेने, सर्व भव्यो सांभळो।'

सब पढ़ लिया, चारों अनुयोग जान लिये, अनेक न्याय एवं युक्तियाँ जानलीं—तर्कतीर्थ और न्यायाचार्य हो गया, तत्त्वके अनेक विचार किये, परन्तु यह सब जाननेवालेको-निज ज्ञायकप्रभुको-नहीं जाना। सबका ज्ञाता-जाननेवाला-ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसे तो जाना नहीं। समवसरणमें भगवानकी दिव्यध्वनि सुनते हुए जो ज्ञानकी पर्याय विकसित होती है वह अपनेसे अपनेमें होती है, परन्तु ज्ञेयनिमग्न जीव ऐसे भावका वेदन करता रहता है, मानों ज्ञान दिव्यध्वनिमेंसे-बाहरसे आ रहा हो। जो ज्ञानका खजाना है, जिसमें ज्ञान ही भरा है उस ज्ञायकको-ज्ञाताको नहीं जाना, ज्ञानकी असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो उस सब बाह्य जानकारीका फल क्या? अहा! बहिनकी भाषा तो देखो! यह तो बोलनेमें आ गया और ब्र. पुत्रियोंने लिख लिया। उन्हें कहाँ खबर थी कि यह सब प्रकाशित होगा? यह तो जगतके महाभाग्य हैं कि ऐसी बात लिख ली गई और प्रगट हो गई।

बहिर्लक्षी शास्त्रपठन, प्रमाण-नय-निक्षेपसे वस्तुकी तर्कणा, धारणा आदि ज्ञानकी नकली भूमि है, ज्ञानकी असली भूमि-मूलभूमि तो ज्ञानस्वरूप आत्माका सहज अस्तित्व है। उसका ग्रहण करनेसे और तद्रूप परिणमनेसे ज्ञान सम्यक्रूपसे प्रगट होता है। अहा! यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक तो कोई अलौकिक वस्तु है; यह तो सगेसम्बन्धियोंको भी भेंट देने जैसी मूल्यवान वस्तु है, बोल बहुत संक्षिप्त भाषा बिलकुल सादी और गुजराती!

क्या कहते हैं यहाँ? कि—बाहरका सब कुछ जाना, परन्तु जाननेवाले ज्ञायकको नहीं जाना, ज्ञानकी मूल भूमि दृष्टिमें नहीं आयी तो वह सब जाननेका फल क्या? ज्ञानकी असली भूमि तो सहजज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, वह दिखायी नहीं दिया, दृष्टिमें नहीं आया, तो वह सब जाननेका फल क्या मिला? अज्ञान और भवभ्रमण ज्योंके त्यों बने रहे। आया कुछ समझमें? सब शास्त्र पढ़ गया, युक्ति-न्याय जाने, अनेक पक्षोंसे तत्त्वविचार किया, परन्तु मूलवस्तु जाननेमें नहीं आयी—ज्ञाता ऐसे अपने आत्माको नहीं जाना, तो वह सब जाननेका फल क्या?—शास्त्राभ्यास आदिका क्या लाभ? अहा! मानीका मान गल जाये ऐसी बात है इसमें।

'शास्त्राभ्यासादिका प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्माको जानना है।'

समयसार बंध-अधिकारमें जो कथन आया है, उसका आशय भी यही है कि—शास्त्राभ्यास आदिका प्रयोजन तो अंतरमें ज्ञानस्वरूप आत्माको जानना। ज्ञेयनिमग्नजीवका वह प्रयोजन तो सिद्ध हुआ नहीं और रुक गया शास्त्रोंमें, तर्कणामें तथा विचार-मननमें। उन्हींमें संतुष्ट हो गया। अरे, कठिन काम है भाई! कथन तो अत्यन्त स्पष्ट एवं परम सत्य है। निमित्त और रागमें रुक जाय वह तो मिथ्यादृष्टि है ही, परन्तु मात्र शास्त्रज्ञानमें लग जाय वह भी मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानस्वरूप आत्माके अस्तित्वको ग्रहण करना और तद्रूप परिणमना वह शास्त्राभ्यासादिका प्रयोजन है—ज्ञानस्वरूप भगवान आत्माको जानना, अनुभवना ही शास्त्राभ्यास आदिका प्रयोजन है।

प्रश्न :—**जैसे स्वद्रव्य आदरणीय है वैसे ही उसकी भावनारूप निर्मल पर्यायको आदरणीय कहा जायगा?**

उत्तर :—**हाँ; राग हेय है उसकी अपेक्षासे निर्मल पर्यायको आदरणीय कहा जाता है; और द्रव्यकी अपेक्षासे पर्याय वह व्यवहार है, वह आश्रययोग्य नहीं होनेसे हेय कही जाती है। क्षायिक पर्याय भी द्रव्यकी अपेक्षासे हेय कही जाती है, परन्तु रागकी अपेक्षासे क्षायिकभावको आदरणीय कहते हैं।** —*पूज्य गुरुदेवश्री*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१५२

दिनांक १३-११-७८

वचनामृत–३८२

आत्मा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं, पूर्ण भरा हुआ है। उसमें अनन्त गुणरत्नोंके कमरे भरे हैं। उस अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे तो तुझे संतोष होगा कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'। उसमें स्थिर होनेसे तू पर्यायमें कृतकृत्य हो जायगा॥३८२॥

'आत्मा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप है।'

आत्माको प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद–व्यय पर्याय–अपेक्षासे हैं और उत्पाद–व्ययरूप परिणमनके साथ सदा एकरूप रहनेवाला ध्रौव्य द्रव्य–अपेक्षासे है। जगतका प्रत्येक पदार्थ 'सत्' है; 'सत्'का स्वरूप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी एकतारूप अनुभूति अर्थात् 'अस्तित्व' है। भगवान आत्मा भी, अमूर्तिक चिन्मय 'पदार्थ' होनेसे, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी एकतासहित है। समयसारमें 'उत्पाद–व्यय–ध्रुवत्व' नामकी एक शक्ति भी आत्मामें कही है। वहाँ क्रमवृत्तिरूप पर्यायको उत्पाद–व्ययरूप और अक्रमव्यक्तिरूप गुणको ध्रुवत्वरूप कहा है। द्रव्यके स्वभावभूत ध्रौव्य–व्यय–उत्पादसे स्पर्शित, सदृश और विसदृश जिसका रूप है, ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति आत्मामें होनेसे वह युगपद् सदृश अर्थात् ध्रौव्यरूप और विसदृश अर्थात् उत्पाद–व्ययरूप है। आत्मा, युगपद्, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप होने पर भी, अखण्ड निर्विकल्प एक 'सत्' है। उसे तीन भेदरूपसे विचारमें लेना वह भी विकल्पका कारण है। नियमसारके परमावश्यक अधिकारमें तो, जो जीव द्रव्य–गुण–पर्यायोंमें (अर्थात् उनके विकल्पोंमें) मन लगाता है, वह भी अन्यवश है—ऐसा कहा है। द्रव्य–गुण–पर्यायके अथवा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यके भेदरहित अखण्ड आत्मामें दृष्टि देना सो सम्यग्दर्शन है।

'वह नित्य रहकर पलटता है।'

आत्मा ज्ञान और आनन्दादि मूल स्वरूपसे स्थायी रहकर पर्याय–अपेक्षासे प्रतिक्षण पलटता है; वस्तुस्वरूपसे नित्य रहकर पर्यायअपेक्षासे अनित्यतारूप परिणमता है। जीवत्वस्वभावसे नित्य रहकर मनुष्यादि या रागादि पर्यायरूप परिणमता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं, पूर्ण भरा हुआ है।'

द्रव्य-अपेक्षासे 'स्थिर' और पर्याय-अपेक्षासे 'पलटना' जिसका सनातन स्वरूप है, ऐसे इस आत्माका ध्रौव्य अर्थात् नित्यस्थायी स्वरूप कहीं रिक्त नहीं है, परन्तु सहज ज्ञान एवं सहज आनंदादि अनन्तानन्त गुणसमृद्धियोंसे भरपूर भरा है। अहा! कितनी सादी भाषा है! आत्मा अनन्तगुणोंका भण्डार है—ऐसा श्रीगुरुने उपदेशमें बतलाया और शिष्यने उसे ख्यालमें किया, परन्तु ख्यालमें लेने मात्रसे सम्यग्दर्शन नहीं हो जाता। गुरुकी वाणी तो निमित्तरूप व्यवहार है, सम्यग्दर्शनरूप कार्य तो उत्पाद-व्ययरूप निज परिणतिको ध्रुव ज्ञायककी ओर—निश्चयस्वभावकी ओर—ले जानेसे प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होनेकी असली आधारभूमि तो त्रिकालशुद्ध ज्ञायकभाव है, श्रवण अथवा शास्त्र वह कोई ज्ञानकी असली आधारभूमि नहीं है, साधनामय ज्ञानकी मूल आधारभूमि तो त्रैकालिक परिपूर्ण ज्ञायकभाव है।

'बहिनश्रीके वचनामृत' पढ़ते हैं न! अहा! यह तो अलौकिक बात है। बहिन तो रात्रिकी वचनिकामें कुछ-कुछ अंतरसे बोल गई थीं। अपने यहाँ जो चौंसठ बालब्रह्मचारी पुत्रियाँ हैं उनमेंसे नौ पुत्रियोंने वह लिख लिया। हिंमतभाईने उसे पढ़कर यह पुस्तक बनायी और प्रकाशित हुई। उस पुस्तकका यह ३८२वाँ बोल अभी पढ़ा जा रहा है। विषय सूक्ष्म है। भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है। धन, मकान, परिवारादि तो इस आत्मासे भिन्न हैं ही, परन्तु आत्माके साथ एकक्षेत्रमें स्थित शरीर, वाणी, इन्द्रियाँ, कर्म भी भिन्न ही हैं, अरे! पुण्य-पापके जो विकल्प उठते हैं वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्मा 'सत्' होनेसे उसका स्वरूप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है। वह स्वभावसे नित्य एकरूप रहकर नवीन-नवीन पर्यायोंरूपसे पलटता है। अल्प-अधिक दशारूप पलटनेके समय भी आत्माका नित्यस्थायी स्वरूप-ध्रौव्य-कहीं अल्प-अधिक या रिक्त नहीं है, परन्तु परिपूर्ण है।

'उसमें अनन्त गुणरत्नोंके कमरे भरे हैं।'

आत्माका नित्यस्थायी स्वरूप अनंतानंत गुणोंसे भरपूर भण्डार है। उस अभेद परिपूर्ण ज्ञायकभण्डार पर दृष्टि देनेसे, अंतरमें उसकी यथार्थ महिमा आने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। अरेरे! आत्माकी किसे पड़ी है? मेरा क्या होगा? यह शरीर छूटने पर कहाँ डेरा डालूँगा?—उसका कभी विचार किया है भाई? भगवान आत्मा तो नित्य रहनेवाला ध्रुव पदार्थ है, वह कहाँ जायगा? जागता जीव विद्यमान है वह अपने मूल स्वरूपसे नित्य रहकर नवीन-नवीन अवस्थाओंरूप उत्पाद-व्यय करता रहता है। रंग, राग और भेदसे भी रहित, अभेद ज्ञायक पर दृष्टि देनेसे शाश्वतसुखके हेतुभूत आत्मदर्शन और आत्मज्ञान प्रगट होता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। इसलिये हे जीव! तू भी जिसमें ज्ञान, दर्शन, सुखादि अनंत गुणरत्नोंके भण्डार भरे हैं ऐसे परिपूर्ण नित्यस्थायी ज्ञायकस्वरूपमें दृष्टि लगा दे।

अहा! जिनका स्थान शासनमें तृतीय स्थान पर आता है—प्रथम स्थान पर 'मंगलं भगवान वीरो,' द्वितीय स्थानपर 'मंगलं गौतमो गणी', और तृतीय स्थान पर 'मंगलं कुन्दकुन्दाचार्यो,'—ऐसे महान आचार्यदेव कहते हैं कि—प्रभु! एकबार ध्यान देकर सुन! तेरी जो ध्रुव वस्तु है उसमें अनन्तानन्त गुण भरे हैं; उस ध्रुवको पकड़कर ध्यानका विषय बना दे, तो तुझे अवश्य सम्यग्दर्शन होगा।

भगवान ज्ञायक आत्मा तो चिद्‌बिम्ब, जिनबिम्ब, वीतरागबिम्ब है, अनंत शक्तियोंका प्रभु साक्षात् प्रभु है। अरे! उसका विश्वास कब आयगा? कि—जब उस ध्रुव वस्तु पर दृष्टि लगायेगा तब ध्रुवस्वभावका विश्वास–भरोसा आता है, सम्यग्दर्शन होता है। ध्रुव तथा गुणभरपूर स्वभावकी दृष्टिके बिना अन्य सब निरर्थक है। इसलिये, अनन्त गुणोंसे भरपूर ऐसे निज त्रिकालशुद्ध ज्ञायकको ध्येय बनाकर वहाँ रुक जा, दृष्टिको वहाँ स्थापित कर दे। स्वभाव स्थिर होनेसे दृष्टि उस पर टिक जाती है; पर्याय अस्थिर है, इसलिये दृष्टि वहाँ टिक नहीं सकती। पर्याय है अवश्य, परन्तु वह अस्थिर और पलटनेवाली है। 'पलटने' पर दृष्टि दे तो वह स्थिर कैसे होगी? इसलिये, पर्यायकी दृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि करनेको भगवानने कहा है। अहा! आठ–आठ वर्षके राजकुमार–चक्रवर्तीके पुत्र तीर्थंकरके समवसरणमें वाणी श्रवण करके ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करते होंगे—वह योग कैसा होगा। अंतरमें ध्रुव ज्ञायक पर थाप लगायी–दृष्टि स्थिर की—और तुरन्त ही अंतरसे आनन्द आया, राजपाट आदि सब रूखा–रूखा हो गया।

द्रव्य–गुण पर्यायिस्वरूप या उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप भगवान आत्माके नित्यस्थायी स्वरूपमें–ध्रुवस्वभावमें–अनन्त गुणरत्नोंके कक्ष भरे हैं। सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजसुखादि प्रत्येक गुण–कक्षमें अनन्तानन्त गुणशक्ति तथा अनन्त पर्यायें होनेका सामर्थ्य विद्यमान है। ज्ञानादि प्रत्येक गुण अपने स्वरूपसे रहता है वह अन्य अनन्तस्वरूप नहीं होता—ऐसी अनन्त शक्ति–सामर्थ्य प्रत्येक गुण–कमरेमें है। ज्ञानादि प्रत्येक गुण–कक्षमें अनन्त पररूप न होना ऐसे अनंत नास्तित्वभाव तथा अनंतपरसे पृथक् रहना—ऐसे अनन्त अन्यत्वभाव भरे हैं। चिद्‌विलासमें आता है—(१) एक–एक गुणमें अनन्त शक्ति; (२) एक–एक गुणमें अनन्त पर्यायें।—ऐसे दो बोल लिये हैं। ज्ञान, शान्ति आदि एक–एक गुण, ऐसे अनन्त गुण–अनन्तानंत गुण, एक–एक गुणमें अनन्तानन्त शक्ति; अन्य गुणरूप न होना, अन्य गुणके अभावस्वरूपसे रहना—ऐसा सामर्थ्य, शक्ति एक–एक गुणमें हैं।—अहा! ऐसा चैतन्यचमत्कार है!

जीवकी दृष्टि अनादिसे पर्यायपर है इसलिये, अनन्त गुणोंसे भरपूर निज ज्ञायकवस्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समीप है, स्वयं ही है तथापि उसे उसका पता नहीं है। अंदर स्वभावको पहिचानकर ग्रहण करे तो केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण ऐसी भेदज्ञानज्योति–विवेकज्योति–प्रगट हो। शास्त्र सुननेसे हुआ ज्ञान केवलज्ञानका कारण नहीं होता, परन्तु अंतरमें ज्ञायकको ग्रहण करके हुआ भेदज्ञान ही चारित्र और केवलज्ञान आदिका कारण होता है। गुरुने अनुग्रह करके शुद्धात्माका उपदेश दिया, इस जीवने उसे लक्षमें लिया, परन्तु इतने मात्रसे आत्माका ज्ञान हो जाता है—ऐसा नहीं है। मार्गदर्शकने दिखलाया कि—"अंतरमें जा, तेरा ध्रुवस्वभाव भीतर है'; परन्तु चलनेवालेको चलना तो स्वयंको है न? अंतरमें प्रवेश करके स्वभावको ग्रहण करे तो भगवान आत्मा प्राप्त हो।

"उस अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्यस्वरूप पर दृष्टि दे तो तुझे संतोष होगा कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ।"

अहा! सार आया है। पहले यह बात सिद्ध की कि भगवान आत्मा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप है; उसका जो ध्रुवरूप है वह स्थायी है—स्थिर है, उसकी पर्यायें पलटती हैं। नित्य एकरूप रहनेवाला उसका ध्रुव स्थायी रूप कहीं रिक्त नहीं है, परन्तु अनन्त गुणोंसे—अनन्त वैभवसे परिपूर्ण है। अनन्त गुणरत्नोंके कक्षसे भरपूर वह ध्रुवतत्त्व कोई अद्‌भुत चमत्कारी वस्तु है। उस आश्चर्यकारी अनन्तानन्त गुणऋद्धिवन्त ऐसे निज ध्रुव ज्ञायकस्वरूप पर दृष्टि लगा, अंतरकी गहरायीसे उसकी महिमा ला, तो तुझे तृप्ति होगी कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'।

जैनदर्शन अलौकिक है, समझना कठिन है; वह कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, वस्तुका स्वरूप है। वस्तु–भगवान आत्मा जिनस्वरूप है; उसमें दृष्टि लगाये तो जैन हो; जिन पर दृष्टि लगाये वह जैन होता है। पं. बनारसीदासजीने कहा है न! कि—

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन;
मति-मदिराके पान सौं, मतवाला समुझै न।

प्रत्येकके हृदयमें जिनराज और जैनधर्मका निवास है, परन्तु मतपक्षरूपी मदिरापानके कारण मतान्ध जीव अंतरमें विद्यमान जिनत्वको तथा जैनत्वको नहीं समझते। जो जीव पर्यायबुद्धि, व्यवहारबुद्धि और निमित्तबुद्धिसे मदोन्मत्त हैं वे शुद्धतत्त्वको नहीं समझ सकते। अहा! ऐसा मार्ग! लोगोंको समझनेमें कठिन लगता है, इसलिये 'एकान्त' कहकर छोड़ देते हैं। प्रभु! वस्तु सूक्ष्म है। अनादिसे जो पर्यायकी ओर दृष्टि है उसे द्रव्यकी ओर मोड़; वर्तमान पर्यायको—दृष्टिको–द्रव्य पर स्थापित कर। कल्याण हेतु वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है, वहाँ और क्या हो सकता है? व्रत, तपादि शुभपरिणाम भी अत्यन्त स्थूल है, उनसे सूक्ष्म ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकालशुद्ध भगवान आत्मा पकड़में नहीं आयगा। स्वभावमें दृष्टि स्थिर कर तो तुझे संतोष होगा कि 'मैं तो सदा परिपूर्ण एवं कृतकृत्य हूँ'।

पर्यायके ऊपर दृष्टि होनेसे दुःख है। जहाँ भण्डार भरे हैं उस ज्ञायकवस्तुमें दृष्टि स्थापित कर, तो तुझे आनन्द प्रगट होगा। स्वभावमें दृष्टि लगानेसे संतोष होगा। कैसा संतोष? कि—'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'। त्रैकालिक ज्ञायकवस्तु स्वभावसे तो सदा कृतकृत्य ही है, परन्तु उस पर दृष्टि स्थापित करनेसे पर्यायमें द्रव्यरूप कृतकृत्यताका स्वीकार आया, पर्यायमें कृतकृत्यताका अंशतः अनुभव हुआ। अहा! एक पैरेमें कितना सहज आया है। बहिनने लिखा नहीं है, लिखवाया नहीं है, पुत्रियोंने लिख लिया; हिंमतभाईने संशोधन किया और प्रकाशित हो गया।

'मैं तो द्रव्यसे सदा कृतकृत्य हूँ' ऐसे संतोषभावरूप परिणमित होकर जीव पर्याय द्वारा ध्रुवस्वभावका स्वीकार करता है, आश्रय करता है। स्वभावका आश्रय करनेसे पर्यायमें जो आनंद आया, श्रद्धा हुई, अंशतः स्थिरता हुई, उससे जीवको संतोष हुआ कि 'यह भगवान आत्मा वस्तुरूपसे तो सदा कृतकृत्य है'। द्रव्यस्वभावमें कुछ करना नहीं है, वह तो सदा कृतकृत्य ही है।

'उसमें स्थिर होनेसे तू पर्यायमें कृतकृत्य हो जायगा।'

'मैं तो द्रव्यस्वभावसे सदा कृतकृत्य हूँ'—इसप्रकार पर्यायमें ध्रुवस्वभावका यथार्थ ग्रहण करके उसमें स्थिरतासे–द्रव्यकी अर्थात् त्रिकालशुद्ध वस्तुकी दृष्टि होनेसे, आनन्द, श्रद्धा, ज्ञानादि जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसके द्वारा जीव ऐसा माने, जाने, अनुभव करे कि 'मैं तो द्रव्यरूपसे सदा कृतकृत्य हूँ'। स्वभावसे कृतकृत्य हूँ तो उसमें स्थिर होने पर अनुक्रमसे पर्यायमें भी मैं पूर्ण कृतकृत्य हो जाऊँगा।

अहा! कैसी सरस बात! भावनगरसे एक अर्द्धमागधीके प्रोफेसरका पत्र आया है। 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक पढ़कर हर्ष व्यक्त किया है। अरे! यह तो कोई ऐसी अद्‌भुत पुस्तक है कि—पढ़े–लिखोंका अभिमान–पानी उतर जाये।

क्या कहते हैं यहाँ? कि—भगवान ज्ञायक आत्मा जो कि स्वभावसे नित्य ध्रुव है, उसपर दृष्टि देनेसे तुझे पर्यायमें श्रद्धा, ज्ञान और आनन्दादि सब प्रगट होंगे। तुझे संतोष होगा कि स्वभावसे कृतकृत्य हूँ, फिर उसमें दृष्टि लगानेसे, उसका आश्रय करनेसे, पर्यायमें भी मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। अहा! ऐसा है यह दिगम्बर जैनधर्म! यह कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, वस्तुधर्म है। भाग्यवानके कानोंमें पहुँचे ऐसी यह दुर्लभ बात है। लाखों रुपये मिलें वह कोई 'भाग्यवान' नहीं, किन्तु यह सत्य बात सुननेको मिले वह सच्चा 'भाग्यवान' है। जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वीतरागकी दिव्यध्वनिमें आयी है वही यह वाणी है। यह वाणी न्यायसहित कानोंमें पड़े और अंतरमें उतरकर उसे ग्रहण करे तो निहाल हो जाय ऐसी यह बात है।

द्रव्य स्वभावसे कृतकृत्य अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप होनेसे, उसका अवलम्बन लेने पर पर्यायमें कृतकृत्यपना—पूर्णानन्द प्रगट हो जायगा। द्रव्यमें स्थिर होनेसे पर्यायमें सहजरूपसे परमानन्द प्रगट होता है, हठपूर्वक कृत्रिमरूपसे नहीं करना पड़ता। भगवान आत्मा स्वभावसे तो केवलज्ञानका कन्द है; उसे दृष्टिमें लेनेपर स्थिरता होनेसे पर्यायमें केवलज्ञान प्रगट हो जायगा, फिर कहाँ कुछ करना शेष रहता है?

लोग, तथा उपदेशक भी कहते हैं कि—भगवानने भी साढ़े बारह वर्ष तक तप किया था, परन्तु भाई! तू मानता है ऐसा तप नहीं। भगवानने तो अतीन्द्रिय आनन्दमें लीन रहकर स्वरूपका जो प्रतपन किया—साधनाकी दैदीप्यता प्रगट की वह तप है। अनन्तगुणोंका पिण्ड ऐसा जो निजज्ञायक आत्मा उसकी पर्यायमें स्वभावके उग्र अवलम्बनसे आनन्द, शान्ति और स्थिरताका जो प्रतपन हो—अंतरमें स्वरूपरमणताका उग्र पुरुषार्थ हो–वह तप है। आत्मदर्शन–सम्यग्दर्शनके बिना उपवासादि तप तो मात्र लंघन है। अनन्त चमत्कारिक ऋद्धियोंसे सम्पन्न ऐसे निज ज्ञायकके निकट जाकर निवास करना, आनन्दभावरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होना, उसका नाम उपवास है। अहा! यह बात व्यवहारप्रधान सम्प्रदायवालोंको असह्य लगे ऐसी है। यह बात दिगम्बरोंके शास्त्रोंमें भरी पड़ी है, परन्तु उन्हें उसकी खबर नहीं है और चरणानुयोगमें ऐसा कहा है तथा करणानुयोगमें ऐसा कहा है—इसप्रकार बाहरकी माथाकूटमें लग जाते हैं।

भाई! चारों अनुयोगका तात्पर्य तो वीतरागता है न?—तो वीतरागता किसप्रकार और कब होती है? अरागी आनन्दकन्द निज शुद्ध ज्ञायककी दृष्टि करनेसे, परिणतिमें उसका ग्रहण करनेसे और उसमें लीनता होनेसे पर्यायमें वीतरागता प्रगट होती है। जिसमें स्वभाव–अपेक्षासे परिपूर्ण भरी है उस ज्ञान और आनन्दमूर्ति आत्माका रुचिमें तथा परिणतिमें आश्रय करनेसे पर्यायमें साधकभावरूप वीतरागता प्रगट होगी। ध्रुवस्वभावका आलम्बन लेनेवाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं वीतरागतारूप पर्यायमें परिणत जीव ऐसा जानता है कि—निर्मल पर्यायके आलम्बनभूत त्रिकालशुद्ध ऐसा मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ। आत्मा वस्तुरूपसे पूर्ण परमात्मा है, उसमें कुछ करना–धरना नहीं होता। स्वभावसे कृतकृत्य ऐसे उसके स्वरूपमें स्थिरतासे पर्यायअपेक्षा कृतकृत्यता प्रगट होगी। पर्यायमें कृतकृत्यता प्रगट करनेके लिये त्रैकालिक कृतकृत्य स्वभावमें, उसे यथार्थ ग्रहण करके, स्थिर होना कहा है; कोई उपवासादि बाह्य क्रिया अथवा शुभराग करनेसे वह प्रगट होगी—ऐसा नहीं कहा है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! एक बोलमें कितना भरा है? सहज ही बात निकल गई है। यह चम्पाबेनकी वाणी है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ श्री सीमंधरस्वामी महाविदेह क्षेत्रमें विराजते हैं, उनके पाससे यह वाणी आयी है। चम्पाबेन वहाँ 'सेठके पुत्र'रूपमें थीं। वहाँसे उनका आत्मा यहाँ आया है। बहन कहती हैं : आत्माका नित्यस्थायी स्वरूप नित्य ध्रुव है। वह नित्य स्वरूप कहीं खाली नहीं है, उसमें ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि अनन्त गुण खचाखच भरे हैं। उस नित्य स्वरूपमें अनंत गुणचिन्तामणिके कक्ष भरे हैं। एक-एक गुणमें अनन्त पर्यायें होनेकी शक्ति है। ऐसी शक्तिसे परिपूर्ण अनन्त गुणरत्नोंके कक्ष भगवान आत्मामें भरे हैं। उस अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य ध्रुव स्वरूप पर दृष्टि लगा, उसका यथार्थ ग्रहण कर, तो तुझे संतोष-तृप्ति होगी कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ।' यहाँ दो बातें कही हैं : (१) द्रव्यस्वभावसे तो मैं सदा कृतकृत्य हूँ, और (२) उसमें स्थिर होनेसे पर्यायमें भी कृतकृत्य हो जाऊँगा; फिर पर्यायमें कुछ भी करना शेष नहीं रहेगा। ऐसा मार्ग है। अहा! भाषा तो देखो!

❋

वचनामृत-३८३

ज्ञायकस्वभाव आत्माका निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञानका उपयोग जो बाह्यमें जाता है उसे अंतरमें समेट लेना, बाहर जाते हुए उपयोगको ज्ञायकके अवलम्बन द्वारा बारम्बार अंतरमें स्थिर करते रहना, वही शिवपुरी पहुँचनेका राजमार्ग है। ज्ञायक आत्माकी अनुभूति वही शिवपुरीकी सड़क है, वही मोक्षका मार्ग है। दूसरे सब उस मार्गका वर्णन करनेके भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। जितने वर्णनके प्रकार हैं, उतने मार्ग नहीं हैं, मार्ग तो एक ही है।।३८३।।

'ज्ञायकस्वभाव आत्माका निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञानका उपयोग जो बाह्यमें जाता है उसे अंतरमें समेट लेना, बाहर जाते हुए उपयोगको ज्ञायकके अवलम्बन द्वारा बारम्बार अंतरमें स्थिर करते रहना, वही शिवपुरी पहुँचनेका राजमार्ग है।'

'प्रथम, श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके, पश्चात् आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये.....'—ऐसा समयसार गाथा १४४की 'आत्मख्याति' टीकामें आता है, वह बात बहिनने यहाँ ली है। अहा! समयसार परमागममें तो रत्न भरे हैं; केवलज्ञानके पिटारेसे निकली हुई बातें उसमें भरी हैं। प्रथम, 'मैं मात्र ज्ञायकभाव हूँ'—इसप्रकार आगमके अभ्यास द्वारा ज्ञानस्वभाव निज आत्माका निर्णय करके, विकल्पके कालमें भी विकल्पसे भिन्न ज्ञानस्वभावी निज शुद्ध अस्तित्वको ग्रहण करके, मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका व्यापार जो बाह्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषयोंमें जाता है उसे, स्वभावकी महिमाके बलसे अंतरमें समेट लेना, शरीर, वाणी, मकान, लक्ष्मी आदि या देव–शास्त्र–गुरु आदि बाह्य पदार्थोंके प्रति भटकते हुए उपयोगको, पूर्णानन्दके रसयुक्त ज्ञायकके आलम्बन द्वारा बारम्बार अंतरमें स्थिर करते रहना वह मोक्षपुरी पहुँचनेका मुख्य मार्ग है।

'ज्ञायक आत्माकी अनुभूति वही शिवपुरीकी सड़क है, वही मोक्षका मार्ग है।'

शीतल स्वभावसे भरपूर चैतन्यचन्द्रको—ज्ञायक आत्माको–अंतरमें ग्रहण करके, उसी ज्ञातास्वभावी आत्माकी—जोकि अनंत गुणरत्नोंसे भरपूर है, उसकी–निर्विकल्प अनुभूति प्रगट होना वही मोक्षपुरीका मुख्यमार्ग है, वही शिवपुरीमें पहुँचनेकी सड़क है।

'जानना......जानना.....जानना' जिसका असाधारण स्वभाव है ऐसे, शरीर तथा कर्मादिसे बिलकुल भिन्न और शुभाशुभ विभावोंसे रहित, निज ज्ञायक आत्माका प्रथम श्रुतज्ञानके अवलम्बन द्वारा दृढ़ निर्णय करके, उसकी (स्वानुभूतिमें) प्राप्तिके लिये मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञानके जो व्यापार–उपयोग इन्द्रिय तथा मन द्वारा बाह्य विषयोंमें प्रवर्तते थे उन्हें अन्तरोन्मुख करके आत्मसन्मुख करनेको, त्रिकालशुद्ध आनन्दकन्द ज्ञायकके अन्तर्मुख आलम्बन द्वारा उपयोगको बारम्बार भीतर स्वरूपमें स्थिर करते रहना, वही शिवपुरीकी सड़क है, वही मोक्षका मार्ग है। शिवनगरीका पंथ 'भावप्राभृत'में प्रयत्न साध्य कहा है न!—

है भाव पहले, भावविरहित लिंगसे क्या काम है?
हे पथिक! शिव पथ यत्नसे है प्राप्य जिनवरने कहा।

ज्ञान एवं आनन्दादि अनंत गुणोंका धाम ऐसा जो निज ज्ञायक भाव उसमें दृष्टि देकर स्थिर हो जा। अंतरमें बारम्बार स्थिरताका प्रयत्न करते रहना, ज्ञायक आत्माकी अनुभूतिकी निर्मलताएँ बढ़ते जाना, वही मोक्षनगरीका मार्ग है। व्रत, तपादि, शुभरागरूप व्यवहारकी बात यहाँ निकाल दी है, क्योंकि शुभरागरूप व्यवहार आस्रव–बन्धका कारण है, संवर–निर्जरा अर्थात् मोक्षपुरीका पंथ नहीं है।

ज्ञानीको व्रतादि व्यवहारके विकल्पकालमें भी, अंतरमें ज्ञानधारारूप स्थिरताका प्रयत्न सतत वर्तता है। ज्ञायकके आलम्बनसे परिणमित होती ज्ञानधारारूप स्थिरता–बाह्योन्मुख ज्ञानपरिणमनरूप उपयोगको आनन्दकन्द ज्ञायकके अवलम्बनसे अंतरमें बारम्बार स्थिर करते रहना—वही शिवनगरी पहुँचनेका राजमार्ग–मुख्यमार्ग है। अहा! यह तो कोई पुस्तक है। इसका तो अभी बहुत प्रचार होगा; लोग जब पढ़ेंगे तब उन्हें ख्याल आयगा......! लोगोंका भाग्य है! उसीपर यह जो व्याख्यान हो रहे हैं वे प्रकाशित होंगे तब लोगोंको ख्याल आयगा कि यह क्या वस्तु है! अहाहा! 'चलो सखी वहाँ जाइये, जहाँ न अपना कोई'; बस ज्ञायक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्माकी अनुभूति वही एक शिवपुरीकी सड़क है। ज्ञायककी अनुभूति अर्थात् पर्यायमें ज्ञायकके अवलम्बनसे निर्विकल्प आनन्दका वेदन वही शिवनगरी अर्थात् मुक्तिपुरीका मार्ग है।

प्रश्न :—उसका कोई साधन?

उत्तर :—'ज्ञानस्वभावी आत्माके अवलम्बनसे परिणतिको बारम्बार अंतरमें स्थिर करते रहना वही शिवपुरीमें पहुँचनेका राजमार्ग है'—ऐसी पहले पक्की श्रद्धा तो कर। ज्ञायक स्वभाव आत्माका प्रथम दृढ़ निर्णय करके वीर्यको–उद्यमको–प्रयत्नको ज्ञायककी ओर मोड़ दे। बस, यही मोक्षका मार्ग है, शिवपुरीकी सड़क है।

'दूसरे सब उस मार्गका वर्णन करनेके भिन्न–भिन्न प्रकार हैं।'

अखण्डानन्द ज्ञायक प्रभुमें दृष्टि लगाकर अंतरमें स्थिर हो जाना—यह एक ही मार्ग है। 'एक होय तीनकालमें, परमारथका पंथ।' अन्य सब उस राजमार्गको समझानेके भिन्न–भिन्न प्रकार हैं।

'जितने वर्णनके प्रकार हैं उतने मार्ग नहीं हैं; मार्ग तो एक ही है।'

समझानेके प्रकार अनेक होते हैं, परन्तु वस्तुका स्वरूप तो एक ही होता है। श्रद्धा और स्थिरताके मार्गका विवेचन भिन्न–भिन्न प्रकारसे किया जाता है, परन्तु मार्ग–वीतरागता–तो सदा एक ही होता है।

❀

गन्नेमें रस है, परन्तु कूचेके संयोगको देखते हुए रस भिन्न दिखायी नहीं देता, तथापि 'रस और कूचा भिन्न हैं' ऐसे ज्ञानके बलसे दोनोंको भिन्न करते हैं; तिल्लीमें जो खली है वह तिल्लीका स्वरूप नहीं है तथापि 'उसमें वर्तमानमें तेल है' ऐसा जाने तो फिर तेलके लक्षसे खलीको पृथक् करे; उसीप्रकार भगवान आत्माको पुद्गलकर्मके संयोगसे पर्यायमें जो राग–द्वेष एवं अज्ञानके विकारी भाव होते हैं वे वर्तमान एक–एक समयपर्यंतके हैं और भीतर अखण्ड स्वभाव पूर्ण अविकारी ध्रुव है—ऐसा जाने तो विकारको दूर कर सकता है। भेदके लक्षसे राग होता है और अखण्ड स्वभावके लक्षसे राग टलता है। *—पूज्य गुरुदेवश्री*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१५३

दिनांक १७-११-७८

वचनामृत-३८४

तेरे आत्मामें निधान ठसाठस भरे हैं। अनंतगुणनिधानको रहनेके लिये अनंत क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशोंके क्षेत्रमें ही अनंत गुण ठसाठस भरे हैं। तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है? तुझमें है उसे देख न! तुझमें क्या कमी है? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है। सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है। एक बार तू अंतरमें प्रवेश कर, सब अंतरमें है। अंतरमें गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधानके प्रगट अंशको वेदकर तू तृप्त हो जायगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना जिससे पूर्ण निधानका भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा॥३८४॥

'तेरे आत्मामें निधान ठसाठस भरे हैं।'

त्रिकालशुद्ध सामर्थ्य भरपूर सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज आनन्द, सहज वीर्यादि गुणोंको—शक्तियोंको-ध्रुव धर्मोंको यहाँ निधान कहा है। प्रभु! तेरे आत्मामें ज्ञानादि अनन्त गुणनिधान ठसाठस भरे हैं अर्थात् आत्मा अनन्त गुणोंसे लबालब भरा है।

'अनन्तगुणनिधानको रहनेके लिये अनन्तक्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशोंके क्षेत्रमें ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं।'

ज्ञान, दर्शन, सुखादि अनन्तगुणोंको रहनेके लिये अनन्त प्रदेशोंकी आवश्यकता नहीं होती। जीवका जो निज अमूर्तिक चिन्मयक्षेत्र लोकप्रमाण अखण्ड असंख्यात प्रदेश है उसी क्षेत्रमें सर्वत्र-प्रत्येक प्रदेशमें-वे ज्ञानादि अनन्तगुण, जीवद्रव्यसे अभिन्न सहभावी अंशरूपसे, सदा अवगाह प्राप्त करके ठसाठस भरे हैं। असंख्यातप्रदेशी जीवद्रव्यमें तो अनन्तगुण ठसाठस भरे हैं, परन्तु पुद्गलपरमाणु कि जिसका निजक्षेत्र मात्र एकप्रदेशप्रमाण है, उसमें भी उसके मूर्तिक अचेतन स्पर्श-रसादि अनन्तगुण ठसाठस भरे हैं। संख्यामें जितने अनन्तगुण जीवके जीवमें हैं उतने ही संख्यामें अपने-अपने अनन्त गुण पुद्गलादि अन्य द्रव्योंमें हैं। आकाशका क्षेत्र सर्वव्यापी अर्थात् अनन्तप्रदेशी और पुद्गलपरमाणुका क्षेत्र मात्र एकप्रदेशी है, तथापि

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे दोनों द्रव्योंमें अपने-अपने अनन्त गुण विद्यमान हैं; इसलिये अनन्त गुणोंको निवासके लिये अनंत प्रदेशोंकी आवश्यकता नहीं है। जीवके असंख्यातप्रदेशी-मध्यम परिणामयुक्त—क्षेत्रमें ही ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं।

'तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है?'

असंख्यात प्रदेशी तेरे द्रव्यमें ऐसे ज्ञान, शान्ति एवं आनन्दादि अनंत निधान ठसोठस भरे हैं, तो फिर तू अपने द्रव्यस्वभावसे च्युत होकर बाहर किसलिये जाता है? क्या बाहरसे कुछ ज्ञान, शान्ति या सुख प्राप्त होगा? क्या देव-शास्त्र-गुरु दे देंगे? अरे! रागकी मन्दताके क्षणिक विभावपरिणाम भी क्या सच्ची और शाश्वत शान्ति दे देंगे? जो भी यथार्थ सुख-शान्ति प्राप्त होते हैं वे अंतरनिधानमेंसे प्राप्त होते हैं, बाहरसे या बहिर्लक्षी मन्दकषायसे सच्चा सुख या शान्ति आदि कुछ प्राप्त नहीं होता; तो फिर तू बाहर किसलिये जाता है?

'तुझमें है उसे देख न! तुझमें क्या कमी है?'

चिन्मय गुणनिधानस्वरूप तेरे द्रव्यस्वभावमें ज्ञान, शान्ति, समाधि, सुखादि जो सब भरा पड़ा है उसे देख न! तुझमें क्या कमी है कि जो तू बाहर लेने जाता है?

'तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है।'

दृष्टिके आश्रयभूत भगवान ज्ञायक आत्मामें परिपूर्ण आनन्द, परिपूर्ण ज्ञान, परिपूर्ण शान्ति, परिपूर्ण वीर्य, परिपूर्ण प्रभुता आदि सब कुछ—अनन्तानन्त सामर्थ्यपूर्ण गुण-भरपूर भरे हैं; परन्तु अंतरमें उनका विश्वास आना, परिपूर्ण अभेद स्वभावपर दृष्टि पड़ना कठिन है। वस्तुस्वभावमें-ज्ञायकभावमें-पूर्ण सुख तथा पूर्ण ज्ञान—ऐसे मुख्य दो प्रधान गुणोंका उल्लेख करके, उनके अविनाभावी सर्व गुण हैं ऐसा कहा। शास्त्रमें आचार्य भी ज्ञान और सुख—इन दो मुख्य गुणोंको लेकर कथन करते हैं। 'सहज चिदानन्द'में भी चिद् (ज्ञान) और आनन्द यह दो गुण लिये हैं। तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें प्रायः प्रत्येक श्लोकमें 'चिद्रूपोऽहम्' तथा श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने 'ज्ञानानन्द' ऐसे दोनों गुण साथ लिये हैं। दो गुणोंको मुख्य करके कथन किया जाता है तथापि आत्मवस्तुमें पूर्ण स्वच्छत्व, पूर्ण स्वस्थत्व, पूर्ण जीवत्व, पूर्ण चितिशक्ति, पूर्ण सुखशक्ति, पूर्ण दृष्टाशक्ति, पूर्ण विभुत्वशक्ति आदि सब कुछ—अनंतगुण-विद्यमान हैं।

'सुख और ज्ञान तो क्या, परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है।'

भगवान चैतन्य पदार्थ अपने गुणवैभवसे ऐसा ठसाठस भरा है कि ज्ञान और सुख तो क्या, परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है। आनन्द, शान्ति या समाधि कुछ भी बाहरसे नहीं लाना है। कर्ता, कर्म या साधन आदि कुछ भी बाहर खोजनेकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आवश्यकता नहीं है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, उपादान तथा अधिकरणस्वरूप कारकशक्तियोंसे सम्पन्न आत्मा है। अपने ज्ञान एवं आनन्दादि निर्मल गुण–पर्यायोंका दान स्वयं अपनेको ही दे ऐसी सम्प्रदान नामकी शक्ति आत्मामें है, इसलिये कुछ भी–पर्यायमें प्रगट होनेवाली निर्मलताएँ—कहींसे लाना पड़ें ऐसा नहीं है। आहार या पैसा आदि बाह्य वस्तुओंका लेन–देन तो आत्मामें है ही नहीं। यहाँ तो आत्मऋद्धिकी बात है। तू स्वयं अपनेमेंसे अपनी ऋद्धि अपनेको दे ऐसी सम्प्रदान शक्ति तुझमें है प्रभु! स्वयं पात्र और स्वयं दाता—ऐसा आत्माका सहज गुण है।

द्रव्यसामान्य पर्यायका दाता नहीं है—ऐसी बात अन्यत्र आती है वह भी सत्य है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि—द्रव्य–पर्यायस्वरूप आत्मा स्वयं ध्रुवस्वभावके आलम्बनसे प्रगट हुई निर्मलताका दान स्वयं अपनेको ही देता है, क्योंकि उसमें सम्प्रदानशक्ति है। स्वयं लेनेवाला और स्वयं देनेवाला है। यद्यपि ध्रौव्य तो सदा एकरूप रहता है, उसमेंसे कुछ निकलता नहीं है, तथापि उसके आलम्बनसे आत्माको पर्याय–अपेक्षासे निर्मलता परिणमित होती है, इसलिये उसमें से निर्मलता आयी ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न :—बाहर कुछ भी लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है; तो क्या आत्माके भीतर अनाज है? अनाजके बिना खाना क्या?

उत्तर :—हाँ, आत्मामें अतीन्द्रिय आनन्दका अनाज है। वहाँ शान्तिके निधान हैं। ज्ञान, आनन्द और शान्ति ही जीवका भोजन है, गेहूँ या जुआर–बाजराका भोजन तो जड़, अचेतन, मिट्टी है, उसका कर्ता या भोक्ता आत्मा नहीं है। आत्मा स्वरूपानन्दका कर्ता और भोक्ता है, जड़का तथा रागका तो स्वभावसे ही अकर्ता एवं अभोक्ता है। इसलिये प्रभु! बाहर कुछ भी लेने जाना पड़े ऐसा तेरी वस्तुमें नहीं है।

''एक बार तू अंदरमें प्रवेश कर, सब अंतरमें है।''

पूर्ण अकषाय स्वभावसे भरा हुआ, पूर्ण वीतरागी गुणोंसे सदा भरपूर, निज ज्ञायक भगवान आत्मामें तू एक बार अंदर दृष्टि कर, अंदर स्वभावमें प्रवेश कर और उसमें देख कि–यह द्रव्य स्वभावमें अंदरमें क्या क्या भरा पड़ा है? अंतरमें प्रवेश करके देखेगा तो तुम्हें ख्याल आयेगा कि—अहा! मेरेमें अंदर सब कुछ भरा हुआ है। ज्ञान, आनंद, शांति, स्वच्छता, समाधि वगैरह जो कुछ चाहिये वह सभी—अनंत गुण भंडार द्रव्यस्वभावमें परिपूर्ण भरे पड़े हैं; बाहरमें कुछ भी लेने जाना नहीं है।

भीतर आत्मस्वभावमें सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि अनन्त गुण भरे पड़े हैं, परन्तु बाहरका अन्य कुछ नहीं है; शरीर, वाणी, मन अथवा उनकी क्रिया तो आत्मामें है ही नहीं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु दया–दान या विषय–विकारके विकल्प–शुभाशुभ विभाव–भी आत्मस्वभावमें नहीं है, अरे! आत्माकी एक समयकी अपूर्ण पूर्ण पर्याय भी उसके ध्रुव टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावमें प्रविष्ट नहीं होती। साधक पर्याय जिसके लक्षसे–आश्रयसे–आलम्बनसे होती है, वह निज द्रव्यसामान्य तो गुण सामर्थ्यसे त्रिकाल परिपूर्ण है। जीवको जो केवलज्ञानकी पूर्ण पर्याय प्रगट होती है वह, भीतर द्रव्यस्वभावमें जो ज्ञानशक्ति परिपूर्ण भरी पड़ी है उसके आश्रयसे होती है, मोक्षमार्गरूप अपूर्ण पर्यायके आश्रयसे नहीं। त्रैकालिक पूर्णके आश्रयसे पर्यायमें पूर्णता प्रगट होती है, अपूर्णके आश्रयसे—लक्षसे पूर्णता प्रगट नहीं होती। ३७६वें बोलमें आ गया है न! कि—'पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करनेसे, उसीके आलम्बनसे, पूर्णता प्रगट होती है......ज्ञानीको उस आलम्बनसे प्रगट होनेवाली औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिकभावरूप पर्यायोंका वेदन होता है, परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभावका भी आश्रय या आलम्बन नहीं किया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेष भाव है। सामान्यके आश्रयसे ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिये सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्यकी ओर दृष्टि लगा, उसीके ऊपर निरन्तर जोर रख, उसीकी ओर उपयोग जाय ऐसा कर।

यहाँ कहते हैं—तू भीतर आनन्ददायक द्रव्यस्वभावमें प्रवेश कर, सब भीतर है। सुखकी, सन्तोषकी, शान्तिकी, निरोगताकी आवश्यकता हो तो वह सब भीतर–अंतरमें है। आत्मा निरोगतासे भरपूर है। आत्माकी निरोगता हो! जड़ शरीरकी निरोगताका आत्माको क्या काम है? अरे! शरीरका क्या भरोसा? क्षणमें छूट जायगा, कमला (पीलिया)में से कमली होकर शरीर छूट जाता है। भाई! शरीरको छूटनेका जो काल निश्चित है वह एक समयमात्र भी आगे–पीछे नहीं हटाया जा सकता। उसे सुरक्षित रखनेकी दृष्टि मत रख; भीतर आत्मस्वभावमें स्वयं और स्वतः सुरक्षित ज्ञान एवं आनन्द आदि शाश्वत गुण विद्यमान हैं वहाँ दृष्टि रख न! स्वयं सुरक्षित गुणोंके अवलम्बनसे तुझे सुख, शान्ति, समाधि आदि सब पर्यायमें प्रगट होंगे।

'अंतरमें गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधानके प्रगट अंशको वेदकर तू तृप्त हो जायगा।'

भीतर गहरे–गहरे प्रवेश करने पर बहिनश्रीके वचनामृतमें 'गहरे–गहरे' शब्द बहुत आता है। शुभाशुभ विभाव या मतिज्ञानादि पर्यायें ऊपर–ऊपर—उथली(छीछरी) हैं; उन पर्यायोंके समीप, उन दशाओंके पीछे, अंतरमें जो टंकोत्कीर्ण शुद्ध ध्रुवतल, गुणसमृद्धिसे भरपूर द्रव्य सामान्यरूप कस पड़ा है, उसे बहिन 'गहरा' शब्दसे कहना चाहती हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! भीतर गहरे-गहरे प्रवेश करने पर, अंतरमें ज्ञायक ध्रुव धरातलका यथार्थ दर्शन होनेसे, तुझे उसमें भरे हुए तेरे सहज ज्ञान तथा सहज आनन्दादि अनंत गुणनिधान दिखायी देंगे और 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—इस न्यायसे उस सर्वगुणनिधानके यथासंभव प्रगट अंशका वेदन करके—आस्वादन करके तू तृप्त हो जायगा।

भगवान आत्मामें एक प्रभुत्व अर्थात् ऐश्वर्य नामकी शक्ति है। उस शक्तिके कारण आत्माके बड़प्पनका पार नहीं है। वह बड़प्पन आत्मस्वभावकी गहरायीमें प्रवेश करनेसे प्राप्त होगा। लोग बाहरी बड़प्पन-शासनकी पदवी-के लिये चुनावमें अधिक मत प्राप्त करनेके लिये आकाश-पाताल एक करते हैं, भिखारी 'मत' की भीख माँगते हैं, परन्तु प्रभु! तेरे अंतरमें कहाँ कम 'बड़प्पन' है जो तू बाहरकी भीख माँगता रहता है? तेरा शुद्धात्मद्रव्य ऐश्वर्यसे—बड़प्पनसे भरपूर भरा होनेसे, उसके समस्त गुण ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं। ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, स्वच्छत्वगुण, जीवत्वगुण, वीर्यगुण आदि सर्व गुण ऐश्वर्यसे शोभित हो रहे हैं। तू वहाँ दृष्टि कर न! उन पर दृष्टि करनेसे, सम्यग्दर्शन होने पर तुझे अनन्तानन्त बड़प्पनसे भरपूर तेरे ज्ञानादि निधान दृष्टिगोचर होंगे और उनके प्रगट अंशका स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई निर्मलताके व्यक्त अंशको-अनुभव करके तू कृतार्थ हो जायगा।

लोग वीतरागदेवके जैनधर्मका अन्य धर्मोंके साथ समन्वय करना चाहते हैं। भाई! कहाँ सनातन सत्य वीतराग जैनधर्म और कहाँ कल्पित एवं रागपोषक अन्य धर्म? जगतमें सत्य और कल्पित दोनों 'हैं'-अपेक्षासे बराबर है, परन्तु 'दोनों सच्चे हैं' यह बात किंचित् भी सत्य नहीं। वीतराग सर्वज्ञ जैनपरमेश्वरने आत्माके निधान अंतरमें देखे और कहा कि तू वहाँ देख, अंतर्स्वरूपमें गहरे उतर तो तुझे अपने वे निधान दिखायी देंगे और उनका सम्यक्दर्शन होने पर उन सर्व निधानोंके व्यक्त-अंशके संवेदन द्वारा तू तृप्त होगा।

रागमें खड़े रहकर अंतरके निधान दृष्टिगोचर नहीं होंगे; प्रभु! तेरी अतीन्द्रिय वीतरागी महिमाका कोई पार नहीं है; वह बाह्य निमित्तोंसे या अभ्यन्तर रागके विकल्पोंसे ज्ञात हो ऐसी नहीं है, मात्र निज आत्मावलम्बी शुद्ध परिणति और शुद्धोपयोगमें-'आत्मानुभवैकगम्यमहिमा' मात्र स्वानुभवमें—ज्ञात हो ऐसा है। अहा! ऐसा है वीतरागमार्ग! लोग बेचारे जूनी रूढ़िके आदमी, उन्हें यह समझना कठिन लगेगा!

अरेरे! यह जीव अनन्तकालसे-अनादिकालसे-अंतरके चैतन्यनिधानको भूलकर बाह्यमें भटक-भटककर मर गया है। जीवस्वभावसे शाश्वत है, वह कहाँ मरता है? परन्तु अपने आनन्दनिधान चैतन्यस्वभावका अनादिसे विस्मरण करके, उसकी शुद्धसत्ताको नहिवत् मानकर, उसे मरणासन्न कर दिया है। अनन्तगुण-निधान निज शुद्ध 'अस्तित्व'का अनादर करके, दया-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दानादिके क्षणिक रागको अपना 'अस्तित्व' मानकर अपने चिदानन्दभगवानको मरणासन्न कर दिया है। 'शुभरागसे आत्माको लाभ–धर्म होगा'—इसप्रकार रागको बड़प्पन देनेकी जिस भ्रान्तिका सेवन (स्वयं अनादिसे) किया है वह, परम गुरुका उपदेश सुननेसे दूर होती है। परमगुरु श्री तीर्थंकर अरिहंतदेव तथा अपरगुरु श्री गणधर देवसे लेकर अपने परमोपकारी प्रत्यक्ष गुरु उपदेशमें ऐसा कहते हैं कि—तेरे आत्मामें ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त निधान खचाखच भरे हैं उन पर दृष्टि लगा, उनका अंतरसे आदर कर, उसीको उपादेय मान। उपदेशके निमित्तसे निधानभरपूर स्वभाव लक्षमें आया; पश्चात् उपदेशका लक्ष छोड़कर अंतरमें गुणनिधान स्वभावका आश्रय किया, तब अनादिकी जो भ्रान्ति दूर हुई उसे 'गुरुके उपदेशसे दूर हुई'—ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है; वास्तवमें तो स्वयं अपने स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा अंतर स्वभावमें गहराई तक उतरनेसे भ्रान्ति दूर होकर सम्यग्दर्शन हुआ है।

प्रभु! ज्ञायकस्वभावमें गहरायी तक उतरनेसे अंतरमें चैतन्यस्वभावका यथार्थ भावभासन होने पर सम्यग्दर्शन होने पर तेरे निधान तुझे दृष्टिगोचर होंगे, देव–शास्त्र–गुरुकी ओरके शुभरागसे अथवा व्यवहारश्रद्धाके विकल्पोंसे–नवतत्त्वके विकल्पोंसे (तेरे निधान) दृष्टिगोचर नहीं होंगे। वह निधानपुंज अर्थात् शुद्ध परमभाव भीतर स्वभावका अवलम्बन लेनेवाली शुद्धपरिणतिसे दृष्टिगोचर होगा; वह परमभाव कोई अशुद्धतत्त्व नहीं है कि जो व्यवहाररूप अशुद्ध परिणतिसे दिखायी दे। अहा! ऐसा तत्त्व है, बातमें कुछ अंतर पड़े तो सम्पूर्ण तत्त्व बदल जाय ऐसा है।

भीतर चैतन्यस्वभावमें गहरे उतरने पर सम्यग्दर्शन होनेसे तुझे अपने जो ज्ञान–आनन्दादि अनुपमनिधान दृष्टिगोचर होंगे उन सर्व निधानोंके प्रगट अंशका वेदन–आस्वादन करके तू तृप्त हो जायगा। उस निधानके प्रगट अंशका आस्वादन करके तुझे कोई ऐसी अद्भुत तृप्ति होगी कि जिस सम्बन्धमें किसी अन्यसे पूछने नहीं जाना पड़ेगा; तू स्वयं उसका रसास्वादन करेगा–अनुभव करेगा। उस अनुपम वेदनके समक्ष रागका तथा व्यवहारका वेदन तुझे अत्यन्त तुच्छ और दुःखरूप लगेगा।

'पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना जिससे पूर्ण निधानका भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त–तृप्त रहेगा।'

प्रभु! ज्ञायकस्वभावकी ओरका झुकाव जो प्रारम्भ हो गया है, उसे इसीप्रकार सतत बनाये रखना। अनादिसे जो झुकाव लक्ष्मी, शरीरादि बाह्य निमित्त, राग और पर्यायकी ओर था उसे बदलकर ज्ञानादि अनंत निधानके पुंजस्वरूप निज चैतन्यकी ओर मोड़ दिया। पर और विभावकी ओरकी वृत्तिसे मात्र दुःख था, अब प्रभु! तू अपने अंतरनिधानको देखेगा तो तुझे अपनी वर्तमान शुद्ध परिणतिमें किसी अनुपम आनन्दका वेदन होगा, शुद्ध परिणतिमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकालशुद्ध परमभावका आलम्बन होता है, वेदन नहीं; वेदन तो परमभावके आश्रयसे परिणमित शुद्ध परिणतिका होता है। आश्रय द्रव्यस्वभावका और रसास्वादन-वेदन निर्मलदशाका-स्वानुभूतिका होता है।

स्वभावोन्मुख होनेसे जो दशा प्रगट हुई, उसके आस्वादसे जो अनुपम तृप्ति हुई, वह दशा सतत बनाये रखनेके लिये पुरुषार्थ करते ही रहना। यदि पिछड़ गया तो भगवान ज्ञायक आत्मा फिर हाथ नहीं आयगा। यदि बाहरी मान-सन्मान और प्रतिष्ठामें घुस गया तो बस, हो चुका। तू स्वभावके पुरुषार्थसे च्युत हो गया। यहाँ तो बहिन कहती हैं कि—स्वभावको अनुभूतिमें प्राप्त करनेके पश्चात् भी पुरुषार्थ बनाये ही रखना जिससे पर्यायमें पूर्ण निधानका भोक्ता होकर तू सदाकाल परमतृप्त-तृप्त रहेगा।

अंतरमें विद्यमान शक्तिभूत ज्ञानादि सर्व निधानको देख तो उसके प्रगट अंशका वेदन करके तू तृप्त होगा, पश्चात् उस स्वभावोन्मुखताके झुकावरूप आश्रय बनाये ही रखना जिससे तू पूर्ण निधानका भोक्ता होगा। त्रिकालशुद्ध स्वभावकी अपेक्षासे निधान तो जो पूर्ण है वह सदा है ही; परन्तु पर्यायमें उसका वेदन अपूर्ण है, इसलिये पुरुषार्थ सतत बनाये ही रखना, जिससे तू पूर्ण निधानका भोक्ता होगा। 'तू पूर्ण निधानका भोक्ता होगा।' अर्थात् परिपूर्ण पुरुषार्थ द्वारा ध्रुव पूर्ण निधानका पूर्ण आश्रय करनेसे तू प्रगट होनेवाली परिपूर्ण पर्यायोंका भोक्ता होगा। ध्रुवस्वभावके भोक्तृत्वपनेका-वेदन नहीं होता, ज्ञान होता है; वेदन तो पर्यायका होता है, परन्तु ध्रुवस्वभावका आश्रय करके जो तृप्तिरूप वेदन हो उसे ध्रुवस्वभावका-पूर्णनिधानका वेदन भी कहा जाता है।

आगे ४३०वें बोलमें निर्विकल्पदशा होने पर काहेका वेदन होता है? द्रव्यका या पर्यायका?—इस प्रश्नका उत्तर देते हुए बहिनने कहा है कि :—दृष्टि तो ध्रुवस्वभावकी ही होती है; वेदन होता है आनन्दादि पर्यायोंका। स्वभावतः द्रव्य तो अनादि-अनन्त है जो बदलता नहीं है। उस पर दृष्टि करनेसे, उसका ध्यान करनेसे, अपनी विभूतिका प्रगट अनुभव होता है।

तथा ३७८वें बोलमें त्रिपटी दशाकी बात करते हुए कहा है न! कि—साधककी दशा एकसाथ त्रिपटी (तीन विशेषताओंवाली) है :—एक तो, उसे ज्ञायकका आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्यके प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांशकी भी उपेक्षा होती है; दूसरे, शुद्ध पर्यायांशका वेदन सुखरूप होता है; और तीसरे, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावोंका समावेश है, उसका-दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदन होता है।

प्रश्न :—व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावोंका वेदन क्या ज्ञानीको दुःखरूप होता है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—भाई! वे शुभभाव राग हैं, विकल्प हैं और दुःखरूप हैं। कोई कहे कि—उन भावोंसे शुद्धभावमें जायँगे—धर्म होगा; तो कहते हैं कि अरे प्रभु! यह तू क्या कहता है? भाई शुभरागको धर्म और धर्मका कारण मानकर तू कहाँ जायगा? उससे शुद्ध ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा प्राप्त नहीं होगा, चार गतियोंमें परिभ्रमण नहीं रुकेगा। दुनिया वाह! वाह! कहकर तेरी पीठ थपथपायेगी और तुझे भी ऐसा लगेगा कि 'मैंने कुछ किया', परन्तु उस अज्ञानभावका फल आयेगा तब असह्य होगा।

यहाँ पहले ऐसा कहा कि—'उस सर्व निधानके प्रगट अंशका वेदन करके तू तृप्त होगा' और फिर कहा कि 'पुरुषार्थ बनाये रखना जिससे पूर्ण निधानका भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त–तृप्त रहेगा।' अहा! अनन्तानन्त ज्ञानादि गुणवैभवका स्वामित्व जिसमें भरपूर भरा हुआ है, ऐसे निज परमात्म–बादशाहको तू अंतरमें गहरे उतरकर–शुद्ध परिणतिसे—देख, पर्यायमें उसके प्रगट अंशका वेदन कर। उस शान्ति एवं आनन्दस्वरूप प्रगट अंशका वेदन करके तू तृप्त होगा। पश्चात् भी स्वभावकी ओर स्थिरताकी वृत्ति बनाये रखना, जिससे पर्यायमें पूर्णता प्रगट होने पर पूर्ण निधानका भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त–तृप्त रहेगा। अरे! यह द्रव्य और पर्यायकी–स्वभाव और साधनाकी–बातको लोग, समझ नहीं पाते इसलिये 'एकान्त' बतलाते हैं। भाई! इस गहन बातको तू समझ नहीं सकता, इसलिये कहीं श्रद्धामें गड़बड़ी नहीं चलेगी।

चरणानुयोगके शास्त्रोंमें व्रतादिके शुभभावको मोक्षका साधन कहा है, परन्तु भाई! यह तो व्यवहारनयका कथन है। शुभराग तो समस्त दुःखमय तथा बंधका कारण है। निश्चयनय तो व्यवहारभावोंका प्रतिषेधक है। 'व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनयहिसे, मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ति करें।' इसलिये अंतरमें गहरे उतरकर निश्चय ज्ञायक स्वभावको देख। अरेरे! देहावसानके समय, भाई! तेरा पुरुषार्थ स्वोन्मुख नहीं होगा तो तू क्या करेगा? बाहरी ज्ञान कुछ भी काम नहीं आयगा। बाहरसे तृप्ति नहीं होगी, यथार्थ एवं स्थायी तृप्तिके लिये अंतरका पुरुषार्थ ही काम आयगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१५४

दिनांक १८-११-७८

वचनामृत–३८५

जीवने अनन्त कालमें अनन्त बार सब कुछ किया परन्तु आत्माको नहीं पहिचाना। देव–गुरु क्या कहते हैं वह बराबर जिज्ञासासे सुनकर, विचार करके, यदि आत्माकी ठोस भूमि जो आत्म–अस्तित्व उसे ख्यालमें लेकर निजस्वरूपमें लीनता की जाय तो आत्मा पहिचाननेमें आये—आत्माकी प्राप्ति हो। इसके सिवा बाहरसे जितने मिथ्या प्रयत्न किये जायँ वे सब भूसा कूटनेके बराबर हैं॥३८५॥

'जीवने अनन्तकालमें अनन्तबार सब कुछ किया परन्तु आत्माको नहीं पहिचाना।'

'जीवने सब कुछ किया' इसका अर्थ क्या? व्यवहार श्रद्धाके और व्रत–तप–भक्ति आदिके शुभभाव तथा विषय–कषायके अशुभ भाव—सब जीवने किया। कब और कितनी बार? चार गतिमें परिभ्रमण करते हुए अनादिकालसे अनन्तबार शुभाशुभ भाव और बहिर्लक्षी ज्ञान किया; परन्तु समस्त शुभाशुभ भाव तथा बाह्य ज्ञातृत्वसे भिन्न निज आत्माको–अपने शुद्ध अस्तित्वमय प्रभुको–नहीं जाना, अपने शुद्ध चैतन्यपिण्डकी ओर दृष्टि नहीं की।

'देव–गुरु क्या कहते हैं वह बराबर जिज्ञासासे सुनकर, विचार करके, यदि आत्माकी ठोस भूमि जो आत्म–अस्तित्व उसे ख्यालमें लेकर निज स्वरूपमें लीनता की जाय तो आत्मा पहिचाननेमें आये–आत्माकी प्राप्ति हो।'

वीतराग देव–गुरु आत्माके सहज शुद्ध स्वरूपका कैसा कथन करते हैं, वह बराबर ध्यान देकर अंतरकी जिज्ञासापूर्वक नहीं सुना; कदाचित् भाग्ययोगसे श्रवणका सुयोग मिला, तो उसका गहरायीसे विचार नहीं किया; इसलिये आत्माकी सच्ची पहिचान नहीं हुई। अब, यदि देव–गुरुका उपदेश अंतरंग जिज्ञासापूर्वक बराबर श्रवण करके उसका विचार करे तो निजज्ञायक आत्माकी ठोस ध्रुवभूमि–सच्चा विज्ञानघन, नित्य एकरूप रहनेवाला वज्रोपम मात्र ज्ञानपिण्ड, जिसमें परिणमती पर्यायोंका प्रवेश नहीं है और जो स्वयं कभी पर्यायमें नहीं आता—पर्यायरूप नहीं होता, ऐसा आनन्द एवं शान्तिका ध्रुव धरातल—समझमें आये; और उस ध्रुव ठोस भूमिको—निज शुद्ध अस्तित्वको–बराबर समझकर निज स्वरूपमें लीनता की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाय तो आत्माकी यथार्थ पहिचान हो–उसकी सानुभव प्राप्ति हो। देव–गुरुका कहना है कि–बाहरकी दूसरी लाख बातें छोड़कर अंतरमें ध्रुव ठोस चैतन्यभगवानको—निज ज्ञायकदेवको–देख, उस ओर जा। छहढालामें कहा है न! कि—

लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जग दन्द–फन्द नित आतम ध्याओ।

'ध्याओ' वह पर्याय है, किसे ध्याना? कि—जिसका त्रिकालशुद्ध अस्तित्व–सत्ता महान है ऐसे निज ज्ञायक महाप्रभुको। देव–गुरुकी वाणीसे–उसके प्रत्यक्ष श्रवणसे–समझकर निज स्वरूपमें लीनता की जाय तो आत्माकी पहिचान हो। पहले समझे–प्रतीति करे तो लीनता हो सके न? त्रिकाल ध्रुव झिलमिलाती चैतन्यज्योतिको समझे तो उसमें लीनता करेगा। आता है न! कि—'अंते थाये निजस्वरूपमाँ लीन जो।' आत्माकी ठोस भूमिको—निज शुद्ध अस्तित्वको–जानकर निजस्वरूपमें लीनता करे तो आत्माकी पहिचान हो–आत्माकी प्राप्ति हो।

देव–गुरुके उपदेशमें ऐसा आया कि—यह आत्मा वीतरागमूर्ति नित्यानन्द चेतन ध्रुव वस्तु है। आत्मा अपने ध्रुवस्वरूपको जानता है अपनी पर्याय द्वारा; क्योंकि जाननेकी अर्थ क्रिया पर्यायमें होती है ध्रौव्यांशमें नहीं। आत्मा अपनी पर्याय द्वारा क्या जानता है? कि—आत्माकी असली ठोस भूमि—चैतन्यमय शुद्ध ही मेरा मूल सहज स्वरूप है। अपने ज्ञानानन्द शुद्ध अस्तित्वको लक्षमें लेकर उसमें लीनता करे तो अनुभूतिमें आत्माकी प्राप्ति हो। अहा! इस एक बोलमें समस्त सिद्धान्तका सार भर दिया है। भाषा अति संक्षिप्त, परन्तु है इसमें सिद्धान्तका सार। जिसने ध्रुवको धारण कर रखा है, ऐसी चैतन्यधातुके सहज शुद्ध अस्तित्वको समझकर उसमें लीनता करे तो आत्माकी पहिचान–प्राप्ति हो।

'इसके सिवा बाहरसे जितने मिथ्या प्रयत्न किये जायँ वे सब भूसा कूटनेके समान हैं।'

अहा! इसप्रकारसे शास्त्र पढ़ेंगे, भगवान द्वारा कही गई दया, दान, व्रत, तप और भक्ति आदि क्रियाएँ करेंगे, आगमानुसार अट्ठाईस मूल गुणोंका पालन करेंगे, यह करेंगे–वह करेंगे, परन्तु भाई! अंतरमें आत्माकी यथार्थ प्रतीति–पहिचानके बिना यह सब व्यर्थकी माथापच्ची है। आत्मज्ञानशून्य बाह्य ज्ञातृत्व और क्रियाकाण्डकी जितनी उछलकूद की जाय वह सब कणरहित भूसा कूटनेके समान है—आत्महितके लिये सब निरर्थक है। भीतर कण तो ज्ञानानन्दमय आत्म–अस्तित्व है; उसे बराबर समझकर, प्रतीति करे तो आत्माकी प्राप्ति हो। चैतन्य.....चैतन्य......चैतन्य, ज्ञायक......ज्ञायक.....ज्ञायक—ऐसी जो अपनी असली–ठोस भूमि उसकी यथार्थ पहिचान करके उसमें लीनता करेगा तो तुझे निज शुद्धात्मतत्त्वकी अनुभूति होगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! बहिनकी यह पुस्तक बहुत ही अच्छी, बहुत ही अच्छी!! इस एक ही पैरेमें सब विधि आ गई है। देव-गुरुका क्या कहना है-यह बात भी इसमें आ गई है। देव-गुरु और चारों अनुयोगका एक ही कहना है कि—अपनी ध्रुव चैतन्य धातुको—आत्माके शुद्ध अस्तित्वको बराबर समझकर उसमें लीनता कर तो आत्मा जाननेमें आयगा—आत्माकी अनुभूति होगी। देव-गुरुने मार्गकी समझ दी, परन्तु एकाग्र तो स्वयंको होना है न? श्रद्धा, ज्ञान और लीनता—यह तीनों मिलकर मार्ग है न? ध्रुव ज्ञायकका श्रद्धामें आश्रय लेकर, उसका ज्ञान करके, उसके स्वरूपमें आसीन-स्थिर होना ही सच्ची उदासीनता अर्थात् आत्मप्राप्तिका सच्चा मार्ग है; उसके सिवा अन्य सब—शास्त्रोंका बहिर्लक्षी पठन, महाव्रत-समिति आदिका पालन, उपसर्ग परिषह सहन करना, वनमें रहना आदि—बाह्यमें उछलकूद करने जैसा है, वह सब कण रहित भूसा कूटनेके समान व्यर्थ है; उसमें किंचित् आत्मलाभ नहीं है।

❋

वचनामृत-३८६

बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं, ज्ञान मार्ग बतलाता है। मोक्षके मार्गका प्रारम्भ सच्ची समझसे होता है, क्रियासे नहीं। इसलिये प्रत्यक्ष गुरुका उपदेश और परमागमका प्रयोजनभूत ज्ञान मार्गप्राप्तिके प्रबल निमित्त हैं। चैतन्यका स्पर्श करके निकलती हुई वाणी मुमुक्षुको हृदयमें उतर जाती है। आत्मस्पर्शी वाणी आती हो और जीव एकदम रुचिपूर्वक सुने तो सम्यक्त्वके निकट हो जाता है॥३८६॥

'बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं, ज्ञान मार्ग बतलाता है।'

शरीरसे बलवान लोग उपवासादि बाह्य क्रियाओंमें धर्म मानकर उनमें लग जाते हैं और बुद्धिके बलवान शास्त्रोंके बहिर्लक्षी अभ्यास, जानकारी आदिमें लग जाते हैं, परन्तु यह सब बाहरकी बातें हैं, वे कोई अंतरमें आत्मप्राप्तिका मार्ग नहीं बतलातीं, उन प्रसंगोंमें यदि कषायको क्षीण किया हो तो वह पुण्यबंधका कारण है, मोक्षका नहीं। अनादिसे जो अनजाना है ऐसा आत्मप्राप्तिका मार्ग तो आत्माकी सच्ची रुचिसे स्वोन्मुख हुआ ज्ञान बतलाता है, बाह्यक्रियाएँ अथवा बाहरी जानकारी नहीं।

व्रत, तप, परिषहसहन, आतापनयोग आदि बाह्य कठिन क्रियाएँ करे, प्रभुकी भक्तिमें ओतप्रोत हो जाय, जीवनभर शास्त्र पढ़ता रहे, किन्तु भाई! इन बहिर्लक्षी प्रवृत्तियोंमें धूल भी धर्म नहीं होगा। शरीरादि पर पदार्थोंसे भिन्न और शुभाशुभ विभावभावोंसे रहित आत्माको—जो कि एक टंकोत्कीर्ण शुद्ध ज्ञानानन्दमय चैतन्यधातु है उसे—अंतरमें यथार्थरूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ग्रहण करनेवाला जो स्वसन्मुख ज्ञान, उससे धर्म होता है, उससे आत्माकी प्राप्ति, मोक्षमार्ग तथा पूर्णानन्दकी उपलब्धिस्वरूप सिद्धि होती है। आत्माके ज्ञान बिना अज्ञानियोंको भी बाह्य ज्ञानका बहुत विकास होता है, किसी–किसीको तो विभंगज्ञान प्रगट होता है, उससे सात द्वीप और सात समुद्र, इन्द्रियोंकी सहायताके बिना, सीधे देखते हैं; परन्तु उससे क्या? भीतर परिणतिमें तो मिथ्यात्व भरा है, इसलिये वह बहिर्लक्षी ज्ञान फिर आवृत हो जायगा; अनुक्रमसे निगोदमें जाकर अक्षरके अनन्तवें भाग हो जानेवाला है।

बंध और मोक्ष—यह तो आत्माकी पर्याय है। आत्माके त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायकसामान्यमें यह दोनों पर्यायभेद नहीं हैं। ध्रुवसामान्यमें बंध–मोक्षके पर्याय भेद मानना वह भी एक मिथ्या अभिप्राय है। आत्माकी बंध–मोक्षरूप पर्यायोंकी ओरसे लक्ष उठाकर आत्माके त्रिकाल ध्रुवस्वरूपकी ओर लक्ष करके उसमें स्थिर हो, तो तुझे पर्यायमें, जो अनादिसे रागकी प्राप्ति थी, वह बदलकर पूर्णानन्दकन्द निज आत्माकी प्राप्ति होगी। भाई! बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं। ग्रीष्मकालमें दुर्धर आतापनयोग करे पौषमासमें भीषण सर्दी नंगे शरीरसे सहन करे, वर्षाऋतुमें पानीकी बौछार तथा शीतल पवनकी बाधाएँ सहन करे, परन्तु यह कोई कष्ट आत्मप्राप्तिका मार्ग बतलायें ऐसा नहीं है। आत्मप्राप्तिका मार्ग तो मात्र ज्ञायकस्वभावके सन्मुख हुआ ज्ञान ही बतलाता है। समस्त बाह्यविषयोंकी ओरसे रुचि हटाकर स्वसन्मुख ज्ञान द्वारा अंतरमें ज्ञायकका ग्रहण करे तो आत्मा प्राप्त होगा।

आत्माका असाधारण स्वभाव ज्ञान है। स्व और परका, स्वभावका तथा परभावका यथार्थ प्रकाशन करना–जानना वह ज्ञानका लक्षण है। स्व–परप्रकाशक ज्ञानस्वभावी निज भगवान आत्माके भिन्न शुद्ध अस्तित्वकी पहिचान हुई, प्रतीति हुई, निर्मल अनुभूति हुई तब ज्ञान, उसका स्वभाव स्व–पर प्रकाशक होनेसे, परपदार्थोंको अपने स्वरूपमें मिलाये बिना परज्ञेयरूपसे जानता है, परन्तु परको जानता है इसलिये 'यह पदार्थ ठीक है और यह अठीक है' ऐसा भेद करने नहीं बैठता। जगतके समस्त पदार्थोंमें प्रमेयत्वनामकी शक्ति है, इसलिये वे प्रमेय—ज्ञेयरूपमें प्रमाणका—ज्ञानका विषय होते हैं। जगतकी वस्तु तो अपने स्वरूपसे जो है सो है, उसमें 'यह अनुकूल और यह प्रतिकूल'—ऐसी कोई छाप–मुहर या गुण नहीं है; जीव, मात्र अपनी मोहवृत्तिसे पदार्थमें अच्छे–बुरेके भेदकी कल्पना करता है।

समयसारमें आता है न! कि–अनेक प्रकारके निन्दाके या स्तुतिके वचनरूपसे पुद्गल परिणमते हैं; उन्हें सुनकर कोई अज्ञानी जीव 'मुझसे कहा' ऐसा मानकर क्रोधित होते हैं तथा प्रसन्न होते हैं। निन्दा एवं स्तुतिके शब्द जड़–पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है। वे मात्र ज्ञानमें ज्ञेय हैं। वे स्व–पर प्रकाशनस्वभावी ज्ञानस्वरूप आत्मासे कुछ कहते नहीं हैं कि 'तू हमें जान'; और ज्ञानस्वभावी आत्मा भी अपने स्थानसे च्युत होकर उन्हें जाननेके लिये उनकी ओर नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाता। अपने स्व-परप्रकाशक ज्ञानस्वरूपसे ही जाननेवाले ऐसे आत्माको, अपने स्वभावसे ही प्रमेयरूपसे-ज्ञेयरूपसे परिणमते निन्दादिकके शब्द किंचित्‌मात्र विकार नहीं करते। ऐसा वस्तुस्वभाव है, तथापि मोही जीव निन्दा-प्रशंसादि परज्ञेयोंको अच्छा-बुरा मानकर राग-द्वेष करते हैं, वह अज्ञान है।

अहा! जिसे प्रतीति, ज्ञान एवं अनुभूतिमें ज्ञानमात्र निज आत्मा प्राप्त हुआ उसे निन्दा-प्रशंसा, शत्रु-मित्र, कंचन-काँच, सरोगता-निरोगतादि परज्ञेयोंमें ठीक-अठीकपना नहीं, परन्तु मात्र ज्ञेयपना भासित होता है। ज्ञेयभूत परपदार्थोंमें कोई अच्छा-बुरा नहीं है, तथापि उनमें जो ऐसे भेद करें वे मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी-मूढ़ हैं। स्व-परप्रकाशक स्वभाव होनेसे, ज्ञान स्वको तथा परको जैसे हैं वैसे जानता है, परन्तु 'यह अच्छा और यह बुरा', 'यह मेरा और यह तेरा'—ऐसे भेद ज्ञेयभूत उन वस्तुओंमें भी नहीं है और ऐसे भेद करना वह ज्ञानके स्वभावमें भी नहीं हैं। ज्ञान तो ठीक-अठीककी कल्पना रहित मात्र ज्ञाता है और विषयभूत पदार्थ अच्छे-बुरेके भेदरहित मात्र ज्ञेय हैं।

प्रश्न :—श्रीमद् राजचन्द्रजीने तो वाघ-सिंहके प्रतिकूल संयोगको 'परममित्रका प्राप्त हुआ संयोग जो'—ऐसा कहा है न?

उत्तर :—वह अपेक्षा अलग है। वास्तवमें तो वाघ-सिंह भी ज्ञानके मात्र ज्ञेय हैं। परन्तु साधक मुनिराजको शरीरके प्रति भी अत्यन्त निस्पृहता परिणमित हुई है। उन्हें जिस शरीरकी आवश्यकता नहीं है, उसे कोई ले जाय तो वह परम मित्र माना जायगा। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मुनिराजको शरीरके प्रति अठीक-बुद्धि और वाघ-सिंहके प्रति ठीक-बुद्धि है; शरीर और वाघ-सिंह मात्र ज्ञेय ही हैं।

अहा! जिसने आनन्दसागर वीतराग ध्रुव चैतन्यधातुको भीतरसे पकड़ लिया, उसे जगतमें अनुकूल-प्रतिकूल कहा जानेवाला सब ज्ञानके ज्ञेयरूपमें ज्ञात होता है। सम्यग्दर्शन होते ही इतना प्रतीति-अपेक्षाका समताभाव तो आता ही है। अस्थिरताके कारण जो अच्छे-बुरेका विषमभाव आये वह श्रद्धाका दोष नहीं है। आया कुछ समझमें? श्रद्धामें तो कोई परपदार्थ अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है, सब समान एकरूप ज्ञेय हैं; ज्ञानी सबको ज्ञेयरूपसे मात्र जानते ही हैं। ज्ञानीको दुनियाकी कुछ पड़ी नहीं है कि दुनिया क्या कहेगी? वे उसे जाननेमें नहीं रुकते। यहाँ कहते हैं कि व्रत, तपादि बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं; अंतरमें स्वोन्मुख हुआ ज्ञान मार्ग बतलाता है।

'मोक्षके मार्गका प्रारम्भ सच्ची समझमें होता है, क्रियासे नहीं।'

शरीर, वाणी, कर्मादि पर द्रव्य वह आत्मा नहीं, दया, दान या विषय-वासनाके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभाशुभभाव वह आत्माका मूलस्वभाव नहीं और प्रतिक्षण परिणमती पर्याय वह आत्माका सम्पूर्ण अस्तित्व नहीं—ऐसे परसे भिन्न और विभाव तथा पर्यायसे भी कथंचित् भिन्न ऐसे अपने त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायकको पकड़नेसे—अंतरमें उसका ग्रहण करनेसे—जो ज्ञान हुआ वह सच्ची समझ है। मोक्षके मार्गका प्रारम्भ अंतरंग सत्य प्रतीतिसे होता है, बाह्य क्रियाओंसे नहीं। चाहे जितने क्रियाकाण्ड करे, तत्सम्बन्धी चाहे जितने शुभभाव–शुभ विकल्प करे, परन्तु उससे सच्ची समझ या मोक्षमार्गका प्रारम्भ नहीं होता।

'अनुभवप्रकाश' तथा 'आत्मावलोकन' ग्रन्थोंमें जो साध्यसाधकके बोल हैं उनमें 'शुभभाव साधक और मोक्षसाध्य'—ऐसा आता है। उस कथनका मर्म न समझते इसलिये व्यवहारके आग्रही जीव उसमेंसे ऐसा पकड़ते हैं कि देखो! व्यवहारको अर्थात् शुभभावको शास्त्रोंमें मोक्षका साधन कहा है। परन्तु भाई! तू कहता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। शुभभाव अर्थात् रागभाव वीतरागताका—मोक्षका साधन कभी हो ही नहीं सकता। वहाँ जो बात है वह ज्ञानीके शुभभावकी बात है। ज्ञानीके शुभभावको मोक्षका साधन कहना वह व्यवहारनयका कथन है। उस कथनका सच्चा अर्थ ऐसा है कि आत्माश्रित जो मन्दशुद्धिके सद्भावमें ज्ञानीको हठरहित व्रत–तपादिके शुभभाव सहजरूपसे आते हैं, वह मन्द आत्मशुद्धि ही वास्तवमें परम्परासे मोक्षका सच्चा साधन है; तथापि उस मन्द शुद्धिके परम्परा साधनपनेका आरोप, साथ वर्तते हुए व्रतादि शुभभावोंमें व्यवहारनयसे किया जाता है।

समयसारमें भी आता है न! कि—"....सुनिश्चलरूपसे ग्रहण किये गये व्यवहार सम्यग्दर्शनचारित्रके पाकके प्रकर्षकी परम्परा द्वारा अनुक्रमसे स्वरूपमें आरोहण कराये जाने पर इस आत्माको, ...स्वयं साधकरूपसे परिणमित होता, तथा......स्वयं सिद्धरूपसे परिणमित ऐसा एक ही ज्ञानमात्र उपाय–उपेयभाव साधता है।" परन्तु उसका अर्थ क्या? कि—अंतरसे जिसे आत्माश्रित शुद्धताका ज्ञान और वेदन प्रगट हुआ है ऐसे ज्ञानीको भी शुद्धिकी मन्दताके कालमें व्यवहाररत्नत्रयस्वरूप शुभभाव आते हैं। उन शुभ भावोंसे क्रमशः विशेष शुद्धिरूपसे स्वरूपमें आरोहण होता है ऐसा कहना वह वास्तवमें व्यवहारजनित आरोपित कथन है; वास्तवमें तो व्यवहाररत्नत्रयके शुभभावके समय ज्ञानीको अंतरमें वर्तती आत्माश्रित मन्द शुद्धि ही प्रकर्षणाको पाकर क्रमशः विशेष शुद्धिरूप परिणमती है। अज्ञानीको तो स्वभावका आश्रय ही प्रगट नहीं हुआ है, इसलिये उसके शुभरागमें मोक्षके परम्परा–साधनका आरोप घटित नहीं हो सकता। ज्ञानीको शुद्ध स्वभावका आश्रय प्रगट हुआ है; उसको अव्रतादि परिणामोंके समय स्वभावका आश्रय अल्प है; व्रतादि शुभपरिणामोंके समय स्वभावके आश्रयमें वृद्धि हुई है, परन्तु वह वृद्धि शुभरागके कारण नहीं, किन्तु अंतरमें स्वभावके आश्रयसे हुई है। शुद्धोपयोगके कालमें स्वभावका आश्रय विशेष बढ़ा है। प्रत्येक ज्ञानीको सतत वर्तती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्ध परिणतिमें स्वभावका-ध्रुव ध्येयका आश्रय तो सदा होता ही है।

यह तो ३७८वें बोलमें त्रिपटीकी बातमें आ गया है न! कि—प्रत्येक साधक जीवको ध्रुव ध्येयका-ज्ञायक परमभावका—आश्रय तो सदा होता है। अविरति सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा देशविरति श्रावकको अंशतः स्थिरतामें वृद्धि हुई है, क्योंकि स्वभावका आश्रय विशेष हुआ है। वही आश्रय विशेष उग्र होने पर शुभाशुभसे रहित ऐसी शुद्धोपयोगरूप दशा परिणमती है। शुभभावसे शुद्धोपयोग होता है ऐसा तो है ही नहीं, परन्तु शुद्धोपयोगरूप पर्यायके आश्रयसे विशेष शुद्धोपयोगरूप दशा होती है ऐसा भी नहीं है; साधकदशाके आलम्बनभूत त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावके विशेष आश्रयसे ही शुद्धोपयोगरूप दशा प्रगट होती है और वृद्धि पाती है।

'पंचास्तिकाय संग्रह'में भी आता है कि—अनादिकालसे भेदवासित बुद्धि होनेके कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनयसे भिन्न साध्य-साधनभावका अवलम्बन लेकर सुगमरूपसे मोक्षमार्गकी प्रारम्भभूमिकाका सेवन करते हैं.....कर्तव्य, अकर्तव्य, कर्ता और कर्मरूप विभागोंके अवलोकन द्वारा जिन्हें कोमल उत्साह उल्लसित होता है, ऐसे वे प्राथमिक जीव धीरे-धीरे मोहमल्लको (रागादिको) उखाड़ते जाते हैं;.....आत्मासे भिन्न जिसके विषय हैं ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा जिसमें संस्कारोंका आरोपण होता जाता है ऐसे भिन्न-साध्यसाधनभाववाले अपने आत्मामें......थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके.....भगवान आत्मामें अपनेको स्थिर करते हुए, क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जानेसे परम वीतरागभावको प्राप्त करके साक्षात् मोक्षका अनुभव करते हैं।'—यह कथन भी व्यवहारनयकी प्रधानतासे है। 'धीरे-धीरे रागादिको उखाड़ते जाते हैं' और 'थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके'—यह विधि ज्ञानीको भेदरत्नत्रयरूप शुभरागसे नहीं, परन्तु अंतरमें स्वभावाश्रित जो मन्द शुद्धि है वह उसके, स्वभावके विशेष आश्रयसे, बढ़नेके कारण होती है। स्वभावपरिणति सहित रागकी मन्दताके समय ज्ञानीको, पहले (निचली दशामें) स्वभावका स्थिरता-अपेक्षासे जो आश्रय था उसकी अपेक्षा, अल्प आश्रय बढ़ता है, शुद्धोपयोग होने पर स्वभावके आश्रयमें विशेष वृद्धि होती है, और इसलिये उसे अंतरमें शान्तरस सतत बढ़ता जाता है। ऐसे वीतराग शान्तरसरूप मोक्षमार्गका प्रारम्भ सच्ची समझसे होता है, शुभराग और बाह्य क्रियासे नहीं।

'इसलिये प्रत्यक्ष गुरुका उपदेश और परमागमका प्रयोजनभूत ज्ञान मार्गप्राप्तिके प्रबल निमित्त हैं।'

आत्माकी सच्ची समझ, यथार्थ प्रतीति, मोक्षमार्ग आदिकी प्राप्तिमें आत्मज्ञानी प्रत्यक्ष गुरुका उपदेश प्रबल निमित्त है, परोक्ष पुरुषका नहीं। श्रीमद्ने कहा है न! कि—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;
ऐसा लक्ष हुए बिना, उगे न आत्मविचार।

यहाँ कहते हैं कि—प्रत्यक्ष ज्ञानी गुरुका तत्त्वोपदेश और समयसार, प्रवचनसार आदि परमागमोंका प्रयोजनभूत ज्ञान आत्मप्राप्तिमें बलवान निमित्त हैं। निमित्त हैं उपादान नहीं। उपादान तो, प्रत्यक्षज्ञानी गुरुके तत्त्वोपदेश तथा परमागमके शुद्धात्मलक्षी प्रयोजनभूत ज्ञान अनुसार, अंतरमें आत्मप्राप्तिके पुरुषार्थरूपसे परिणमित अपना आत्मा ही है। परमागमके प्रयोजनभूत ज्ञानका अर्थ क्या? कि—जो मोक्षमार्ग प्रगट होनेमें उपयोगी नहीं है, वह ज्ञान प्रयोजनभूत नहीं है। प्रत्यक्ष ज्ञानी गुरुका उपदेश और परमागमके अभ्याससे होनेवाला –जीवादि छह द्रव्य और उनकी सम्पूर्ण स्वतंत्रता, द्रव्य–गुण–पर्याय, नव तत्त्व, उपादान–निमित्त, निश्चय–व्यवहार, आत्माका शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि—प्रयोजनभूत विषयोंका ज्ञान मार्गप्राप्तिका प्रबल निमित्त है। 'प्रबल निमित्त' ऐसा सूचित करता है कि अन्य भी निमित्त हैं। जैसे कि—शास्त्रमें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें जिनबिम्बदर्शन, असह्य वेदना, देव–ऋद्धिदर्शन, जातिस्मरण, तीर्थंकर–कल्याणक–दर्शन, जिनेन्द्रमहिमा आदि अनेक निमित्तकारण कहे हैं; परन्तु प्रत्यक्ष गुरुका उपदेश और परमागमका प्रयोजनभूत ज्ञान मार्गप्राप्तिका बलवान निमित्त है।

'चैतन्यका स्पर्श करके निकलती हुई वाणी मुमुक्षुको हृदयमें उतर जाती है।'

'चैतन्यका स्पर्श करके निकलती वाणी'का अर्थ क्या? कि—अंतरमें शरीर, वाणी, कर्मादि परद्रव्यसे भिन्न और शुभाशुभ विभावभावोंसे रहित अपने त्रिकालशुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान आत्माका यथार्थ भेदविज्ञान होकर जो अतीन्द्रिय आनन्दयुक्त आत्मानुभव हो, उसका सम्बन्ध पाकर विकल्पकालमें तत्त्वकी जो वाणी निकले उसे चैतन्यस्पर्शी–आत्मस्पर्शी वाणी कहते हैं। स्वानुभवयुक्त उस वाणीमें निमित्तपनेका ऐसा अतिशय होता है कि आत्मार्थीको उसके भाव हृदयमें आरपार उतर जाते हैं, जिज्ञासुओंके हृदयको प्रभावित करते हैं। वाणी तो भाषा वर्गणारूप पुद्गलकी पर्याय है और ज्ञानानन्दमय स्वानुभव आत्माकी निर्मल पर्याय है; दोनों परस्पर अत्यन्त भिन्न और स्वतंत्र हैं, एक–दूसरेकी कर्ता नहीं हैं, तथापि तत्त्वोपदेशमें ज्ञानीके स्वानुभवयुक्त ज्ञान और विकल्पका निमित्तपना होनेसे उस वाणीको चैतन्यस्पर्शी अर्थात् आत्माका स्पर्श करके निकलती वाणी कहा जाता है। वास्तवमें तो विश्वका प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने अनन्त धर्मोंको चूमता है–स्पर्शता है, परन्तु परस्पर एक–दूसरेके धर्मको चूमता–स्पर्शता नहीं है। वस्तुका स्वरूप एक–दूसरेके धर्मको स्पर्श नहीं करता तथापि ज्ञानीके ज्ञानका तथा विकल्पका निमित्त पाकर स्वयमेव परिणमती आत्मसम्बन्धी वाणीको 'चैतन्यस्पर्शी' कहा जाता है। चैतन्यका स्पर्श करके निकलती वाणी मुमुक्षुके अंतरमें बैठ जाती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। किसे बैठती है? जो अंतरसे सच्चा मुमुक्षु, सच्चा जिज्ञासु हो उसे! सच्ची मुमुक्षुता होना वह श्रोताकी अपनी जिम्मेदारी है। उसे गुरुवाणीके भाव हृदयके आरपार उतर जाते हैं।

आज एक बेंकके मैनेजर कहते थे—'अहा! यह पुस्तक तो बहुत ही अच्छी है।' है भी वास्तवमें बड़ी अच्छी। जो भी पढ़ेगा, भले ही यह अन्यमती हो, परन्तु मध्यस्थ होकर पढ़ेगा तो उसे ऐसा लगेगा कि सचमुच अद्‌भुत पुस्तक है। ऐसी शैलीमें सहज ही आ गई है कि यह सबको अच्छी लगती है।

'आत्मस्पर्शी वाणी आती हो और जीव एकदम रुचिपूर्वक सुने तो सम्यक्त्व निकट हो जाता है।'

आत्मस्पर्शी वाणी सुननेसे सम्यक्त्व एकदम निकट हो जाता है, परन्तु मुख्य शर्त यह है कि अंतरसे एकदम रुचिपूर्वक श्रवण करना चाहिये। श्री पद्मनन्दि आचार्यदेवने कहा है न! कि—

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम् ॥

अहा! यह ज्ञानस्वरूप आत्मा क्या अद्‌भुत वस्तु है!—ऐसे अंतरंग प्रेमसे रुचिपूर्वक जिसने आत्माकी बात सुनी है वह भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अधिकारी बन जाता है। उसे अंतरसे आत्मा पोषाता है इसलिये वह अल्पकालमें सिद्धदशाका भाजन बन जायगा—मोक्षदशा प्राप्त कर लेगा। अहा! ऐसी बात है, परन्तु लोगोंको कठिन प्रतीत होती है। तीव्र अंतरंग रुचिपूर्वक आत्माकी यह बात सुने तो जीव अवश्य ही सम्यक्त्वके निकट आ जाय।

कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। आत्माका ज्ञानस्वभाव परको जानते हुए परका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। जिस प्रकार आँख बर्फ या अग्निकी क्रिया करनेमें समर्थ नहीं है वैसे ही......शुद्धस्वभावका ग्रहण करनेसे परद्रव्यका कर्तृत्व छूट जाता है। *—पूज्य गुरुदेवश्री*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१५५

दिनांक १९-११-७८

वचनामृत-३८७

आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। उसमें अनंत गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघरमें ही है, बाह्यमें कुछ नहीं है। तू उसीका अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। वहाँसे बाहर निकलना तुझे सुहायगा ही नहीं। बाहरकी सर्व वस्तुओंके प्रति तेरा आश्चर्य टूट जायगा। तू परसे विरक्त हो जायगा।।३८७।।

'आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है।'

यहाँ इस बोलमें क्या कहना है? कि—पूजा, भक्ति, व्रत, तप, दान और दयादि बाह्यमें जड़की क्रिया और भीतर आत्मामें होनेवाले पुण्य-पापके परिणामोंकी विभावक्रिया—वह कहीं आत्मा नहीं है, आत्माका स्वरूप नहीं है, कल्याणका मार्ग नहीं है। शरीरादि परद्रव्य और शुभाशुभ विभावपरिणामोंसे भिन्न, सहज ज्ञान और आनन्दस्वरूप निज शुद्ध आत्माका अंतरमें यथार्थ ज्ञान करे, उसका अनुभव करे तो कल्याणका मार्ग प्रारम्भ हो। इसलिये भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकर परमेश्वरने जैसा देखा, जाना, अनुभव किया और कहा ऐसे आत्माको प्रथम जानना चाहिये। निज आत्माको पहिचाने बिना बाहरके-व्रत, तप, भक्ति आदिके—क्रियाकाण्ड अनन्तबार किये, परन्तु अंतरमें आत्मा क्या अद्भुत वस्तु है उसकी महिमा कभी नहीं आयी। अनन्तबार दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु हुआ, परन्तु अंतरमें आत्मा क्या अजब वस्तु है उसे देखनेका अन्तर्मुख प्रयत्न कभी किया नहीं और बाहरका देखनेमें रुका रहा।

भाई! आत्मा तो एक उत्कृष्ट अजायबघर है। शरीरसे, कर्मसे, पुण्य-पापकी क्रियासे, विषय-कषायके भावसे भिन्न, अरे! दया, दान, व्रत और भक्ति आदिके शुभरागसे भी कथंचित् भिन्न, यह ज्ञानस्वरूप आत्मा तो कोई आश्चर्यकारी अद्भुत अजायबघर है। अहा! कोई पच्चीस-पचास लाखका विशाल सुन्दर भवन हो और उसके विशाल कक्षोंमें दर्शनीय वस्तुओंका संग्रह किया गया हो तो लोगोंको आश्चर्य होता है कि 'कितना सुन्दर अजायबघर है!' परन्तु भाई! उस बाहरके अजायबघरमें तो मात्र जड़ वस्तुओंका संग्रह है। सच्चा अजायबघर तो चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा है। उत्कृष्ट अजायबघर कहकर बहिनने कैसी सादी भाषामें आत्माकी आश्चर्यकारी महिमा प्रगट की है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं।'

भगवान आत्मा जोकि इस देहदेवालयमें, शरीर-वाणी-मनसे बिलकुल भिन्न, भीतर जानना....जानना.....जानना—ऐसे ज्ञानलक्षणसे पहिचाने जानेवाली त्रैकालिक चैतन्यवस्तु है, उसमें सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजश्रद्धा, सहजचारित्र, सहजसुख, सहजवीर्य, सहजप्रभुत्व, सहजस्वच्छत्व आदि अनन्त-अनन्त-अनन्त गुणरूप अमूर्तिक चिन्मय अलौकिक आश्चर्य-देखने योग्य अनुभव करने योग्य, अद्‌भुत शक्तिरूप विशेषतायें-भरी पड़ी हैं। अनन्त अर्थात् कितनी? कि—अनन्तको अनन्त द्वारा गुण करो; उसमें जो पहला 'अनन्त' है उसमें भी 'यह अन्तिम'—इसप्रकार अन्त नहीं आयगा। उस 'अनन्त' की अपेक्षा अनन्तगुने गुणरूप उत्कृष्ट एवं अलौकिक आश्चर्य आत्मारूपी अजायबघरमें भरे हैं। अज्ञानी जीव ऐसी अपनी लोकोत्तर निधिको नहीं देखता और पूजा, भक्ति, व्रत, तप, उपवासादि रागकी क्रियाओंमें धर्म मानकर उन्हें देखता है तथा उन्हींमें तल्लीन रहता है, परन्तु उस शुभ भावरूप विभावमें किंचित् भी आश्चर्य नहीं है, मात्र दुःख और आकुलता है; उसमें आत्माकी सच्ची शान्ति या सुख नहीं है। भगवान आत्मा तो स्वभावसे अनन्तसुख, शान्ति आदि अनन्त-अनन्त-अनन्त गुणसमृद्धिका अपार भण्डार है। अरे! आत्मा कौन है और उसकी शक्तियाँ कैसी हैं, उसकी अज्ञानीको कहाँ खबर है? प्रत्येक गुणमें अन्य अनन्तगुणोंरूप नहीं होनेकी अनन्त 'नास्ति' शक्ति-सामर्थ्य है, अपनी अनन्त पर्यायोंरूप परिणमनेकी शक्ति है और अनन्त अन्य पदार्थोंसे सदा अपना भिन्नत्व रखनेवाली अनन्त अन्यत्व शक्ति है। अहा! उसके अनन्तपनेके विस्तारकी क्या बात कही जाय! प्रभु! तुझे अनन्त गुणस्वरूप उत्कृष्ट चमत्कारोंसे भरपूर ऐसे अपने भगवान आत्माके चमत्कारी स्वरूपकी खबर नहीं है।

अरे! अनेकोंको तो जैनकुलमें जन्म लेने पर भी, यह खबर नहीं है कि जीव किसे कहते हैं। हलन-चलन करे वह जीव, जो हलन-चलन नहीं करे वह जड़, हिले-चले वह त्रस-जीव और स्थिर रहे वह स्थावर जीव; परन्तु भाई! हलन-चलन करना अथवा स्थिर रहना वह जीवका असाधारण लक्षण नहीं है, हलन-चलनकी या स्थिर रहनेकी क्रिया तो जड़ पुद्‌गलमें भी होती है, इसलिये उस क्रियासे जीवकी सच्ची पहिचान नहीं हो सकती। अरे! अभी जीवके लक्षणका भी ज्ञान न हो उसे जैन कौन कहेगा? भगवान उसे जैन ही नहीं कहते। जिनेन्द्रका अनुयायी जैन तो उसे कहा जाता है कि जो अनन्त गुणस्वरूप उत्कृष्ट चमत्कारोंसे भरपूर जिनस्वरूप निज भगवान ज्ञायक आत्मामें दृष्टि स्थापित करके, उसमें 'अहं'पना करके, मिथ्यात्व और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करे। 'जैन' कोई वाड़ा या सम्प्रदाय नहीं है, जिनके मार्गका अनुसरण करे उसे 'जैन' कहते हैं। जिसमें आनन्दादि अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे पड़े हैं ऐसे निज उत्कृष्ट अजायबघरमें-आत्मामें-दृष्टि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करे, उसमें दृष्टि स्थापित करके उसका अनुभव करे उसे सच्चा 'जैन' कहा जाता है।

'देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघरमें ही है, बाह्यमें कुछ नहीं है।'

अहा! देखने जैसा सब कुछ, दृष्टि स्थिर हो जाय ऐसा सब अद्‌भुत वैभव, तेरे निज अजायबघरमें है, बाहर कुछ भी लेने नहीं जाना है। अरे! यहाँ तो पाँच-दस लाखका मकान बनवाये तो उसके वास्तुप्रसंग-गृहप्रवेश पर बड़े-बड़े लोगोंको बुलाता है और हर्ष मानता है; परन्तु भाई! यह बात सुन तो सही! तेरे निज अजायबघरमें तूने कभी वास्तु-गृहप्रवेश नहीं किया। अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण ऐसे अपने निजचैतन्यघरकी आश्चर्यकारी समृद्धि देखने जैसी है। देखने जैसा सब कुछ, चमत्कारिक ऐसा सब कुछ वहाँ भरा पड़ा है; बाहर कहीं देखने जैसा नहीं है।

पुत्रीको लाख-दो लाखका दहेज दे तो सब सगे-सम्बन्धियोंको बुलाकर दिखलाता है, परन्तु भाई! उस धूलमें कुछ भी देखने जैसा नहीं है; अनन्त चमत्कारोंसे भरपूर आश्चर्यकारी वस्तु तो तेरे अंतरमें विद्यमान है—अनन्त चमत्कारिक आश्चर्य तो तेरे घरमें भरी हैं, उनकी और दृष्टि डाल न! देखने योग्य एवं विस्मयजनक तो तेरा अजायबघर-चैतन्यद्रव्य है। सर्वज्ञवीतराग जिनेश्वरदेवकी वाणीमें भी जिसकी अपार महिमा परिपूर्ण नहीं आ सकती ऐसे चैतन्यगुणरत्नोंसे भरे हुए निज संग्रहालयको देख न! उसमें देखने योग्य सब कुछ है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि परिणाम तो शुभराग हैं, विकार तथा दुःखके कारण हैं; उनमें या बाह्यमें अन्यत्र कहीं देखने जैसा नहीं है। अहा! कैसे बैठे यह बात?

कोई अच्छी फिल्म आयी हो तो लोग देखने जाते हैं; परन्तु भाई! उसमें धूल भी देखने जैसा नहीं है। उसे देखता है उसकी अपेक्षा उसके देखनेवालेको देख न! अरेरे! जो देखने जैसा है उस चैतन्यरत्नोंसे भरपूर ऐसे अपने ज्ञायक-घरको कभी देखा नहीं है, और जो अपनेमें नहीं हैं ऐसी बाहरकी वस्तुओंको देखनेमें—उनकी महिमा करनेमें लगा हुआ है। क्या कहा? कि—यह सब जो भी है उसमें यदि कुछ देखने जैसा हो तो वह यहाँ भीतर है, देखनेवाले ज्ञाताकी समस्त गुणसम्पत्ति भीतर देखनेवालेमें-ज्ञायकमें है; उसे देख-ऐसा त्रिलोकीनाथ वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव इन्द्र, नरेन्द्र और गणधरोंके समक्ष कहते थे, वही यह बात है।

अरे, कभी पच्चीस-पचास हजार रुपये मिल जायँ तो वहाँ संतुष्ट-संतुष्ट हो जाता है। 'पैसा मेरा परमेश्वर और मैं पैसेका दास,' इसप्रकार पैसेके पीछे पागल हो जाये वह तो आत्माकी हत्या कर देता है, अपनी चमत्कारिक ज्ञानादि अनन्य सम्पत्तियोंका अनादर करता है। जिसने भगवान आत्माकी चैतन्यमय जीवनज्योतिको बाह्यमें—रागमें और पैसेमें—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रोक दिया उसने आत्माको मार डाला है। 'अलिंगग्रहण' के बोलोंमें (प्रवचनसार गाथा १७२ की टीकामें) कहा है न! कि—लिंग द्वारा अर्थात् मन अथवा इन्द्रियादि लक्षण द्वारा ग्रहण अर्थात् जीवत्वको धारण कर रखना जिसके नहीं है वह (जीव) अलिंगग्रहण है; इसप्रकार आत्मा शुक्र और आर्तवके अनुसरणसे होनेवाला नहीं है। क्या कहा? कि—पैसा, पत्नी, पुत्र और परिवार यह परवस्तुएँ तो एक ओर रह गई, परन्तु आत्माके साथ जो एकक्षेत्रमें सम्बन्धरूपसे है वह शरीर, इन्द्रियाँ और मन भी उसका जीवन नहीं है। जीव चैतन्यनिधिसे परिपूर्ण अपने उत्कृष्ट अजायबघरको देखता नहीं है और परको देखनेमें रुक गया है।

अहा! तीन बातें कहीं :—(१) आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है, (२) उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक चमत्कार भरे हैं, और (३) देखने जैसा सब, आश्चर्यकारी ऐसा सब, तेरे निज अजायबघरमें ही है, बाह्यमें कुछ भी नहीं है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण आदि अनन्त आश्चर्य—चमत्कार—भीतर आत्मामें भरे पड़े हैं। वे आश्चर्य निगोदपर्यायके समय भी हानि नहीं पाते और केवलज्ञान पर्यायके समय किंचित् वृद्धि नहीं पाते, तीनोंकाल परिपूर्ण एकरूप रहते हैं। अहा! देखने योग्य ऐसा सब आश्चर्यकारी ऐसा सब, तेरे निज अजायबघरमें ही है, बाह्यमें कुछ भी नहीं है; तथापि तू उसकी ओर नहीं देखता और बाह्यमें दृष्टि करके—दया पालन करूँ, सामायिक करूँ, प्रतिक्रमण करूँ, ऐसी—रागकी क्रियाओंके कर्तृत्वकी भ्रान्तिमें अटक गया, परन्तु भाई! 'करना......करना' वह तो चैतन्यका 'मरना' है—भावमरण है।

लोगोको जादूगरके प्रयोगोंमें, हाथकी सफाईमें आश्चर्य लगता है, परन्तु एक प्रसिद्ध जादूगरने स्वयं स्वीकार किया था कि—महाराज! यह जादूगरी तो हमारा हाथकी सफाईका खेल है, लोगोंको ठगनेका धंधा है। भाई! उस बाहरके जादूमें अथवा कहीं अन्यत्र कुछ भी देखने योग्य और आश्चर्यकारी नहीं है, देखने योग्य तथा आश्चर्यकारी सब तेरे निज अजायबघरमें–ज्ञायक आत्मामें है। प्रभु! वह इन्द्रासन, करोड़ों अप्सराएँ, नवनिधान, छ्यानवे हजार रानियाँ आदि कुछ भी तेरा नहीं है, तुझमें नहीं है; वह कोई देखने योग्य आश्चर्यकारी वस्तुएँ नहीं हैं, देखने योग्य हो, ज्ञानमें महिमाभावसे ज्ञेय बनाने जैसा हो, तो वह ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्योंसे भरपूर तेरा ज्ञायक आत्मा है। अरे! यह बात कैसे बैठे? कभी यह बात सुनी न हो, सारा जीवन ऐसे ही अज्ञानदशामें बीता हो उसे तो आत्माकी यह बात कठिन लगेगी। भाई! यह भगवान आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है, उसमें अनन्त गुणरूप लोकोत्तर चमत्कार भरे हैं; देखने योग्य सबकुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सबकुछ तेरे निज अजायबघरमें ही है। बाह्यमें—व्रत, तप, भक्ति आदि व्यवहारभावोंमें–कुछ भी नहीं है। अरे! तीर्थंकरनामकर्मके हेतुभूत दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता आदि सोलह भावनाओंमें भी कुछ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है, क्योंकि वे तो शुभराग हैं, विकार है। वह शुभराग भी तेरे स्वरूपमें नहीं है, तेरी जाति नहीं है, कुजाति है; कुजातिको देखनेमें लगा रहा, किन्तु सजातिको–स्वजातिको, चैतन्यज्ञायकको–देखनेका प्रयत्न नहीं करता, तो आश्चर्यकारी ऐसा निज आत्मा कैसे प्राप्त होगा?

'तू उसीका अवलोकन कर न!'

देखने योग्य, आश्चर्यकारी, अनन्तमहिमायुक्त, अंतरमें जो तेरी ज्ञायकवस्तु है उसे देखने जा न! आजकल तो धर्मके उपदेशक भी, आत्मा एक ओर पड़ा रहा और आत्माके अतिरिक्त दूसरी सब बातें करने लग गये। आत्मा कौन है और कैसा है?—यह मुख्य बात पड़ी रही और बिना दूल्हेकी बारात रवाना कर दी; परन्तु उसे बारात कहा ही नहीं जा सकता। उसे तो मनुष्योंकी टोली कहा जायगा। आश्चर्यकारी अनन्त गुणोंके भण्डारको—अपने ज्ञायक अजायबघरको—भूलकर सामायिक, प्रतिक्रमणादि करे वह तो 'बिना दूल्हेकी बारात' जैसा ही है। प्रभु! अरिहंत भगवानको जो पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है वह तो पर्याय है, परन्तु सादि–अनन्त काल तक ऐसा आनन्द प्रगट होता रहे फिर भी कम न हो ऐसे अनन्त सामर्थ्यवान अपने भगवान आत्माका ही अंतरमें अवलोकन कर न! अरे! अभी जिसे गुण क्या है और पर्याय किसे कहते हैं—उसकी भी खबर न हो उसे जैन कैसे कहा जाय?

'उसके भीतर एकबार झाँकनेसे भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा।'

क्या कहते हैं? कि—ज्ञानादि अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्योंसे भरपूर उत्कृष्ट अजायबघर ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्वमें एकबार दृष्टि करनेसे, श्रद्धा और ज्ञानकी वर्तमान परिणतिको त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकभावकी ओर उन्मुख करनेसे, तुझे–पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ है ऐसा–अपूर्व आनन्द होगा। त्रैकालिक शुद्ध आत्मस्वभावमें एकबार दृष्टि करने पर तुझे सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्ज्ञान होगा, अंशतः स्वरूप रमणता होगी और अनन्त आनन्दका अंशतः स्वाद आयगा। प्रभु! तेरा भगवान आत्मा अनन्तानन्त ऐश्वर्यसे भरपूर है। उसमें, अखण्डित जिसका प्रताप है ऐसे स्वातंत्र्यसे सुशोभित ऐसी, एक अचिन्त्य प्रभुत्वशक्ति है, जिसके कारण उसके अखण्ड प्रतापको कोई खण्ड–खण्ड नहीं कर सकता। अहा! ऐसी अद्‌भुत प्रभुतासे भरपूर ऐसे अपने उत्कृष्ट अजायबघरमें–शुद्ध ज्ञायकभावमें–एकबार झाँक तो सही; स्वरूपमें झाँकनेसे तुझे ऐसा अपूर्व आनन्द होगा जो अनन्तकालमें नहीं हुआ था।

'वहाँसे बाहर निकलना तुझे सुहायगा ही नहीं।'

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान द्वारा भीतर, चैतन्यकी अनन्त समृद्धिसे भरपूर निज ज्ञायक–अजायबघरमें झाँकनेसे तुझे ऐसा अपूर्व आनन्द होगा कि जिससे निज अजायबघरमेंसे बाहर निकलना तुझे सुहायगा ही नहीं। अहा! यह तो कोई भाषा है!!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'बाहरकी सर्व वस्तुओंके प्रति तेरा आश्चर्य टूट जायगा।'

अहा! इस वचनामृत पुस्तकमें मात्र हीरे भरे हैं हीरे! यह दुनियाके जड़ हीरोंकी बात नहीं है, भगवान चैतन्य–हीरेकी बात है। अहा! भीतर ज्ञायक प्रभुकी आश्चर्यकारी असाधारण गुणचमत्कारोंको देखते हुए तथा अंशतः अनुभव करते हुए तुझे बाह्य वस्तुओंकी ओरका–इन्द्र और चक्रवर्तीके वैभवोंका तथा बहिर्लक्षी जानकारीके प्रकारोंका—आश्चर्य, विस्मय, कौतूहल या अद्‌भुतपना टूट जायगा।

'तू परसे विरक्त हो जायगा।'

ज्ञायक द्रव्यस्वभावमें कोई अनुपम आनन्दकारी आश्चर्य भासित होनेसे, तू उसमें सहजरूपसे तल्लीन होने पर समस्त परद्रव्योंसे तथा परभावोंसे विरक्त हो जायगा। अनादिकालसे अज्ञानके कारण, आनन्ददायी निजज्ञायक प्रभुकी अद्‌भुत गुणसमृद्धियोंका आश्चर्य भासित होनेके कारण, परमें तथा रागादि विभावमें लीन था; अब स्वभावमें लीन होनेसे तू परसे विरक्त हो जायगा। प्रथम दृष्टि–अपेक्षासे सम्पूर्ण विश्वसे विरक्त होगा और फिर अनुक्रमसे स्थिरताकी अपेक्षा भी विरक्त हो जायगा। अरबों रुपयेकी आमदनी हो अथवा सर्व प्रकारकी बाह्य अनुकूलताओंके ढ़ेर हों, तुझे आत्माके सिवा अन्यत्र कहीं अच्छा नहीं लगेगा। जब तक पूर्ण वीतराग नहीं हुआ तब तक अविरत गृहस्थदशामें विषयवासनाके, व्यापार–धन्धेके, शरीर या कुटुम्बादिके विकल्प आयेंगे, तथा दया, दानादिके विकल्प भी आयँगे, परन्तु वे सब शुभाशुभ विभाव तुझे, क्योंकि मात्र स्वभाव ही सुखरूप भासित हुआ है इसलिये, दुःखरूप लगेंगे। अहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर भगवन्तोंकी यह पुकार है कि—स्वभावमें रक्त होने पर तू स्वयमेव परसे और विभावसे विरक्त हो जायगा। परमें और विभावमें रक्तजीव कर्मबंधन करके संसारमें परिभ्रमण करता है और अनन्त दुःख भोगता है। उन अनन्त दुःखोंसे छूटनेका यह एक ही उपाय है—स्वभावमें रक्ति और विभावसे विरक्ति। समयसारमें आता है न! कि—

जीव रागी बांधे कर्मको, वैराग्यगत मुक्ति लहे।
ये जिन प्रभु उपदेश है नहिं रक्त हो तू कर्मसे॥१५०॥

अहा! यह कोई साधारण बात नहीं है। अंतरमें सम्यग्दर्शन होनेसे, आत्माका अंशतः आनन्द प्रगट होने पर जीव दृष्टिअपेक्षासे समस्त परद्रव्यों एवं परभावोंसे एकसाथ विरक्त हो जाता है। सम्यग्दर्शन किसे कहते है? जिसमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्तानन्त आश्चर्यकारी गुणरत्न भरे हैं ऐसे निज त्रैकालिक ज्ञायक अजायबघरमें झाँकनेसे उसका जो ज्ञान, प्रतीति और आनन्दांशयुक्त स्वानुभव हो उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। ऐसी दशा होने पर तुझे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरसे निकलना अच्छा नहीं लगेगा। यद्यपि अस्थिरता है, इसलिये अशुभ तथा शुभरागके विकल्प आयँगे अवश्य, परन्तु वे विकल्प दुःखदायक एवं काले नाग जैसे डरावने लगेंगे।

अरे! पापके रागकी तो क्या बात करें, परन्तु दया, दान, व्रत, उपवास, तप, भक्ति, जप और भगवानका नाम स्मरणादि शुभ विकल्प भी ज्ञानीको—आत्मानुभवीको—भट्टी और काले नागके समान दुःखकारी लगते हैं। जहाँ आनन्दामृतके कक्ष भरपूर भरे हों ऐसे भगवान ज्ञायक आत्माको जिसने देख लिया, अनुभव किया उसे बाह्यमें—विकल्पमें एकक्षण भी कैसे अच्छा लगेगा? भगवान आत्माको देखा कब कहा जाय? कि—वर्तमान पर्यायमें उसे देखनेका आनन्द आया तब। भगवान आत्माको देखनेसे उसके अनन्तगुणोंके अंशवेदनमें—अनुभवमें आ जाते हैं। श्रीमद्ने कहा है न! कि—'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'। अंतरमें अनंत गुणस्वरूप निज भगवान आत्माका ज्ञान होकर उसकी निर्विकल्प प्रतीति होनेसे, आत्मद्रव्यमें संख्याके जितने गुण हैं वे सब परिणतिमें अंशतः प्रगट होंगे, उन सबका निर्मल अंश प्रगट होगा। अरे! आत्माका जो अयोग नामका गुण है वह भी सम्यग्दर्शन होने पर अंशतः प्रगट होगा। ज्ञानी सम्यक्त्वीको पर्यायमें आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दरूप योग तो है, परन्तु उस योगमें मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबंधी कषाय आदि जो ४१ प्रकृतियोंका आस्रव करनेकी शक्ति क्षीण हुई है, उतने अंशमें पर्यायमें अयोग गुण प्रगट हुआ कहा जाता है। प्रतिजीवी गुणोंकी पूर्ण निर्मल पर्याय सिद्धदशा होने पर होती है, परन्तु उन गुणोंका एक अंश नीचे सम्यक्त्वके साथ प्रगट हो जाता है।

क्या कहते हैं? कि—यह भगवान आत्मा अनन्तानन्त आश्चर्यकारी गुणोंसे भरपूर अजायबघर है। उन अनंत गुणोंमें एक योग नामका गुण भी है। आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दको द्रव्ययोग और उस परिस्पन्दनमें जो कर्मग्रहणशक्ति है उसे भावयोग कहते हैं। परिस्पन्द और उसमें कर्मग्रहणशक्तिका परिपूर्ण अभाव चौदहवें गुणस्थानमें होता है; परन्तु सम्यग्दर्शन होनेपर–भीतर ज्ञायकतत्त्व पर दृष्टि पड़नेसे—परिस्पन्दमें अंशतः कर्मग्रहणशक्तिका अभाव होता है, इसलिये सम्यक्त्वके साथ उतना अयोगगुण प्रगट हुआ कहा जाता है। अहा! अनन्त गुणके निधानस्वरूप भगवान आत्माको देखनेसे, उसका आश्चर्य लगने पर जगतकी अन्य समस्त वस्तुओंका आश्चर्य–विस्मय टूट जायगा। स्वरूप आश्चर्यकारी लगनेसे, स्वयं रक्तताके कारण, तू सबसे–शरीर, इन्द्रियादि समस्त परद्रव्योंसे तथा शुभाशुभ रागादि समस्त विभावोंसे—विरक्त हो जायगा। अहा! यह तो अभी सम्यग्दृष्टिकी बात है, चारित्रकी बात तो अभी दूर है। आया कुछ समझमें?

आजकल तो लोगोंने तथा उपदेशकोंने भी, शुभरागमें धर्म मनवा दिया है। आत्माकी बात तो जरा भी नहीं समझते, सवेरे उठकर सम्प्रदायकी रूढ़िके अनुसार अपनी मानी हुई सामायिक करते हैं, जिनमन्दिरमें जाकर भगवानके दर्शन, पूजन और भक्ति करते हैं, परन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई! अपने दर्शन–निज ज्ञायकदेवके दर्शन–करनेके लिये तू अंतरमें तो उतर न! सम्यग्दर्शनका स्वरूप वह कोई अन्य–अलौकिक वस्तु है। अरेरे! लोगोंको यह सत्य जब सुननेको ही नहीं मिला तब सत्‌को किस प्रकार खोजें? खोजने जैसा तो अंतरमें अनंत गुणरूपी आश्चर्योंसे भरा तेरा आत्मा ही है। दर्शनीय एवं विस्मयकारी सब तेरे आत्मामें है, किन्तु प्रभु! तुझे उसकी खबर नहीं है। तू जिस प्रकार परको देखनेमें लगा हुआ है वैसे ही स्वको देखनेमें लग जा। देखनेवाले ज्ञायकको देख। ज्ञायक अपनेको भूलकर मात्र परको देखता है, परन्तु वे परपदार्थ तुझमें नहीं हैं। देखनेवालेमें–ज्ञायकमें–दर्शनीय वस्तु है उसमें, बाह्य देखनेयोग्य वस्तुका–ज्ञेयका–कुछ नहीं है। देखनेवालेको देख यही सच्ची कुंजी है। उससे अनन्त गुणोंरूप लक्षके ताले खुल जायँगे।

अहा! रागके साथ एकता करके उसे देखनेमें रुक गया वहाँ अनन्तगुणोंको ताले लग गये। उन तालोंको खोलनेके लिये, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्माका आदेश है कि—प्रभु! तू जो बाह्यमें–परमें देखने गया है उसके बदले इस ओर अंतरमें–ज्ञायकस्वभावमें देख। देखनेवाला कितना महान है? उसका अचिन्त्य स्वरूप कैसा है?–उस ओर दृष्टि कर। बाहरका इतना –इतना देखता है इसलिये वह देखनेवाला–ज्ञायक है–ऐसा नहीं है, परन्तु सहज स्वभावसे ही स्वयमेव जाननेके—ज्ञाता स्वभाववाला है। अहा! ऐसे ज्ञानस्वभावी अपने आत्माको देखेगा तो तुझे परसे विरक्ति हो जायगी। भले ही अस्थिरताके कारण राग आयगा, रागके आलम्बनभूत संयोग भी दिखायी देंगे, परन्तु वहाँ तुझे रक्ति–लीनता नहीं होगी। अहा! देखो, यह कैसी सादी भाषा है! परन्तु भाव ऊँचे हैं।

धर्मीका ध्येय वीतरागता है। जिस प्रकार अच्छा किसान घासके लिये नहीं, परन्तु अनाजके लिये बावनी करता है; अनाजके साथ कड़ब भी बहुत होती है; उसीप्रकार धर्मीका प्रयत्न वीतरागताके लिये है, रागके लिये नहीं; चैतन्यस्वभावकी दृष्टि साधते–साधते बीचमें पुण्यरूपी उच्च जातिका घास भी बहुत उत्पन्न होता है। जैसे मनुष्य कहीं घास नहीं खाते, मनुष्य तो अनाज ही खाते हैं, वैसे ही धर्मी जीव रागको या पुण्यको आदरणीय नहीं मानते, वीतरागभावको ही आदरणीय मानते हैं।

—पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१५६

दिनांक २०-११-७८

वचनामृत–३८८

मुनिराजको शुद्धात्मतत्त्वके उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मामेंसे संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये तथापि मुनिराजकी यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती। बाहरसे देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधनाके हेतु वनमें अकेले बसते हैं, परन्तु अंतरमें देखें तो अनन्त गुणसे भरपूर स्वरूपनगरमें उनका निवास है। बाहरसे देखने पर भले ही वे क्षुधावंत हों, तृषावंत हों, उपवासी हों, परन्तु अंतरमें देखा जाय तो वे आत्माके मधुर रसका आस्वादन कर रहे हैं। बाहरसे देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अँधेरा व्याप्त हो, परन्तु अंतरमें देखो तो मुनिराजके आत्मामें आत्मज्ञानका उजाला फैल रहा है। बाहरसे देखने पर भले ही मुनिराज सूर्यके प्रखर तापमें ध्यान करते हों, परन्तु अंतरमें वे संयमरूपी कल्पवृक्षकी शीतल छायामें विराजमान हैं। उपसर्गका प्रसंग आये तब मुनिराजको ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरताके प्रयोगका मुझे अवसर मिला है इसलिये उपसर्ग मेरा मित्र है'। अंतरंग मुनिदशा अद्भुत है; वहाँ देहमें भी उपशमरसके ढाले ढल गये होते हैं।।३८८।।

'मुनिराजको शुद्धात्मतत्त्वके उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मामेंसे संयम प्रगट हुआ है।'

अब मुनिराजकी बात करते हैं। अहा! मुनिराज कहा किन्हें जाय? सहज दर्शन, सहज चारित्र, सहज–आनन्दादि अनन्त गुणरूप आश्चर्योंका भण्डार ऐसे निज ज्ञायक भगवान आत्माके उग्र अवलम्बन द्वारा जिन्हे आत्मामेंसे वीतराग संयमदशा प्रगट हुई है उन्हें मुनिराज कहा जाता है। 'शुद्धात्म द्रव्यके उग्र अवलम्बन द्वारा'—ऐसा क्यों कहा? शुद्धात्मतत्त्वका अवलम्बन तो गृहस्थदशामें स्थित अविरत सम्यग्दृष्टिको भी है, सम्यग्दृष्टि देव, तिर्यंच और नारकी भी हैं; परन्तु चारित्रदशामें शुद्धात्मतत्त्वका जितना उग्र अवलम्बन हो उतना असंयमदशामें नहीं होता, मन्द होता है। मुनिराजको निज शुद्धात्मतत्त्वके उग्र आश्रयसे आत्मामेंसे वीतराग संयमदशा प्रगट हुई है। संयमदशा आत्माके आश्रयसे प्रगट होती है, छह कायके जीवोंकी दया पालने अथवा पाँच इन्द्रियोंके विषयोंको छोड़नेके शुभ विकल्पसे नहीं। शुभ विकल्प भी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग है, रागसे वीतराग संयम कदापि प्रगट नहीं होता। अहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञपरमात्माने मुनिराजका जो स्वरूप कहा है वही यहाँ बहिनकी वाणीमें आया है।

अरे रे! ऐसी बातें जगतको कठिन लगती हैं, परन्तु क्या हो, भाई! मरकर कहाँ डेरा होगा इसकी कोई खबर है? कोई स्नेही-सम्बन्धी नहीं ऐसे अनजाने संयोगमें, अनजाने क्षेत्रमें, अनजाने कालमें, कहीं जा गिरेगा। आश्चर्यकारी निज 'ज्ञाता' तत्त्वको जिसने नहीं देखा और जिसे संयोगमें ही आश्चर्य लगा वह अपने परिणामके अनुसार जन्म-मरणके संयोगोंमें ही भटकेगा। यहाँ तो उसका अभाव कैसे हो उसकी बात है। यहाँ तो मुनिराजको संयमदशा किस प्रकार प्रगट हुई—यह बात कही है। प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर अंतरमें अंशतः अतीन्द्रिय आनन्द आये, तब अंतर्स्वरूपमें रक्त होता है और परसे तथा विभावसे विरक्त होता है—यह बात ३८७वें बोलमें कही। अब, भूमिकामें वृद्धि होनेपर जो सच्ची मुनिदशा होती है वह निज त्रिकालशुद्ध आत्माके उग्र आलम्बनसे प्रगट होती है यह बात कहते हैं। बहिनके वचनामृतमेंसे मुनिदशा सम्बन्धी बोलोंकी 'धन्य मुनिदशा!' नामकी जो लघुपुस्तिका प्रकाशित हुई है, उसमें भी ३८८वाँ बोल आ गया है।

शुद्धात्मतत्त्वके अन्तर्मुख उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मामेंसे जो सहज संयमदशा प्रगट हो ऐसा मुनिपना, अरे! आजकल कहाँ दिखायी देता है? बाह्य पंच महाव्रतोंका पालन करें और नग्न होकर फिरें इसलिये वे मुनि हैं—ऐसा नहीं है। वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानें—मनायें वे तो मुनि हैं ही नहीं, गृहीतमिथ्यादृष्टि कुलिंगी हैं; परन्तु जो वस्त्ररहित नग्न होकर महाव्रतादि शुभरागमें धर्म मानकर अटक गये हैं वे भी मिथ्यादृष्टि ही हैं। उनको शुद्धात्मतत्त्वका जघन्य आलम्बन भी नहीं है, तो उग्र आलम्बनरूप संयमदशाकी तो बात ही कहाँ रही? ऐसी बात जगतको असहनीय लगती है, परन्तु क्या हो? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेवका आदेश तो इसप्रकार है कि—निज शुद्धात्मद्रव्यके उग्र आलम्बन द्वारा ही आत्मामेंसे संयम प्रगट होता है। सं+यम; 'सं' अर्थात् आत्माके सम्यग्दर्शन तथा अनुभवपूर्वक, 'यम' अर्थात् स्वरूपस्थिरता। अरे! ऐसी सहज मुनिदशा तो वर्तमानमें देखनेको भी मिलना कठिन है। आत्मामेंसे मुनिराजको संयम प्रगट हुआ है; किस कारण? कि—'शुद्धात्मतत्त्वके उग्र अवलम्बन द्वारा' कहकर कारण भी बतलाया है।

'सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय तथापि मुनिराजकी यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती।'

मुनिराज तो उन्हें कहते हैं कि जिनके अंतरमें स्वभावके आश्रयसे प्रचुर स्वसंवेदन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दकी धारा बहती हो। आत्माके जघन्य आलम्बनसे जो दृष्टि और ज्ञान हुए उनमें भी साथ ही अतीन्द्रिय आनन्दके अंशका वेदन है, परन्तु मुनिदशामें वह शुद्धात्मावलम्बन उग्र कोटिका होनेसे आनन्दकी धारा विशेष होती है। ध्रुव ज्ञायकस्वभावका उग्र अवलम्बन लेनेके कारण आत्मामेंसे संयम प्रगट हुआ है, महाव्रतके विकल्पोंसे अथवा नग्नतासे प्रगट नहीं हुआ है। अहा! सूक्ष्म बात है भाई! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं कि—बाह्यमें वस्त्ररहित नग्नतारूप द्रव्यलिंग हो और अंतरमें मिथ्यात्व तथा अविरतिके विकल्परहित संयमचारित्र प्रगट हो वह एक ही मुनिमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं। अहा! यह तो नग्न सत्य है। परम सत्य परमात्मा जिनेश्वरकी यह पुकार है।

शाश्वत जो त्रिकालशुद्ध निज आत्म द्रव्य उसके उग्र आलम्बनसे मुनिराजको जो दृढ़ संयमपरिणति प्रगट हुई है वह सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय तथापि, बदल जाय—चलित हो जाय ऐसी नहीं है। शाश्वत द्रव्यस्वभाव कभी अपने स्वरूपसे चलित नहीं होता, वैसे ही उसके उग्र अवलम्बन द्वारा प्रगट हुई मुनिराजकी दृढ़ संयमपरिणति भी चलित हो—बदल जाय ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, समझमें आता है कुछ?

'बाहरसे देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधनाके हेतु वनमें अकेले वसते हैं, परन्तु अंतरमें देखें तो अनन्तगुणसे भरपूर स्वरूपनगरमें उनका निवास है।'

वीतराग जैनमुनि कैसे होते हैं उसकी यह बात है। सच्चे जैनमुनिके–वीतराग दिगम्बर सन्तके—दर्शन भी इस कालमें दुर्लभ हो गये हैं; आजकल तो भारतदेशमें ऐसे सच्चे भावलिंगी मुनि कोई दिखायी नहीं देते। क्या हो? लोगोंको असह्य लगता है। बाहरसे देखने पर आत्मज्ञानी संसारविरक्त मुनिराज आत्मसाधना हेतु निर्जन वनमें एकाकी निवास करते हैं, परन्तु अंतरमें देखनेसे उनका निवास सहजज्ञान एवं सहज–आनन्दादि अनन्तगुणोंसे परिपूर्ण ऐसे निज स्वरूपनगरमें है। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा जिनको मुनि कहते हैं और जिन्होंने निज ज्ञायकस्वभावके उग्र आलम्बन द्वारा आत्मामेंसे संयमपरिणति प्रगट की है ऐसे निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधक सन्त वनमें एकाकी निवास करते हैं; परन्तु भीतर देखने पर वे अकेले नहीं हैं, अनन्तगुणरूप वस्तीसे भरपूर ऐसे निज चैतन्यनगरमें उनका निवास है। अहा! उन्होंने भीतर स्वरूपनगरमें 'वास्तु' (गृहप्रवेश) किया है। इस वाक्यमें 'बाहरसे देखने पर' के सामने 'अंतरसे देखने पर', 'वनमें' के सामने 'स्वरूपनगरमें' और 'एकाकी' के सामने 'अनन्तगुणसे भरपूर'—ऐसे तीनप्रकारसे शब्दोंका मेल आ गया है। अनन्तगुणोंसे भरे हुए निज स्वरूपनगरमें आत्मसाधना हेतु मुनिराजका निवास है। पंच महाव्रतोंका पालन करें, छहकायके जीवोंकी दया पालें—इसमें तो धूल भी साधकपना नहीं है; अंतरमें शुद्धात्माकी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधना करे उसे साधु कहते हैं। अहा! भाषा तो देखो! प्रत्येक शब्दमें गहरे भाव भरे हैं।

'बाहरसे देखने पर वे भले ही क्षुधावन्त हों, तृषावन्त हों, उपवासी हों, परन्तु अंतरमें देखा जाय तो वे आत्माके मधुररसका आस्वादन कर रहे हैं।'

आत्मस्वरूपकी साधनामें लीन उन मुनिवरोंको दो, चार या छह दिनों तक विधिपूर्वक, अधःकर्म या उद्देशिक आदि दोषरहित, निर्दोष आहारका योग नहीं बना हो, वे क्षुधावन्त –तृषावन्त हों, उपवासी हों, पेट–पीठ मिल गये हों, तथापि अंतरमें देखने पर वे आत्माके मधुर रसका आस्वादन कर रहे हैं, अतीन्द्रिय आनन्दामृतके भोजनसे तृप्त–तृप्त हो रहे हैं। अहा! ऐसी दशाको मुनिपना कहा जाता है। वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित मुनिपना कोई अलौकिक है। जो साधनारूप पर्यायमें प्रचुर आनन्दके स्वादका अनुभव कर रहे हैं उन्हें मुनि कहते हैं। बाहरसे देखने पर क्षुधा, तृषा या उपवास हो, परन्तु अंतरमें वे भगवान आत्माके आनन्दामृतका रसास्वादन कर रहे हैं। अरे! मुनिपना कैसा होता है उसकी लोगोंको खबर नहीं है, श्रद्धा नहीं है।

'बाहरसे देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अँधेरा व्याप्त हो, परन्तु अंतरमें देखो तो मुनिराजके आत्मामें आत्मज्ञानका उजाला फैल रहा है।'

अहा! अषाढ मासकी घनघोर मेघाछन्न रात्रि हो, वनमें चारों ओर घोर अंधकार व्याप्त हो, परन्तु मुनिराजके अंतरमें आत्मज्ञानका–आत्मानुभूतिका–उजाला फैल रहा है। अहा! यह कैसी बात है! चैतन्यकी जो अनन्तशक्ति है उसमें से, उसके उग्र अवलम्बन द्वारा मुनिराजके अंतरमें प्रकाशका ज्वार आया है। बाहर भले ही अँधेरा हो, परन्तु उनके अंतरमें आत्मज्ञानका अनुपम प्रकाश फैल गया है।

'बाहरसे देखने पर मुनिराज सूर्यके प्रखर तापमें ध्यान करते हों, परन्तु अंतरमें वे संयमरूपी कल्पवृक्षकी शीतल छायामें विराजमान हैं।'

पहले अंधकारकी बात कही, अब यहाँ तापकी बात करते हैं। बाहरसे देखने पर मुनिराज भले ही सूर्यके प्रचण्ड तापमें–शरीर जलता हो ऐसी तेज धूपमें—ध्यान करते हों, परन्तु अंतरमें वे स्वरूपरमणतारूप कल्पवृक्षकी शीतल छायामें विराज रहे हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान–आनन्दस्वभावी भगवान आत्माके उग्र अवलम्बन द्वारा पर्यायमें जो अतीन्द्रिय शीतल छाया प्रगट हुई है, उसमें वे मुनिराज विराज रहे हैं।

कल्पवृक्ष सम संयमकेरी अति शीतल जहँ छायाजी,
चरण–करण–गुणधार महामुनि, मधुकर मन ललचायाजी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिराज सूर्यके प्रचण्ड तापमें नहीं, किन्तु शीतल स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई संयमकी कल्पवृक्ष समान शीतल छायामें विराज रहे हैं।

'उपसर्गका प्रसंग आये तब मुनिराजको ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूप स्थिरताके प्रयोगका मुझे अवसर मिला है इसलिये उपसर्ग मेरा मित्र है।'

वनवासी उन मुनिवरोंको अनेक प्रकारके बाहरी उपसर्ग आते हैं—बिच्छू या सर्प काटें, कोई दुष्ट मनुष्य प्रहार करे, पूर्वभवका विरोधी जीव, पार्श्वनाथ भगवानको कमठकी भाँति, देव होकर उपसर्ग करे—पत्थर, पानी और अग्नि आदिकी वर्षा करे—तब उनके अंतरमें ऐसा लगता है कि 'अहा! यह तो मेरी स्वरूप स्थिरताके प्रयोगका, मेरी सहजदशाकी परीक्षाका मुझे अवसर प्राप्त हुआ, इसलिये यह उपसर्ग मेरा मित्र है।'

श्रीमद् राजचन्द्रजीने भी कहा है न! कि—

एकाकी विचरतो, वळी श्मशानमां
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो,
अडोल आसनने मनमां नहीं क्षोभता,
परममित्रनो जाणे पाम्या योग जो.......अपूर्व.....

अहा! जिनका लक्ष निज द्रव्य सामान्य पर है, दृष्टि और संयमके आश्रयभूत त्रिकालशुद्ध ज्ञायकभावके उग्र आलम्बनसे स्वरूपरमणताकी शीतल छाया जिनके प्रगट हुई है उन मुनिवरोंको कोई भी बाह्य उपसर्ग स्वरूपस्थिरतासे च्युत नहीं कर सकता। उपसर्गकी प्रतिकूलताके समय भी उनके अंतरकी आनन्दधारा सतत प्रवाहित होती है।

आत्म स्थिरता त्रण, संक्षिप्त योगनी,
मुख्यपणे तो वर्ते देहपर्यंत जो.
घोर परिषहके उपसर्ग भये करी,
आवी शके नहीं ते स्थिरतानो अंत जो।......अपूर्व..... ।

अहा! मुनिराज कहते हैं कि 'उपसर्ग तो मेरी स्वरूपस्थिरताकी परीक्षा करनेका अवसर है।'

'अंतरंग मुनिदशा अद्भुत है; वहाँ देहमें भी उपशमरसके ढाले ढल गये होते हैं।'

वास्तवमें वह अंतरंगदशा अद्भुत है। अंतरमें ज्ञायकस्वभावके उग्र आलम्बनसे कषायकी तीन चौकड़ीका अभाव हुआ है, इसलिये परिणतिमें तो सुख तथा शान्तिकी धारा खूब बढ़ गई है, परन्तु बाहर शरीरकी मुद्रामें भी उपशमरस मानों ढल गया होता है। शरीरकी मुद्रा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी ऐसी शान्त......शान्त.....शान्त, मानो संसारसे बिलकुल मृतप्राय हो गये हों ऐसी सहज हो जाती है।

प्रश्न :—यह तो चौथे कालके मुनिकी बात है न?

उत्तर :—अरे, यह तो पंचमकालके मुनिकी बात है। पंचमकालमें मुनिपना कैसा होता है वह यहाँ बतलाते हैं। चौथे कालके हों अथवा पंचमकालके हों, मुनियोंके स्वरूपमें कोई अंतर नहीं होता। 'एक होय त्रिकालमें परमारथका पंथ।' तीनोंकालमें मुनिपना एक ही प्रकारका होता है। जैसे वस्तुका मूलस्वरूप तीनोंकाल पवित्र एवं शुद्ध—एक ही प्रकारका—होता है, वैसे ही उसके आलम्बनसे प्रगट होनेवाली पवित्रता एवं शुद्धता–मुनिदशा–भी तीनोंकाल एक प्रकारकी ही होती है। शुभयोगसे—शुभभावसे वह पवित्र दशा प्रगट नहीं होती; शुभ तो निमित्तके आश्रयसे प्रगट होता है, वह कहीं आत्माका स्वरूप नहीं है।

ज्ञायक स्वभावके उग्र आलम्बनसे अंतरमें शान्ति एवं आनन्दकी प्रचुर धारा बहे ऐसी सहज मुनिदशाके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। अकेले सम्यग्दर्शन, ज्ञान और (मात्र अनन्तानुबंधी कषायके अभावसे प्रगट होनेवाले) स्वरूपाचरण चारित्रसे मुक्ति हो जाय ऐसा नहीं है। उसे मुक्ति अवश्य होगी यह बात बराबर है, परन्तु इतने मात्रसे (असंयमदशाके या देशसंयमदशाके दर्शन–ज्ञान–चारित्रसे) नहीं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक स्थिरता –अपेक्षासे स्वभावके उग्र अवलम्बनसे प्रचुर स्वसंवेदनयुक्त सहज मुनिदशा प्रगट करके स्वरूपमें पूर्ण स्थिरता होने पर मुक्ति प्राप्त होती है। मुनिदशा सो साधन और मुक्ति सो साध्य—यह भी व्यवहारनयका कथन है। मुनिदशा पूर्वक ही मुक्ति होती है, इसलिये मुनिदशाको साधन और मुक्तिको साध्य कहा। वास्तवमें तो त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यस्वभावका स्थिरता भावसे पूर्ण आलम्बन लेते हैं तब केवलज्ञानादि पूर्णदशा–मुक्ति–प्रगट होती है। केवलज्ञान द्रव्यस्वभावके पूर्ण आलम्बन द्वारा प्रगट होता है।

मुनिराजके शरीरमें भी उपशमरस मानों ढल गया है। शान्त.....शान्त.....शान्त, शरीरमें, अरे! वचनमें भी कहीं चपलता या चंचलता दिखायी न दे ऐसे शान्तरसके साँचेमें ढल गये हैं। ऐसे मुनिराजको निर्ग्रन्थ गुरु कहा जाता है। उनके शरीरकी नग्नता निमित्तरूप होती ही है, परन्तु वह कहीं, अरे! महाव्रतके शुभविकल्प भीं, चारित्र नहीं है; उनसे मोक्ष नहीं है। मोक्ष तो, अंतरमें शुद्धात्मद्रव्यस्वभावके उग्र आलम्बनसे जो स्वरूपस्थिरता प्रगट होती है उससे होता है। वह स्वरूपस्थिरता सो मुनिदशा है। अंतरमें प्रगट होनेवाली वह सहज मुनिदशा अद्‌भुत है; शरीरमें भी प्रशमरस ढल गया होता है; मुनिराजकी मुखमुद्रासे भी शान्तरस झरता है। अहा! ऐसी बात है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३८९

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है उसे दृष्टिके जोरमें अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। भेदज्ञानकी परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्नमें भी आत्मा शरीरसे भिन्न भासता है। दिनको जागृत दशामें तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रातको नींदमें भी आत्मा निराला ही रहता है। निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य प्रवर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोगमें उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है। मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय तथापि पृथक् ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है। स्वरूप-अनुभवमें अत्यन्त निःशंकता वर्तती है। ज्ञायक ऊपर चढ़कर–ऊर्ध्वरूपसे विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है॥३८९॥

'जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है उसे दृष्टिके जोरमें अकेला ज्ञायक ही–चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता।'

जिसके निज त्रिकालशुद्ध द्रव्यस्वभावकी यथार्थ दृष्टि प्रगट होती है उसे परकी—शरीरकी, वाणीकी, कुटुम्बकी, देशकी, गरीबोंकी—मैं सेवा वगैरह कुछ कर सकता हूँ ऐसी भ्रान्ति दूर हो जाती है और दृष्टिके जोरमें मात्र ज्ञायक ही–निज चैतन्यद्रव्य सामान्य ही भासित होता है, शरीरादि अन्य कुछ भी भासित नहीं होता। गाँवके, प्रान्तके या राष्ट्रके कार्यकर्ता अभिमान करते हैं कि—हम सबकी सेवा करते हैं। भाई! कोई जीव अन्य जीवकी सेवा तो कर ही नहीं सकता, किन्तु सेवा आदिमें जड़ शरीरकी और वाणीकी जो क्रिया होती है उसे भी आत्मा नहीं कर सकता। अरे! सेवा करनेका जो रागभाव हो वह भी आत्माकी मूल वस्तु नहीं हैं, और उस रागको जाननेवाली एक समयकी पर्याय जितना भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो परसे, विभावसे तथा एक समयकी पर्यायसे पार त्रैकालिक ज्ञायक चैतन्य ध्रुव वस्तु है। उसकी यथार्थ दृष्टि जिसे प्रगट हो उसे अंतरमें ज्ञायक ही भासित होता है, शरीर, राग या अन्य कुछ भी अपने रूपसे भासित नहीं होता।

भगवान आत्मा मात्र ज्ञाता–द्रष्टा ज्ञायक ही है—ऐसी दृष्टिका यथार्थ जोर चतुर्थ गुणस्थानमें—सम्यग्दर्शन होते ही—प्रगट होता है। दृष्टिके जोरमें उसे मात्र ध्रुव चैतन्यप्रकाश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही भासित होता है, अन्य—शरीर या शुभयोग आदि—कुछ भासित नहीं होता। अहा, देखो न! यह तो कोई पुस्तक प्रकाशित हुई है!! कहते हैं कि—ज्ञानीको दृष्टिमें मात्र आत्मा ही भासता है। पर्यायमें राग है उसे भले ही ज्ञानमें जाने, परन्तु दृष्टिका जोर तो त्रिकाल द्रव्यस्वभाव पर है; दृष्टिके विषयमें मात्र ज्ञायक ही है। अहा! ऐसी बातें हैं। अरे! सारा दिन व्यापार-धन्धेके पापमेंसे उपदेश सुननेका अवकाश भी नहीं मिलता, उसे यह बात कैसे बैठे? दृष्टिका विषय निर्विकल्प अभेद ज्ञायकद्रव्य है, उसकी दृष्टिके जोरमें ज्ञानीको मात्र ज्ञायक ही भासता है; शरीर, राग, देव-शास्त्र-गुरु आदि निमित्त कुछ भी भासते ही नहीं, क्योंकि वे दृष्टिका विषय ही नहीं हैं।

‘भेदज्ञानकी परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्नमें भी आत्मा शरीरसे भिन्न भासता है।’

दृष्टिकी-श्रद्धाकी—बात कही, अब उसके साथ अविनाभावी ऐसे ज्ञानकी परिणतिके सम्बन्धमें कहते हैं। द्रव्यदृष्टि होने पर साथमें जो भेदज्ञान हुआ वह शरीरादि समस्त पर द्रव्योंसे और रागादि समस्त विभावोंसे भगवान आत्माकी यथार्थ भिन्नता बराबर जानता है। ज्ञानीको भेदज्ञानकी दशा ऐसी पक्की हो जाती है कि जागृत दशामें तो क्या, परन्तु स्वप्नमें भी आत्मा शरीर और विभावसे स्पष्ट भिन्न भासित होता है।

‘दिनको जागृत दशामें तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रातको नींदमें भी आत्मा निराला ही रहता है।’

पहले निद्राकी बात नहीं कही, परन्तु निद्रामें जो स्वप्न आये उसमें भी ज्ञानीको भेदज्ञानकी परिणति ऐसी दृढ़ हो गई होती है कि जिससे आत्मा शरीरसे भिन्न भासता है—ऐसी स्वप्नकी बात कही। अब कहते हैं कि—दिनमें जागृतदशामें तो ज्ञायक आत्मा निराला रहता है, किन्तु रात्रिको निद्रावस्थामें भी आत्मा निराला ही रहता है। स्वप्नमें, ‘भिन्न भासता है’ और नींदमें ‘निराला रहता है’—इसप्रकार ‘भासता है’ और ‘रहता है’ शब्दका प्रयोग किया है। अहा! यह तो सहजरूपसे निकली हुई भाषा है, इसमें एक एक शब्दकी कींमत है।

तीन बात कही : (१) दृष्टिके जोरमें अकेला ज्ञायक ही भासता है, (२) स्वप्नमें भी आत्मा शरीरसे भिन्न भासता है, (३) जाग्रतदशामें तो ज्ञायक निराला रहता ही है परन्तु नींदमें भी आत्मा निराला रहता है। निद्रावस्थामें कहीं आत्माका शरीरके साथ एकत्व नहीं हो जाता। निद्रामें भी ‘मैं निद्रामें हूं’ ऐसा भले ही ज्ञानमें भासित नहीं होता तथापि उस समय भी आत्मा निराला ही रहता है।

‘निराला तो है ही, परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।’

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुस्वभावसे तो आत्मा त्रिकाल निराला है ही, परन्तु पर्यायमें प्रगटरूपसे निराला हो जाता है। भगवान आत्मा द्रव्यस्वभावसे तो मुक्त और अबंधस्वरूप ही है। द्रव्यस्वभावसे निराला तो है ही, परन्तु द्रव्यस्वभावका आश्रय करने पर वह पर्यायमें भी प्रगट निराला हो जाता है। अहा! बहुत ही अच्छी, बहुत मीठी–मधुर भाषा है। अपने आप पढ़ ले तो समझमें आये ऐसा नहीं है।

अहा! एक ही पैरेमें बहुत बातें आ गयी हैं। भाषा गूढ़ और गंभीर है। दृष्टिके जोरमें चैतन्य ही भासता है, दया–दानादि नहीं; भेदज्ञानकी परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है, कि स्वप्नमें भी आत्मा शरीरसे भिन्न भासित होता है; जागृत दशामें भी ज्ञायक पर्यायमें निराला रहता है, परन्तु रात्रिको निद्रावस्थामें भी निराला ही रहता है; फिर कहते हैं कि–आत्मा वस्तुरूपसे निराला तो है ही, परन्तु पर्यायमें भी प्रगट निराला हो जाता है। आया कुछ समझमें? आत्मा रागसे भिन्न भासना, भिन्न रहना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र है। अहा! ऐसी बात है।

'उसको भूमिकानुसार बाह्य प्रवर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोगमें उसकी ज्ञान–वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है।'

प्रश्न :—यदि आत्मा निराला रहता है, तो मुनिको पाँच महाव्रतके विकल्प आते हैं उसका क्या?

उत्तर :—आत्मा श्रद्धा, ज्ञान और आंशिक स्थिरताकी अपेक्षासे निराला रहने पर भी, ज्ञानीको भूमिकानुसार विकल्प तथा बाह्य आचरण होता है, परन्तु चाहे जिस प्रसंगमें उसकी ज्ञान–वैराग्य शक्ति कोई भिन्न ही रहती है।

प्रश्न :—'भूमिकानुसार' क्यों कहा?

उत्तर :—चौथे, पाँचवें और छट्ठें गुणस्थानवर्ती साधक जीवोंको अपनी–अपनी भूमिकानुसार विकल्प और बाह्य वर्तन होता है। चौथे गुणस्थानमें देव–शास्त्र–गुरुके प्रति भक्ति, विनय आदि विकल्प होते हैं, व्रत–तपके नहीं होते; पाँचवें गुणस्थानमें देव–शास्त्र–गुरुके प्रति भक्ति, विनय आदिके उपरान्त अणुव्रतके विकल्प तथा वर्तन होता है; छट्ठे गुणस्थानमें मुनिराजको देव–शास्त्र–गुरुके प्रति भक्ति, विनय आदिके उपरान्त पंचमहाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण आदिके विकल्प तथा तदनुरूप प्रवर्तन होता है; परन्तु किसी भी संयोगमें चौथे, पाँचवे, छट्ठे गुणस्थानमें वर्तते सम्यग्दृष्टिकी सहज ज्ञान–वैराग्यशक्ति कोई अलग ही रहती है। समयसारमें (निर्जरा अधिकार) आता है न! कि—'सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानवैराग्यशक्तिः'—भगवान ज्ञायकका यथार्थ ग्रहण सो ज्ञान और रागादिका अभाव सो वैराग्य। अहा! ज्ञानीकी यह ज्ञान–वैराग्यधारा कोई अलौकिक ही होती है।

'मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय तथापि पृथक् ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है।'

पर्यायमें बाह्य वर्तनके अनुसार विकल्प आते हैं, परन्तु उनके साथ मेरा कभी एकत्व नहीं हुआ, मैं तो स्वभावसे सदा ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ। अज्ञानदशामें भी ज्ञान और राग एक नहीं हुए थे, परन्तु अनादि अभ्यासके कारण 'एक हो गये हैं' ऐसा माना था। वास्तवमें तो स्वभाव और विभाव कभी एक हुए नहीं थे, हुए नहीं हैं और होंगे भी नहीं। ज्ञायकस्वभाव तो सदा पृथक् ही है, चौदह ब्रह्माण्ड पलट जाये तथापि पृथक् ही है।—ज्ञानी धर्मात्माको ऐसा दृढ़ निर्णय होता है। मात्र 'निर्णय' होता है ऐसा नहीं कहा, परन्तु 'अचल' निर्णय होता है, ऐसा कहकर अपने ज्ञायकस्वरूपमें प्रतीतिकी अत्यन्त दृढ़ता कही है। अहा! संक्षेपमें बहुत कह दिया है। यह पुस्तक तो सबके पास पहुँच गई है; अब 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको भेंट भी दी गई है। पढ़ी हो उसे समझनेमें सरलता होगी; उसे ऐसा लगेगा कि स्वयं जो समझ रखा है उसकी अपेक्षा इसमें कुछ और ही निकलता है। ऐसा उसको लगेगा।

'स्वरूप–अनुभवमें अत्यन्त निःशंकता वर्तती है।'

ज्ञानी धर्मात्माको 'मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, शुभाशुभ विभाव और मैं कभी एक हुए ही नहीं' ऐसी भेदज्ञानकी परिणति द्वारा ज्ञान–वैराग्यकी ऐसी कोई अचिन्त्य शक्ति प्रगट हुई है कि जिसके कारण उसकी दशा पर एवं विभावसे भिन्न ही रहती है, और उससे उसे स्वरूप–अनुभवमें अत्यन्त निःशंकता वर्तती है।

'ज्ञायक ऊपर चढ़कर–ऊर्ध्वरूपसे विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है।'

शुभाशुभ राग हो या मतिज्ञानादिकी न्यूनाधिकपर्याय हो, परन्तु ज्ञायक अर्थात् निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्य उनसे भिन्नरूपसे ऊँचे चढ़कर, मुख्य होकर, ऊर्ध्वरूपसे–अधिकरूपसे विराजता है, अन्य सब–गुणभेद, पर्याय अथवा शुभाशुभ विभावादि सब–नीचे रह जाता है, गौण अर्थात् निर्मूल्य तुच्छ हो जाता है। रागके कालमें भी ज्ञायकभाव रागसे भिन्न निराला ही वर्तता है। ज्ञायक 'ऊपर चढ़कर' विराजता है अर्थात् ज्ञायक रागादिसे 'भिन्न' और 'अधिकरूप' वर्तता है। ज्ञायकभाव सदा ऊर्ध्वरूपसे वर्तता है और दूसरा सब–दया, दान, व्रत, तप, पूजा, भक्ति, अरे! पर्यायमात्र तथा गुणभेद भी–नीचे रह गया होता है। अहा! ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है वस्तुस्वरूप। वीतराग सर्वज्ञ परमात्माने जो कहा है वह इसप्रकार है। 'दूसरा सब नीचे रह गया होता है'—उसका अर्थ ऐसा है कि अधिक और परिपूर्ण ऐसा जो ज्ञायकभाव उससे अन्य सब कुछ नीचे अर्थात् भिन्न रह जाता है। ज्ञायक स्वभावको मुख्य कहा तो उसके समक्ष अन्य सर्व भावोंको गौण कहा। ज्ञायककी मुख्यतामें अन्य सर्व भाव गौण हो जाते हैं। शुभाशुभ विभाव, न्यूनाधिक पर्यायें या गुणभेदको गौण करके शुद्ध, परिपूर्ण और अभेद ऐसे निज ज्ञायकभावको दृष्टि तथा ज्ञानमें मुख्यरूपसे ग्रहण करना उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है।

जिनको पूर्ण परमानन्द प्रगट हो गया है ऐसे परमात्मा पुनः अवतार धारण नहीं करते, परन्तु जगतके जीवोंमेंसे कोई जीव उन्नतिक्रमसे चढ़ते-चढ़ते जगद्गुरु 'तीर्थंकर' होता है। जगतके जीवोंमें धर्म प्राप्त करनेकी योग्यताका उदय होता है तब ऐसा उत्कृष्ट निमित्त भी तैयार होता है।

जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बँध हो वह शुभभाव भी आत्माको (वीतरागता) लाभ नहीं करता। वह शुभ राग टूटेगा तब भविष्यमें वीतरागता और केवलज्ञान होगा।

—पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१५७

दिनांक २१-११-७८

वचनामृत–३९०

मुनिराज समाधिपरिणत हैं। वे ज्ञायकका अवलम्बन लेकर विशेष–विशेष समाधिसुख प्रगट करनेको उत्सुक हैं। मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि 'सकलविमल केवलज्ञानदर्शनके लोलुप' हैं। स्वरूपमें कब ऐसी स्थिरता होगी जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी? कब ऐसा अवसर आयगा जब स्वरूपमें उग्र रमणता होगी और आत्माका परिपूर्ण स्वभावज्ञान–केवलज्ञान प्रगट होगा? कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें ही रह जायगा? ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है। आत्माके आश्रयसे एकाग्रता करते–करते वे केवलज्ञानके समीप जा रहे हैं। प्रचुर शान्तिका वेदन होता है। कषाय बहुत मन्द हो गये हैं। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ–चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है। 'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिये। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिये। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिये कि जिसके परिणामसे असंख्य प्रदेशोंमें प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्यायसे प्रगट हो, चैतन्यका पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावनाको मुनिराज आत्मामें अत्यन्त लीनता द्वारा सफल कहते हैं।।३९०।।

'मुनिराज समाधिपरिणत हैं।'

निज शुद्धात्मद्रव्यस्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होने पर प्रथम शुद्धोपयोग होता है। उपयोगके तीन भेद हैं—शुभ, अशुभ और शुद्ध। शुभ और अशुभ—यह दोनों उपयोग रागस्वरूप होनेसे आस्रव–बन्धका कारण हैं और शुद्ध–उपयोग अरागस्वरूप होनेसे संवर–निर्जराका कारण है। चतुर्थगुणस्थान अर्थात् सम्यग्दर्शन तो निज शुद्ध चैतन्यघन ज्ञायकवस्तुको शुद्धोपयोगपूर्वक ग्रहण करनेसे, प्रतीतिमें लेनेसे, प्रगट होता है। ३८९वें बोलमें आ गया है न! कि—सम्यग्दर्शनमें 'ज्ञायक ऊँचे चढ़कर–ऊर्ध्वरूपसे विराजता है, दूसरा सब नीचे रह गया होता है।' पर्यायमें अस्थिरताजनित रागादि होते हैं, परन्तु वे सदा गौणरूप रहते हैं, आत्मा ही सदा ऊर्ध्वरूपसे रहता है, रागादि अन्य सब नीचे रह जाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति सहित आत्माके अवलम्बनसे अंतरमें विशेष स्वरूपस्थिरता प्रगट होने पर मुनिपना प्रगट होता है। अहा! मुनिराज तो समाधिपरिणत होते हैं। आधि, व्याधि और उपाधिसे त्रिकाल मुक्त, शान्त एवं वीतराग समाधिस्वरूप निज ज्ञायकस्वभावके आश्रयरूप परिणतिमें आधि, व्याधि और उपाधिरहित जो निराकुल शान्त और वीतरागदशा हुई उसे 'समाधि' कहते हैं। अन्यमती साधु-बाबा कहते हैं वह कोई समाधि नहीं है। आत्माकी प्रतीतिके बिना समाधि कैसी? मनमें होनेवाले संकल्प-विकल्प वह आधि, शरीरमें होनेवाले रोग वह व्याधि और स्त्री-पुत्र अथवा व्यापार-धन्धेका जंजाल वह उपाधि—इन तीनोंसे रहित आत्माकी जो आनन्दमय दशा वह समाधि। मुनिराज ऐसी समाधिरूप परिणत हैं। बाहरसे मात्र नग्नपना या पंचमहाव्रतादिके शुभपरिणाम वह कोई परमार्थ मुनिपना नहीं है। जो सहजरूपसे समाधिपरिणत हों वे ही मुनि कहलाते हैं।

'वे ज्ञायकका अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करनेको उत्सुक हैं।'

मुनिराज समाधिपरिणत तो हैं, परन्तु सनातन शुद्ध निज ज्ञायक द्रव्यसामान्यका अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करनेके लिये वे अति आतुर हैं। जैसे पाँच लाखका आसामी पच्चीस लाख कमानेकी भावना करे, वैसे ही मुनिराज निजज्ञायकके उग्र अवलम्बनसे प्रचुर समाधिसुख प्रगट करनेको अति उत्सुक हैं।

''मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि 'सकलविमल केवलज्ञानदर्शनके लोलुप' हैं।''

अज्ञानी मनुष्य पैसा, प्रतिष्ठा और वैभवका लोलुपी-तृष्णातुर होता है, धर्मी जीव आत्मसाधनाके लोलुपी-आसक्तिवान हैं। मुनिराज तो विशेष आत्मसाधनाके लोलुपी अर्थात् परिपूर्ण निर्मल केवलज्ञान तथा केवलदर्शनादि अनंत क्षायिक लब्धियाँ प्रगट करनेके लोलुपी हैं।

मुनिराज निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावका अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करनेको अति आतुर हैं। पर्याय-अपेक्षासे अभी जो राग-द्वेषरूप असमाधि है वह कहीं चारित्रमोहनीय कर्मके कारण नहीं है, अपनी निर्बलतासे है। जड़कर्मका तो आत्मामें अभाव है; आत्मा और कर्म दोनों बिलकुल पृथक् हैं; सब द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायोंको चूमते हैं, परस्पर एक-दूसरेके गुण-पर्यायको कभी नहीं चूमते। अनुकूल तथा अनुरूपपनेका परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पर्याय-अपेक्षासे होने पर भी वे एक-दूसरेमें जबरदस्ती कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते। राग-द्वेषरूप असमाधिके परिणाम अपनी परिणतिमें जीव स्वयं स्वतंत्ररूपसे करता है, कर्मकी जबरदस्तीसे नहीं। जड़कर्मका सम्बन्ध तो द्रव्यसंसार है, भावसंसार तो कर्मोदयके अनुरूप होनेवाली आत्माकी अमूर्तिक विकारी पर्याय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवको संसारसे मुक्त होनेकी अभिलाषा होती है, परन्तु संसार कहना किसे? क्या स्त्री, पुत्र और परिवार ही संसार है? क्या उनसे मुक्त होना है? मरने पर तो वह सब अज्ञानी जीवको भी छूट जाता है, तो उसे जीवकी मुक्ति हुई कहा जाय? वास्तवमें यह संसार है ही नहीं; संसार तो जीवकी अपनी मोह-राग-द्वेषमय विभावपरिणति है; उसका अभाव होने पर जीवकी मुक्ति होती है। स्वभावसे तो जीव कर्मसे और विभावसे सदा मुक्त ही है, परन्तु पर्यायमें अपने अपराधसे जो विकृति हुई है उससे, स्वभावका आश्रय लेकर मुक्त होना है।

प्रश्न :—कर्म और आत्माका कितना सम्बन्ध है?

उत्तर :—परमार्थसे कोई सम्बन्ध नहीं है। कर्मका सब—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग आदि सब—कर्ममें है और आत्माका सब-गुण, स्वभावपर्याय, विकारी पर्याय आदि सब-आत्मामें हैं। जिसप्रकार कर्ममें उसके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग आदि हैं, वैसे ही उन प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभागके अनुरूप योग्यता-विभाव परिणमन-जीवमें है। जीवकी वह योग्यता जीवके अपने कारण है, कर्मके कारण नहीं; क्योंकि एक द्रव्यके परिणाम अन्य द्रव्यके परिणामोंको स्पर्श नहीं करते, प्रत्येक द्रव्य अपने ही परिणामोंको चूमता है।

मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप जो भाव है वही असमाधि, दुःख और संसार है। स्वके आलम्बनसे भ्रान्तिका नाश करके जिसने सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी कषायके अभावस्वरूप स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट किया वह मिथ्यात्वरूपी संसारसे मुक्त हो गया। स्वरूपमें स्थिरतारूप पूर्व चारित्र प्रगट होनेसे वह अचारित्ररूप संसारसे मुक्त होता है। मुनिराज तो, विकारसे अति भिन्न हो गये हैं इसलिये, प्रचुररूपसे समाधिपरिणत हैं, मिथ्यात्व और अविरतिरूप संसारसे मुक्त हो गये हैं। जितना असमाधिका नाश हुआ उतनी समाधि प्रगट हुई है। 'लोगस्स'के पाठमें आता है न! कि—'समाहिवर मुक्तमं दिन्तु'; वह कौनसी समाधि? ज्ञायक आत्मामें शक्तिरूपसे जो आनन्द, शान्ति और समाधि भरी पड़ी है, उसके अवलम्बनसे पर्यायमें जो आनन्द एवं शान्तिरूप निर्मलता प्रगट हो उसे समाधि कहते हैं। जिसप्रकार लड्डुओंके भोजनसे लोगोंको तृप्ति होती है, वैसे ही साधक जीवको अंतरमें स्वभावके आश्रयसे आनन्दके भोजनरूप समाधिसे तृप्ति होती है। समाधिपरिणत मुनिवर तो निज ज्ञायकके उग्र अवलम्बन द्वारा विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करनेके लिये अत्यन्त लालायित हैं, सकलविमल केवलज्ञान दर्शनके लोलुपी हैं।

" 'स्वरूपमें कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी? कब ऐसा अवसर आयगा, जब स्वरूपमें उग्र रमणता होगी और आत्माका परिपूर्ण स्वभावज्ञान-केवलज्ञान प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होगा? कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें ही रह जायगा?' ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है।''

मुनिराज अभी साधकदशामें–अपूर्ण शान्ति एवं समाधिमें–वर्त रहे हैं, परन्तु स्वरूपस्थिरता उग्र करके पूर्व परमात्म दशा प्रगट करने हेतु वे अति उत्सुक हैं, लालायित हैं। अहा! देखो यह मुनिदशा! अनाकुल आनन्दके सागरस्वरूप ज्ञायकप्रभुमें—निज चैतन्यस्वरूपमें–ऐसी अति प्रचुर स्थिरता कब होगी कि जिससे श्रेणी लगाकर पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हो? मुनिराजको तीन कषायके अभाव जितनी स्वरूपस्थिरता तो है, परन्तु पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हो ऐसी धारावाही शुद्धिकी श्रेणीके कारण स्वरूप उग्र स्वरूपस्थिरता कब होगी? जिसके फलमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्य आदि क्षायिक लब्धियाँ प्रगट हों ऐसी बारहवें गुणस्थानकी पूर्ण वीतरागता, निजज्ञायक स्वरूपमें उग्र स्थिति होकर, कब प्रगट होगी? ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है। मुनिराज कहते हैं कि–हमारा आत्मा अनन्तगुण से भरपूर अनन्त अमृतरससे भरपूर, अक्षय घट है। उस घटकी पतली धारसे अल्प अमृतका पान हो ऐसे स्वसंवेदनसे हमें सन्तोष नहीं होता। हमें तो ऐसी पूर्ण दशा चाहिये कि प्रतिसमय पूर्ण अमृतका पान करते रहें। कब प्रगट होगी ऐसी पूर्ण दशा?—ऐसी भावनाके समय भी मुनिराजकी दृष्टि तो सदा शुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।

अहा! वीतरागता ही मोक्षका मार्ग है। जीवका निज स्वरूप वीतराग है, वीतराग है, वीतराग है—ऐसा जो बारम्बार कहते हैं, वही गुरु पदवीको शोभा देता है, वही मुनिराजका उपदेश है। व्रतादिका—व्यवहारका—जो उपदेश है वह तो भूमिकानुसार कैसा राग तथा कैसा आचरण होता है उसका ज्ञान करानेके लिये है, परन्तु प्रगट करने योग्य तो त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे होनेवाली वीतरागता ही है। चौथे, पाँचवें और छठवें गुणस्थानमें भूमिकानुसार व्यवहारका विकल्प होने पर भी अंतरमें अपनी–अपनी दशाके अनुसार सम्यग्दर्शन–ज्ञान तथा अंशतः स्वरूपस्थिरतारूप वीतरागता होती है। वीतरागी साधनारूप परिणत मुनिराज सकल विमल केवलज्ञानदर्शनके लोलुपी हैं। व्रत, तप, भक्ति, स्वाध्यायादि विकल्पोंके लोलुपी नहीं है, ज्ञाता हैं और ज्ञानकी–साधनाकी–पर्यायको पूर्ण करनेके लोलुपी हैं। सहज ज्ञानसागर निजज्ञायक वस्तुके आलम्बनसे अंतरमें–पर्यायमें–ज्वार आया है, सम्यक् मति–श्रुतज्ञानकी मौजें उछल रही हैं, परन्तु प्रतिसमयमें परिपूर्ण ऐसा जो केवलज्ञान, उसके मुनिराज अभिलाषी हैं। अहा! ऐसी स्वरूपस्थिरता कब होगी कि श्रेणी लगकर पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हो? कब ऐसा अपूर्व अवसर आये कि सहजस्वरूपमें उग्र रमणता हो और आत्माका परिपूर्ण स्वभावज्ञान–क्षायिक केवलज्ञान प्रगट हो? ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है। शास्त्रोंमें आता है न! कि—व्रतोंकी रक्षा हेतु पाँच–पाँच भावनाएँ—पाँच महाव्रतोंकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पच्चीस–भावनाएँ करना; परन्तु वे तो भूमिकानुसार, अशुभभावोंसे बचनेके लिये, शुभ विकल्पकी बात है; वास्तवमें तो अवयवरूप सम्यक्मति–श्रुतज्ञानरूपसे परिणत मुनिराजको सहजस्वरूपमें उग्र रमणता साधकर अवयवी ऐसा पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करनेकी लोलुपता–आतुरता है। मति–श्रुतज्ञान वह अंश है और केवलज्ञान वह अंशी है। पूर्ण अंशीको प्राप्त करनेकी मुनिराजको अभिलाषा है। अहा! ऐसी बात है। आया कुछ समझमें?

जैन मुनिदशा वह कोई अलौकिक वस्तु है; वह दशा कहीं मात्र शुभ विकल्पमें या बाह्य क्रियाकाण्डमें नहीं है। वनमें वास करना, नग्नरूपसे रहना, एक–एक महिनेके उपवास करना वह कोई अंतरंग मुनिदशा नहीं है। मुनिराज तो भीतर अपने स्वरूपमें निवास करते हैं, जंगलमें रहते हैं ऐसा कहना वह तो बाह्य व्यवहार है; वे तो अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका आहार करते हैं। रोटीके त्यागरूप उपवासी कहना वह तो व्यवहारका कथन है। मुनिराजको तो सहज ज्ञानानन्दस्वरूपमें उग्र रमणता द्वारा क्षायिक ज्ञान–केवलज्ञान प्रगट करनेकी भावना वर्तती है।

कब ऐसा परम ध्यान लगेगा कि आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें ही रह जाय?—ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है। सहज ज्ञानस्वरूप तथा सहज आनन्दस्वरूप ऐसा निज भगवान आत्मा जहाँ दृष्टि एवं ज्ञानपूर्वक अनुभवमें आया, उसके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाले अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः स्वाद आया, वहाँ वह पूर्णानन्दका नाथ पर्यायमें पूर्णानन्दरूपसे कब प्रगट होगा, पूर्णानन्दके साधनरूप वह परम ध्यान कब लगेगा कि जिससे आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें ही रह जाय,—ऐसी भावना मुनियोंको होती है।

दुनियाको मैं समझाऊँ, दुनिया मुझसे समझे, मैं कब शास्त्रोंकी रचना करूँ? आदि भावना मुनिराजको नहीं होती, अरे! विकल्पमात्रकी या अपूर्णदशाकी भावना भी उनको नहीं होती; उनको ऐसी भावना रहती है कि कब ऐसा परम ध्यान लगेगा कि जिससे आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें—सादि अनन्त–अनन्त समाधिसुखमें–समा जाय? नियमसारके टीकाकार श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवने टीकाके प्रारम्भमें कहा है न! कि–गुणोंके धारी गणधरों द्वारा रचित और श्रुतधरोंकी परम्पराके भलीभाँति व्यक्त किये गये इस परमागमके अर्थसमूहका कथन करनेवाले हम मन्दबुद्धि कौन होते हैं? तथापि अभी हमारा मन परमागमके सारकी पुष्ट रुचिसे पुनः पुनः अत्यन्त प्रेरित होता है। उस रुचिसे प्रेरित होनेके कारण 'तात्पर्यवृत्ति' नामकी यह टीका रची जा रही है। टीकाकार मुनिराज कहते हैं कि नियमसारमें प्ररूपित गूढ़ भाव तो गणधरों तथा श्रुतधरोंकी परम्परासे चले आ रहे हैं; उन भावोंको टीकामें भरनेवाले हम मन्दबुद्धि कौन होते हैं? अहा! जिन्होंने पंचम परमपारिणामिकभाव–त्रिकालशुद्ध कारणपरमात्मा–टीकामें खूब गाया है, वे टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव अपनी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लघुता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि नियमसारकी टीका रचनेवाले हम मन्दबुद्धि कौन होते हैं? उन्होंने परमपारिणामिकभावको 'स्वभाव'रूपमें ऐसा दीपित किया है, जमाया है, शोभित किया है, कि उसके समक्ष क्षायिकभावरूप पूर्ण पर्याय भी 'परभाव' है। शुद्ध निश्चयनयसे औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिक—यह चारों भाव परभाव हैं, एक परमपारिणामिकभाव ही आश्रय करने योग्य होनेसे, स्वभाव है। ज्ञानीको आलम्बनरूपसे क्षायिक भावरूप पूर्ण पर्यायकी भावना नहीं है; क्योंकि क्षायिकभावरूप पर्यायके अवलम्बनसे नवीन निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। जिसमें अनन्तानन्त गुणरत्न भरे पड़े हैं ऐसे त्रिकालशुद्ध परम पारिणामिकभावस्वरूप भगवान ज्ञायक आत्माके अवलम्बनसे, उसके आश्रयसे, उसकी भावनासे मोक्षमार्ग तथा मोक्षमार्गरूप निर्मल पर्याय प्रगट होती है। ज्ञानी ऐसा भाता है कि—'जो सकलनिरावरण–अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर–शुद्धपारिणामिकपरम-भावलक्षण निज परमात्म द्रव्य वही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ'। अरे! व्यवहार–रत्नत्रयके शुभरागकी भावना तो नहीं, परन्तु सम्यक्त्वका जो क्षायिकभाव प्रगट हुआ उसकी भावना नहीं, क्योंकि वह तो पर्यायकी भावना है; पर्यायकी भावनासे क्या होगा? त्रैकालिक परमभावकी भावनासे, उसके अवलम्बनसे ही धर्मकी समस्त पर्यायें प्रगट होती हैं। यहाँ तो यह बात चलती है कि—'कब स्वरूपमें ऐसी लीनता हो कि श्रेणी लगकर पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हो? कब ऐसा अवसर आये कि स्वरूपमें उग्र रमणता हो और आत्माका परिपूर्ण स्वभावज्ञान–केवलज्ञान प्रगट हो? कब ऐसा परम ध्यान लगे कि आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें ही समा जाय?'—ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है।

'आत्माके आश्रयसे एकाग्रता करते–करते वे केवलज्ञानके समीप जा रहे हैं।'

परमज्ञायकभावरूप आत्माके आश्रयसे—प्रगट हुई निर्मल पर्यायके आश्रयसे नहीं—एकाग्रता करते–करते श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्य आदि मुनिवर केवलज्ञानके समीप जा रहे हैं। अहा! पंचमकालके संत भी ऐसी भावना करते हैं। यह तो पंचमकालके मुनियोंकी बात है न? सच्चे वीतरागी संत ऐसी भावना करते–करते केवलज्ञानके समीप जा रहे हैं।

'प्रचुर शान्तिका वेदन होता है।'

प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिराजका निजवैभव है। निरन्तर जिसका आस्वादन हो रहा है ऐसा सुन्दर जो अतीन्द्रिय आत्मिक आनन्द उसकी मुद्रावाला जो प्रचुर संवेदनस्वरूप स्वसंवेदन वही मुनिराजका अंतरंग लक्षण है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा श्री जिनेन्द्रदेवके पथ पर चलनेवाले मुनि वे कहलाते हैं, कि जिनको स्वभावके आलम्बनसे परिणतिमें प्रचुर शान्तिका वेदन हो। अरे! वर्तमानमें तो कितने ही नामधारी दिगम्बर साधु भी ऐसा कहते हैं, कि छठवें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुणस्थानतक अकेला शुभराग अर्थात् व्यवहार ही होता है; तो क्या चौथे, पाँचवें और छठवें गुणस्थानमें अंतरस्वभावके आश्रयसे प्रगट होती शुद्धिरूप निश्चयपरिणति नहीं है? यदि निश्चय परिणति नहीं है तो धर्म काहेका? श्रद्धागुणकी सम्यग्दर्शनरूप निश्चयपरिणति तो चौथेगुणस्थानमें प्रारम्भ हो जाती है, उसकी क्षायिकरूप पूर्णता भी कितने ही जीवोंको वहीं हो जाती है। मुनिराजको तो सम्यक् श्रद्धा और ज्ञानके अतिरिक्त स्वरूपस्थिरता भी खूब बढ़ गई है, इसलिये उनको अंतरंगमें प्रचुर शान्तिका वेदन होता है।

'कषाय बहुत मन्द हो गये हैं।'

मुनिराजको त्रिकालशुद्ध अकषायस्वभावी ज्ञायकतत्त्वके—श्रद्धान, ज्ञान तथा स्थिरताभावके—प्रचुर अवलम्बनसे अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय सम्बन्धी कषायोंकी तीन चौकड़ीका अभाव तो हो गया होता है और संज्वलन कषायका उदय वर्तता है, परन्तु वह भी अति मन्द। पंचमहाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुणके जो विकल्प आते हैं उनके भी वे ज्ञाता हैं, कर्ता नहीं हैं। प्रचुर स्वसंवेदनके कारण, कषायें अत्यन्त मन्द हो गई हैं।

'कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं, परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है।'

किन्हीं-किन्हीं मुनिराजको शुद्धात्मसाधनाकी पवित्रताके साथ कदाचित् कोई ऋद्धि-लब्धि-चमत्कार भी प्रगट हो जाता है। आहारग्रहणके अवसर पर श्रावकके घर थालीमें रखे हुए दो लड्डुओं पर मुनिराजकी दृष्टि पड़े तो उनकी लब्धिके प्रतापसे चक्रवर्तीकी सारी सेना खा ले तथापि लड्डू कम न हों—ऐसी मुनिराजको ऋद्धि प्रगट हुई हो, परन्तु उनका उसके प्रति लक्ष नहीं है। विष्णुकुमार मुनिराजको विराट और वामनरूप धारण करनेकी ऋद्धि प्रगट हुई थी, परन्तु उन्हें स्वयंको खबर नहीं थी। हस्तिनापुरके उपवनमें अकम्पनाचार्य आदि सातसौ मुनिवरों पर बलिराजाने अग्निका उपसर्ग किया। दूरवर्ती क्षेत्रस्थित किन्हीं मुनिराजको अपने अवधिज्ञानके द्वारा उसका ख्याल आया। उन्होंने पुष्पदन्त क्षुल्लकको विष्णुकुमार मुनिराजके पास भेजा कि वे अपनी ऋद्धिके द्वारा इस महान अनर्थको रोकें। विष्णुकुमार मुनि तो अपनी स्वरूपसाधनामें मग्न थे, अपनेको प्रगट हुई लब्धिकी भी उन्हें खबर नहीं थी। क्षुल्लकने कहा—प्रभो! आपको छोटा-बड़ारूप धारण करनेकी लब्धि प्रगट हुई है। आप अपना हाथ लम्बा कीजिये। विष्णुकुमारने हाथ लम्बा किया तो मानुषोत्तर पर्वत तक पहुँच गया। अहा! मुनिराजको आत्माके ज्ञानानन्दमय चैतन्यचमत्कारके समक्ष बाह्य चमत्कारोंके प्रति किंचित् लक्ष नहीं है। जो चमत्कार प्रगट हुआ उसे दुनियाको बतलाऊँ तो मुझे सम्मान मिले, मेरी प्रसिद्धि हो, लोग मेरी पूजा करें—ऐसी हीन भावना तो दूर रही, परन्तु जो ऋद्धि या चमत्कार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट हुआ हो उसके प्रति लक्ष ही नहीं है। उनको तो एकमात्र केवलज्ञान और पूर्णानन्दस्वरूप अंतरंग स्वभावऋद्धि शीघ्र प्रगट करनेकी भावना है।

'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिये। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिये। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिये कि जिसके परिणामसे असंख्य प्रदेशोंमें प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्यायसे प्रगट हो, चैतन्यका पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावनाको मुनिराज आत्मामें अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं।

मुनिराजको ऐसी लब्धि प्रगट हो कि उनके शरीरका स्पर्श करके आयी हुई वायु रोगीके शरीरको छू ले तो उसका चाहे जितना भयंकर असाध्य रोग मिट जाय; परन्तु उससे क्या? वह तो पुण्यप्रकृतिका फल है, उसमें आत्मा कहाँ आया? मुनिराज कहते हैं—हमें यह बाहरी चमत्कार नहीं चाहिये; हमें तो पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यचमत्कारकी आवश्यकता है। केवलज्ञानके लोलुपीको ऐसे बाह्य चमत्कारोंसे क्या साध्य है? मुझे अभी बहुत मार्ग काटना है, इसलिये मैं ऐसे चमत्कारोंमें नहीं रुकूँगा। अपने गाँव जानेवाले यात्रीको कोई अच्छा स्वागत-सन्मान करके रोकना चाहे तो वह रुकता नहीं है, अँधेरा होने से पहले वह अपने गाँव पहुँच जाता है; वैसे ही मुनिराज, मोक्षमार्गमें प्रयाण करते हुए मार्गमें बीचमें अनेक लब्धियाँ प्रगट हों तब भी उनमें रुकते नहीं हैं, शेष बचा मार्ग काटकर शीघ्र केवलज्ञानमें-मोक्षनगरीमें-पहुँच जाते हैं। हमारा आत्मा पूर्णानन्दसे भरपूर है; वह पर्यायमें प्रगटरूपसे पूर्णानन्द प्राप्त करे—यही हमारा चैतन्यचमत्कार है। मुनिराज ऐसी भावना भाते हैं कि—हमें अंतरमें जो वीतराग शिक्षण चल रहा है, वह वृद्धिगत होकर पूर्ण वीतरागरूप हो जाओ!

उसके साधनरूपसे, ऐसा ध्यान-पूर्णानन्द ज्ञायकमें लीनता-होना चाहिये कि जिसके परिणामरूप आत्माके प्रत्येक प्रदेशमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि परिपूर्ण गुणपर्यायें प्रगट हों। केवलज्ञान एवं पूर्णानन्द आदि पूर्ण पर्यायें प्रगट करनेका साधन क्या? पंचमहाव्रतादि विकल्प या दृढ़ संहनन आदि पर वस्तुएँ साधन नहीं हैं, परन्तु निजशुद्धात्माके अवलम्बनसे प्रगट हुई स्वरूपलीनता, स्वरूपमग्नतारूप ध्यान, निर्विकल्प स्थिरता, स्वरूपसमाधि वह केवलज्ञानादि पूर्ण चैतन्यऋद्धियाँ प्रगट होनेका साधन है। केवलज्ञान एवं पूर्णानन्दस्वरूप चैतन्यचमत्कार प्रगट होनेके साधनरूपसे ऐसी समाधि चाहिये कि जिसके परिणाममें निज असंख्य प्रदेशोंमें परमानन्दका सुकाल हो जाय, सर्वगुण अपनी-अपनी परिपूर्ण पर्यायसे विकसित हो उठें। इस भावनाको मुनिराज आत्मामें अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं। अहाहा! भाषा तो देखो! कितनी सरल, सरस और सुगम है!

मुनिराज भावना करते हैं कि—केवलज्ञानादि पूर्णदशाके साधनरूपसे ऐसा ध्यान-ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्विकल्पता–ऐसी समाधि चाहिये, कि जिससे असंख्य प्रदेशोंमें प्रत्येक गुण उसकी पूर्ण पर्यायसे प्रगट हो। अहा! जीवके असंख्य प्रदेश भी सिद्ध किये; असंख्य प्रदेशोंकी बात वीतरागसर्वज्ञके सिवा अन्यत्र कहीं है ही नहीं। आत्माके असंख्यप्रदेशोंमें उसका प्रत्येक गुण व्याप्त होता है। ध्यानके परिणामरूपी असंख्य प्रदेशोंमें सर्वगुण अपनी–अपनी परिपूर्ण पर्यायरूपसे–परिपूर्ण विकसित होकर–प्रगट होओ। ऐसा कहकर जीवको असंख्यप्रदेशी 'द्रव्य' सिद्ध किया। असंख्यप्रदेशमें प्रत्येकगुण उसकी परिपूर्ण पर्यायसे प्रगट हो—ऐसा कहकर यह सिद्ध करना है कि एकगुणकी पर्यायके परिपूर्ण परिणमनमें अन्य गुणकी पर्यायका पूर्ण परिणमन साधन नहीं है, परन्तु अनन्त गुण स्वयं अपनी–अपनी पूर्ण पर्यायसे प्रगट होते हैं। ऐसी पूर्णदशा प्रगट करनेकी मुनिराजकी भावना होती है।

प्रत्येक गुण पर्यायमें पूर्ण प्रगट होओ–ऐसी मुनिराजकी भावना होती है। प्रत्येक गुण पर्यायमें अंशतः तो चौथे गुणस्थानसे प्रगट होता है, मुनिराजको तो उसके बहुत अंश प्रगट हुए हैं—पर्यायमें प्रगट हुए हैं हाँ! 'श्रीमद्' में आता है न! कि—'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'। पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें कहा है कि 'चौथे गुणस्थानमें ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट होते हैं'। प्रत्येक गुण पर्यायमें पूर्ण प्रगट हो' उसका अर्थ यह कि 'चैतन्यका पूर्ण विलास प्रगट हो'। क्या कहा? कि—असंख्यप्रदेशी भगवान आत्मा जो ज्ञानादि अनन्त गुणोंसे भरा है उसका पूर्ण विलास प्रगट हो। अहा! पंचम कालके संत भी ऐसी भावनावाले होते हैं।

इस भावनाको मुनिराज आत्मामें अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं। मुनिराजको आत्मामें लीनता तो है, परन्तु उसमें अत्यन्त लीनता करके वे भावनाको सफल करते हैं। अहा! कितने सरस पैरे हैं! मुनिराज आत्मामें लीनता द्वारा अपनी भावनाको सफल करते हैं, किसी निमित्त या राग द्वारा नहीं। अहा! ऐसी बात है! इसे सिद्धान्त कहा जाता है।

......क्रियाकाण्ड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शनादिके स्वरूपका निर्णय करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे विशेष स्वरूपरमणता वह मुनिमार्ग है। साथमें वर्तते हुए बाह्य व्रत–नियम तो अपूर्णताकी—कचासकी प्रगटता है। अरेरे! मोक्षमार्गकी मूल बातमें इतना अधिक अंतर आ गया है। *—पूज्य गुरुदेवश्री*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१५८

दिनांक २२-११-७८

वचनामृत–३९१

अज्ञानीने अनादि कालसे अनन्त ज्ञान–आनन्दादि समृद्धिसे भरे हुए निज चैतन्यमहलको ताले लगा दिये हैं और स्वयं बाहर भटकता रहता है। ज्ञान बाहरसे ढूँढ़ता है, आनन्द बाहरसे ढूँढ़ता है, सब कुछ बाहरसे ढूँढ़ता है। स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है।

ज्ञानीने चैतन्यमहलके ताले खोल दिये हैं। अंतरमें ज्ञान–आनन्दादिकी अखूट समृद्धि देखकर, और थोड़ी भोगकर, पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था ऐसी विश्रान्ति उसे हो गई है॥३९१॥

'अज्ञानीने अनादि कालसे अनन्त ज्ञान–आनन्दादि समृद्धिसे भरे हुए निज चैतन्यमहलको ताले लगा दिये हैं और स्वयं बाहर भटकता रहता है।'

अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि अनन्त समृद्धिसे भरपूर निज चैतन्यमहलको अज्ञानीने अनादि कालसे ताले लगा रखे हैं। रागका कण, दया–दानादि शुभभावका अंश मेरा है—ऐसी जिसकी दृष्टि है उसने रागादिसे भिन्न, ज्ञानादि अनन्त गुणोंसे भरे हुए चैतन्यमहलको–भगवान आत्माको—ताले लगा दिये हैं। रागका सूक्ष्म कण–गुणगुणीके भेदका विकल्प आये यह भी राग है–वह वास्तवमें आत्माका स्वभाव नहीं है, पुद्गलके सम्बन्धसे होनेके कारण, पौद्गलिक है। उसकी जिसने एकता–त्रैकालिक स्वभावके साथ रागकी एकताबुद्धि—की है उसने आनन्दादि निज समृद्धिसे भरपूर चैतन्यमहलको ताले लगा दिये हैं।

अहा! वस्तु है सम्पूर्ण, पूर्णानन्द और अनन्त ज्ञानादि स्वभावोंसे—समृद्धिसे भरपूर। 'आदि' शब्दसे ज्ञान और आनन्दके साथ श्रद्धा, वीर्य, दर्शन, प्रभुत्व आदि अनन्त गुण लेना। ऐसे वैभवसे भरे हुए निज आत्म-महलमें भीतर प्रवेश करना चाहिये, उसके बदले ताले लगा रखे हैं। अरे, प्रभु! यह क्या करता है?......बड़े संक्षिप्त वाक्य हैं बहिनके, परन्तु हैं अत्यन्त गूढ़।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कुछ दिन पहले भावनगरके कॉलेजमें 'अर्धमागधी' पढ़ानेवाले प्रोफेसरका पत्र आया था, उसमें लिखा है कि 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक पढ़ी; उसमें तो अकेले रत्न हीं भरे हैं। पुस्तक पढ़कर वे अत्यन्त उल्लसित हुए हैं। जातिके ब्राह्मण हैं, जैनेतर हैं। वे लिखते हैं कि—अब मैं वचनामृतमें कहे अनुसार अपने आत्माको उज्ज्वल बनानेका प्रयत्न करूँगा। अहा! बहिनकी यह पुस्तक बहुत ही अच्छी है। जो पढ़ेंगे, समझेंगे उन्हें लाभका कारण होगी।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि—प्रभो! जो तेरा तत्त्व है उसमें न जाकर, राग, पुण्य-पाप तथा बाह्यमें एकत्वबुद्धि-स्वभावकी एकता तोड़कर रागकी एकता-की। अहा! उस अनन्तानन्त गुणोंसे भरपूर भगवानको तूने ताला लगा रखा है, प्रभु! भले ही ग्यारह अंग और नव पूर्व पढ़ा होय,-ग्यारह अंगमें तो अरबों श्लोक आते हैं—परन्तु उस पढ़े हुए ज्ञानकी पर्याय है परलक्षी। उसमें जो लीन है उसने चैतन्यकी समृद्धिको ताले लगाये हैं। राग और परलक्षी ज्ञानकी जिसे महिमा है उसने अनन्त समृद्धिसे भरपूर प्रभुको मजबूत तालेमें बन्द कर रखा है। अहाहा! ऐसी बात है! परन्तु कही है बहुत संक्षेपमें!

गुणसमृद्धिसे भरे हुए निज आत्ममहलमें ताले लगाकर स्वयं बाहर भटकता रहता है। यह शुभ विकल्प और यह अशुभ विकल्प, यह अच्छा और यह बुरा—इसप्रकार शुभाशुभ भावमें शान्तिकी खोज कर रहा है। अनन्तानन्त विभूतियोंसे भरपूर अपने भगवानके सन्मुख न जाकर, उससे विमुख होकर शुभरागमें तथा शास्त्रज्ञानमें—मानों इनमें कुछ है ऐसा मानकर, बाह्यमें-भटक रहा है। अरे! वह आवारा हो गया है।

'ज्ञान बाहरसे ढूँढ़ता है, आनन्द बाहरसे ढूँढ़ता है, सब कुछ बाहरसे ढूँढ़ता है।'

स्वयं ज्ञानस्वरूपी भगवान है वहाँ न जाकर मानों ज्ञान बाहरसे आता हो-शास्त्र सुननेसे और पढ़नेसे-ऐसे भावका वेदन करता है, उस बहिर्लक्षी ज्ञानको वास्तवमें ज्ञान नहीं कहते। अंतरंग स्वभावसे आये उसे ज्ञान कहा जाता है।

स्वयं महाप्रभु ज्ञान-आनन्दादि अनन्तगुणोंकी समृद्धिसे भरा हुआ भगवान है, उसे नहीं देखता और विकल्पके जालमें फँसकर बाह्य ज्ञान तथा रागको देखता है-बाहर भटकता रहता है। यह तो मुख्य रकम है। बात सूक्ष्म लगेगी, भाई! कुछ समझमें आता है? प्रभु! तू महाप्रभु है! उस प्रभुताको तूने तालेमें बन्द कर रखा है और पामर ऐसे राग तथा पर्यायको महत्ता दे रखी है।

अब, 'स्वयं बाहर भटकता फिरता है' उसकी व्याख्या-ज्ञानको बाहरसे ढूँढ़ता है। सारी भाषामें बात कही है—(१) भीतर प्रभुताको ताला लगा रखा है और (२) ज्ञानको बाहर ढूँढ़ता है। बाहर अर्थात् क्या? ज्ञानको बाहर ढूँढ़ता है; ऐसा मानता है कि खूब पढ़ूँगा और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुनूँगा तो मुझे ज्ञान होगा; परन्तु भाई! ज्ञान तो अंतरमें–स्वभावमें है, उसमें एकाग्र होनेसे जो ज्ञान आये वह 'ज्ञान' है; उसके बदले बाह्यमें—मानों ज्ञान यहाँसे होगा, राग मन्द करूँगा तो ज्ञान होगा, इसप्रकार परमें–ढूँढ़ता है। निगोद गतिमें अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञान है; वह वहाँसे निकलकर मनुष्य होकर नग्न दिगम्बर साधु हो और ग्यारह अंगका ज्ञान हो; वह कोई 'ज्ञान' नहीं है, किन्तु अंतर स्वभावमेंसे प्रगट हो वह 'ज्ञान' है। अंतरमें ज्ञानस्वरूप भगवान ज्ञानका भण्डार है; उसमें केवलज्ञानकी पर्याय अनन्तानन्त निकालते ही रहें तथापि कमी न आये ऐसा चमत्कारिक ज्ञानभण्डार है! उसमेंसे ज्ञान नहीं निकालता और बाहर भटकता फिरता है।

प्रश्न :—ज्ञान दिखायी दे तो निकाले न?

उत्तर :—इसीलिये तो कहते हैं–उसे देखनेके लिये अंतरमें प्रवेश कर न! यहाँ बाहर क्यों पड़ा है?

आत्माको अंतरमें ज्ञानस्वभावकी ओर मोड़, तब सच्चा ज्ञान होगा; यह जितनी बाहरी पढ़ाई है वह सब ज्ञान नहीं है। उस पढ़ाईके ज्ञानमें जिसे एकत्वबुद्धि है उसने ज्ञानस्वरूपी भगवानको तालेमें बन्द किया है। ऐसी अद्‌भुत बात है भाई! बहुत शास्त्र पढ़ाऊँ और अनेकों शास्त्र लिखकर प्रकाशित कराऊँ तो मेरे ज्ञानका प्रकाश हो, यह सब बहिर्बुद्धि है।

वह ज्ञान बाहरसे ढूँढ़ता है, आनन्द बाहरसे ढूँढ़ता है; मानो स्त्रीमें सुख है, मान–प्रतिष्ठामें सुख है। अरे! अशुभभावमें सुख है और शुभभावमें सुख है—ऐसा मानता है और वहाँ अटक जाता है।

ज्ञान और आनन्द यह दो बोल मुख्य करके कहते हैं कि 'सब बाहरसे ढूँढ़ता है'। इसप्रकार सब–शान्ति, समाधि, संतोष, तृप्ति आदि–बाहरसे ढूँढ़ता है। 'ज्ञान–आनन्दादि समृद्धिसे भरे हुए.....', उसमें 'आदि' शब्द है उसका मेल करके कहा कि शान्ति, समाधि आदि सब बाहरसे ढूँढ़ता है।

बहुत पढ़ूँ, बहुत श्रवण करूँ तो मुझे ज्ञान होगा ऐसा मानता है। आनन्द भी बाहरसे खोजता है अर्थात् पैसेमें सुख, स्त्रीके विषयमें सुख है, मान–सन्मानमें सुख है, बाह्यमें कोई मेरी प्रशंसा करे उसमें सुख है—ऐसा मानता है। इसप्रकार सब बाह्यमें खोजता है। ज्ञान, आनन्द तथा दूसरा सब—ऐसी तीन बातें कहकर अब उनका सार कहते हैं :—

'स्वयं भगवान होने पर भी भीख माँगता रहता है।'

अपनेमें सब कुछ भरा होने पर भी–स्वयं भगवान होने पर भी मुझे बाहरसे कुछ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिल जाय ऐसी भीख माँगता रहता है। स्वयं अपनी सम्पत्तिका प्रभु है, तथापि बाहर भीख माँगता है, भीख माँगता है इतना ही नहीं, प्रत्येक वस्तुकी भीख माँगता है—ज्ञान, शान्ति आदि सब कुछ बाहरसे माँगता है।

इस प्रकार एक पैरेमें अज्ञानीकी बात कहकर उसके सामने अब ज्ञानीकी–धर्मीकी बात कहते हैं—

'ज्ञानीने चैतन्यमहलके ताले खोल दिये हैं।'

अहा! अनन्त गुणका पिण्ड प्रभु आत्मा, उसके सन्मुख ऐसी एकाग्रता हुई कि रागकी एकाग्रता टूट गई और स्वभावकी एकता हो गई। अहा! खुल गये निधान! भले ही ज्ञान अल्प हो–विकास कम हो, परन्तु उस ज्ञानको विज्ञान कहा है। आत्माके स्वरूपकी यथार्थ प्रतीति नहीं है ऐसे अज्ञानीके–ग्यारह अंग और नवपूर्वके–ज्ञानको अज्ञान कहा है। धर्मीको द्रव्यस्वभावका, वस्तुके स्वभावमें एकाग्र होकर, जो ज्ञान हुआ है वह भले ही अल्प हो, तथापि वह विज्ञान है; उसको भीतर चैतन्यमें पर और रागके साथ एकताबुद्धिके ताले खुल गये हैं। ऐसा भगवानका उपदेश है।

पहले अज्ञानीकी बात कही थी कि उसने भीतर ज्ञान–आनन्दादि समृद्धिसे भरपूर निज चैतन्यमहलको ताले लगा दिये हैं, अब उस बातको पलटकर कहते हैं कि—ज्ञानीने अंतरमें ज्ञान और आनन्दादि—आदि कहनेसे उसमें शान्ति, समाधि आदि सब कुछ आ गया—अखूट समृद्धिसे भरपूर निज चैतन्यमहलके ताले खोल दिये हैं।

'अंतरमें ज्ञान–आनन्दादिकी अखूट समृद्धि देखकर, और थोड़ी भोगकर, पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था, ऐसी विश्रान्ति उसे हो गई है।'

अनन्त आश्चर्योंसे–गुणोंसे–भरपूर अजायबघर उसने अंतरमें देखा और अनुभव किया। ज्ञान–आनन्दादि अखूट सम्पत्ति देखकर–अंतरमें खूटे नहीं ऐसा अनन्तगुणोंका भण्डार है उसे देखकर–तथा स्वल्प भोगकर, उसने कभी जिसका अनुभव नहीं किया था, ऐसी परम विश्रान्ति हो जाती है। जाननेमें–देखनेमें तो अखूट समृद्धि पूर्ण आयी है, परन्तु भोगनेमें अभी पूर्ण नहीं आयी है, इसलिये कहा कि 'थोड़ी भोगकर'। अनन्तानन्त गुणकी समृद्धिके ताले खुल गये हैं परन्तु विकासमें पर्याय आयी है वह अभी अल्प है।

त्रैकालिक गुणोंका समुद्र ऐसा जो भगवान निज आत्मा, उसमेंसे एक नमूना प्रगट हुआ–सम्यग्दर्शन, सम्यक् शान्ति, आनन्द—उसे भोगकर, उसे (ज्ञानीको) पहले कभी जिसका अनुभव नहीं किया था, ऐसी विश्रान्ति हो गई है। उसने पहले कभी भोगी नहीं थी, ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ कहा। अनन्त आनन्दमेंसे अल्प आनन्द, अल्पज्ञान, अल्पवीर्य–वीर्य अर्थात् अनन्त गुणोंकी शुद्ध परिणतिकी रचनाशक्ति—उसे भोगकर, उसने पहले कभी जिसका अनुभव नहीं किया था, अनन्त कालके प्रवाहमें नहीं भोगी थी, ऐसी विश्रान्ति–शान्ति हो गई है। जिसे अब बाहरसे कुछ नहीं चाहिये, अंतरमें अखूट खजाना जिसने देखा–जाना और उसमेंसे बाह्यमें अल्प अनुभव किया, उसे पहले कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ था, ऐसी परम शान्ति हो गई है।

❃

वचनामृत–३९२

एक चैतन्यतत्त्व ही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है। विश्वमें ऐसी कोई विभूति नहीं है कि जो चैतन्यतत्त्वसे ऊँची हो। वह चैतन्य तो तेरे पास ही है, तू ही वह है। तो फिर शरीर पर उपसर्ग आने पर या शरीर छूटनेके प्रसंगमें तू डरता क्यों है? जो कोई बाधा पहुँचाता है वह तो पुद्गलको पहुँचाता है। जो छूट जाता है वह तो तेरा था ही नहीं। तेरा तो मंगलकारी, आश्चर्यकारी तत्त्व है; तो फिर तुझे डर किसका? समाधिमें स्थिर होकर एक आत्माका ध्यान कर, भय छोड़ दे॥३९२॥

'एक चैतन्यतत्त्व ही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है।'

एक चैतन्यतत्त्व ही–चैतन्यवस्तु, चैतन्यसत्त्व ही–उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है। पहले ३७९वें बोलमें 'जगतमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है; उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं। वह गुण–मणियोंका भण्डार है। ऐसे दिव्यस्वरूप आत्माकी दिव्यताको तू जानता नहीं है......' –ऐसा आ गया है। अब यहाँ दूसरी बात करते हैं कि–एक चैतन्यतत्त्व ही उत्कृष्ट आश्चर्यकारी है।

'विश्वमें ऐसी कोई विभूति नहीं है कि जो चैतन्यतत्त्वसे ऊँची हो।'

विश्वमें–अनन्तानन्त पदार्थोंसे भरे हुए विश्वमें—कोई ऐसी विभूति—वस्तु नहीं है कि जो चैतन्यतत्त्वसे ऊँची हो–महान हो। चक्रवर्तीका राज्य या इन्द्रका इन्द्रासन–वे कोई चैतन्यसे विशेष नहीं हैं। वह तो बाहरकी धूल है।

'वह चैतन्य तो तेरे पास ही है, तू ही वह है, तो फिर शरीर पर उपसर्ग आने पर या शरीर छूटनेके प्रसंगमें तू डरता क्यों है?'

मुम्बईमें आजकल पीलिया रोग फैल रहा है। लीवरमें कुछ होता है और दो–चार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिनमें जीव शरीर छोड़कर चला जाता है। आत्मा रोग और रागसे सदा रहित है। वह एक क्षणमें रागसे छूटकर अंतरमें जा सकता है। अहा! कैसी निरोगी वस्तु है! प्रभु! उसे पकड़ न! पीलिया रोग आये, क्षयरोग हो जाय, साँप काटे, बिच्छू डंक मारे, हृदयगति रुक जाय इत्यादि उपसर्ग आने पर या शरीर छूटनेके प्रसंगमें तू डरता क्यों है?

'जो कोई बाधा पहुँचाता है वह तो पुद्गलको पहुँचाता है, जो छूट जाता है वह तो तेरा था ही नहीं।'

रोग है वह तो शरीरमें है, छुरीके घाव लगते हैं वह भी शरीरमें लगते हैं। भगवान आत्माको क्या कोई बाधा पहुँचा सकता है? जो छूट जाता है वह तो तेरा था ही नहीं और जो तेरा हो वह छूटता नहीं है। अन्य बाह्य संयोगोंकी क्या बात कहें? यह तो शरीरसम्बन्धी बात है। यहाँ तो कहते हैं कि–शरीर पर उपसर्ग आये तो वह कहीं आत्मामें नहीं आया है। जो छूटता है वह तेरा है ही नहीं।

'तेरा तो मंगलकारी, आश्चर्यकारी तत्त्व है।'

तेरा तत्त्व, तेरा स्वरूप मंगलकारी है, तू आश्चर्यकारी अद्भुत तत्त्व है।

'तो फिर तुझे डर किसका? समाधिमें स्थिर होकर एक आत्माका ध्यान कर, भय छोड़ दे।'

शरीर छूटनेका प्रसंग आयगा; ख्यालमें भी आता है कि अब यह शरीर छूट जानेवाला है। यह शरीर छूटेगा,—पृथक् था तो पृथक् होगा। उसका भय क्या? भीतर आनन्दस्वरूपमें–समाधिमें–जा न! अंतरके अविनाशी भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माका ध्यान लगाकर–समाधिमें स्थिर होकर–भय छोड़ दे। समाधि अर्थात् आधि, व्याधि और उपाधि रहित वीतरागी शान्ति। अहा! बहिनकी भाषा भिन्न और बिलकुल सादी! भाई! यह कोई अलग वस्तु है। भगवान आत्मा समाधिस्वरूप ही है; उसमें आधि–व्याधि–उपाधि है ही नहीं। उस पर दृष्टि करके, उसका स्थिर ध्यान धर, पर्यायको द्रव्योन्मुख कर ले। जो लक्ष परमें तथा रागमें है, उसे स्वभावोन्मुख कर दे। समाधिमें–अंतरंग अतीन्द्रिय शान्तिमें–स्थिर होकर एक आत्माका ध्यान कर। 'भगवान–भगवान' करना, 'णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं'.....जपते रहना वह कोई आत्माका ध्यान नहीं है, वह तो शुभविकल्प है। शुभविकल्प भी दुःखरूप है। भगवानकी भक्ति, देवस्तुति आदि क्या हैं? भाई! वे तो विकल्प हैं और विकल्प तो दुःखरूप हैं। अहा! तेरा नाथ तो भीतर विराजमान है, उसका स्मरण करके अन्तर्मुख हो न! अपनी वस्तुका अनुभव कर न! अंतरमें एकाग्र हो न! बाहरके भगवानको कहाँ याद कर रहा है आनंद आदि गुणोंसे परिपूर्ण ऐसे वस्तुस्वभावकी दृष्टिपूर्वक वेदन हुआ है, तो अब वहाँ जा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

यहाँ, उपसर्गके कालमें और शरीर छूटनेके कालमें–ऐसी दो बातें ली हैं। जीवनमें—जीवन–मृत्युमें–पहले उपसर्गके कालमें और फिर मृत्युके समय, दोनों आ गये। समाधिमें स्थिर होकर मात्र एक निजात्माका ध्यान कर। णमोकार मंत्रका जाप, गुरुका और भगवानका स्मरण आदि यहाँ नहीं लिये हैं। एक आत्माका ध्यान कर। परका ध्यान तो नहीं–परमें देव–गुरु आ गये–परन्तु अपने द्रव्य–गुण–पर्याय—इन तीनोंका भी नहीं; क्योंकि तीनका ध्यान करने जायगा, वहाँ विकल्प—राग–दुःख होगा। श्री नियमसारमें कहा है—

"जो चित्त जोड़े द्रव्य-गुण-पर्यायकी चिंता विषे;
तेनेय मोहविहीन श्रमणों, अन्यवश भाखे अरे!"

—इसलिये, द्रव्य–गुण–पर्यायके विकल्पोंसे पार ऐसे एक निज आत्माका, समाधिमें स्थिर होकर, ध्यान कर—ऐसा यहाँ कहा है। वस्तुमें द्रव्य है, उसके गुण हैं, उसकी पर्यायें हैं, परन्तु उन तीनके भेदमें रुकेगा तो वह भी राग है, आकुलता है।

एक आत्माका ध्यान कहा; वहाँ आत्मा वह त्रैकालिक द्रव्य, और उसका एकाग्रतारूप ध्यान—आत्मोन्मुख हुई दशा–वह पर्याय। मृत्युकालमें कहे कि 'मुझे धर्मश्रवण कराओ;' परन्तु वह तो सब विकल्प है, राग है। यहाँ तो कहा है कि समस्त बाह्य विकल्पोंको छोड़कर, अंतरमें एक आत्मा है उसका ध्यान कर। आत्माका ध्यान कर—ऐसा अस्तिसे कहकर, भय छोड़ दे—ऐसी नास्तिसे बात कही।

अरे, देहान्तका काल आये इसलिये ऐसा होता है कि—'हाय–हाय! अब कहाँ जायँगे?'—कहाँ जायगा? अंतरमें जा न! अपना ध्यान रख। अहा! बहिनके शब्द सादा, परन्तु भाव गहरे हैं। इन्हें पढ़कर वे प्रोफेसर अपने पत्रमें लिखते हैं—अहो! आपने मुझे यह 'वचनामृत' पुस्तक–चैतन्यभावोंका निधान–दिया! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। इसमें तो चैतन्यरत्नोंके भण्डार भरे हैं। उन्होंने पुस्तकका कैसा मूल्यांकन किया!?

यहाँ इस बोलमें कहते हैं—तू भय छोड़ दे और समाधिमें स्थिर होकर, मंगलकारी, आश्चर्यकारी ऐसे अपने आत्माकी शरण ले—उसका ध्यान कर, तो तुझे शाश्वत परम शान्ति प्राप्त होगी।

❋

वचनामृत–३९३

जिसे भवभ्रमणसे सचमुच छूटना हो उसे अपनेको परद्रव्यसे भिन्न पदार्थ निश्चित करके, अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयास करना

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहिये। यदि ध्रुव ज्ञायकभूमिका आश्रय न हो तो जीव साधनाका बल किसके आश्रयसे प्रगट करेगा? ज्ञायककी ध्रुव भूमिमें दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते-करते, निर्मलता प्रगट होती जाती है।

साधक जीवकी दृष्टि निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता है सबको;—वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायोंको जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपनेका, उनके सुख-दुःखरूप वेदनका साधक-बाधकपनेका इत्यादिका विवेक वर्तता है। साधकदशामें साधकके योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है। पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्यायमें होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टिके विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य वह अधिकका अधिक रहता है।—ऐसी साधकपरिणतिकी अटपटी रीतिको ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरोंको समझना कठिन होता है॥३९३॥

'जिसे भवभ्रमणसे सचमुच छूटना हो उसे अपनेको परद्रव्यसे भिन्न पदार्थ निश्चित करके, अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयास करना चाहिये।'

हमें भवभ्रमण नहीं करना है, नहीं करना है, ऐसी बातें करे, परन्तु वास्तवमें हमें भवकी आवश्यकता ही नहीं है—ऐसी तीव्र भावना अंतरमें जाग्रत न हो तब तक भ्रमणसे छूटनेका कार्य नहीं होता। भवकी रुचि हो वह भवसे कैसे बचेगा? प्रभु! भव करना वह तो कलंक है। भगवानको भव? यह क्या? जिसे भवभ्रमणसे सचमुच छूटना हो उसे अपनेको परद्रव्यसे भिन्न पदार्थ निश्चित् करके-भगवान आत्मा परद्रव्यसे भिन्न है ऐसा निर्णय करके, जिसे राग और कर्मके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है ऐसी वस्तुका निर्णय करके,—अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी महिमा लाकर, अंतरमें यथार्थ समझका पुरुषार्थ करना। परद्रव्यमें देव-शास्त्र-गुरु भी आ गये। परमार्थतः रागसे लेकर कर्म, शरीरादि समस्त पर द्रव्य हैं, वे सब अजीव हैं। भगवान आनन्दस्वरूप है उसे रागादि अन्य सर्व पदार्थोंसे भिन्न पदार्थ निश्चित करके, ध्रुवज्ञायकस्वभावकी महिमा लाकर, आत्माकी यथार्थ श्रद्धा-सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयास करना।

समयसारके जीव-अधिकारमें आया है कि—धर्मादि मैं नहीं हूँ, वैसे ही परजीव भी मैं नहीं हूँ, पर जीव नहीं हूँ अर्थात् देव-गुरु या सिद्ध भी मैं नहीं हूँ। लोगोंको असह्य लगता है, और कहते हैं—'सिद्ध भी पर? वे तो शुद्ध हैं न!' भाई! सिद्ध भगवान 'शुद्ध' हैं उससे क्या? वे हैं तो इस आत्मासे 'पर'। उनकी भक्तिसे शुभराग होता है, धर्म नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई ऐसा कहता है कि—देव-गुरु तो शुद्ध हैं, पवित्र हैं, उन्हें परद्रव्य कहा जाये? अरे! पंचपरमेष्ठी हैं वे भी परद्रव्य हैं, प्रभु! अपनेको उस परद्रव्यसे भिन्न पदार्थ निश्चित् करके, अपना जो ध्रुव ज्ञायकस्वभाव है उसकी महिमा पर्यायमें लाकर-त्रैकालिक पूर्णानन्द ज्ञायकभगवानकी पर्यायमें महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका उद्यम करना, पर्यायमें आत्माका अनुभव प्रगट करनेका प्रयास करना, क्योंकि अनुभव तो पर्यायमें होता है, कहीं ध्रुवमें अनुभव नहीं है, तथापि शास्त्रमें कथन आता है कि पर्यायका अनुभव और ध्रुवका अनुभव; ध्रुव जो वस्तु है वह अनुभवका आलम्बन होनेसे 'ध्रुवका अनुभव' ऐसा कहा जाता है। वास्तवमें ध्रुव कहीं पर्यायरूप नहीं हो जाता।

ध्रुवस्वभावी अपना भगवान आत्मा ज्ञायक है। उसमें ज्ञान, शान्ति, समाधि आदि अनन्त समृद्धि भरी पड़ी है। ऐसा यह जो भगवान आत्मा, उसकी महिमा लाकर,—परद्रव्य, राग और पर्यायकी महिमा छोड़कर, पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव स्वभावकी महिमा लाकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयास करना।

सम्यग्दर्शन अर्थात् प्रथम धर्मकी दशा। यद्यपि धर्म तो चारित्र है; 'चारित्तं खलु धम्मो'। परन्तु उसका मूल—कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनके बिना चारित्र हो नहीं सकता। सम्यग्दर्शन-निज शुद्ध आत्माकी यथार्थ प्रतीति तथा उसका निर्विकल्प अनुभव—नहीं हुआ हो तो सच्चा चारित्र हो ही नहीं सकता। भले ही वह व्रत, तप और भक्ति लाखों-करोड़ों वर्ष तक करे, परन्तु वह चारित्र नहीं है। इसीलिये बहिन यहाँ वचनामृतमें कहती हैं कि प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयास करना।

'यदि ध्रुव ज्ञायकभूमिका आश्रय न हो तो जीव साधनाका बल किसके आश्रयसे प्रगट करेगा ?'

अहा! यह भगवान आत्मा ध्रुव पदार्थ है। 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।' अखण्ड नित्यानन्द प्रभु आत्माका 'ध्रौव्यरूप ज्ञायकभूमि'का आश्रय न हो—मात्र ध्रौव्य ऐसा नहीं, क्योंकि परमाणु भी ध्रुव है, इसलिये कहा है कि : इस 'ध्रुवज्ञायकभूमि'का आश्रय न हो—तो जीव साधनाका बल किसके आश्रयसे प्रगट करेगा? मोक्षका मार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—जो साधना है, उस साधनाका बल ध्रुव ज्ञायकभूमिके आश्रय बिना किसके आधारसे प्रगट करेगा? क्या पर्यायके आश्रयसे शुद्ध पर्याय प्रगट होगी? क्या दया, दान, व्रत, तपादिके—व्यवहार रत्नत्रयके—आश्रयसे यह साधना प्रगट होगी? ध्रुव ज्ञायकभूमिका आश्रय न हो तो जीवको साधनाका बल कभी प्रगट नहीं होगा। अहा! बहुत अल्प शब्दोंमें परम सत्य कहा है। ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे ही साधनाका बल प्रगट होता है—यह सिद्धान्त है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–चारित्रस्वरूप साधनाके आश्रयसे भी साधना प्रगट नहीं होती—क्योंकि पर्यायके आश्रयसे पर्याय प्रगट नहीं होती—परन्तु भीतर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आलम्बनसे निर्मल साधना प्रगट होती है। समझमें आया कुछ? अहा! बहुत संक्षेपमें समझाया है।

त्रैकालिक ध्रुवज्ञायकस्वभावके आधारसे धर्म होता है। वैसे तो परमाणु भी ध्रुव है, परन्तु वह ज्ञायकभूमि नहीं है। सम्प्रदायमें कहते हैं : ऐसा कठिन धर्म! व्रत करो, उपवास करो; श्रेणिक राजाकी रानीने उपवास किये थे; तुम भी व्रत–तप–उपवास करोगे तो कर्मोंकी निर्जरा होगी। भाई! उपवास किसे कहा जाता है? कि—अंतरमें त्रैकालिक वस्तु—ज्ञायकस्वभावके समीप वसना उसका नाम उपवास है। ज्ञायकस्वभावकी प्रतीति बिना उपवास नहीं, किन्तु अपवास–बुरावास–होगा, यदि रागकी मन्दता हो तो पुण्य होता है, किन्तु धर्म नहीं।

पं. दीपचन्दजीने 'आत्मावलोकन' पुस्तकमें कहा है कि—विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वरूपका घात नहीं करना तथा अपने स्वभावका पालन करना सो दया है। स्वभावका पालन करनेका नाम दया है। परकी दया जीव क्या करेगा? वहाँ व्रत–तप आदि सबके लक्षण दिये हैं। इन्द्रिय, मन और भोगादिकी ओर जाते हुए अपने परिणामोंको रोकना सो व्रत है। शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, मित्र, शत्रु आदि परज्ञेयोंको छोड़ना अर्थात् उनमें ममतारहित परिणति होना, उनमें तृष्णारहित होना और अपने स्वभावमें शोभित होना–स्थिरता होना ऐसी जो तपश्चर्या वही तप है। बाहरके अपवास–बपवास करना वह सच्चा तप नहीं है, वह तो लंघन है। राग मन्द किया हो तो पुण्य होता है। 'तृष्णाया रहितं भावशोभनं तपनं तदेव तपः।' अंतर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मामें तपन करना, स्थिरता करना, अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन करना वह तप है। सुन्दर व्याख्या की है। पहलेके पण्डित शास्त्रानुसार बात कहते थे।

यहाँ कहते हैं? कि–पूर्ण स्वभावको साधनेका साधन–निर्मल साधना–ज्ञायकके आश्रय बिना किसके बलसे प्रगट करेगा? अनित्यके आश्रयसे साधना और तपका बल नहीं आता, —रागके आश्रयसे नहीं आता, पर्यायके आश्रयसे नहीं आता और गुण–गुणीके भेदके आश्रयसे नहीं आता; परन्तु एकमात्र ध्रुव–सत्–ज्ञायकभूमिके आश्रयसे साधनाका बल आता है। अहा! भाषा संक्षिप्त है, परन्तु एकदम रस–कससे भरी है।

'ज्ञायक की ध्रुवभूमिमें दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करते–करते, निर्मलता प्रगट होती जाती है।'

चैतन्यका दल ध्रुव है, उसकी भूमि अर्थात् स्थान, उसमें दृष्टि जमने पर, उसमें एकाग्रतारूप प्रयत्न करनेसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती जाती है। त्रैकालिक ध्रुवके–परमानन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु भगवान आत्माके–आश्रयसे ही साधनाका बल प्रगट होता है। वैसे अनित्य ऐसी शुद्धाशुद्ध पर्यायके आश्रयसे वह बल प्रगट नहीं होता। अहा! यह पुस्तक ऐसे ही अपने आप पढ़ जाय तो समझमें नहीं आ सकती। इसमें तो बहुत सार भरा है। अन्य मतवालोंको भी पढ़ने पर एकबार ऐसा लगता है कि—अहा! यह तो कोई अद्भुत पुस्तक है।

प्रभु! तेरी वस्तुमें दो अंश हैं : एक त्रिकालशुद्ध अनन्त शक्ति युक्त ध्रुव अंश और दूसरा एक समयस्थायी पर्यायअंश। यदि तुझे वास्तवमें भवरहित होना हो तो अपनी वर्तमान पर्यायमें अपने अनन्तसामर्थ्य भरपूर ध्रुवांशके—ज्ञायक एक शुद्ध परमभावके—अवलम्बनसे भवान्तकारी सम्यग्दर्शन प्रगट कर। भाई! ध्रुव परमभावके अवलम्बन बिना तू किसके बलसे सम्यग्दर्शन और मोक्षमार्ग प्रगट करेगा? सम्यग्दर्शन और मोक्षमार्ग प्रगट करनेके लिये एकमात्र ध्रुव ज्ञायक परमभाव ही शरण है। भगवानकी वाणीका यह संक्षिप्त सार है। लोग पत्रमें लिखते हैं न? 'थोड़ा लिखा बहुत जानना।'

अनादि–अनन्त सच्चिदानन्द ऐसा जो निज ज्ञायकपरमभाव उसकी ध्रुवभूमिमें–ध्रुव धाममें, ध्रुव दलमें, ध्रुव तलमें—दृष्टि जमने पर, उसमें लीनताका उद्यम करते–करते, साधक जीवको परिणतिमें विशेष निर्मलता प्रगट होती जाती है।

प्रश्न :—इसके सिवा दूसरा कोई सरल उपाय है या नहीं?

उत्तर :—भाई! 'एक होय त्रिकालमें परमारथका पंथ'। तीनों काल मोक्षका यह एक ही उपाय है। मन्दिर बनवाना, प्रतिष्ठा कराना, दया पालना, माला फेरना, भक्ति करना आदि शुभरागके परिणाम कहीं मुक्तिका उपाय अर्थात् धर्म नहीं है; शुभराग तो संसार है, बंधका कारण है।

इस पुस्तककी अस्सी हजार प्रतियाँ तो छप चुकी हैं। कोई भी मध्यस्थ होकर पढ़े तो उसे लगेगा कि—वास्तवमें मार्ग तो यही है।

भगवान आत्माकी–ज्ञायककी–ठोस ध्रुवभूमिमें दृष्टि जमने पर, उसमें प्रचुर लीनताका पुरुषार्थ करते–करते ज्ञानी साधक संतको स्वरूपस्थिरतारूप विशेष निर्मलता प्रगट होती जाती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१५९

दिनांक २३-११-७८

वचनामृत–३९३ (चालू)

'साधक जीवकी दृष्टि निरन्तर, शुद्धात्म द्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता है सबको;—वह शुद्ध–अशुद्ध पर्यायोंको जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव–विभावपनेका उनके सुख–दुःखरूप वेदनका, उनके साधक–बाधकपनेका इत्यादिका विवेक वर्तता है।'

इस ३९३वें बोलके पहले पैरे पर कल प्रवचन हो चुका है, आज यह उसका दूसरा पैरा लेते हैं।

मोक्षमार्गकी साधना करनेवाले ज्ञानी जीवकी दृष्टि सतत निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य पर होती है। क्या कहते हैं? कि–जिसे अंतरमें सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है उसकी दृष्टि त्रिकालशुद्ध निज चैतन्य द्रव्यसामान्य पर है। दृष्टि स्वयं श्रद्धागुणकी निर्मल पर्याय है, परन्तु उसका आश्रय निज ध्रुवस्वभाव है। भूमिकानुसार पर्यायमें अनेक प्रकारके शुभाशुभ विकल्प आते रहते हैं तथापि, ज्ञानी धर्मात्माकी दृष्टि तो निरन्तर निज शाश्वत चैतन्यस्तम्भ पर–शुद्धात्मद्रव्यस्वभाव पर—स्थिर हुई सो स्थिर ही रहती है। ज्ञानीकी दृष्टि कर्म–नोकर्मरूप निमित्तों पर, शुभाशुभ विभाव पर, अल्पाधिक पर्याय पर या गुणभेद पर चिपक नहीं जाती; वह तो परद्रव्य तथा परभावरूप समस्त भेदोंको निकालकर निज द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है। शाश्वत द्रव्य पर जमी हुई दृष्टि किसी भी भेदको स्वीकार नहीं करती। इसप्रकार ज्ञानी धर्मात्माकी दृष्टि सतत शुद्धात्म द्रव्य पर ही होती है; तथापि ज्ञानी, दृष्टिके साथ वर्तती हुई अपनी ज्ञानपर्यायमें जानता सबको है;—त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकभाव सदा आश्रय करने योग्य है ऐसा जानता है, अपनी शुद्ध–अशुद्ध पर्यायोंको जानता है और उन्हें जानते हुए त्रैकालिक शुद्ध स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप शुद्धपर्यायें—ज्ञानधारा–कर्तव्य–अपेक्षासे उपादेय अर्थात् प्रगट करने योग्य हैं और शुभाशुभरूप अशुद्ध पर्यायें–औदयिक कर्मधारा–हेय अर्थात् विनाश करने योग्य है, ज्ञानधाराका वेदन सुखरूप और कर्मधाराका वेदन दुःखरूप है, ज्ञानधारारूप शुद्ध पर्याय मोक्षकी साधक है और कर्मधारारूप अशुद्ध पर्याय–शुभाशुभ भाव–मोक्षके लिये बाधक है इत्यादि विवेक वर्तता है।

अहा! ऐसा विवेकयुक्त मार्ग है वीतरागका। वीतराग सर्वज्ञ परमात्माकी दिव्यध्वनिमें मार्गका जो स्वरूप आया उसे संत–वीतराग निर्ग्रन्थ दिगम्बर संत–जगतमें प्रसिद्ध करते हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे ढिंढोरा पीटकर कहते हैं कि–ज्ञानी धर्मात्माकी दृष्टि निरन्तर आनन्दके रसकन्द ऐसे निज त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक प्रभु पर होती है; तथापि उनको साथमें जो ज्ञान प्रगट हुआ है वह, त्रैकालिक शुद्धस्वभावको सदा आलम्बन लेने योग्य महामूल्यवान अंशरूप जानते हैं और साधकभावरूप शुद्ध पर्यायको, बाधकभावरूप अशुद्ध पर्यायको—जिसमें समस्त शुभाशुभभाव समा जाते हैं ऐसे विभावभावको—आलम्बन लेनेके लिये अयोग्य तुच्छ अंशरूप जानते हैं—ऐसा विवेक ज्ञानीको वर्तता है।

अरे रे! लोगोंको, अरे! आज कलके उपदेशकोंको भी, वीतरागमार्गके मूलस्वरूपकी खबर नहीं है, इसलिये चढ़ा देते हैं दूसरे रास्ते पर–व्रत पालो, तप करो, भक्ति करो, शास्त्रज्ञान करो, उपवास, प्रोषध करो तो धर्म हो जायगा; परन्तु भाई! इस बाह्य क्रियाकाण्डमें तथा बाहरी ज्ञानमें धूल भी धर्म नहीं है। धर्मका प्रारम्भ तो सम्यग्दर्शनसे ही होता है, स्वानुभूतियुक्त स्वात्मदर्शन ही मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी है। छहढालामें कहा है न! कि—

मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान–चरित्रा,
सम्यकृता न लहें सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।

देहादि परद्रव्योंसे बिलकुल भिन्न तथा रागादि विभावोंसे रहित, ज्ञान और आनन्दादि अनंत गुणसमृद्धिसे सदा भरपूर ऐसे निज अभेद त्रैकालिक चैतन्य द्रव्यस्वभावको दृष्टिमें लेनेसे, उसकी अनुपम महिमा अंतरमें भासनेसे, सम्यग्दर्शन या स्वानुभूति नामका प्रारम्भिक धर्म प्रगट होता है। चारित्र धर्म तो सम्यग्दर्शनके पश्चात् प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर दृष्टि तो सदा और सतत ज्ञान–आनन्दादि अनन्त रसकससे भरपूर निज ज्ञायक द्रव्यसामान्य पर ही होती है, तथापि साथमें प्रगट हुए सम्यग्ज्ञानमें शुद्धात्म दृष्टिवन्त जीवको ध्रुवस्वभावकी ओरका बल, स्वभाव–विभाव पर्यायोंका सम्यक् ज्ञातृत्व, स्वभावपर्याय सुखरूप है और विभावपर्याय दुःखरूप है, ऐसा उनका वेदन तथा उनका मोक्षके लिये साधक–बाधकपना इत्यादिका विवेक वर्तता है।

यद्यपि शुद्ध–अशुद्ध पर्यायें, उनका सुख–दुःखरूप वेदन तथा उनका साधक–बाधकपना और गुण-गुणीका भेद आदि दृष्टिका विषय नहीं है, दृष्टि उनका आलम्बन नहीं लेती, तथापि दृष्टिके साथ जो ज्ञान प्रगट होता है उसमें इन सबका यथार्थ विवेक अवश्य होता है। अहा! ऐसी बात है। त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिमें जो आया है वह बहिनके वचनोंमें आ गया है, सहज ही कहा गया है।

जिसे मोक्षमार्ग साधना है ऐसे धर्मात्माकी दृष्टिमें निरन्तर निज शुद्धात्मद्रव्य ही अधिकरूपसे विराजता है, उसीका आदर उसीका अवलम्बन तथा उसीकी शरण वर्तती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टिका विषय ध्रुव ज्ञायक परमभाव है, परन्तु साथ रहा हुआ ज्ञान जानता है सबको–स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई स्वानुभूति जानती है, जितनी अशुद्धता शेष है उसे भी जानती है, दया–दान–व्रत–तपादि शुभभाव और हिंसा–झूठ–चोरी आदि अशुभभाव, अरे! ज्ञानीको युद्ध करनेका भाव भी आता है—भरत और बाहुबलि दोनों सम्यग्दृष्टि ज्ञानी थे, फिर भी दोनोंने परस्पर युद्ध किया और अस्थिरताके कारण हुए उन भावोंको बराबर जानते हैं। उन भावोंको जाननेमें दोष नहीं है, परन्तु उनका आश्रयरूपसे अवलम्बन लेनेमें दोष है।

मिथ्यादृष्टिको अकेला दुःख है, केवलज्ञानीको अकेला (परिपूर्ण) सुख है और साधक जीवको स्वभावके आश्रयसे अल्पसुख और उदयमें अंशतः युक्त होनेके कारण अल्प दुःख—दोनों हैं। साधक जीवकी दृष्टि, —अभिप्रायका जोर—तो निरन्तर निजशुद्धात्मद्रव्य पर ही है, तथापि स्वभाव–विभावके सुख–दुःखपनेको बराबर जानता है। शुद्ध–अशुद्ध पर्यायके साधक–बाधकपनेका विवेक वर्तता है। सम्यक्त्वीको अपने त्रैकालिक स्वरूपकी भी प्रतीति है और अस्थिरताके कारण होनेवाले शुभाशुभ विकारी भावोंकी भी खबर है। निर्मल–अनिर्मल पर्यायोंको जानता है और उन्हें जानते हुए उनके सुख–दुःखरूप वेदनका तथा साधक–बाधकपनेका विवेक सदा वर्तता है। उसकी दृष्टि कभी ध्रुवस्वभाव ऊपरसे नहीं हटती, परन्तु साथ जो ज्ञान है वह सबको जानता है, सबका विवेक वर्तता है : दुःखको दुःख जानता है, सुखको सुख जानता है। यहाँ आत्माके सुखकी बात है। बाह्यमें–विषयोंमें कहीं सुख नहीं है। विषयसुखमें मग्न समस्त प्राणी दुःखी ही हैं। इसप्रकार ज्ञानीको सुख और दुःखरूप वेदनका विवेक वर्तता है।

"साधक दशामें साधकके योग्य अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है।"

पवित्रताका ध्रुवधाम ऐसे निज शुद्ध चैतन्यप्रभुको–ज्ञायक परमभावको—दृष्टिमें लेनेसे पर्यायमें जिसे निर्मलदशा हुई है, उस साधक जीवको साधक भूमिकाके योग्य अनेक शुभाशुभ परिणाम वर्तते हैं, परन्तु उस समय भी 'मैं परिपूर्ण ज्ञायकतत्त्व हूँ' ऐसा स्वानुभवयुक्त बल उसे सतत साथ ही साथ रहता है। रात्रिके समय समुद्रमें नौका चलानेवाला नाविक 'ध्रुव' तारेको लक्षमें रखकर नौका चलाता है; उसीप्रकार इस ध्रुव ज्ञायक वस्तुके लक्षसे पर्यायमें सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभव आदि निर्मलता प्रगट होती हैं, आत्मज्ञान और आत्मानुभवके बिना जो व्रत, तप और भक्ति करे वह सब संसारमें भटकनेकी बात है। अहा! ऐसी बात लोगोंको सुननेमें असह्य लगती है, परन्तु क्या किया जाय, भाई! अरे, ऐसा अमूल्य मनुष्यभव प्राप्त हुआ, वीतरागमार्ग श्रवण करनेका अवसर मिला, और यदि इस बार आत्मकार्य नहीं किया तो प्रभु! फिर कब करेगा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानीको देव-शास्त्र-गुरुकी विनय, भक्ति आदि शुभभाव चौथे, पाँचवें और छट्ठे गुणस्थानमें अपनी-अपनी भूमिकानुसार आते हैं, परन्तु 'मैं समस्त विभावरहित परिपूर्ण एक ज्ञायकभाव हूँ' ऐसा आन्तरिक बल सदा सतत साथ ही साथ रहता है। 'मैं परिपूर्ण ज्ञायक हूँ' यह दृष्टि ज्ञानीको कभी किंचित् नहीं हटती, दृष्टिका बल सतत साथ ही साथ रहता है।

'पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्यायमें होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टिके विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य वह अधिकका अधिक ही रहता है।'

पुरुषार्थरूप क्रिया अर्थात् स्वभाव सन्मुख होनेरूप परिणति। ज्ञायक ध्रुवस्वभावके अवलम्बनसे अंतरंग श्रद्धा, ज्ञान एवं स्थिरताका प्रयत्न अपनी परिणतिमें होता है और ज्ञानी धर्मात्मा जीव अपनेमें होनेवाली क्रियाको जानता है, तथापि उस समय भी उसे दृष्टिके विषयभूत ऐसा जो निज निष्क्रिय द्रव्य वह अधिकका अधिक रहता है। क्रिया सदा पर्यायमें होती है, ध्रौव्यमें नहीं। आत्माकी पर्यायमें अनेक प्रकारकी पुरुषार्थरूप क्रिया वर्तती हो, उसे साधक जीव जानता है, परन्तु शुद्धपर्यायकी ओर भी उसका जोर नहीं होता; जोरके आलम्बनरूप-आश्रयभूत तो त्रिकालशुद्ध अक्रिय द्रव्यस्वभाव ही रहता है। अरे! द्रव्य क्या है और पर्याय किसे कहते हैं?—इसकी भी जिसे खबर न हो, वहाँ आत्मसाधना कहाँसे होगी?

पुरुषार्थरूप क्रिया पर्यायमें होती है; वह क्रिया होने पर भी निष्क्रिय ध्रुव द्रव्य ज्ञानीके आलम्बनमें अधिकका अधिक रहता है। वह पुरुषार्थ पर्याय भले ही सम्यग्दर्शनकी, सम्यग्ज्ञानकी या सम्यक्चारित्रकी हो, मोक्षमार्गकी हो, तथापि उसके आलम्बनरूप जो निष्क्रिय ध्रुव ज्ञायक द्रव्य वह तो सदा मुख्य ही रहता है। पर्यायमें चाहे जितनी पुरुषार्थरूप क्रिया हो, तथापि उसके आलम्बनरूप निष्क्रिय ध्रुव द्रव्यस्वभाव तो सदा ऊर्ध्व ही-अधिक ही रहता है। द्रव्यसामान्य अर्थात् ध्रौव्य वह निष्क्रिय और पर्याय वह सक्रिय। क्या कहते हैं? कि—पर्यायमें द्रव्यसामान्यका अवलंबन लेनेरूप पुरुषार्थकी क्रिया होने पर भी, निष्क्रिय ऐसा जो निज त्रिकालशुद्ध द्रव्यसामान्य वह सदा अधिकका अधिक अर्थात् ऊँचेका ऊँचा रहता है। आया कुछ समझमें? ऐसा मार्ग है। अहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्माकी जो वाणी वह संतोंकी वाणी, सन्तोंकी जो वाणी वह सम्यग्दर्शनकी वाणी!!

अंतरमें स्वसन्मुखताके पुरुषार्थकी क्रियारूप पर्यायमें सम्पूर्ण निष्क्रिय द्रव्य आ नहीं जाता। क्या कहते हैं? कि-ज्ञानकी पर्यायमें और श्रद्धाकी पर्यायमें निष्क्रिय ध्रुव द्रव्यका ज्ञान और श्रद्धान अर्थात् आलम्बन होता है; आलम्बनरूप क्रिया होती है पर्यायमें, तथापि दृष्टि और ज्ञानमें आलम्बनके आश्रयभूत निष्क्रिय ध्रुव ज्ञायक द्रव्यसामान्य सदा अधिक रहता है। अहा! ऐसा मार्ग है? ऐसा है धर्म? लोग तो व्रत करने, यात्रा करने, गजरथ चलाने, मन्दिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बनवाने आदि कार्योंमें धर्म मानते हैं। भाई! उनमें तो धूल भी धर्म नहीं है। मन्दिरका बनना वह तो पुद्गलद्रव्यकी क्रिया है, क्या उसे आत्मा कर सकता है? उस समय यदि जीवको मन्दकषायके भाव हों तो वह शुभरागकी क्रिया है, उसमें किंचित् भी धर्म नहीं है। जीव परद्रव्यकी क्रिया तो कर नहीं सकता, परन्तु जो शुभराग आये उसमें भी ज्ञानीको कर्तृत्वबुद्धि नहीं है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मामें पर्याय–अपेक्षासे जो राग होता है वह परमार्थतः आत्माका कार्य नहीं है; तथापि परिणमनकी अपेक्षासे ज्ञान जानता है कि यह रागरूप विभावपरिणमन मुझमें हुआ है। ज्ञानी अस्थिरतारूप रागकी परिणति या साधनामय पुरुषार्थकी परिणति जो भी हो उसे जानता है, तथापि उसे दृष्टिके विषयभूत निष्क्रिय ज्ञायक द्रव्य सदा अधिकका अधिक रहता है।

'—ऐसी साधकपरिणतिकी अटपटी रीतिको ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरोंको समझना कठिन होता है।'

ज्ञानी धर्मात्माको श्रद्धाका जोर सतत निज द्रव्यस्वभाव पर होता है, तथापि वे पर्यायमें वर्तती शुद्धि–अशुद्धिको, उसके स्वभाव–विभावपनेको, उसके सुख–दुःखरूप वेदनको, उसके साधक–बाधकपनेको जानते हैं और वह सब जाननेसे उनके ग्रहण–त्यागरूप विवेक भी वर्तता है; साधकदशामें भूमिकाके अनुरूप अनेक परिणाम वर्तते रहते हैं, परन्तु 'मैं एक शुद्ध परिपूर्ण द्रव्य हूँ' ऐसा जोर सतत साथ ही साथ रहता है; साधनारूप क्रिया अपने पुरुषार्थसे अपनी पर्यायमें होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टिके आलम्बनभूत ऐसा जो त्रिकालशुद्ध निष्क्रिय ध्रुव द्रव्य तो उसके सदा अधिकका अधिक अर्थात् सदा मुख्य रहता है।—ऐसी साधकपरिणतिकी उलझनवाली रीतिको ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरोंको समझना कठिन होता है।

साधनामय पुरुषार्थकी क्रिया अपनी पर्यायमें है, ज्ञानी उसे जानता भी है, तथापि निष्क्रिय ध्रुवद्रव्य ही आश्रयरूपसे अधिकका अधिक रहता है, शुद्ध पर्याय अथवा गुणभेद भी नहीं। साधकपरिणतिकी ऐसी अटपटी बात ज्ञानी ही जान सकता है, अज्ञानीको उसका पता नहीं चलता। भरत चक्रवर्ती और बाहुबलि दोनों भाई सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी और तद्भव मोक्षगामी हैं। दोनोंने परस्पर दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्ध किया, तब भी उनकी दृष्टि तो निरन्तर ध्रुव निष्क्रिय ज्ञायकद्रव्य पर है। अहा! साधक परिणतिकी ऐसी अटपटी रीतिको ज्ञानी ही समझ सकते हैं, दूसरोंको समझना कठिन होता है। पं. दौलतरामजीने कहा है न! कि—

चिन्मूरत दृग्धारीकी मोहि रीति लगत है अटापटी।
बाहिर नारकीकृत दुःख भोगैं, अंतर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस परनतितैं नित हटाहटी।। चिन्मूरत०

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! ऐसी बातें वीतरागके सिवा अन्यत्र कहीं नहीं हैं।

आज इतिहास सम्बन्धी एक लेख आया है। उसमें लिखा है कि जैनोंके एक सम्प्रदायके सूत्रमें 'महावीर भगवान मांसाहार करते थे' ऐसी बात आती है। महावीर भगवानको मांसाहार? अरे रे! गजब कर दिया न! केवली भगवानको मांस तो क्या, किन्तु कवलाहार भी नहीं हो सकता। जहाँ परिपूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान तथा परिपूर्ण अतीन्द्रिय सुख प्रगट हुआ हो, वहाँ कवलाहार कैसा?—दाल-भात और रोटीका आहार कैसा? मांसका आहार तो सम्यग्दृष्टिको भी नहीं होता।

प्रश्न :—केवली भगवानको क्षुधावेदनीय और अशातावेदनीय कर्मका उदय तो होता है न?

उत्तर :—केवली भगवानको क्या भूख लगे और रोग हो ऐसा उदय होता है? सर्वज्ञकेवली भगवान तो क्षुधा, तृषा, रोग आदि अठारह दोषरहित होते हैं। भगवानको भूख और उसे शांत करनेके लिये दाल-भात और रोटीका आहार, रोग और उसे दूर करनेके लिये औषधिका ग्रहण आदि कुछ नहीं होता। भगवानको मांसाहार? अरे रे रे......प्रभु! यह तू क्या कहता है? भगवानका विरह हुआ इसलिये क्या भगवानके नामसे ऐसा झूठा प्रचार? प्रभु! तेरे आत्माको भारी हानि होगी। जहाँ अनन्त-अनन्त परिपूर्ण परमानन्दका अनुभव वर्त रहा है वहाँ आहार लेनेका अथवा अन्य किसीको वंदन करनेका विकल्प कैसा? विकल्प तो रागदशामें होता है, परिपूर्ण वीतरागको सूक्ष्म या स्थूल किसी प्रकारका विकल्प नहीं होता। इसलिये केवली भगवानको रोटी-पानीका कवलाहार कदापि नहीं हो सकता। भगवानको आहार-जल माननेवाले अज्ञानी हैं।

यहाँ इस बोलमें तो यह बात चल रही है कि—ज्ञानीको भूमिकाके योग्य अनेक प्रकारके रागादि परिणाम आते हैं और उनको वे जानते भी हैं, तथापि दृष्टिके विषयभूत ऐसा जो निज शुद्ध ज्ञायकभाव वह सदा मुख्यका मुख्य ही रहता है। साधक परिणतिकी ऐसी अटपटी रीतिको ज्ञानी बराबर समझते हैं, दूसरोंको-अज्ञानियोंको समझना कठिन होता है। ज्ञानीको राग होता है, परन्तु वह उसका कर्ता नहीं है—राग करने योग्य है ऐसा वह नहीं मानता। अहा! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव श्री सीमंधर परमात्मा महाविदेह क्षेत्रमें रह गये; वहाँ वे समवसरणमें विराज कर दिव्यध्वनिमें जो बात कह रहे हैं वह बात पंचमकालमें यहाँ आयी है। अरेरे! भगवानकी बातमें-वीतरागमार्गमें-लोगोंने बहुत फेरफार कर दिया है; मार्गको विकृत बना दिया है।

❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३९४

मुनिराजके हृदयमें एक आत्मा ही विराजता है। उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्माके आश्रयसे बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह–व्याघ्र दहाड़ते हों, मेघाच्छन्न डरावनी रात हो, चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफामें मुनिराज बस अकेले चैतन्यमें ही मस्त होकर निवास करते हैं। आत्मामेंसे बाहर आयें तो श्रुतादिके चिन्तवनमें चित्त लगता है और फिर अंतरमें चले जाते हैं। स्वरूपके झूलेमें झूलते हैं। मुनिराजको एक आत्मलीनताका ही काम है। अद्भुत दशा है! ॥३९४॥

'मुनिराजके हृदयमें एक आत्मा ही विराजता है।'

अब मुनिराजकी बात आती है। अहा! मुनिपना अर्थात् क्या? जिनको अंतरमें ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आलम्बन द्वारा पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्दका ज्वार आता है, प्रचुर स्वसंवेदन द्वारा भीतर आनन्दका नाथ प्रगट हुआ है, उनको यथार्थ मुनिपना प्रगट हुआ कहा जाता है। अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दके प्रचुर स्वसंवेदन बिना बाह्यमें नग्नता, पंचमहाव्रतके शुभपरिणाम या उपवासादि तपकी बाह्य क्रिया—वह कोई मुनिपना नहीं है। मुनिराजके अंतरमें, बाह्यक्रिया अथवा शुभराग नहीं, परन्तु एक अभेद परिपूर्ण निज शुद्ध ध्रुव ज्ञायक आत्मा ही विराजता है। अहा! ध्रुव धनी माथे कियो रे, कुण गंजे नरखेट? मुनिराजको ध्रुव धनी–ज्ञायकदेव–पर दृष्टि है और उसके कारण स्वरूपस्थिरता अत्यन्त परिणमित हो गई है, इसलिये अतीन्द्रियके स्वसंवेदनमें आनन्दका प्रचुर स्वाद आता है। अहा! आनन्दमय प्रचुर स्वसंवेदनको मुनिपना कहा जायगा अथवा बाह्यक्रिया और रागको? बाह्यक्रिया तो जड़की दशा है और व्रतादिका जो राग आता है वह तो आस्रव–बंधका कारण है, उसे मुनिपना कैसे कहा जाय? मुनिपना तो मोक्षका मार्ग है, बंधका नहीं। मुनिराजके हृदयमें तो 'एक' भगवान आत्मा ही विराजता है। ('एक' शब्द गुणभेद या पर्यायरहित अभेद परिपूर्णता बतलानेके लिये कहा है।) वे आत्माके उग्र आलम्बनसे आनन्दको गटागट पी रहे हैं। अहा! ऐसा है भगवानका मार्ग।

'उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है।'

मुनिराजका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्मामय अर्थात् आनन्दमय, स्वरूप–रमणतामय। महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुणके विकल्प बीचमें आते हैं, परन्तु वे कहीं साधकदशा नहीं है, आत्मामय प्रवर्तन नहीं है। भूमिकानुसार राग आता है, परन्तु मुनिराज उसके मात्र ज्ञाता हैं; ज्ञातामय अर्थात् आनन्दमय परिणमन वही उनका प्रवर्तन है। अहा! ऐसी बातें हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अकेले सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे मुक्ति नहीं होती, चारित्रअपेक्षासे भी सर्व प्रवर्तन आत्मामय होना चाहिये; उस दशाके बिना मुक्ति नहीं है। बाह्यमें व्रत, तप एवं भक्तिरूप अथवा उपदेशादिरूप प्रवर्तन होता है, परन्तु उस सर्व प्रवर्तनके समय निजज्ञायक आत्मा ही अंतरमें अधिकसे अधिक वर्तता है, इसलिये उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय अर्थात् ज्ञानमय ही है। आत्मामय प्रवर्तन अर्थात् आत्मामें-ज्ञानमें, श्रद्धामें, आनन्दमें, ईश्वरतामें—एकाग्रतारूप परिणमन। अहा! मुनिराज तो अंतरमें शुद्ध ध्रुव चैतन्यकी ओर ढल गये हैं। उस ओरका सर्व प्रवर्तन-शुद्ध पर्यायरूप सर्व प्रवर्तन-आत्मामय ही है।

वस्त्र उतारकर, पंचमहाव्रत धारण करके, नग्न दिगम्बर साधु हुआ, परन्तु अंतरमें सम्यग्दर्शन किसे कहना उसका पता नहीं लगा। सम्यग्दर्शन किसे कहा जाय? केवलज्ञान और पूर्णानन्दका कन्द ऐसा जो निज ज्ञायकभाव उसकी जब तक पर्यायमें भेंट न हो तब तक सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक स्वरूपस्थिरता होने पर मुनिराजका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही—ज्ञानधारामय ही—सहज बन जाता है।

'आत्माके आश्रयसे बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है।'

पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभुके आश्रयसे मुनिराजको अति निर्भयता प्रगट हुई है। आनन्दके नाथमें प्रचुररूपसे रमनेवाले संतोंको बाह्यका भय कैसा? जिनको अंतरमें, ज्ञान एवं शान्तिमें रमते-रमते, अति निर्भयता प्रगट हुई है, उनको मुनिराज कहा जाता है। उनको भय किसका? गर्जना करते हुए सिंह और बाघ दिखायी पड़ें, तथापि भय नहीं होता। श्रीमद्ने कहा है न! कि—

घोर परिषहके उपसर्ग भये करी,
आवी शके नहीं ते स्थिरतानो अंत जो,
........अपूर्व अवसर०॥

आनन्दमय आत्मस्थिरता इतनी बढ़ गई है कि चाहे जैसे कठिन परीषह या उपसर्ग आ पड़ें, तथापि उनके भयसे मुनिराज किंचित् भी चलायमान नहीं होते। आत्माके आश्रयसे अत्यन्त निर्भयता प्रगट हुई है। पुनः श्रीमद् कहते हैं :—

एकाकी विचरतो वळी श्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसनने मनमां नहीं क्षोभता,
परममित्रनो जाणे पाम्या योग जो।अपूर्व०।.......

बाहरसे देखने पर मुनिराज एकाकी विचरते हैं, अंतरमें देखनेसे वे अनन्त गुणोंसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिपूर्ण स्वरूपनगरमें विचरण करते हैं; बाहरसे देखने पर वे स्मशानमें आत्मसाधना हेतु बैठे हैं, परन्तु अंतरमें देखनेसे निज आनन्दधाममें विराजमान हैं। सिंह, वाघ या अन्यकृत उपसर्ग आयें तब मुनिराज, निज द्रव्यस्वभावको प्रबल पुरुषार्थपूर्वक पकड़कर ऐसा मानते हैं कि 'अपनी स्वरूपस्थिरताके प्रयोगका मुझे अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिये उपसर्ग मेरा परम मित्र है।' मुनिराज भीषण उपसर्ग तथा परीषहके कालमें आनन्दकन्द निज ज्ञायकमें प्रचुरतासे लीन हो जाते हैं, क्योंकि उनको आत्माके सहज आश्रयसे अत्यन्त निर्भयता प्रगट हुई है।

'घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह–व्याघ्र दहाड़ते हों, मेघाच्छन्न डरावनी रात हो, चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफामें मुनिराज बस अकेले चैतन्यमें ही मस्त होकर निवास करते हैं।''

निर्जन भयंकर वन हो, सूर्यकी किरण भी न पहुँच सके ऐसी घनी झाड़ियाँ हों, जिनकी गर्जना सुनकर मनुष्योंके कलेजे भयसे काँप उठें ऐसे विकराल सिंह–वाघ पास ही घूम रहे हों, घनघोर मेघाच्छादित रात्रिका अंधकार चारों ओर फैल गया हो—ऐसे में मुनिराज पर्वतकी गुफामें या किसी वृक्षके नीचे भीतर निजानन्दमें केलि करते हैं। वनराजकी दहाड़ सुनकर मनुष्य भयभीत होकर भागता है, मुनिराज वह दहाड़ सुनकर अंतरमें जागते हैं—स्वरूपानन्दमें उग्रतापूर्वक स्थिर हो जाते हैं। अहा! मुनिपना तो कोई अलौकिक वस्तु है। जहाँ सम्यग्दर्शन भी कोई अलौकिक एवं अनुपम वस्तु है वहाँ मुनिदशाकी अलौकिकता और अनुपमता की तो बात ही क्या है! 'णमो लोए सव्व साहूणं' में जिनको, बारहअंग और चौदहपूर्वकी रचना करनेवाले श्रुतकेवली गणधर भगवानका भावनमस्कार पहुँचता है, वह मुनिदशा कैसी अद्भुत होगी?

अंतरमें उपयोग जम जाता है तब मुनिराजको पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्दका भारी ज्वार आता है; जो अनन्त गुणोंके अभेद पिण्डस्वरूप निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके आश्रयसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ है, उस चैतन्यमय द्रव्यस्वभावमें ही वे एकाकी लीन होकर निवास करते हैं।

'आत्मामें से बाहर आयें तो श्रुतादिके चिन्तवनमें चित्त लगता है और फिर अंतरमें चले जाते हैं।'

ध्यान एवं निर्विकल्प आनन्दमेंसे बाहर आयें तो मुनिराज सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित श्रुतादिके चिन्तवनमें अथवा देव–शास्त्र–गुरुकी विनयादिमें चित्त लगाते हैं और पुनः स्वरूपमें स्थिर हो जाते हैं, स्वरूपगुप्त हो जाते हैं; बाहर आये नहीं कि भीतर चले जाते हैं, सातवें अप्रमत्त गुणस्थानके अतीन्द्रिय आनन्दमें झूलते हैं, विकल्पके कालमें–छठवें प्रमत्त गुणस्थानमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–शास्त्रस्वाध्याय आदिमें उपयोग लगाते हैं और फिर स्वरूपमग्न हो जाते हैं। शास्त्रस्वाध्याय आदिके चिन्तवनरूप विकल्पसे अंतरमें प्रवेश होता है ऐसा नहीं है, परन्तु स्वसन्मुखताके सहज पुरुषार्थसे अंतरमें प्रविष्ट होते हैं। समाज, संघ या किसी बाहरी वस्तुकी उन्हें कोई दरकार नहीं है। कर्म प्रक्रम–प्रतिदिन नियमानुसार उपदेश देना, पाठशाला या अन्य संस्थाओंमें हाजरी देना, पुस्तकें लिखना–छपवाना, अखबारोंमें लेख लिखना आदि अनेक प्रकारके कार्योंका सिरपर बोझ–वे नहीं रखते; विकल्प आये और यथोचित्त सहज योग हो तो स्वाध्याय अथवा श्रुतादिकी रचना हो जाती है और फिर स्वरूपमें समा जाते हैं, भीतर आनन्दसागरमें निमग्न हो जाते हैं।

'स्वरूपके झूलेमें झूलते हैं।'

जो ऐसे सच्चे भावलिंगी मुनिराज हैं वे तो छठवें–सातवें गुणस्थानमें झूलते रहते हैं, स्वरूपानन्दमें डूब जाते हैं, इसका नाम मुनिपना है। ऐसी सहजदशा हो उन्हें मुनि मानना। इससे विरुद्ध दशावालेको मुनि मानना वह विपरीत श्रद्धा है। अहा! बात बहुत असह्य है, परन्तु क्या हो? वीतराग द्वारा कहे गये मुनिमार्गका स्वरूप ही ऐसा है।

'मुनिराजको एक आत्मलीनताका ही काम है।'

ज्ञायकमें–आनन्दस्वरूप निज भगवान आत्मामें–लीनता साधना वह एक ही कार्य मुनिराज सतत कर रहे हैं। उनको संयमके हेतु स्वरूपके लक्षसे तथा जिनाज्ञाके अनुसार मन–वचन–कायाके योगमें स्वल्प आकर्षण वर्तता है, परन्तु वह भी प्रतिक्षण घटती हुई स्थितिमें होता है और अन्तमें निजानन्द स्वरूपमें लीन हो जाते हैं, क्योंकि मात्र आत्मलीनता ही उनका काम है।

'अद्‌भुत दशा है।'

अहा! मुनिपना तो कोई अद्‌भुत दशा है! जिनको गणधरका भावनमस्कार पहुँचे वह दशा कैसी होगी, भाई! जहाँ ज्ञायकस्वभावके उग्र आलम्बनसे अंतरमें उपशम रसका सागर उछलता है और बाहर शरीरमें उपशम रस ढल गया होता है, ऐसा जो सहज मुनिपना वह वास्तवमें कोई अद्‌भुत दशा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१६०

दिनांक २४-११-७८

वचनामृत–३९५

चेतनका चैतन्यस्वरूप पहिचानकर उसका अनुभव करने पर विभावका रस टूट जाता है। इसलिये चैतन्यस्वरूपकी भूमि पर खड़ा रहकर तू विभावको तोड़ सकेगा। विभावको तोड़नेका यही उपाय है। विभावमें खड़े–खड़े विभाव नहीं टूटेगा; मन्द होगा, और उससे देवादिकी गति मिलेगी, परन्तु चार गतिका अभाव नहीं होगा॥३९५॥

'चेतनका चैतन्यस्वरूप पहिचानकर उसका अनुभव करने पर विभावका रस टूट जाता है।'

क्या कहते हैं? कि–चेतन अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप जो निज ज्ञायक आत्मा, उसके सहज द्रष्टा–ज्ञातारूप चैतन्यस्वरूपको जानकर उसका यथार्थ अनुभव करने पर विभावके साथ एकताका रस टूट जाता है।

एक बात ऐसी है कि–छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नवतत्त्व आदिको अविरोधरूपसे यथार्थ जाने तब तो अभी उनको यथार्थरूपसे ग्रहण करनेवाली ज्ञानकी पर्यायको माना कहा जाता है; निज द्रव्यसामान्यको माननेकी बात कोई अलग ही है!—इसप्रकार यथार्थ देव–शास्त्र–गुरुको जाने—उनकी भक्तिके भाव तो राग है, उस रागकी बात तो दूर रही, परन्तु उसका जो ज्ञान हुआ—वह भी पर्याय है; ज्ञातृत्वरूप उस पर्यायमें स्थित रहकर पूर्णानन्दकन्द निज चैतन्यका ज्ञान नहीं होगा। अहा! ऐसी बातें हैं, सुननेमें नहीं आयी हों वे बेचारे क्या करें?

कोई कहता है हम सब कुछ जानते हैं, परन्तु उस पर अमल नहीं कर सकते। क्या अमल नहीं कर सकते? व्रत और तप? भाई! व्रत और तप आदि बाह्य क्रियाएँ तो आत्मा धूल भी नहीं कर सकता। अरे! द्रव्य–पर्यायस्वरूप जो निज चैतन्यवस्तु है उसे पर्यायमें छह द्रव्य आदिका ज्ञान हो तब तो 'पर्यायकी इतनी शक्ति है' ऐसा जानपना हुआ कहा जायगा; निज ज्ञायक द्रव्यस्वभावका आश्रय करके उसका ज्ञान होना वह बात अलग ही है। देव–शास्त्र–गुरुका जो ज्ञान हुआ वह तो परद्रव्यका ज्ञान है, स्वद्रव्यका नहीं। अहा! ऐसा मार्ग है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई! पर्यायके ऊपर जिसका लक्ष है उसका लक्ष विभाव पर है; परद्रव्यके प्रति जिसे प्रेम है उसे चेतनके त्रिकालशुद्ध चैतन्यस्वरूपका ज्ञान नहीं है; उसे जो छह द्रव्य आदिका ज्ञान हुआ वह पर्यायमात्र रहा, त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यस्वरूपका आश्रय नहीं होनेसे उसे द्रव्यका ज्ञान नहीं हुआ। भगवान आत्मामें दो अंश हैं : (१) चेतनके चैतन्यस्वरूप—शुद्धात्मद्रव्यसामान्यस्वरूप—ध्रुव अंश, और (२) प्रतिसमय परिणमित होता पर्याय-अंश। उन दो अंशोंमें जो अंश छह द्रव्य, उनके गुण-पर्याय, नवतत्त्व आदिको तथा देव-शास्त्र-गुरु आदिको जाने वह वर्तमान परिणमित होता पर्याय-अंश है, और उस पर्याय-अंशके अतिरिक्त जो सम्पूर्ण, त्रिकालशुद्ध, अपरिणामी, अनन्तशक्तिवान चैतन्यपिण्ड है वह ध्रुव द्रव्यांश है। समस्त पर्यायांशको गौण करके, चेतनके ध्रुव चैतन्यस्वरूपको जानकर उसका आश्रय और अनुभव करने पर विभावका रस छूट जाता है।

एक ओर ऐसा कहते हैं कि—जो अरिहंतको द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे तथा पर्यायरूपसे जानता है, वह अपने आत्माको जानता है और उसका मोह अवश्य लयको प्राप्त होता है; दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि—देव-शास्त्र-गुरुका ज्ञान भी पर्याय-ज्ञान है, द्रव्यका ज्ञान नहीं। भाई! अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानने पर अपने आत्माको जानता है—यह कथन निमित्त और व्यवहारकी अपेक्षाका है। अरिहंतको व्यवहारसे जाना तब कहा जाता है कि जब अरिहंतको द्रव्य-गुण-पर्यायरूपसे जानकर, फिर अपने द्रव्यस्वभावकी ओर-चेतनके ध्रुव चैतन्यस्वरूपकी ओर-उन्मुख होकर, पर्यायोंको तथा गुणभेदको गौण करके, केवल द्रव्यसामान्यके आश्रयसे परिणामी-परिणामपरिणतिके भेदका विकल्प मिटाकर निज निष्क्रिय चिन्मात्र स्वरूपको प्राप्त करे। अहा! संतोंके सिद्धान्त बड़े गहन! बड़े गजब! अद्‌भुत है उनकी शैली!

यहाँ, चेतनके चैतन्यस्वरूपको जानकर—इसप्रकार स्वसे बात की है, पर्यायमें देव-शास्त्र-गुरुको-परको—जानकर ऐसी बात नहीं ली। निज ध्रुव चैतन्यस्वरूपको पहिचानकर उसका अनुभव करनेसे विभावका रस टूट जाता है। विभावका रस टूटनेका यह एक ही उपाय है। अहा! यह बात लोगोंको कठिन लगती है, क्योंकि जगतमें चलती नहीं है न! अभ्यास नहीं है न! अभ्यास करे तो बिलकुल सरल है।

'इसलिये चैतन्यस्वरूपकी भूमि पर खड़ा रहकर तू विभावको तोड़ सकेगा।'

भाई! यदि तुझे मोह-राग-द्वेषरूप विभावको तोड़ना हो तो वह कार्य चैतन्यस्वरूपकी ध्रुव ज्ञायकभूमि पर खड़े रहकर-निज त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि स्थापित करनेसे-बन सकेगा; इसलिये तू अपने चैतन्यस्वभावको पहिचाननेका तथा उसके अनुभवका अंतर्मुख उद्यम कर। अहा! सादा तथा स्वल्प शब्दोंमें कितना गहन तत्त्व भरा है भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देव–गुरुकी भक्ति, व्रत, तप, यात्रादि शुभभाव तो विकल्प हैं, राग हैं; उनमें खड़े रहनेसे, जाग्रत–सावधान होनेसे, विभावको नहीं तोड़ा जा सकता। अरे! देव–गुरुका जो ज्ञान किया वह भी परलक्षी ज्ञान–पर्यायज्ञान है; उस पर्यायज्ञानमें कितनी शक्ति? उसमें स्थित रहकर, उसका आश्रय करनेसे विभाव कभी टूट नहीं सकता। ध्रुव ज्ञायककी भूमि पर खड़ा रहकर, उसका अंतरमें आश्रय करके तू विभावको तोड़ सकेगा। 'विभावको तोड़ सकेगा' यह कथन भी अपेक्षासे है। स्वभावका आश्रय करने पर अर्थात् ज्ञान ज्ञानमें प्रतिष्ठित होने पर विभाव जो स्वयं टूट जाता है तब 'विभावको तोड़ा' ऐसा कहा जाता है। इसे, कथनके सिवा समझाना किसप्रकार? समयसारकी ३४वीं गाथाकी टीकामें आता है न? कि—आत्माको परभावके त्यागका कर्तृत्व है वह नाममात्र है। पहले जो जानता है वही फिर त्यागता है, दूसरा तो कोई त्यागनेवाला नहीं है। स्वयं तो ज्ञानस्वभाव है। परद्रव्यको पर जाना, पश्चात् परभावका ग्रहण नहीं वही त्याग है। इसप्रकार, स्थिर हुआ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है, ज्ञानके सिवा अन्य कोई भाव नहीं है। ज्ञायककी भूमि पर खड़ा रहना, वही विभावका टूटना है —विभावका प्रत्याख्यान है।

'विभावको तोड़नेका यही उपाय है।'

विभावको अर्थात् दुःखकी दशाको दूर करनेका तथा निराकुल सुखदशा प्रगट करनेका अमोघ उपाय, निज त्रिकालशुद्ध परमानन्दकन्द चैतन्यस्वरूपको पहिचानकर उसका अनुभव करना–यही है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभाव स्वयं विभावभाव है; विभाव द्वारा विभावका–दुःखरूप दशाका–नाश कदापि नहीं हो सकता। अहा! ऐसी बात है। बात तो सरल है, परन्तु लोगोंने ऐसी बना दी है कि–'हम नहीं पकड़ सकते'। भाई! पकड़ नहीं सकते का अर्थ क्या? तुझे पकड़ना तो आता है, पर्यायको पकड़कर बैठा है—पर्यायमूढाः परसमयाः—उस पकड़को छोड़कर त्रिकालशुद्ध निज द्रव्यसामान्यको पकड़ना है, उसके ऊपर रुचिका जोर लगाना है। अज्ञानीको ध्यान करना तो आता है। क्या आर्तध्यान और रौद्रध्यान करना नहीं आता? यदि उलटा ध्यान करना आता है तो निज चैतन्यस्वरूपको दृष्टिमें लेकर सीधा ध्यान करना क्यों नहीं आयगा? आया समझमें? कहाँ जोर देता है? सीधे पर या उलटे पर। सीधे पर जोर देना—चैतन्यस्वरूपको पहिचानकर उसके अनुभवका उद्यम करना—यही विभावको तोड़नेका एकमात्र उपाय है।

'विभावमें खड़े–खड़े विभाव नहीं टूटेगा; मन्द होगा, और उससे देवादिकी गति मिलेगी, परन्तु चार गतिका अभाव नहीं होगा।'

शुभाशुभ विभावमें और देव, गुरुके बहिर्लक्षी ज्ञातृत्वरूप पर्यायमें खड़े–खड़े, उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचिपूर्वक सन्तुष्ट रहनेसे, विभावको तोड़ा नहीं जा सकेगा। देव–गुरु पर भक्तिवंत हो जाय, परन्तु भाई! पर्यायमें–विकल्पमें स्थित रहकर–सावधान रहकर–विभाव नहीं टूटेगा; मन्द होगा, और उससे स्वभावका पर्यायमें घात तथा देवादिकी गति प्राप्त होगी, परन्तु पर्यायमें स्वभावकी प्राप्ति या चारगतिका अभाव नहीं होगा। देव–गुरुकी भक्तिका राग भी घातिकर्मका बंध करता है, अघातिकर्ममें वह मुख्यरूपसे पुण्यका बंध करता है। मन्द–कषायसे भले ही पुण्यकर्मका बंध हो, परन्तु वह विभाव भी निज गुणका घातक होनेसे साथमें घातिकर्म तो अवश्य बँधता ही है। आत्माके ध्रुव चैतन्यस्वरूपसे च्युत होकर देव–गुरुको जाने, छह द्रव्योंको तथा नवतत्त्वोंको जाने, अरे! भीतर जो रागकी मन्दता हुई उसे ज्ञान हुआ जाने, परन्तु वह सब पर्यायबुद्धि है; उससे पुण्यबंध होगा और उसके फलमें मनुष्य या देवगति मिलेगी, परन्तु चार गतिके अभावस्वरूप पूर्णानन्दमय सिद्ध दशा नहीं होगी। अहा! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है भाई! अरे! जिसे अभी वस्तुस्थिति क्या है उसका भी ज्ञान न हो उसे धर्म कहाँसे होगा?

व्यवहारके पक्षवालोंको यह बात असहनीय लगती है। वे कहते हैं कि—भक्ति तो मोक्षकी नसैनी है, देव–गुरुकी भक्तिसे यदि मोक्ष नहीं होता, तो मोक्षका दूसरा क्या साधन है?—ऐसा कहकर देव–गुरुकी श्रद्धा और भक्तिको मोक्षका साधन मानते हैं। भाई! देव–गुरु तो परद्रव्य हैं, उनको मानना वह तो शुभ विकल्प है—राग है, और तत्सम्बन्धी जो ज्ञान है वह भी परलक्षी है–विभाव है; उसमें सावधान रहनेसे कषाय मन्द होंगे, और उससे फिर अन्य गति मिलेगी, गतिका अभाव नहीं होगा–सिद्धगति प्राप्त नहीं होगी।

विभावभावसे, भले ही मन्द हो, गति मिलेगी। पुनः गति न मिले–ऐसा नहीं होगा। कषाय विशेष मन्द हो तो देवगति मिलेगी, मध्यम मन्द हो तो मनुष्य होगा, देवकुरु तथा उत्तरकुरुका–भोगभूमिका–मनुष्य होगा, परन्तु है तो वह गति, वह कहीं आत्माकी जाति नहीं है। देव–गुरुकी श्रद्धा–भक्ति अथवा तत्त्वके बहिर्लक्षी ज्ञातृत्वरूप पर्यायमें–विभावमें–जाग्रत रहनेसे विभाव नहीं टूटेगा; रागकी मन्दता होगी, और उससे देव या मनुष्यगति मिलेगी, परन्तु चार गतिके परिभ्रमणका अभाव नहीं होगा, पूर्ण परमानन्दस्वरूप सिद्धदशा प्राप्त नहीं होगी। सिद्धदशाका उपाय अर्थात् विभावको तोड़नेका उपाय तो अपने त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध चैतन्यस्वरूपको पहिचानकर उसका अनुभव तथा उसमें पूर्ण स्थिरता करना ही है। अहा! ऐसी बात है इसमें (वचनामृतमें)! यहाँ की कोई टीका करता है कि—लो, श्री कुन्दकुन्दाचार्यके शास्त्रोंके बदले बहिनके शास्त्र पर व्याख्यान करते हैं। भाई! वस्तुस्वरूप तो जो है सो है; श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भी यही कहते हैं और यह (बहिनके वचनामृत) भी यही कहते हैं। अहा! यह एक ही पैरा तो देखो! जो वस्तुस्थिति है वही बतलायी है न!

❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३९६

तीन लोकको जाननेवाला तेरा तत्त्व है उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती? आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपनेमें ही सब भरा है। आत्मा सारे विश्वका ज्ञाता–द्रष्टा एवं अनन्त शक्तिका धारक है। उसमें क्या कम है? सर्व ऋद्धि उसीमें है। तो फिर बाह्य ऋद्धिका क्या काम है? जिसे बाह्य पदार्थोंमें कौतूहल है उसे अन्तरकी रुचि नहीं है। अन्तरकी रुचिके बिना अन्तरमें नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता॥३९६॥

'तीन लोकको जाननेवाला तेरा तत्त्व है उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती?'

भगवान निज ज्ञायक आत्माका त्रैकालिक सहजस्वरूप समस्त स्वपरको–तीनलोक और तीनकालको जाननेके स्वभाववाला है। ऐसे अपने अचिन्त्य अद्भुत स्वरूपकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती? निज शुद्धद्रव्यसामान्यके आश्रयसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसका स्वभाव भी स्वको तथा तीनलोकके समस्त भावोंको सहजरूपसे जाननेका है, तो यह त्रैकालिक आत्मद्रव्य तो ज्ञातृत्वके परिपूर्ण सामर्थ्यसे सदा भरपूर है; उसका तीन लोकको–विश्वके समस्त द्रव्य –गुण–पर्यायको—जाननेका जो अचिन्त्यस्वभाव उसकी महिमाकी तो बात ही क्या? नियमसारमें कारण–उपयोग और कार्य–उपयोगकी बात आती है। वहाँ कारण–उपयोग स्वको अर्थात् निज त्रैकालिक ध्रुव आत्मवस्तुको, त्रैकालिक गुणोंको और आत्मा समस्त पर्यायोंको तथा परको अर्थात् लोकालोकको–लोकके समस्त द्रव्य–गुण–पर्यायको—जाननेकी शक्तिरूप स्वभाववाला कहा है। अहा! तेरा त्रैकालिक तत्त्व ऐसा अद्भुत है; उसकी महिमा तुझे क्यों नहीं आती? और दया, दान, भक्ति आदि विभावपरिणाममें क्यों रस आता है? अनन्त –अनन्त तीर्थंकर, देव–गुरु आदि तथा छह द्रव्य, नवतत्त्व इत्यादिके ज्ञातृत्वरूप पर्यायकी महिमा तुझे क्यों आती है? वास्तवमें महिमा करने योग्य तो निज त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्यस्वभाव है; परन्तु संसारमें लिप्त हो रहे प्राणीको वह अनन्त महिमावन्त निज ध्रुव ज्ञायकतत्त्व समझना कठिन लगता है। अहा! तीन लोकका ज्ञाता अर्थात् तीनलोकको जानते हुए सदा शुद्ध ज्ञातारूप रहनेवाला जो तेरा अनुपम तत्त्व, वास्तवमें उसीकी महिमा करने योग्य है।

'आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, अपनेमें ही सब भरा है।'

सर्व=समस्त+स्व=सम्पत्ति; आत्मा स्वयं ही अपनी समस्त सम्पत्तिसे, ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त समृद्धिसे भरा हुआ है। ज्ञान, शान्ति, समाधि, सुख आदि सब कुछ आत्मामें ही भरा है, कुछ भी बाहर लेने नहीं जाना है। ज्ञानानन्द स्वरूप निज ज्ञायक द्रव्य स्वयं ही सर्वस्व, ऊर्ध्व, अधिक, मुख्य एवं मूल्यवान है, उसके समक्ष विश्वकी समस्त वस्तुएँ तुच्छ हैं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गौण हैं। अहा! ध्यान रखे तो यह बात समझमें आयगी। 'आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है' —इसमें एकान्त नहीं हो जाता? यही सम्यक् एकान्त है। आत्मामें ज्ञान और आनन्द आदि सब कुछ भरा है, इसलिये आत्मा स्वयं ही अपना सर्वस्व है, उसे बाहरसे कुछ लेना नहीं है। सम्प्रदायमें यह बात नहीं चलती, इसलिये लोग इस बातको 'एकान्त' कहते हैं, परन्तु बेचारे और क्या कहें? क्योंकि उन्हें तत्त्वकी तो कोई सूझ नहीं है।

प्रभु! तू तो स्व-पर प्रकाशक ज्ञायकपिण्ड है न! परपदार्थ है, इसलिये तू उनको जानता है-ऐसा नहीं है, तेरा सर्वस्व स्वभाव ही स्व-परको स्वयंसे जाननेवाला है। सामने इतनी वस्तुएँ हैं-लोकालोक हैं-इसलिये यहाँ ज्ञान होता है-ऐसा नहीं है, परन्तु स्वयं ही ज्ञान सर्वस्व है, स्व-परको जाननेका ज्ञान सर्वस्वका सहज स्वभाव है। अरे! जीवको अपने चैतन्यतत्त्वकी महिमा नहीं आयी और उसके बिना बाहरकी-शुभक्रिया तथा शुभरागकी-माथाकूट करके, बाहर भटककर मर गया।

प्रश्न :—आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, तो जगतमें अन्य वस्तुएँ हैं या नहीं?

उत्तर :—शरीर, वाणी, मन आदि अन्य वस्तुएँ उनके अपनेमें भले रहीं, किन्तु आत्मामें उनका अभाव है। शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही आत्माका सर्वस्व है। परवस्तु है इसलिये आत्मा जानता है? पर है, इसलिये यहाँ आत्मामें जाननेका कार्य होता है? नहीं; आत्मा स्वयं ही ज्ञातास्वरूप ज्ञानसर्वस्व है। अरे! कितनोंको तो यह बात कानोंमें पड़ना कठिन है। उन्हें तो ऐसा लगेगा कि क्या जैनधर्म ऐसा होगा? भाई! जैनधर्म तो वस्तुका स्वभाव है। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। अपने द्रव्यको, अपने अनन्त गुणोंको, अपनी तीनोंकालकी पर्यायोंको तथा अन्य अनन्त द्रव्य-गुण-पर्यायोंको स्वयंसे जाने ऐसा चैतन्यका सहज सर्वस्वस्वरूप है।

आत्मा स्वयं ही सर्वस्व है, क्योंकि स्वयंमें ही ज्ञान एवं आनन्दादि सब भरे हैं। अपनेमें अपना सब भरा है। पर अर्थात् लोकालोक भीतर ज्ञानमें भरे हैं—ऐसा नहीं। ज्ञान लोकालोकको जानता है, परन्तु उसे जानते हुए आत्मा तो अपने ज्ञान सर्वस्वसे ही भरा है, परसे नहीं।

'आत्मा सारे विश्वका ज्ञाता-द्रष्टा एवं अनन्त शक्तिका धारक है।'

विश्व अर्थात् जगतके समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय; भगवान आत्मा उनका मात्र ज्ञाता-द्रष्टा है, कर्ता, भोक्ता या स्वामी नहीं है। उसका ज्ञाता-द्रष्टापना विश्वके चेतन-अचेतन, मूर्त-अमूर्त, वर्तमान-अवर्तमान, विचित्र एवं विषम पदार्थोंके कारण नहीं, किन्तु अपने सहज स्वभावसे ही है। अहा! सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म लगेगा ही न? यह व्यापार किया ही कब है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'जगतका व्यापार मैं कर सकता हूँ' ऐसा मानकर, उसमें रुककर, मर गया है अनादिसे। भाई! तू स्वभावसे समस्त विश्वका मात्र ज्ञाता-द्रष्टा और अनन्तशक्तिका धारी है, तेरी प्रभुता आश्चर्यजनक एवं अलौकिक है। अहा! सहज ज्ञान, सहज आनन्द, सहज रमणता, सहज समाधि आदि अनन्त शक्तिसे भरपूर ऐसे निज त्रैकालिक प्रभुकी यथार्थ प्रतीति करने जैसी है। जिसने ऐसा अपना भगवान आत्मा जाना होगा उसको अरे! मृत्युकालमें-रोगके, वेदनाके, मरणके, एकत्वबुद्धिके एवं आर्तध्यानके घेरेमें न घिरकर—शरीर ज्ञान एवं आनन्दपूर्वक छूट जायगा।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिसे 'भगवान' कहते हैं वही इस समस्त विश्वका ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा है। प्रभु! तू विश्वको देखने-जाननेवाला है उसका कर्ता, व्यवस्थापक या अधिष्ठाता नहीं है, और उसके कारण तेरा ज्ञाता-द्रष्टापना भी नहीं है; तू और विश्व दोनों परिपूर्ण स्वतंत्र एवं पृथक् हो। अहा! अपनी ज्ञाता-द्रष्टामय प्रभुताको एकबार देख तो सही! तेरा स्वभाव ही लोकालोकको-अनन्त द्रव्योंको, उनके अनन्त गुणोंको तथा त्रिकालवर्ती अनन्य पर्यायोंको, आकाशके अनंतक्षेत्रको, कालके अनन्त समयोंको, भावकी अनंत-अनंत सूक्ष्मताको अर्थात् समस्त विश्वको-सहजरूपसे-जानता रहे इतना महान एवं अचिन्त्य तेरा स्वभाव है। अहा! देखो तो वीतरागका मार्ग! अरे! लोगोंने उसे कहींका कहीं कल्पित कर लिया है—परकी दयामें और शरीरकी क्रियामें धर्म मान रखा है। 'दया तो सुखका मूल है, दया तो सुखकी खान; अनंत जीव मुक्ति गये, दया धर्म फल जान'। परन्तु भाई! दया कहना किसे? अंतरमें तत्त्वकी यथार्थ समझ और वीतरागभावकी पर्याय प्रगट करके अपने आत्माको क्षण-क्षण होनेवाले भावमरणसे बचाना वही सच्ची दया है। 'आत्मावलोकन' में कहा है कि—

यत् निजस्वभावं विकारभावेन न घातयति, न हिनस्ति निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया।

विकारमय परिणामों द्वारा अपने स्वभावका घात न करना, उसकी हिंसा न करना तथा अपने स्वभावका पालन करना वही दया है। गणधरों, इन्द्रों तथा चक्रवर्तीके समक्ष समवसरणमें सर्वज्ञपरमात्माने दयाका सच्चा स्वरूप इसप्रकार बतलाया है। अहा! क्या अद्भुत है भगवानकी दिव्यवाणी! मानों अमृतके मेघ बरस रहे हों!

वचनामृत वीतरागके परम शान्तरस-मूळ;
औषध जो भवरोगके, कायरको प्रतिकूल।

अहा! जिसे एकावतारी इन्द्र भी पिल्लेकी भाँति अति नम्र होकर विनयपूर्वक सुनें वह वाणी कैसी होगी?

किसी पर जीवकी दया पालना, किसीका भला-बुरा करना, किसीको कुछ लेने-देनेकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अथवा किसीका रंचमात्र करनेकी शक्ति तुझमें नहीं है। जहाँ विश्वका प्रत्येक पदार्थ सम्पूर्ण स्वतंत्र और स्वाधीन है, वहाँ एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका क्या करेगा? प्रभु! तेरा स्वभाव तो मात्र जानना-देखना है। इसप्रकार ज्ञान और दर्शन इन दो गुणोंकी बात कहकर अब कहते हैं कि-आत्मा तदुपरान्त, अनन्तशक्तियोंका धारी है—सुख, वीर्य, प्रभुत्व, जीवत्व आदि अनन्त गुणोंका समुदाय है। आत्मा द्रव्य है न? गुणोंके समूहको द्रव्य कहते हैं। अहा! यह पुस्तक तो कोई अद्भुत पुस्तक है!! भावनगरके एक ब्राह्मण प्रोफेसर भी पढ़कर आश्चर्यचकित हो गये। वे लिखते हैं कि—'ऐसी वस्तु! अरे इसमें तो रत्नोंके भण्डार भरे हैं!'

'उसमें क्या कम है?'

प्रभु! तेरा ज्ञायक स्वभाव अनन्तानन्त गुणसमृद्धिसे सदा परिपूर्ण है। तुझमें क्या कम है? काहेकी कमी है? कि तू बाह्यमें ज्ञान, शान्ति और सुख देखने जाता है? ज्ञान क्या देव-शास्त्र-गुरु या उनकी भक्तिमेंसे आयगा? सुख क्या पुण्य या पुण्यके फलमेंसे आयगा? अरे! यह तुझे क्या हो गया है भाई!—कि बाहरकी उछल कूद करता है? सत्पुरुषका समागम कर, आगमका अभ्यास कर तो तेरा कल्याण होगा-ऐसा कथन शास्त्रोंमें आता है, परन्तु उसका अर्थ यह है कि सत्समागम और आगमके अभ्यास द्वारा अंतर्मुख पुरुषार्थ करके अपना स्वरूप समझना, समझकर अंतरमें उसकी साधना करना; परन्तु मात्र बहिर्लक्षी अभ्यासमें अटक नहीं जाना।

दर्शन और ज्ञान-इन दो गुणों द्वारा यहाँ बात कही है, परन्तु ऐसे अनन्त गुणोंरूप समृद्धिसे सदा भरपूर भगवान ज्ञायक आत्मा, पर्यायके समीप-पर्यायरूप परदेके पीछे, अंतरमें सदा विराजमान है; अरे! उस अनन्त महिमावन्त निज ध्रुव पदार्थको तूने कभी दृष्टिमें नहीं लिया। अहा! 'वचनामृत'की भाषा तो बिलकुल सादी है, चौथी कक्षा तक पढ़ा हुआ भी समझ सके इतनी सरल है। यहाँ कहते हैं कि-तेरी प्रभुता, तेरा सत्त्व, ज्ञान, दर्शनादि अनन्तगुणोंसे भरपूर है; उसमें क्या कमी है, क्या न्यूनता है कि जो बाहर लेने जाता है? आत्मा ज्ञान और दर्शनकी अनन्तशक्तिसे तो भरपूर है ही, परन्तु तदुपरान्त अन्य अनंतगुणोंसे भी परिपूर्ण है, उसमें क्या कम है?

'सर्व ऋद्धि उसीमें है।'

आत्मा तो अनन्त ऋद्धिसम्पन्न कोई अद्भुत अजायबघर है। देखने जैसा सबकुछ आश्चर्यजनक ऐसा सबकुछ अनन्त ऋद्धियुक्त ऐसे निज आत्मामें ही है, बाह्यमें कुछ भी नहीं है। तू उसीका अवलोकन कर न! अहा! ऐसी बातें हैं! लोगोंको तो बाह्यमें कुछ व्रत, उपवास, तप या त्याग करे तब कुछ किया लगता है। अरे! भाई! इस परिपूर्ण शुद्ध भगवान ज्ञायक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्माको अभिप्रायमें अनादिसे जो रागादि विभाववाला, अल्पज्ञ और अपूर्ण मान रखा था, वह अब शुद्ध सर्वज्ञस्वभावी एवं परिपूर्णरूपसे प्रतीतिमें आया, वह क्या विपरीत मान्यताका त्याग नहीं है? अंतरमें दोष एवं अपूर्णताका त्याग वही सच्चा त्याग है। लोग बाह्य त्यागको मानते हैं। क्या किया जाय? दृष्टि ही बाह्यमें है। भगवान! तू कितना महान है, अनन्तानन्त प्रभुत्वसे भरपूर तेरी एक-एक शक्ति कितनी अपरिमित है उसका कभी विचार किया है? ज्ञान और दर्शनकी पर्याय निज आत्माको तथा शेष समस्त लोकालोकको एकसमयमें युगपद् प्रत्यक्ष जान-देख ले ऐसा महान सामर्थ्य तुझमें शक्तिरूपसे सदा भरा है; अरे! उसके सिवा अन्य सुख वीर्य आदि अनन्त गुण और उन गुणोंको धारण करनेवाला तू अपार है। श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, पुरुषार्थ, कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि सर्व ऋद्धियाँ तुझमें ही हैं।

'तो फिर बाह्य ऋद्धिका क्या काम?'

'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'। अहा! जिसे स्वऋद्धिकी प्रतीति और अंशतः वेदन हुआ उसे बाहरी-जड़ पुद्गलकी-ऋद्धि या वैभवका क्या काम है? उसे तो—

सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा,
अंतरकी लच्छिसौं अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्तके उदास रहें जगतसौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं॥

—ऐसी अद्भुत दशा हो गई होती है। बाह्य वस्तुएँ—सोना, चाँदी, हीरे आदि —धूल भी लक्ष्मी नहीं हैं; सम्यग्दृष्टि तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा आत्मानुभूतिरूप अंतरंग लक्ष्मी द्वारा, बाह्य लक्ष्मीका अयाचक-अनिच्छक—और निज ध्रुव ध्येयरूप लक्ष्यका पति हो गया है। वह निज ज्ञायक भगवन्तका दास अर्थात् उपासक और विश्वके अन्य समस्त भावोंसे उदासीन हो गया है। अहा! ऐसे सम्यक्त्वी जीव सदैव सुखी हैं। अपनी ऋद्धि जहाँ अंतरंगसे प्रगट हुई, वहाँ उनको बाह्य ऋद्धिका क्या काम है?

'जिसे बाह्य पदार्थोंमें कौतूहल है उसे अंतरकी रुचि नहीं है।'

जिसे, निज ज्ञायक आत्माकी महिमाके सिवा, बाह्य पदार्थोंमें-पर्यायमें, बुद्धिके विकासमें, रागादि विभावमें—विस्मय, कौतूहल और अनोखापन लगता है उसे अंतरमें अनन्त-अनन्त आश्चर्यकारी चैतन्यऋद्धिको धारण करनेवाले ऐसे निज ज्ञायक परमात्माकी रुचि नहीं है। अहा! कैसे सादा और रहस्यगंभीर शब्द आये हैं! और—

'अंतरकी रुचिके बिना अंतरमें नहीं पहुँचा जाता, सुख प्रगट नहीं होता।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! इस बोलमें तो सब सरस आया है। बाह्यमें कौतूहल लगे, अनेक लोग मानें, व्याख्यान सुनने लाखों लोग आयें, परन्तु उसमें है क्या? वह कोई आश्चर्यजनक वस्तु है? विस्मययुक्त, आश्चर्यजनक और अनुपम वस्तु तो तू स्वयं–निज शुद्ध त्रैकालिक एक ज्ञायक भाव ही–है न! जिसे अंतरमें आश्चर्यकारी निज भगवान आत्माकी रुचि नहीं है और बाहर विशेषताएँ लगती हैं, वह अंतरमें—ज्ञायकस्वभावमें—नहीं जा सकता और उसे आत्माका सच्चा सुख प्रगट नहीं होता।

फाल्गुन वदि दशमीके माँगलिक दिन हुई

स्वानुभूति सम्बन्धी पू. बहिनश्रीकी नोंध

फाल्गुन वदि दशमीका — वांकानेर, सं. १९८९
अपूर्व दिवस — (चैत्र मासमें लिखा गया)

स्वस्वरूपका लक्ष आने पर, फाल्गुन वदि दशमी और सोमवारको दोपहरमें ज्ञाताधाराकी वृद्धि होने पर, उस स्वरूपका ध्यान होने पर, उसमें एकाग्र होने पर, उस स्वरूपमें वेग तीव्रतासे आकर उपयोग परलक्षसे छूटकर अपने स्वस्वरूपमें स्थिर होकर, चैतन्यभगवान उस स्वरूपका अनुभव करते थे, अपने निर्विकल्प सहज स्वरूपमें खेल रहे थे, रम रहे थे। अनुपम और अद्‌भुत ऐसे आत्मद्रव्यकी महिमा कोई अपार है! चैतन्यदेव आनन्दतरंगोंमें डोलते थे।

अहा! अनन्तकालसे छुपे हुये आत्मभगवान प्रगट हुये; उनका छुपा हुआ ऐसा अनुपम अमृतस्वाद वेदनमें आया, अनुभवमें आया।

हे श्री सद्‌गुरुदेव! वह आपका ही प्रताप है।

अपूर्व आत्मस्वरूप प्रगट हुआ वह परमकृपालु सद्‌गुरुदेवका ही प्रताप है।

भारतखंडमें अपूर्व मुक्तिमार्गके प्रकाशक परम उपकारी गुरुदेवको नमस्कार!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१६१

दिनांक २५-११-७८

वचनामृत–३९७

चैतन्य मेरा देव है; उसीको मैं देखता हूँ। दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न! —ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्यकी ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है। स्वयं अपनेमें गया, एकत्वबुद्धि टूट गई, वहाँ सब रस ढीले हो गये। स्वरूपका रस प्रगट होने पर अन्य रसमें अनन्त फीकापन आ गया। न्यारा, सबसे न्यारा हो जानेसे संसारका रस घटकर अनन्तवाँ भाग रह गया। सारी दिशा पलट गई।।३९७।।

'चैतन्य मेरा देव है; उसीको मैं देखता हूँ।'

अहा! इस बोलमें तो अकेला मक्खन है। सहज ज्ञान और सहज आनन्दादि अनंत दिव्यगुणोंसे भरपूर जो यह निज चैतन्य–त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायक आत्मा—वही मेरा देव है;—ऐसा अंतरंग बल आये बिना, अंतरमें उसका माहात्म्य लगे बिना, दृष्टि वहाँ स्थिर नहीं होगी। दृष्टिके विषयभूत जो निज शुद्ध ज्ञायक देव, उसीको मैं देखता हूँ; मैंने उसीका आश्रय ग्रहण किया है। अंतरमें यह एक ही कार्य करना है, वैसे तो बाह्यमें कोई किसीका क्या कर सकता है? दिव्यशक्तिका स्वामी आत्मा अपनी पर्यायके सिवा शरीर, वाणी आदि पुद्गल–पर्यायोंमें कुछ नहीं कर सकता। 'परका मैं कर सकता हूँ'—ऐसा मानना वह भ्रान्ति है। जैसे आत्मा परमें कुछ नहीं कर सकता, वैसे ही देव–शास्त्र–गुरु आदि पर भी इस आत्माका कुछ नहीं कर सकते। अहा! ऐसी बात है।

आत्मामें देव–शास्त्र–गुरुका जो ज्ञान हो वह ज्ञानपर्याय भी परलक्षी है; वहाँ भी दृष्टि, ध्यान या जोर लगाने जैसा नहीं है। देव–शास्त्र–गुरु भी परद्रव्य हैं, उनकी ओर आत्माको लक्ष देना या जोर लगाने जैसा नहीं है। स्वद्रव्य अर्थात् निज शुद्धात्मद्रव्य स्वभाव पर ही लक्ष, ध्यान और जोर देना योग्य है। देखने, श्रद्धने तथा अनुभवने योग्य तो मेरा एक शुद्ध चैतन्यदेव है; उसीको मैं देखता हूँ। मुझे अपनी दृष्टिमें निज ध्रुव शुद्ध चैतन्यसामान्यका ही –ज्ञायक एक शुद्ध परमभावका ही–स्वीकार है, उसके सिवा गुणभेदका, अधूरी–पूरी पर्यायका, शुभाशुभ विभावका या निमित्तका नहीं। मैं द्रष्टा ऐसे निजचैतन्यको ही आश्रयरूपसे देखता हूँ, परन्तु परको, पुण्य–पापके विभावको या अधूरी–पूरी पर्यायको आश्रयरूपसे नहीं देखता;

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उनके प्रति आश्रयरूपसे जोर देने जैसा नहीं है। आया कुछ समझमें? अहा! 'वचनामृत' में बहुत भर दिया है। अन्य धर्मावलम्बियोंके हाथमें यह पुस्तक जाती है; वे पढ़ते हैं तो उनको भी ऐसा लगता है कि 'अहा! यह कोई अद्‌भुत पुस्तक है।' भावनगरसे अर्धमागधीके एक प्रोफेसर आये थे। उनको यह पुस्तक दी; ले जाकर उन्होंने पढ़ी। वे लिखते हैं कि –'महाराजश्री! आपके करकमल द्वारा मुझे यह 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक प्राप्त हुई, उसके प्रत्येक पैरेमें मानों रत्नोंके भण्डार भरे हैं।' अहा! अद्‌भुत वस्तु है।

'दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न!—ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्यकी ही अधिकता रहे, तो सब निर्मल होता जाता है।'

अंतरमें नित्यानन्दसे परिपूर्ण जो ज्ञायक वस्तु वही मेरा देव है; उसीको–ज्ञानादि अनन्तगुणरूप चमत्कारी दिव्यतासे सदैव भरपूर अपने ज्ञायकदेवको ही—मैं आश्रयरूपमें देखता हूँ। 'ही' शब्द रखकर ऐसा कहे कि साधकदशाके आलम्बनरूपमें ज्ञायकभावके सिवा अन्य कुछ—देव–शास्त्र–गुरु या व्रत–तप–भक्ति आदि—मुझे दिखता ही नहीं है न!—ऐसा ज्ञायक पर जोर अंतरसे आये, निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी ही अधिकता रहे तो ज्ञान, श्रद्धा, स्थिरता आदि सब निर्मल होता जाता है।

जहाँ देखूँ वहाँ, भीतर अभिप्रायमें आलम्बनभूत निज द्रव्यसामान्यकी अधिकता होनेसे, निज ज्ञायकदेवको ही देखता हूँ। अन्यमतमें ही कहते हैं न! कि—

हँसते रमते प्रगट हरि देखूँ रे,
मेरा जीवन सफल तब लेखूँ रे;
मुक्तानन्दका नाथ विहारी रे,
वही जीवन डोरी हमारी रे।

—परन्तु 'हरि' कौन? निज ज्ञायकदेव ही अपना 'हरि' है। उसके आश्रयसे, उस पर दृष्टि देनेसे, मोह–राग–द्वेषादि समस्त पापसमूहका हरण–टलना होता है, इसलिये वही सच्चा 'हरि' है। अपने हरिको ही मैं देखता हूँ, दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है न!—आहाहा! अंतरमें ऐसे ज्ञायक द्रव्य पर जोर आये, आश्रयमें निज द्रव्यस्वभावकी अधिकता रहे—निमित्तकी, रागकी, ज्ञानके विकासकी, अरे! प्रगट होनेवाली निर्मल पर्यायकी भी अधिकता न रहे—तो पर्यायमें सब निर्मल होता जाता है, पर्यायमें नवीन–नवीन निर्मलता बढ़ती जाती है। अहा! ऐसी बात है। अरे! इस शरीरकी स्थिति? शरीरादि परको देखना तो रहने दे, परन्तु द्रष्टाकी जो देखनेरूप पर्याय है उसे भी देखना रहने दे—इसप्रकार मात्र द्रष्टा ऐसे निज ज्ञायक द्रव्य पर जोर आये, पर्यायमें ज्ञायकदेवकी ही अधिकता लगे तो पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्रादि सब निर्मल होता जाता है। अहा! देखो यह पैरा!

'स्वयं अपनेमें गया, एकत्वबुद्धि टूट गई, वहाँ सब रस ढीले हो गये।'

स्वयं जो बाह्यमें–निमित्त, राग और पर्यायमें लक्ष करके–भटकता था वह जब अपने घरमें गया, जब पर्यायको स्वसन्मुख करके निज ज्ञायकमें प्रविष्ट हुआ, अनन्तानन्त निधान –गुणरत्नोंके भण्डार–जिसमें भरे हैं ऐसे निज ज्ञायक बादशाहको जहाँ देखने लगा, 'यह चैतन्य ही मेरा देव है' ऐसा जहाँ देखा, द्रव्य पर जोर आया, वहाँ पर द्रव्य एवं रागादि विभावके साथ एकताबुद्धि टूट गई, इसलिये सब रस ढीले पड़ गये, फीके हो गये। अरे! ऐसा उपदेश! मार्ग तो यह है। प्रभु! तेरी प्रभुता अनन्त गुणोंकी महिमासे सुशोभित है, जिसने अनन्तानन्त गुणोंके भण्डार स्वरूप निज चैतन्यदेवको देखा, देखकर अनुभव किया उसे जगतके अन्य रस मन्द पड़ जाते हैं–टूट जाते हैं। उसे राज्य और रानियोंकी ओरका रस ढीला पड़ जाता है। आसक्तिका किंचित् राग रहता है, परन्तु आसक्तिका रस नहीं रहता।

'स्वरूपका रस प्रगट होने पर अन्य रसमें अनन्त फीकापन आ गया।'

आनन्दकन्द निज भगवान आत्माके सहजस्वरूपका रस प्रगट होने पर अन्य रसोंमें –संसारके रागादि वैभाविक रसोंमें–अनन्ती मन्दता आ गई। भले ही अस्थिरता शेष रह गई है, परन्तु उसमें फीकापन आ गया है। जैसे बिल्लीकी कमर टूट जाने पर वह चलती तो है, परन्तु चालमें मन्दता–ढीलापन आ जाता है, वैसे ही रागके साथ एकत्वबुद्धिकी कमर टूट जाने पर अस्थिरताके रागादि आते हैं, परन्तु उनमें अनंता फीकापन आ जाता है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि—अतीन्द्रिय आनन्दका स्वामी जो निज ज्ञायकदेव उसके स्वरूपका रस प्रगट होने पर–रसका अर्थ है ज्ञानका एक विषयमें एकाकार होना–अन्य रसमें अनंता फीकापन आ जाता है। समयसारमें पं. जयचन्द्रजीने कहा है कि–'सामान्यरूपसे रसका स्वरूप है कि ज्ञानमें ज्ञेय आया, उसमें ज्ञान तदाकार हुआ, उसमें पुरुषका भाव लीन हो जाय और अन्य ज्ञेयकी इच्छा न रहे वह रस है।' यहाँ कहते हैं कि–स्वरूपका रस प्रगट होने पर अन्य रसमें अनन्तवें भाग फीकापन आ गया।

एक बार, बहुत वर्ष पहले–जब संसारमें थे तब–भावनगर गये थे। वहाँ ध्रुवका नाटक देखा था। ध्रुव एक राजाका कुंवर था; उसकी माँ छोटी उम्रमें मर गई थी। संसारके प्रति वैराग्य आ जानेसे वह बचपनमें ही संन्यासी हो गया था। उसे संन्याससे चलित करनेके लिये स्वर्गसे अप्सरा आती है। वह अप्सरा शरीरकी विविध कामोत्तेजक चेष्टाएँ दिखाकर कहती है—'हे कुमार! हमारा सुन्दर शरीर तो देखो! कैसे कोमल–मोहक अंग हैं!' ध्रुव कहता है : 'हे माता! अब मुझे भव नहीं करना है, किन्तु कदाचित् भव हो तो तेरी कोखसे अवतरित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होऊँ; इसके सिवा दूसरी बात नहीं करना।' अहा! वैराग्यका वह अद्‌भुत दृश्य!—उसीप्रकार जिसे अंतरमें आनन्दका रस लगा है उसे कोई भी बाह्य वस्तु ललचा नहीं सकती–आकर्षित नहीं कर सकती; उसे तो अंतरमें स्वभावका आकर्षण हो गया है। अहा! धर्म तो कोई अपूर्व वस्तु है। कोई साधारण दया पाले अथवा दानादि करे वह कोई धर्म नहीं है। परकी दया कौन पाल सकता है? दयाके भाव तो शुभराग हैं, शुभराग भी आत्माकी हिंसा है। शुभाशुभरागरहित आत्माकी वीतराग परिणति ही सच्ची अहिंसा है। अहा! वीतरागकी अहिंसा कोई अलौकिक है। यहाँ कहते हैं कि–जिसको अंतरमें स्वरूपका रस प्रगट हुआ उसे अन्य बाह्य रसोंमें अनन्तवें भाग फीकापन आ जाता है।

'न्यारा, सबसे न्यारा हो जानेसे संसारका रस घटकर अनंतवाँ भाग रह गया।'

शरीर और रागादि विभावसे भिन्न निज ज्ञायक द्रव्य पर जोर आनेसे, निज शुद्ध द्रव्यसामान्यकी ही अधिकता भासित होनेसे, जीव अंतरमें न्यारा, सबसे–सारे संसारसे –अभिप्रायमें न्यारा हो जाता है, उसे संसारका रस अनन्तवें भाग रह जाता है।

'सारी दिशा पलट गई।'

दशाकी दिशा जो परकी ओर थी–लक्ष जो परकी तथा विभावकी ओर था–वह पलटकर स्वसन्मुख हो गई। अहा! परिणतिकी दिशा पलटनेसे सारी दिशा ही बदल गई। द्रव्य पर जोर देनेसे दशामें सब निर्मल होने लगा।

❋

वचनामृत–३९८

मैंने अपने परमभावको ग्रहण किया उस परमभावके सामने तीनलोकका वैभव तुच्छ है। और तो क्या, परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय–निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी, मैं द्रव्यदृष्टिके बलसे कहता हूँ कि, मेरी नहीं है। मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है, अमाप है। निर्मल पर्यायका वेदन भले हो, परन्तु द्रव्यस्वभावके आगे उसकी विशेषता नहीं है।— ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है कि जब चैतन्यकी महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब॥३९८॥

'मैंने अपने परमभावको ग्रहण किया उस परमभावके सामने तीन लोकका वैभव भी तुच्छ है।'

ज्ञानी धर्मात्मा अंतरसे ऐसा जानता है कि मैंने जो अपने परमभावको—वीतराग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समरससे भरे हुए आनन्दनिधान निज त्रैकालिक ज्ञायक प्रभुको–महिमापूर्वक ग्रहण किया उस परमभावके समक्ष तीनलोकका वैभव–इन्द्रका इन्द्रासन, करोड़ों अप्सराएँ, चक्रवर्तीके भोगोपभोग आदि समस्त पुण्यफल–तुच्छ हैं, सड़े हुए तृण और विष्टाके ढेर जैसे हैं। सम्यग्दृष्टि जीवको अपने सहज शुद्ध स्वरूपका अंशतः अनुभव हुआ है; उसे स्वरूपके वैभवकी महत्ताके समक्ष तीनलोकका वैभव तुच्छ लगता है।

समयसारकी ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यकृत टीकामें आता है कि :—"आंशिक शुद्धिरूप यह परिणति निर्विकार–स्वसंवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होनेसे यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि 'जो सकल निरावरण–अखण्ड–एक –प्रत्यक्ष–प्रतिभासमय–अविनश्वरशुद्ध–पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्म द्रव्य वही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ'।" ध्याता पुरुष अर्थात् अंतरमें निज शुद्धात्माका ध्यान करनेवाला साधक सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा भाता है कि 'मैं तो एक शुद्ध परिपूर्ण त्रैकालिक ज्ञायक परमभाव ही हूँ', परन्तु वह ऐसा नहीं भाता कि 'शरीरादि पर द्रव्यके सम्बन्धवाला, पुण्य–पापके विभाववाला, परलक्षी ज्ञानके विकासवाला अथवा अधूरी–पूरी पर्याय जितना मैं हूँ'। त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट होती निर्मल पर्यायरूप परिणमित साधकजीव ऐसा जानता है कि 'मैं तो त्रिकाल शुद्ध आनन्दनिधान ज्ञायक परमभाव ही हूँ; मेरे अनन्त महिमावन्त परमभावके समक्ष तीनलोकका वैभव सड़े हुए तृण समान तुच्छ है'।

'और तो क्या, परन्तु मेरी स्वाभाविक पर्याय–निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी, मैं द्रव्यदृष्टिके बलसे कहता हूँ कि, मेरी नहीं है।'

सहज ज्ञानानन्दका नाथ ऐसे निज ज्ञायक परमभावके समक्ष तीन भुवनकी ऋद्धि भी तुच्छ है। वह तो ठीक, परन्तु मेरी जो साधनामय शुद्ध पर्याय द्रव्यस्वभावके–परमभावके–आलम्बनसे प्रगट हुई वह भी, मैं द्रव्यदृष्टिके जोरसे कहता हूँ कि, मेरी नहीं है। स्त्री, पुत्र, परिवार तथा दूसरा तो कहीं दूर रह गया, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभाव भी कहीं रह गये, यहाँ तो द्रव्यदृष्टिके बलमें स्वाश्रयसे प्रगट होनेवाली सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप निर्मल पर्याय भी आत्माका मूल स्वरूप नहीं है। द्रव्यदृष्टिके बलसे ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि —स्वभावके अवलम्बनसे मुझे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसका भी मुझे कोई मूल्य या महत्ता नहीं है; मुझे आश्रयरूपमें पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभु ही चाहिये; आलम्बन हेतु मुझे उस एककी ही महत्ता और मूल्य है। अहा! देखो यह ज्ञानीकी दृष्टिका जोर! चौथे गुणस्थानकी–धर्मकी इकाईकी–दशा। अरे! अभी तो सम्यग्दर्शन किसे कहना?—यह ज्ञायक ध्रुवतत्त्व कौन है? कहाँ है?—उसकी कोई खबर ही नहीं है और लोग व्रत, तप एवं भक्तिकी बाह्यक्रियामें धर्म मान बैठे हैं। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी तो अंतरमें द्रव्यदृष्टिके बलसे ऐसा मानते हैं कि—मैं तो स्वभावके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आश्रयसे जो निर्मल पर्याय–साधक दशा–प्रगट हुई उससे भी कथंचित् भिन्न ज्ञायक परमदेव हूँ; निर्मल पर्याय जितना मैं तो यह त्रिकालशुद्ध ध्रुव पारिणामिक द्रव्य हूँ।

अरे रे! कल्याणकी ऐसी बातें कभी सुननेको नहीं मिलीं और जीवन ऐसे ही बीता जा रहा है। जीवन पूरा होगा और चला जायगा परिभ्रमण करने। कहाँ गया उसका भी पता नहीं लगेगा। अरे! शरीरादि पर वस्तुएँ कब उसकी थीं कि उसके पास रहतीं? जहाँ राग भी उसका स्वभाव नहीं है वहाँ परद्रव्य तो कहाँसे उसके होंगे? यहाँ तो कहते हैं कि —जो निर्मल पर्याय हुई वह भी, मेरे त्रिकालशुद्ध ज्ञायक परमभावको देखने पर, अरे! द्रव्यदृष्टिके बलसे कहता हूँ कि, मेरी नहीं है। 'तू ही देवका देव। तू कौन है? मैं आनन्दकन्द परमात्मा, परमभाव परमसत्त्व हूँ। उसकी दृष्टिके बलसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी मेरा त्रैकालिक स्वरूप नहीं है। ऐसी हैं धर्मकी बातें; वीतरागपरमात्माका यही मार्ग है।

यहाँ बहिन ऐसा कहती हैं कि—निज ज्ञायक परमभावके समक्ष तीनलोकका वैभव तुच्छ है। अन्य बात तो क्या करना?—अर्थात् यह स्त्री, पुत्र एवं परिवार, लक्ष्मी, प्रतिष्ठा और मकान आदि बाह्य सामग्री तो कहीं रह गई; तथा राग–द्वेष और शुभाशुभ विभाव भी मेरा स्वभाव नहीं है वह भी ठीक, अंतरमें आनन्दस्वरूप जो शुद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा उसके आश्रयसे प्रगट हुई जो मोक्षमार्गरूप निर्मल पर्याय वह भी, त्रिकालशुद्ध निज द्रव्यकी दृष्टिसे –शुद्ध ज्ञायक द्रव्यसामान्यके आलम्बनके बलसे–कहता हूँ कि, मेरी नहीं है। आलम्बन लेने हेतु –आश्रय करने हेतु–मूल्यवान वस्तु ध्रुव सामान्यद्रव्य है, पर्यायांश नहीं। अहा! गजबकी बात है; यह बात लोगोंके कानोंमें नहीं पड़ी, कभी सुननेमें नहीं आयी। भगवान जो कहते हैं वही बहिन कहती हैं; बहिनकी वाणी वह परमात्माकी वाणी है, परमात्माके पाससे आयी है।

अन्य कोई वस्तुएँ तो मेरी नहीं हैं—शिष्य, गुरुपद, देव–शास्त्र–गुरु या पंचपरमेष्ठी आदि मेरे नहीं हैं—परन्तु ध्रुवस्वभावके आश्रयसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी, द्रव्यदृष्टिके बलसे कहता हूँ कि, मेरी नहीं है; क्योंकि मैं तो–मेरा सनातन स्वरूप तो–त्रिकाल ध्रुव शुद्ध ज्ञायक हूँ। यदि शुद्ध पर्यायके ऊपर दृष्टि–जोर रहे तब भी दृष्टि मिथ्या हो जायगी। अहाहा! केवलीका अनुसरण करनेवाले सन्तोंकी बातें ऐसी हैं भगवान!

अनेक उपदेशक उपदेशमें कहते हैं कि—दूसरोंका भला करना, गरीबोंकी सहायता करना और सबके साथ मिल जुलकर रहना चाहिये; किन्तु भाई! द्रव्यको–आत्माको–साधना प्रगट करनेमें जब अपनी निर्मल पर्यायका भी आश्रय नहीं है, तो दूसरोंके साथ मेलजोल रखनेकी बात ही कहाँ रही? ज्ञायक द्रव्यको निर्मलपर्यायका भी आलम्बन नहीं है, तो अब तुझे किसके साथ मेलजोल या सम्बन्ध रखना है? एक समयवर्ती जो निर्मल पर्याय उत्पन्न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुई वह भी दूसरे समय विलीन हो जाती है, तो अब तुझे और किसके साथमें, मिलकर या सम्पर्कमें रहना है? यहाँ तो कहते हैं कि—त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप जो निज शुद्धात्मद्रव्य वही मैं हूँ; उसके आश्रयके बलसे कहता हूँ कि जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह भी मेरी नहीं है।

'मेरा द्रव्यस्वभाव अगाध है, अमाप है।'

अहा! द्रव्यस्वभावकी कैसी अगाधता! मेरे द्रव्यमें ज्ञान, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणोंके कक्ष अनन्तानन्त ऋद्धियोंसे भरपूर हैं। द्रव्यस्वभावके धरातलमें उतरना आये तो उसकी अगाध एवं अमाप महिमाका पता चले। यहाँ 'मेरा द्रव्यस्वभाव' कहकर त्रैकालिक ज्ञायककी अगाधता एवं अमापता कहना है; 'पर्याय'की बात यहाँ नहीं कहना है। स्वभावकी कोई सीमा नहीं होती वह तो अगाध एवं असीम ही होता है। गुण समुद्र भगवान आत्मा अगाध है, असीम है; बहिर्लक्षी ज्ञानसे उसको नहीं नापा जा सकता इसलिये वह द्रव्यस्वभाव अमाप–असीम है। आया कुछ समझमें? अरेरे! वणिकोंको दिनभर पापका व्यापार–धन्धा होनेसे उन्हें यह बात सुननेका अवकाश ही नहीं मिलता! दो–चार घन्टे सत्समागमका या शास्त्रस्वाध्यायका भी समय नहीं निकाल सकते। अरे भाई! तुझे मरकर कहाँ जाना है? सत्समागमके प्रतापसे अंतरमें स्वभावकी ओरका बहुमान आये तो, भले ही अभी स्वभाव नहीं देखा हो तथापि, वह शरीरका त्याग करके स्वर्गमें जायगा। जो अपनेसे दिव्यशक्तिकी प्रतीति प्रगट करे, वह देवका एकाध भव करके मोक्ष प्राप्त कर लेगा। अंतरका ज्ञायकदेव तो कोई अगाध और अमाप है! उसमें इतने गुणरत्न हैं कि उसकी अनन्तता एवं अगाधताकी थाह विकल्पसे या बहिर्लक्षी बुद्धिसे नहीं आ सकती।

अगाध द्रव्यस्वभाव विकल्पगम्य नहीं है तथापि उसे ग्रहण करने, जानने, माप लेनेका सामर्थ्य—शक्ति द्रव्यकी पर्यायमें है। पर्याय भले अमापका माप ले ले, तथापि वह अमाप द्रव्य पर्यायमें नहीं आता—पर्यायमात्र नहीं हो जाता; द्रव्यका जितना सामर्थ्य है वह उसकी पूर्ण पर्यायमें व्यक्त हो गया। अरे! यह बात तो लोगोंने एक ओर रख दी और कहते हैं कि—सामायिक करो, प्रोषध करो, प्रतिक्रमण करो, भक्ति करो और यात्रा करो, अधिक करना है तो वर्षीतप करो; बस हो गया धर्म? परन्तु भाई! तेरा पंथ कोई निराला है; तेरा स्वभाव तो कोई अगाध एवं अमाप है; उस पर दृष्टिका बल लगानेसे कल्याणका मार्ग प्रारम्भ होगा।

असंख्यात योजन विस्तारवाला स्वयंभूरमण समुद्र अगाध है; उसके तलमें अकेले रत्न भरे पड़े हैं। स्वयंभूरमण समुद्रकी भाँति आत्मामें भी अनन्तानन्त गुणरत्न भरे हैं। अहा! आत्मस्वभाव तो अगाध एवं अमाप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'निर्मल पर्यायका वेदन भले हो, परन्तु द्रव्यस्वभावके आगे उसकी विशेषता नहीं है।'

अहा! अगाध एवं अमाप ऐसे द्रव्यस्वभावके आश्रयसे पर्यायमें आत्माको आनन्दका वेदन प्रगट हुआ, परन्तु द्रव्यस्वभावके समक्ष उसकी विशेषता नहीं है। आनन्दका नाथ ऐसे निज ज्ञायक प्रभुका जिसको भीतर पर्यायमें स्वीकार हुआ, ज्ञायकका स्वीकार–आश्रय होने पर आत्माकी पर्यायमें निर्मलता हुई, परन्तु उस निर्मल पर्यायका भी त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यके आगे कोई मूल्य नहीं है, विशेषता नहीं है। कीमत और विशेषता तो आश्रयभूत भगवान आत्माकी है। दया, दान, भक्ति या अन्य रागकी तो क्या बात करें? उसका तो कोई मूल्य है ही नहीं, परन्तु द्रव्यस्वभावके आश्रयसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसका भी द्रव्यशक्तिके समक्ष कोई मूल्य नहीं है। अहा! गजबका अधिकार आ गया है।

वेदनस्वरूप तो पर्याय है, द्रव्य नहीं; द्रव्य तो त्रिकाल ध्रुव है। निर्मल पर्यायका साधक जीवको वेदन भले हो, परन्तु त्रैकालिक द्रव्यके आगे उसका कोई मूल्य या विशेषता नहीं है। अहा! इस बोलमें सार–सार आ गया है, कुदरतसे जगतमें पुण्य है न! यह तो धारणासे बाहरकी अलौकिक बात आ गई है।

मेरा त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव, ज्ञायकभाव कोई अगाध है, उसके आगे पर्यायका क्या मूल्य? एकसमयकी निर्मल पर्यायमें ज्ञायकका अमापस्वभाव जाननेमें आया, तथापि वस्तुस्वभाव तो अमाप है, छद्मस्थ ज्ञान–चार ज्ञान भी–उसका पार नहीं पा सकता। अहा! अद्भुत बात है न?

निर्मल पर्यायका वेदन भले हो–अनुभव अर्थात् वेदन पर्यायमें होता है, त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्यमें नहीं—परन्तु द्रव्यस्वभावके समक्ष उसकी कोई विशेषता नहीं है।

'—ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है कि जब चैतन्यकी महिमा लाकर, सबसे विमुख होकर, जीव अपनी ओर झुके तब।'

जिसके समक्ष तीनलोकका वैभव सड़े हुआ तिनकेके समान है उस निज परमभावको ग्रहण करनेवाली द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है, कि जब अंतरमें शरीरादि परद्रव्य तथा शुभाशुभ समस्त विभावरहित, ज्ञान और आनन्दादि अनन्त–अनन्त चमत्कारी गुणोंसे सदा परिपूर्ण, ऐसे निज शुद्ध चैतन्यसामान्यकी महिमा लाकर, सबसे—निमित्त, राग और पर्यायभेदसे–विमुख होकर जीव अपने ध्रुव ज्ञायकस्वभावोन्मुख हो तब। अहा! ऐसी दृष्टि कब प्रगट होती है? कि जब जीव स्वभावसन्मुख हो तब। जीव सबसे विमुख होकर, स्वसन्मुख हो—ज्ञायकका आश्रय करे–तब द्रव्यदृष्टि प्रगट होती है। अहा! भाषा है सीधी–सादी, परन्तु भाव गम्भीर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। यह तो बिलकुल सिद्धान्तका दोहन है। अरे! जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु प्रगट हो गई; ठीक समयपर प्रगट हुई है।

वस्तुस्वभाव पर जीवकी दृष्टि कब जायगी, कि सबसे विमुख होकर अन्तरोन्मुख हो तब। अहा! भाषा सरल है, परन्तु गम्भीरता बहुत है। मेरे द्रव्यस्वभावके समक्ष सारा जगत तुच्छ है। द्रव्यस्वभावकी दृष्टिसे शरीरादि पर द्रव्योंकी तथा दया, व्रत, तप, भक्ति आदि शुभरागके विकल्पोंकी महिमा तो है ही नहीं, परन्तु स्वभावके लक्षसे हुई अपनी निर्मल पर्यायोंकी भी, आलम्बन लेने हेतु, महिमा नहीं है। त्रिकालशुद्ध ज्ञायक ध्रुव आत्माके समक्ष पर्यायकी विशेषता नहीं है। अंतरमें चैतन्यसामान्यकी दृष्टि, आलम्बन और महिमा प्रगट होती है तब निर्मल दशा सहज होती है। आया समझमें? द्रव्यदृष्टि और आत्माकी महिमा कब प्रगट होती है? कि—आत्माकी वर्तमान परिणति, सबसे विमुख होकर, ज्ञायक द्रव्यसामान्यकी ओर उन्मुख हो तब। अपनी वर्तमान पर्याय द्रव्यस्वभावोन्मुख हो तब उसकी सच्ची महिमा आती है, उससे पूर्व सच्ची महिमा नहीं आती। अरे! अनजान व्यक्तिको ऐसा लगेगा कि—यह क्या? ऐसी बातें? इनमें दया, दान, व्रत, उपवास करना तो कुछ आता ही नहीं! भाई! आत्माको पहिचाने बिना उपवास–रोटी छोड़ देना–वह तो सब लंघन है, कदाचित् कषाय मन्द किया हो तो शुभ विकल्प है। वह आत्माका धर्म या भवपरिभ्रमणके अन्तका उपाय नहीं है। निज शुद्धात्मतत्त्वके ज्ञान और अनुभव बिना कभी भवभ्रमणका अन्त नहीं आता।

'आत्मावलोकन' ग्रन्थमें दान, तप और दया आदिका स्वरूप कहा है न! कि—

निज स्वभावभाव–शक्तिरूप ही जीवद्रव्य है। अव्यक्त जो निज स्वभावभाव उसकी अभिव्यक्ति होने पर जिस समय जीव स्वरूपमें परिणमन करता है—अपनेको स्वभावपरिणमन देता है—वही दान है।

शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रु आदि परज्ञेयोंको छोड़ना अर्थात् उनके प्रति ममत्वरहित परिणति होना तथा उनके ओरकी तृष्णा छूट जाना और अपने स्वभावमें स्थिरतारूप शोभन–प्रतपन होना वही तप है।

विकारमय परिणामों द्वारा अपने निज स्वभावका घात नहीं करना तथा अपने स्वभावका पालन करना वही दया है।

अहा! बहिर्लक्षी दया, दान, तप और भक्ति आदि सबसे विमुख होकर, अपने त्रैकालिक नित्य शुद्ध ज्ञायक द्रव्यकी अंतरमें महिमा लाकर, जीव स्वोन्मुख हो—ज्ञायक आत्माको ग्रहण करे–तब सच्ची द्रव्यदृष्टि प्रगट होती है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१६२

दिनांक २६-११-७८

वचनामृत–३९९

सम्यग्दृष्टिको भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है परन्तु दृष्टिमें परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। ज्ञानपरिणति द्रव्य तथा पर्यायको जानती है परन्तु पर्याय पर जोर नहीं है। दृष्टिमें अकेला स्वकी ओरका–द्रव्यकी ओरका–बल रहता है॥३९९॥

'सम्यग्दृष्टिको भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है परन्तु दृष्टिमें परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है।'

जिसे पूर्णानन्दके नाथकी–निज ध्रुव ज्ञायक परमभावकी–दृष्टि प्रगट हुई है ऐसे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टिको भले अभी पूर्ण स्वानुभव—केवलीको होता है उतना–नहीं है, परन्तु दृष्टिमें परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायक आत्मा है। अहा! साधकको पूर्णानन्दस्वरूप चैतन्य परमभावका अनुभव होने पर पर्यायमें जो निर्मल वेदन आया वह पूर्ण नहीं है,—पूर्ण तो केवलीको होता है—तथापि, अधूरी अनुभूति होने पर भी, दृष्टिमें तो परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। सम्यग्दृष्टिको अनुभूतिकी पर्याय भले अल्प हो, परन्तु अनुभूतिके आलम्बनसे पूर्ण ज्ञायक भगवान है।

धर्म तो चारित्र है, परन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट होता है? कि—अपने परिपूर्ण ज्ञायक शुद्ध आत्माको दृष्टिमें तथा अनुभूतिमें लेनेसे। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर भले अभी स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है—पूर्ण अर्थात् जितनी द्रव्यस्वभावमें शक्तिरूपसे है उतनी परिपूर्ण–परन्तु दृष्टिमें तो परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। शक्तिभूत वस्तु सदा परिपूर्ण है, उस पर दृष्टि देनेसे पूर्ण आत्माकी जो प्रतीति और ज्ञान होता है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन व्रत, उपवास या वर्षीतप आदि शरीरकी क्रियासे हो ऐसा नहीं है; अरे! ऐसा तो नहीं है परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति अथवा यात्रादिके जो भाव हों उनसे भी सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शनरूप परिणमन तो नित्यानन्द ध्रुव एक शुद्ध ज्ञायक भावपर दृष्टि जानेसे होता है। वह दृष्टि होनेसे उसे परिपूर्ण निज आत्माका ज्ञान एवं प्रतीति होती है। अहा! बात कुछ सूक्ष्म है।

'सम्यग्दृष्टिको भले स्वानुभूति स्वयं पूर्ण नहीं है' अर्थात् क्या? कि—दृष्टिमें आश्रय तो अपने परिपूर्ण ध्रुवतत्त्वका है, तथापि अनुभूति सम्पूर्ण—केवलज्ञानीको है उतनी–नहीं है। अनुभूति अर्थात् शान्ति और आनन्दके वेदनकी दशा। दृष्टिके विषयभूत निज शुद्धात्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यसामान्य परिपूर्ण है, परन्तु नीचे अपूर्ण दशामें स्वानुभूति स्वयं परिपूर्ण नहीं है। अरेरे! मार्ग है कोई अंतरका और जीव ढूँढ़ता है उसे बाहर! सर्वज्ञ जिनेश्वरने तो पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा देखा उसे ज्ञानमें लेकर, प्रतीति करके, अनुभवमें लिया तब तो सम्यग्दर्शन–धर्मका प्रथम सोपान—हुआ कहते हैं, तब ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि सर्वगुणोंकी आंशिक व्यक्ति वेदनमें आयी। अरे! ऐसा धर्म कहाँसे निकाला? भाई! वस्तुस्वरूप यही है।

सत्यदृष्टि अर्थात् श्रद्धाको त्रैकालिक सत्य ध्रुव ज्ञायकभाव पर 'अहं'पनेकी मान्यतामें लगाना। दृष्टि स्वयं श्रद्धागुणकी पर्याय है, उसका विषय तो परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायक द्रव्यसामान्य है उसका आश्रय करने पर जो स्वानुभव हुआ वह अभी पूर्ण नहीं है; पूर्ण स्वानुभव तो सर्वज्ञ परमेश्वरको होता है। सम्यग्दृष्टिको भले स्वयं पूर्ण अनुभव नहीं है, परन्तु दृष्टिमें परिपूर्ण आनन्दकन्द ध्रुव ज्ञायक आत्मा है। उसकी दृष्टि और ज्ञान होने पर जो आंशिक स्वरूपरमणता हुई वह धर्म है। अहा! ऐसा है धर्म। मन, वचन और कायकी सरलता करना वह कोई धर्म नहीं है; वह तो शुभभाव है, पुण्यबन्धका कारण है। लोगोंने शुभयोगमें तथा बाह्यक्रियामें धर्म मान लिया है, परन्तु अंतरमें जो पूर्णानन्दका नाथ निजज्ञायक भगवान है उसकी उन्हें खबर नहीं है, और जिससे खबर पड़े वह अंतरका पंथ उनको कठिन लगता है। क्या किया जाय?

यहाँ कहते हैं कि—दृष्टिका विषय और स्वानुभूतिका आधार तो एक शुद्ध परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायक निजात्मद्रव्य है, परन्तु पर्यायमें अभी पूर्ण स्वानुभूति नहीं है। आता है कुछ समझमें? अपूर्ण और पूर्ण ऐसी दो बातें आमने–सामने कही हैं : सम्यग्दृष्टिको स्वानुभूतिकी पर्याय स्वयं पूर्ण नहीं है, परन्तु उसका विषय जो निज शुद्धात्मद्रव्य है वह सदा परिपूर्ण है। अपूर्ण स्वानुभूतिके समय भी दृष्टिका विषय और स्वानुभूतिका आलम्बन तो परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायक आत्मा है। क्या कहा? आया कुछ समझमें? अहा! सर्वज्ञ परमात्माका पंथ कोई अलौकिक है; कहीं सुननेको नहीं मिलता तो विचार कहाँसे करें? यहाँ तो एक ही वाक्यमें कितना मर्म भर दिया है! भाषा तो सादी है प्रभु!

'ज्ञान परिणति द्रव्य तथा पर्यायको जानती है परन्तु पर्याय पर जोर नहीं है।'

क्या कहते हैं? कि—अनुभूति स्वयं अपूर्ण होने पर भी उसका अवलम्बन तो परिपूर्ण ध्रुव आत्मा है। अब परिपूर्ण ध्रुव आत्माको विषय बनानेवाली दृष्टिके साथ जो ज्ञान है वह द्रव्य तथा पर्याय दोनोंको जानती है, परन्तु उस ज्ञान परिणतिमें पर्यायके ऊपर आश्रयपनेका भार नहीं होता। दृष्टि तो मात्र ध्रुव द्रव्यसामान्यको ही स्वीकारती है, परन्तु साथ वर्तता हुआ ज्ञान त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यको भी जानता है और वर्तमान पर्यायको भी जानता है। ज्ञानपर्याय, अभिप्रायमें आश्रयभूत द्रव्यसामान्यकी अधिकता रखकर निमित्तको, रागको तथा भंगभेदको जानती है, परन्तु उससे कहीं पर्यायके ऊपर जोर नहीं आ जाता। ज्ञानका तो द्रव्य और पर्यायको,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे हैं वैसे, जाननेका स्वभाव है। अरे! यह पुस्तक तो बहुत समय पहले प्रकाशित हो चुकी है, लेकिन लोगोंको पढ़नेका अवकाश होना चाहिये न! लोग तो रुपयोंमें रुक गये हैं।

यहाँ 'ज्ञान' शब्द सम्यग्ज्ञानरूप पर्यायके अर्थमें है, त्रैकालिक ध्रुव ज्ञानगुणकी बात नहीं है। सम्यग्दर्शनके साथ परिणमित सम्यग्ज्ञान द्रव्य तथा पर्याय दोनोंको जानता है। दृष्टि तो एकमात्र परिपूर्ण ध्रुव द्रव्यसामान्यको ही देखती–मानती है; साथमें प्रगट हुआ ज्ञान द्रव्य तथा पर्याय, स्व तथा पर—सबको जानता है।

दृष्टिके साथ प्रगट हुआ ज्ञान जानता है सबको;—वह शुद्ध–अशुद्ध पर्यायोंको जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव–विभावपनेका, उनके सुख–दुःखरूप वेदनका, उनके साधक–बाधकपनेका इत्यादिका विवेक वर्तता है। वह जाननेसे पर्यायके ऊपर जोर नहीं आ जाता; ज्ञानीको ज्ञानमें भी जोर तो त्रिकाल शुद्ध ध्रुव द्रव्यसामान्य पर ही है। अहा! यह बात समझमें नहीं आती, इसलिये लोग व्रत, तप और भक्तिमें लग जाते हैं। भाई! सच्चे देव–गुरुके प्रति भक्तिके भाव आते अवश्य हैं, परन्तु वे शुभभाव हैं, धर्म नहीं हैं। 'नियमसार'की टीकामें श्री विद्यानन्दस्वामीका एक श्लोक उद्धृत किया है; उसमें कहा है कि—मुक्तिका उपाय सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान सुशास्त्रसे होता है, सुशास्त्रकी उत्पत्ति सर्वज्ञदेवसे होती है; इसलिये मुक्ति सर्वज्ञदेवकी कृपाका फल होनेसे सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूज्य हैं, क्योंकि किये हुए उपकारको सज्जन भूलते नहीं हैं। 'सर्वज्ञकी कृपा'का अर्थ यह है कि सर्वज्ञकी वाणीके आधारसे जिन शास्त्रोंकी रचना हुई है उनका मर्म स्वानुभवी गुरुके पास सुनकर जिसे अपने आत्माका ज्ञान हुआ उसे सर्वज्ञकी वाणी निमित्त हुई। उस पर देव–गुरुकी कृपा हुई ऐसा कहा जाता है। जिनकी कृपासे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ उनका उपकार सज्जन भूलते नहीं हैं। इसप्रकार उपकारसे भीगे हुए हृदयवालेको देव–गुरुके प्रति भक्तिभाव आता है, परन्तु उस शुभभाव पर ज्ञानीका जोर नहीं है; आश्रयका जोर तो मात्र एक ध्रुव ज्ञायकभाव पर ही है। निश्चयसे तो अपना ध्रुव ज्ञायक आत्मा ही पूजनीय है, परन्तु व्यवहारसे, जिनकी वाणीसे सुशास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई और जिनके द्वारा आत्मा समझमें आया ऐसे देव–गुरु भी पूजने योग्य हैं।

वास्तवमें देव–शास्त्र–गुरु तो आत्मा समझनेमें मात्र निमित्त हैं, उनके लक्षसे आत्माका ज्ञान नहीं होता। वे तो मात्र मार्गदर्शन कराके अलग रहते हैं। क्या मार्ग बतलाते हैं कि–भाई! तू अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ ज्ञायक भगवान है, उस पर दृष्टि स्थापित कर, उसपर 'अहं'पनेका जोर लगा, तो तुझे आत्माका सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। —ऐसा मार्ग है; भले अनजान लगे, परन्तु है तेरे घरका भाई! ज्ञान द्रव्य और पर्यायको जानता अवश्य है, परन्तु पर्यायके ऊपर जोर नहीं है। भगवान समवसरणमें भव्यजीवोंसे ऐसा कहते हैं कि—तुम्हारा आत्मा पूर्णानन्दरूप प्रभुतासे परिपूर्ण, ज्ञानादि अनन्त गुणोंका **भण्डार** है; वहाँ तुम दृष्टि लगाओ, जिससे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तुम्हें सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्ज्ञान होगा और स्वरूपाचरणकी स्थिरताके साथ अतीन्द्रिय आनन्द आयगा। भगवानकी वाणी सुनकर या गुरुगम द्वारा शास्त्र पढ़कर तत्त्वकी समझ तो हुई, परन्तु उस समझकी ओरका लक्ष छोड़कर जो स्वोन्मुखता–स्वकी ओर दृष्टि की उसके साथ जो ज्ञान हुआ वह जानता सब है—स्व और पर, स्वभाव और विभाव, द्रव्य और पर्याय–परन्तु पर्यायके ऊपर जोर नहीं है, जोर तो निरन्तर निज शुद्धात्मद्रव्य पर ही है।

'दृष्टिमें अकेला स्वकी ओरका–द्रव्यकी ओरका बल रहता है।'

ज्ञानपरिणतिमें जीव द्रव्य तथा पर्याय दोनोंको जानता है। दोनोंको जानता है इसलिये क्या अभिप्रायका जोर पर्याय पर होता है? दृष्टि और दृष्टिके विषयभूत शुद्धात्माको विषय बनानेवाले शुद्धनयमें तो मात्र स्वकी ओर–द्रव्य सामान्यकी ओर बल होता है। दृष्टिका जोर निज शुद्धात्मा पर ही होता है; दृष्टिमें अकेले स्व–शुद्धात्माकी ओर बल रहता है। पर्यायका भले ज्ञान हो, तथापि पर्यायके ऊपर बल नहीं है। आया कुछ समझमें?

❋

वचनामृत–४००

मैं तो शाश्वत पूर्ण चैतन्य जो हूँ सो हूँ। मुझमें जो गुण हैं वे ज्योंके त्यों हैं, जैसेके तैसे ही हैं। मैं एकेन्द्रियके भवमें गया वहाँ मुझमें कुछ कम नहीं हो गया है और देवके भवमें गया वहाँ मेरा कोई गुण बढ़ नहीं गया है।—ऐसी द्रव्यदृष्टि ही एक उपादेय है। जानना सब, किन्तु दृष्टि रखना एक द्रव्य पर॥४००॥

'मैं तो शाश्वत पूर्ण चैतन्य जो हूँ सो हूँ।'

मेरा स्वरूप तो शाश्वत पूर्ण चैतन्य है। शाश्वत पूर्ण चैतन्यस्वरूप 'मैं' तो जो हूँ सो हूँ। देखो! सम्यग्दृष्टिकी यह भावना। धर्मी ऐसा जानता है कि मैं तो नित्य पूर्णानन्द ज्ञायक जो हूँ सो हूँ। अहा! भाषा बिलकुल सादी, परन्तु भाव अत्यन्त गहरे।

'मुझमें जो गुण हैं वे ज्योंके त्यों हैं, जैसेके तैसे ही हैं।'

अहा! वीतराग सर्वज्ञपरमेश्वरका मार्ग कोई अलौकिक है; लोगोंने उसे लौकिक बनाकर खण्डित कर दिया। सम्यग्दर्शनका भाव–धर्मके प्रारम्भकी दशाका भाव—जिसको प्रगट हुआ है वह ऐसा मानता है–जानता है–अनुभवता है कि–मैं तो शाश्वत हूँ, नया नहीं हुआ हूँ जिसको द्रव्यदृष्टिसे पर्यायमें आना नहीं होता, बदलना नहीं होता ऐसा मैं परिपूर्ण सनातन शाश्वत जो चैतन्यतत्त्व वही मैं हूँ। शाश्वत तो परमाणु आदि अचेतन तत्त्व भी हैं परन्तु उनमें, अचेतनत्त्वके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण ज्ञान, शान्ति आदि नहीं होते। चैतन्यतत्त्वमें पर्याय-अपेक्षासे ज्ञान, अज्ञान, शान्ति, अशान्ति होते हैं, परन्तु परमार्थसे तो परिपूर्ण ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप जो शाश्वत पूर्ण चैतन्य वही मैं हूँ। अरे! लोग कुछका कुछ मान बैठे हैं। लोगोंकी सेवा करें, परजीवोंकी दया पालें तो धर्म होगा; अरे! ऐसी विपरीत मान्यताने जगतको पागल कर दिया है! कौन किसकी सेवा करे या दया पाले? वह तो भूमिकानुसार ऐसा विकल्प आता है और सेवा दयादिके प्रति लक्ष जाता है, उससे कहीं कोई पर-जीवकी सेवा या दयाका पालन नहीं कर सकता।

मैं रागी हूँ या रागसे किसीका कुछ भला कर सकता हूँ-परकी दया पाल सकता हूँ, गरीबोंको वस्त्र-पात्र या अन्नादि दे सकता हूँ, रोगियोंकी सेवा कर सकता हूँ, बच्चोंको शिक्षा दे सकता हूँ आदि—वह तो मुझमें है ही नहीं;—यह हुई एक बात। दूसरी बात यह है कि—मैं तो पूर्णानन्दघन ज्ञायक द्रव्य जो हूँ सो हूँ और मुझमें जो त्रिकालशुद्ध सहज ज्ञान, सहज सुख, सहज वीर्य आदि अनन्त गुण हैं वे ज्योंके त्यों हैं, जैसेके तैसे ही हैं। किसी भी गतिमें, किसी भी योनिमें अथवा किसी भी भवमें भटका, तथापि मेरे गुण तो वैसेके वैसे हैं। अहा! समझमें आता है कुछ? यह तो सब हीरेके कण हैं! अरे! विश्वास आना कठिन है भाई! अज्ञान दशाके समय भी मैं शाश्वत ध्रुव शुद्ध चैतन्य द्रव्य जो हूँ वही था; मुझमें जो गुण हैं वे ज्योंके त्यों थे, जैसेके तैसे थे।

'मैं एकेन्द्रियके भवमें गया वहाँ मुझमें कुछ कम नहीं हो गया है और देवके भवमें गया वहाँ मेरा कोई गुण बढ़ नहीं गया है।'

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु या साधारण तथा प्रत्येक वनस्पति जिनका शरीर है वे एकेन्द्रिय जीव हैं। साधारण वनस्पति अर्थात् निगोदके भवमें एक शरीराश्रित अनन्त जीव भगवानने कहे हैं। लहसुन, प्याज, काई आदिकी एक राई जितने टुकड़ेमें असंख्य शरीर और उस प्रत्येक शरीरमें अनन्त जीव होते हैं। निगोदमें लब्धिपर्याप्तकके समय अक्षरके अनन्तवें भाग प्रमाण-जघन्य अल्प-ज्ञानका विकास होता है; उस समय भी वस्तुमें द्रव्य और गुण जितने और उतने ही हैं। कोई पण्डित कहते हैं कि—पर्यायमें अशुद्धता आयी तो साथ ही साथ द्रव्य भी अशुद्ध हो गया। भाई! 'द्रव्य अशुद्ध हुआ' वह पर्यायकी अपेक्षासे कहा जाता है, परन्तु द्रव्य-अपेक्षासे द्रव्य और उसके गुण कभी अशुद्ध नहीं होते। प्रवचनसारमें 'शुभ या अशुभमें प्रणमते शुभ या अशुभ आत्मा बने'—ऐसा आता है, परन्तु वह तो पर्याय-अपेक्षाकी बात है। अशुद्धद्रव्यार्थिकनयसे द्रव्य अशुद्ध हुआ कहा जाता है। अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहो, व्यवहारनय कहो या पर्यायनय कहो—सब एक ही हैं। द्रव्यको अशुद्ध इसलिये कहा है, कि द्रव्य स्वयं ही पर्याय-अपेक्षासे अशुद्धतारूप परिणमित हुआ है; परन्तु पर्यायरूपसे अशुद्ध हुआ है, द्रव्यरूपसे बिलकुल नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय-अपेक्षासे मुझमें विभाव और अल्पज्ञता हुई होने पर भी द्रव्य-अपेक्षासे मुझमें कोई न्यूनाधिकता नहीं हुई, मैं तो सदा एकरूप परिपूर्ण चैतन्यविज्ञान घन हूँ। आलु, शकरकन्द, लौकी आदि एकेन्द्रिय भवमें गया वहाँ मेरे द्रव्यस्वभावमें कुछ न्यूनता आयी है और देव या उच्च मनुष्यके भवमें गया वहाँ मेरा कोई गुण अधिक नहीं हो गया, द्रव्यस्वभावसे तो मैं सदा ज्योंका त्यों ही परिपूर्ण हूँ।

'—ऐसी द्रव्यदृष्टि ही एक उपादेय है।'

मेरा विज्ञानघन चैतन्यद्रव्य जो है वही है, जैसेका तैसा ही परिपूर्ण है; मेरे ज्ञानादि गुण भी ज्योंके त्यों परिपूर्ण रहे हैं; उनमें कोई न्यूनता-अधिकता नहीं हुई है—ऐसी जो निज परिपूर्ण शुद्धात्म द्रव्यसामान्यकी दृष्टि वही एक वास्तवमें उपादेय है। उपादेय, आश्रय करने योग्य अथवा आलम्बन लेन योग्य तो एकमात्र निज त्रिकाल शुद्ध आत्मद्रव्य ही है। अहा! समझमें आया कुछ? अरे! लोगोंको तो यह बातें पागलों जैसी लगेगी। लोग तो समझदारके बेटे जैसी बड़ी-बड़ी बातें करते हैं कि—यह तो ऐसा होता है। ऐसा करो और वैसा करो। भाई! वे तो सब विपरीत मान्यताकी बातें हैं, उनमें कोई ज्ञान नहीं है। व्रत धारण करो, दया पालो, तपस्या करो, यह सब तो राग और विकल्पकी बातें हैं भाई! यह कोई धर्म या धर्मका कारण नहीं हैं। धर्मकी दशा अर्थात् निर्मल पर्यायका कारण तो निज त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्यस्वभावका आश्रय करना, उसीका उपादेयरूपसे स्वीकार करना वही है। अहा! उपादेयभूत द्रव्यस्वभाव तो जैसा है वही है, जैसा है वैसा ही परिपूर्ण शुद्ध है। अरे! अल्पज्ञ दशामें भी द्रव्य और गुण जैसे हैं वैसे ही रहे हैं। अरे! ऐसा विश्वास कैसे आये?

'जानना सब, किन्तु दृष्टि रखना एक द्रव्य पर।'

द्रव्य, उसके गुण, द्रव्य की और गुणकी पर्यायें, राग-द्वेषादि विभाव, साधक-बाधकभाव आदि जानना सब, परन्तु दृष्टि तो सदा एक निज शुद्धात्मद्रव्य पर रखना। ज्ञान जानता सब है—स्व और परको, स्वभाव और विभावको, अपूर्णता और पूर्णताको, परन्तु दृष्टि तो, उस समय भी, एक निज ध्रुव शुद्ध आत्मामें ही सदा लगी होती है। द्रव्यसामान्य पर ही दृष्टिकी डोर बाँधनेसे सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति आदि सर्व शुद्धियाँ प्रगट होती हैं, पर्यायके आलम्बनसे कुछ भी लाभ नहीं होता, उलटा मिथ्यात्वका पोषण होता है। इसलिये जानना सब, परन्तु दृष्टि तो एक शुद्धात्मद्रव्यस्वभाव पर ही स्थिर रखना। अहा! समझमें आता है कुछ? यह सब समझना पड़ेगा। अरे! इस पैसे-बैसेसे-धूलसे—आत्माका कुछ नहीं होगा। कल्याण करना हो, शाश्वत सुख प्राप्त करना हो तो भीतर आत्मामें आना पड़ेगा।

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१६३

दिनांक २७-११-७८

वचनामृत-४०१

ज्ञानीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपकी ओर ढल रहा है। ज्ञानी निज स्वरूपमें परिपूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसता है। 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार बसता है वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।' ॥४०१॥

'ज्ञानीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपकी ओर ढल रहा है।'

जिसे परमानन्दस्वरूप निज शुद्ध त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकका अनुभव हुआ हो उसे ज्ञानी अर्थात् धर्मी कहते हैं। उसको ध्रुव स्वरूपका-निज ज्ञायक भगवानका-अनुसरण करके होनेवाली परिणति-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल दशा-प्रगट होती है। इसलिये धर्मीका परिणमन कहो या ज्ञानीका परिणमन कहो-दोनों एक ही बात हैं। स्वभावकी ओर झुकाव हुआ, अंतरमें एकाग्रता हुई और परिणतिमें श्रद्धा, ज्ञान तथा स्थिरताकी निर्मलता हुई, उसे ज्ञानीका परिणमन कहा जाता है; रागादि विभावरूप परिणमन वह ज्ञानीका परिणमन नहीं है। रागादिभाव तो विभाव है; उसे जाननेवाला ज्ञान, ज्ञाता-द्रष्टारूपसे परिणमता हुआ, उसका ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं है। जिसका झुकाव अनादिसे राग-द्वेष और पुण्य-पाप पर था उसका वह स्वभाव पुनः स्वभावोन्मुख हो तब उसे धर्मी हुआ कहते हैं। धर्मीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपोन्मुख हो रहा है।

सम्यक्त्व और आत्मज्ञान जिसे हुआ हो उसे आत्मामें भीतर उपयोगकी निर्विकल्प युक्ति हो तब स्वानुभूति होती है। स्वानुभूति तो लब्ध एवं उपयोगरूप होती है, परन्तु सम्यक्त्वमें लब्ध और उपयोग ऐसे भेद नहीं होते। सम्यक्त्व तो निरन्तर, ज्ञानोपयोग अंतरमें हो या बाहर हो, प्रतीतिरूप रहता है। परन्तु जिसको निरन्तर प्रतीतिरूप परिणति वर्तती है उसे स्वरूपमें निर्विकल्प उपयोगकी स्थिरता हो तो कितने कालमें होगी? निर्विकल्प स्वानुभूति किसीको अन्तर्मुहूर्तमें भी आ जाती है और किसीको महीने-दो महीनेमें भी आती है। पंचम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुणस्थानवालेको तो शीघ्र आती है और छट्ठे गुणस्थानवालेको क्षण–क्षणमें आ जाती है। अहा! ऐसी बात जैनके सिवा और है ही कहाँ? 'अनुभवप्रकाश', 'चिद्‌विलास' आदि ग्रन्थोंमें यह बात आती है।

भूतार्थ, सत्यार्थ और परमार्थ ऐसी जो त्रिकालशुद्ध ध्रुव ज्ञायक वस्तु वह रागादि विभावभावसे तो कथंचित् भिन्न है ही, परन्तु एक समयकी पर्यायसे भी कथंचित् भिन्न है। वह सदा शुद्ध ज्ञायक परमात्मामें–अतीन्द्रिय आनन्दके पिण्डमें—श्रद्धा–ज्ञानपूर्वक जितनी एकाग्रता करे उतना उसका अतीन्द्रिय आनन्दमय अनुभव आता है। धर्मीकी दशा, विभावसे विमुख होकर—अनादिसे जो पुण्य–पापके विकल्पस्वरूप राग पर लक्ष था, पर्यायबुद्धि थी, उसमेंसे विमुख होकर–स्वरूपोन्मुख हो रही है। अहा! एक वाक्यमें कितना समावेश कर दिया है? परिणमन अर्थात् दशा। धर्मीकी दशा विभावदशासे विमुख होकर स्वरूपोन्मुख हो रही है। स्वरूप अर्थात् अखण्डानन्द ज्ञायकप्रभुका त्रिकालशुद्ध निजरूप। उस ओर ज्ञानीकी दशा–परिणमन–ढल रही है। ज्ञानी धर्मात्माका परिणमन विभावसे–दया, दान, पूजा, भक्ति आदि तथा शास्त्रश्रवण, पठन, चिन्तनादिके विकल्पोंसे भी–विमुख होकर अपने स्वरूपकी ओर ढल रहा है।

'ज्ञानी निज स्वरूपमें परिपूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसता है।'

धर्मीने अंतरमें अपने आनन्दके नाथका ग्रहण एवं अनुभवन किया है। अब वह निजस्वरूपमें सम्पूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसता है। अहा! ऐसी बात है कहाँ? अरे रे! ऐसी बात सुने बिना जीवन चला जा रहा है; सम्प्रदायमें जहाँ पड़ा हो वहींकी मान्यता, उसीमें यथार्थता मानता है; सच्चा तत्त्व क्या है उसे समझनेका अवकाश कहाँ है? यहाँ तो कहते हैं कि—जब तक पुण्य–पाप और दया, दान, व्रत, तप एवं भक्ति आदिके परिणामोंकी रुचि थी तब तक विकारी परिणमन था; अब रुचिने कुलाँट लगायी और पूर्णानन्दका नाथ जिसकी रुचि, दृष्टिमें आया वह अब उसे पर्यायमें परिपूर्ण करना चाहता है। दूज उगी वह पूनम होगी ही। अहा! धर्मात्मा जीव पूर्ण स्वरूपकी परिपूर्ण साधनाको–अंतरमें स्थिरताके लिये–तरस रहा है। साधक है न! अंतरमें एकदम एकाग्र हो जानेको तरसता है।

'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।'........

शरीर, मन, वाणी तो जड़ हैं, धूल हैं, परन्तु अंतरमें दया, दान या भक्ति आदिके जो विकल्प उठते हैं उन्हें भी धर्मी ऐसा जानता है कि 'यह विभावभाव मेरा देश नहीं है!' श्रीमद्‌की दशा भी ऐसी ही थी। वे एकावतारी हो गये हैं। वे वर्तमानमें वैमानिक स्वर्गमें हैं; वहाँसे च्यवकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। स्वयं कह गये हैं वह यथार्थ है—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"अवश्यकर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे;
तेथी देह एकज धारीने, जाशुं स्वरूप स्वदेश रे।"

अहा! स्वरूप ही अपना देश है। ज्ञानानन्दमय असंख्यातप्रदेशी आत्मा ही स्वदेश है, उसके सिवा सब परदेश है। यहाँ बहिन कहतीं हैं कि—यह शुभाशुभ विभावभाव हमारा देश नहीं है।

'इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे?'

जिसमें अनन्त ज्ञान–दर्शन–आनन्द–वीर्य आदि भरे हैं वह हमारा स्वदेश है; उसके सिवा जितने शुभाशुभ विभाव उठते हैं वह सब परदेश है। ज्ञानीको अस्थिरताके कारण शुभाशुभ भाव आते हैं, परन्तु उसके अंतरमें सदा वही भावना बनी रहती है कि अरे! इस परदेशमें–विभावमें–हम कहाँ आ पहुँचे। देखो न! सर्वज्ञ परमेश्वरने पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता आदि परिपूर्ण गुणोंसे भरपूर जो आत्मा कहा उसे भूलकर दुनियाँ आजकल दया, दान और व्रतके परिणामोंको धर्म मानती है! भाई! वे तो शुभभाव हैं, विभाव हैं, परदेश हैं, धर्म नहीं है। धर्मीको शुभभाव आने पर ऐसा लगता है कि–यह विभावभाव हमारा देश नहीं है; इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? जैसे कोई आर्य पुरुष घरसे निकलकर कसाईके घर पहुँच जाय, वैसे ही अरेरे! हम तो रागमें–परदेशमें –आ पहुँचे; यह हमारा देश नहीं है। सम्यक्त्वीको राग आता है, परन्तु वह परदेश लगता है। निचलीदशामें, अभी पूर्णरूपसे विकारका अन्त नहीं हुआ है, इसलिये दया, दान, पूजा, भक्ति या प्रभुस्मरणके विकल्प तो आते हैं, परन्तु उस समय ज्ञानीको अंतरमें ऐसी भावना वर्तती है कि—इस परदेशमें–विकल्पमें–हम कहाँ आ पहुँचे?

'हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।'

धर्मी जीवको भीतर आत्मानन्दके आगे विकल्पमें आना अच्छा नहीं लगता। पंचपरमेष्ठीके स्मरणका भाव भी शुभराग है, धर्मीको उस शुभरागमें आना सुहाता नहीं है। अरे! व्यवहार रत्नत्रयका विकल्प भी धर्मीको अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह परदेश है, आत्माका स्वदेश नहीं है। जहाँ हमें स्थायीरूपसे सदा रहना है वही हमारा देश है। यह विभाव भाव हमारा देश नहीं है, परदेश है; इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।

'यहाँ हमारा कोई नहीं है।'

अरे! इन विभावभावोंमें—शरीर, वाणी, मन तो नहीं किन्तु दया, दान, भक्ति,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नामस्मरण या तत्त्वश्रवणके जो भाव आते हैं उनमें–हमारा कोई नहीं है, वे सब परभाव हैं, स्वभाव नहीं हैं। ज्ञानानन्दस्वरूप झिलमिलाती ज्योतिमेंसे निकलकर विकल्पमें आये वहाँ ज्ञानीको ऐसा लगता है कि अरेरे! यह हमारा देश नहीं है, यहाँ हमें अच्छा नहीं लगता, क्योंकि यहाँ हमारा–ज्ञान, दर्शन या सुख आदि—कोई नहीं है। भले ही असंख्य प्रकारके शुभ विकल्प हों, परन्तु उनमें हमारा कोई नहीं है। स्वभावसे च्युत होकर हम इन विभावमें कहाँसे आ पहुँचे? अररर! हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता, यहाँ कोई हमारा नहीं है।

'जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है वह हमारा स्वदेश है।'

भगवान आत्मा ज्ञानादि अनन्तगुणका देश है, परन्तु यहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि मुख्य कहे। वह अनन्त गुण ही हमारा परिवार है। वह परिवार जहाँ बसता है ऐसा जो निज शुद्धात्मद्रव्य वही हमारा स्वदेश है। अरे! स्त्री, पुत्र–पुत्री और परिवार वे तो कहीं रह गये, वे तो आत्माका परिवार नहीं है, परन्तु दया, दान, पूजा, यात्रा, श्रवण, पठन आदि शुभभाव भी आत्माका परिवार नहीं है, इसलिये वह परदेश है, स्वरूप–स्वदेश नहीं है। ज्ञानी कहते हैं कि जहाँ हमारा गुणपरिवार रहता है वही हमारा स्वदेश है। देव–शास्त्र–गुरुकी विनयका अथवा श्रवण, पठन और ध्यानका विकल्प आये वह हमारा देश या परिवार नहीं है। अरे! इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे?

हमारा स्वभाव त्रैकालिक है कि जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, आदि हमारा परिवार बसता है, वही हमारा स्वदेश है। अहा! हमारा परिवार तो यह है। भाई! यह तो अंतरकी बातें हैं। इन बातोंको नहीं समझे और दूसरोंका ऐसा करो, वैसा करो–गरीबोंकी, रोगियोंकी, कुटुम्बियोंकी, गाँवकी और देशकी सेवा करो, दूसरोंका कल्याण करो—इसप्रकार बाहरकी बातोंमें जीव अटक जाता है। भाई! परका तो तू धूल भी नहीं कर सकता। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानीको अस्थिरताके कारण जो शुभभाव विकल्प आयें वह भी उसका देश या परिवार नहीं है। उसका देश और परिवार तो भीतर आत्मामें है। बाह्यमें या विभावमें नहीं है।

'अब हम उस स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं।'

शुद्ध ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यस्वरूप निज आत्मा जो हमारा स्वरूप–स्वदेश है उस ओर हम जा रहे हैं। वह हमारा मूल वतन है। अहा! देखो, धर्मीका यह देश और मूल वतन! लोग तो सामायिक, प्रोषध, प्रतिक्रमण या चौविहार करके मान बैठे धर्म, परन्तु भाई! उसमें धूल भी धर्म नहीं है; कषाय मन्द किये हों तो पुण्य है। जिसे अंतरमें 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम' ऐसे निज ज्ञायक परमात्माकी दृष्टि और ज्ञानमें ग्रहण हुआ है वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभाशुभरागको परदेश देखता है; रागका भाव शक्तिके कारण आता है, परन्तु उसे वहाँ रुचता नहीं है, अच्छा नहीं लगता, जमता नहीं है। वह तो निरन्तर वर्तते हुए अन्तर्मुख पुरुषार्थ द्वारा स्वरूप-स्वदेशकी ओर जा रहा है। नियमसारमें कहा है कि—

निधि प्राप्तकर जन कोई अपने वतन रह फल भोगते,
त्यों ज्ञानी परजनसंग तजकर, ज्ञाननिधिको भोगते॥१५७॥

अहा! निज शुद्धात्माकी अनुभूतिरूप ज्ञान ही तेरी निधि है। उस निज निधिको प्राप्त करके अकेला रहना, एकान्तमें रहकर भोगना; बाहर प्रशंसाकी बिगुल मत बजाना, किसीके साथ वाद-विवाद नहीं करना, बाहर नहीं कहते फिरना-प्रचार नहीं करना कि-हम सम्यक्त्वी और ज्ञानी हैं। जिस प्रकार धनवानोंके यहाँ निर्धन-गरीब या संस्थाओंके लोग माँगने आते हैं, वैसे ही यदि तूने अपनी ज्ञाननिधिका प्रचार किया तो लोग आयँगे और कहेंगे कि 'हमें कुछ समझाइये न! कुछ उपदेश दीजिये न!' इसप्रकार वे तेरी साधनामें विक्षेप डालेंगे और इसप्रकार उस संगतमें तुझे विकल्प आयँगे। समझमें आया कुछ? अहा! देखो यह वाणी, वचनामृत!

वचनामृत वीतरागके परमशान्त रस मूल;
औषधि जो भवरोगकी, कायरको प्रतिकूल।
—गुणवन्ता ज्ञानी! अमृत बरसा रे! पंचमकालमें।

अहा! परम शान्तरसका कारण ऐसे जो वीतरागके वचनामृत वह एक ही भवरोगकी औषधि है, परन्तु कायरको वह प्रतिकूल लगती है। आत्माको भूलकर व्रत, तप तथा शास्त्राभ्यास आदि बहिर्लक्षी उद्यम करता है, परन्तु अंतरात्माके स्वरूपको समझनेका यथार्थ पुरुषार्थ नहीं करता। ज्ञानी तो कहते हैं कि—हमने तो स्वरूपका यथार्थ ग्रहण किया है, इसलिये अब अपने स्वरूप स्वदेशकी ओर जा रहे हैं।

'हमें त्वरासे अपने मूलवतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।'

'अपने मूलवतनमें'—अहा! कितनी सरल गुजराती भाषा? अनन्त ज्ञान, अनन्त रमणता, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—वह हमारा मूल वतन है। हमें शीघ्रतासे वहाँ पहुँचकर आरामसे रहना है। रागमें आनेसे तो विकल्प होता है, दुःख होता है, वह हमारा वतन नहीं है। अरे भाई! तेरा आत्मा कौन है? कहाँ से आया है? कहाँ जाना है? उसे किसकी शरण है?—इन बातोंका कभी विचार किया है? शाश्वत शरणदाता तो अपना ज्ञायक आत्मा ही है; वहाँ तेरी दृष्टि जाने पर तुझे शरण मिलेगी। ध्रुव स्वभावके आश्रयसे दृष्टि स्थिर होगी, अध्रुव शुभाशुभ विभावके आश्रयसे दृष्टि स्थिर नहीं होगी, टिकेगी नहीं। ज्ञानी ऐसी भावना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाते हैं कि हमें तो अपने देशमें–जहाँ अतीन्द्रिय ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि अनन्त गुणोंका सागर उछलता है, जो अनन्त शक्तिका संग्रहालय–भण्डार है, ऐसे अपने स्वरूपस्वदेशमें जाकर आरामसे निवास करना है; विकल्पमें आने से तो आकुलता होती है, वह हमारा मूल वतन नहीं है, वहाँ हमें अच्छा नहीं लगता। अहा! ऐसी बात है।

अतीन्द्रिय आनन्द ही हमारा वतन है, वहाँ जाकर हमें शान्तिपूर्वक निवास करना है। जहाँ सब—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, श्रद्धादि सब—हमारे हैं। विभाव–अणुव्रत और महाव्रतके विकल्प—वह कहीं हमारा देश नहीं है। विकल्प तो रागादि विभावमय हैं और हमारा देश—हमारा वतन तो ज्ञान और आनन्दमय है। श्रीमद् कहते हैं—हमें अभी एकाध भव करना पड़ेगा, फिर हम अपने पूर्णानन्दमय स्वरूपस्वदेशमें–मूल वतनमें–जाकर आनन्दपूर्वक रहेंगे। ज्ञान और आनन्द ही हमारा मूल वतन है, बाकी रागादि विकार तो परदेश है। अहा! बहिनके ४०१वें बोलमें बहुत अच्छी बात आयी है। उनके अनुभवमेंसे यह वाणी आयी है। यह बोल तो हृदयमें उत्कीर्ण कर लेने जैसा है।

❋

वचनामृत–४०२

जो केवलज्ञान प्राप्त कराये ऐसा अन्तिम पराकाष्ठाका ध्यान वह उत्तम प्रतिक्रमण है। इन महा मुनिराजने ऐसा प्रतिक्रमण किया कि दोष पुनः कभी उत्पन्न नहीं हुए; ठेठ श्रेणी लगा दी कि जिसके परिणामसे वीतरागता होकर केवलज्ञानका सारा समुद्र उछल पड़ा! अन्तर्मुखता तो अनेक बार हुई थी, परन्तु यह अन्तर्मुखता तो अन्तिमसे अन्तिम कोटिकी! आत्माके साथ पर्याय ऐसी जुड़ गई कि उपयोग अन्दर गया सो गया, फिर कभी बाहर आया ही नहीं। चैतन्यपदार्थको जैसा ज्ञानमें जाना था, वैसा ही उसको पर्यायमें प्रसिद्ध कर लिया।।४०२।।

'जो केवलज्ञान प्राप्त कराये ऐसा अन्तिम पराकाष्ठाका ध्यान वह उत्तम प्रतिक्रमण है।'

एक समयमें तीनकाल और तीनलोकको प्रत्यक्ष जाने ऐसे केवलज्ञानको प्राप्त करानेवाला उच्चसे उच्च ध्यान—निज पूर्णानन्दके नाथको, ज्ञायक ध्रुव ध्येयको, ध्यानका विषय बनाकर परिणतिका अंतरमें युक्त हो जाना–वह उत्तम प्रतिक्रमण है। अहा! इसका नाम उत्तम प्रतिक्रमण है। 'तस्स भंते पडिकमामि......मिच्छा म्मि दुक्कडं' ऐसे पाठ तो अनेकबार पढे; वह कोई प्रतिक्रमण नहीं है। जिससे केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा जो उत्तम ध्यान वही सच्चा उत्तम प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण अर्थात् लौट आना। शुभाशुभ विभावसे लौटकर स्वरूपमें ढल जाना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–स्थिर हो जाना वह प्रतिक्रमण है। अरे! अभी तो प्रतिक्रमण किसे कहा जाता है उसकी भी खबर नहीं है। एक बार बोटादमें कहा था कि—अनुभव वह तो कोई अद्‌भुत वस्तु है! यह सुनकर साथ रहनेवाले सम्प्रदायके एक साधु कहने लगे कि–अनुभव–बनुभव अपने जैनमें नहीं होता, वेदान्तमें होता है। अरे! साधु होकर भी अनुभवकी खबर नहीं है, क्या किया जाय? स्वानुभूति ही जैन धर्म है, जैनधर्मके सिवा अन्यत्र कहीं सच्ची स्वानुभूति नहीं हो सकती। स्वरूपमें ढल जाना अर्थात् स्वानुभूति ही सच्चा प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमणका स्वरूप नहीं जानते और बेचारे प्रातः सायंकाल बाह्य क्रिया तथा रागकी मजदूरी करके मिथ्यात्वका पोषण करते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि—पूर्ण स्वरूप भगवान ज्ञायक आत्माके आश्रयसे, केवलज्ञान प्राप्त कराये ऐसा जो ऊँचे से ऊँचा–अन्तिम सीमाका ज्ञान वह उत्तम प्रतिक्रमण है।

'इन महामुनिराजने ऐसा प्रतिक्रमण किया कि दोष पुनः कभी उत्पन्न ही नहीं हुए; ठेठ श्रेणी लगा दी कि जिसके परिणामसे वीतरागता होकर केवलज्ञानका समुद्र उछल पड़ा।'

परिपूर्ण आनन्दका भण्डार ऐसी अन्तिम—ऊँची बात ली है न! जिसप्रकार मक्खी मिश्रीकी डली पर बैठी और रस चूसनेमें चिपक गई–लीन हो गई, वैसे ही इन महा मुनिराजने ऐसा प्रतिक्रमण किया–आनन्दकन्द निज भगवान ज्ञायक आत्मामें स्वरूपरमणताकी ऐसी स्थिरता की–कि दोष पुनः कभी उत्पन्न ही नहीं हुए, फिर विकल्पमें आये ही नहीं और केवलज्ञान स्वरूप परिपूर्ण दशा प्राप्त कर ली। अहा! जिससे केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसी स्वरूपस्थिरतारूप उग्र दशाको उत्तम प्रतिक्रमण कहते हैं। अरे! 'जैन' नाम धारण करके भी प्रतिक्रमण किसे कहते हैं यह नहीं जानते! प्रतिक्रमण क्या वस्तु है?—यह बात लोगोंने अभी सुनी नहीं है फिर खबर कहाँसे हो? बिना खबरके भटकते फिरेंगे चार गतियोंमें। मुनिराज तो रागसे विमुख होकर स्वरूपके ध्यानमें ऐसे स्थिर–तल्लीन हो जाते हैं, कि पुनः रागमें आना होता ही नहीं और केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। अहा! इसका नाम उत्तम प्रतिक्रमण है।

अनादिसे जो एकाग्रता रागमें और पुण्यमें है वह तो रौद्रस्वरूप मिथ्या ध्यान है। जो ध्यानदशा पूर्णानन्दस्वरूप निज अखण्ड परमात्माको, अतीन्द्रिय आनन्दसे छलाछल भरे हुए निज ज्ञायकदेवको ध्याती है–ध्यानके विषयभूत बनाती है—उसे उत्तम प्रतिक्रमण कहा जाता है। उस दशारूप परिणमित मुनिराज स्वरूपमें ऐसे स्थिर हो गये कि अब उनको दोषकी–विकल्पकी उत्पत्ति नहीं होगी। उन्होंने तो अब श्रेणी–स्वरूपकी उग्र धारा–लगा दी है कि जिसके परिणामसे पूर्ण वीतरागता होकर अंतरसे केवलज्ञानका सागर उमड़ पड़ा है! ज्ञान और आनन्दस्वरूप निज भगवान आत्मामें जो उग्र एकाग्रताकी अप्रतिहत धारा चले उसे क्षपकश्रेणी कहते हैं। इन महा मुनिराजने क्षपकश्रेणी लगा दी कि जिसके फलरूपसे परिपूर्ण वीतरागता होकर केवलज्ञानका सम्पूर्ण समुद्र उमड़ पड़ा। अहा! यह उत्कृष्ट दशाकी बात है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्मा द्रव्यस्वभावसे ज्ञानका सागर है, आनन्दका उदधि, प्रभुताका पिण्ड, शान्तिका सागर है; उसके प्रति ध्यानकी अप्रतिहत धारा चलनेसे भीतर पर्यायमें ज्वार आकर केवलज्ञानका पूर्ण महासागर उमड़ पड़ा; द्रव्यमें शक्तिरूपसे जैसा परिपूर्ण है वैसी भीतर पर्यायमें पूर्णताका ज्वार आया। अरे! अभी तो अनेकोंको श्रद्धा क्या? सम्यक्त्व क्या? उसकी भी खबर नहीं है; देव–शास्त्र–गुरुको मानो वह सम्यक्त्व! परन्तु भाई! ऐसा तो अनन्तबार माना है, वह तो शुभराग है। छह द्रव्य और नवतत्त्वके भेदको मानो वह भी राग है। एक अभेद ध्रुवज्ञायक ऐसा जो निज परमात्मतत्त्व–जिसके समक्ष सिद्ध पर्याय भी मूल्यवान नहीं है ऐसा जो पूर्णानन्दका नाथ, वह भी जैसा जिनेश्वरदेवने कहा है वैसा–उसे ध्यानका विषय बनानेसे केवलज्ञान प्रगट होता है, भगवान आत्मा पर्यायमें केवलज्ञानके समुद्ररूपसे उमड़ता है। सर्वज्ञशक्ति उछलकर पर्यायमें सर्वज्ञदशा होती है।

'अन्तर्मुखता तो अनेकबार हुई थी, परन्तु वह अन्तर्मुखता तो अन्तिमसे अन्तिम कोटिकी!'

परिणति श्रद्धा–अपेक्षासे अन्तर्मुख तो सम्यग्दर्शन होते ही हो जाती है, यहाँ तो स्थिरता-अपेक्षाकी अन्तर्मुखताका कथन है। अंतरमें जो त्रिकालशुद्ध ज्ञायक प्रभु है उसकी दृष्टि होकर, मुनिराजको उस ओर स्थिरतारूप लीनता–अन्तर्मुखता–बारम्बार हुई; परन्तु यह लीनता तो ऐसी उत्कृष्ट हुई कि जिसके फलरूप पूर्ण वीतरागता प्रगट होकर केवलज्ञानका ज्वार आ गया! पहले अन्तर्मुखता तो अनेकों बार हुई थी, परन्तु उसमें पूर्णरूपसे स्थिरता नहीं हो पाती थी, इसलिये वृत्ति पुनः बाहर आ जाती थी। अब यह अन्तर्मुखता तो ऐसी हुई अन्तिमसे अन्तिम कोटिकी!

'आत्माके साथ पर्याय ऐसी जुड़ गई है कि उपयोग अंदर गया सो गया, फिर कभी बाहर आया ही नहीं।'

अहा! आत्मा क्या वस्तु है भाई! साक्षात् ध्रुव परमात्मस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, जिनस्वरूप जो निज त्रिकालशुद्ध ज्ञायकतत्त्व है वही 'आत्मा' है। उसके साथ उसकी वर्तमान साधनारूप पर्याय ऐसी जुड़ गई, ऐसी जुड़ गई कि उपयोग भीतर गया सो गया, फिर कभी बाहर आया ही नहीं। उपयोगने अन्तर्मुख होकर आत्माकी ऐसी सेवा की, ज्ञायककी ऐसी उपासना की कि वह कभी पीछे हटा ही नहीं, चलित नहीं हुआ। दशा दशावानके साथ ऐसी जुड़ गई कि फिर विकल्पमें आयी ही नहीं। जिसका उपयोग भीतर ही भीतर स्थिर हो जाय उसे केवलज्ञान और सिद्धपद होता है, उसका उपयोग कभी बाहर आता ही नहीं।

'चैतन्य पदार्थको जैसा ज्ञानमें जाना था, वैसा ही उसको पर्यायमें प्रसिद्ध कर लिया।'

जिसका स्वभाव ध्रुव ज्ञायक है ऐसा यह आत्मा अनादिसे क्षणिक पर्यायके खेलोंमें लगा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, परन्तु विनाशशील वर्तमान पर्यायके पीछे जो अनन्त महिमावन्त त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायक ध्रुव द्रव्य सदा सामर्थ्य भरपूर पड़ा है उसे, अज्ञानके कारण, वहां नहीं दिखता। ज्ञानी जीवने तो ज्ञानादि अनन्तसामर्थ्यसे भरपूर ऐसे निज चैतन्य पदार्थको ज्ञानमें जैसा जाना था वैसा ही उसे वर्तमान पर्यायमें प्रसिद्ध-प्रगट कर लिया है। अहा! यह पैरा तो बहुत ही ऊँचा है।

कोई दया, दान, व्रत, तपादि बाह्य क्रियासे या शुभरागसे नहीं, किन्तु वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यपदार्थका यथार्थ ग्रहण और उसमें लीनता करनेसे वह, पर्यायमें परिपूर्ण प्रसिद्ध हुआ है। जैसी परिपूर्ण आत्मवस्तु है वैसी जानकर अंतरमें ध्यान लगानेसे वह वर्तमान पर्यायमें प्रसिद्ध हो गई। पूर्ण आत्मख्याति हुई उसका नाम केवलज्ञान और मोक्ष है। मनुष्यपना या उत्तम संहनन है, इसलिये केवलज्ञान होता है वह बात उड़ गई। पूर्णानन्दस्वरूप चैतन्यपदार्थको ज्ञानमें जैसा है वैसा ग्रहण करके उसमें ध्यानकी धारा लगानेसे केवलज्ञान होता है, चैतन्यपदार्थ पर्यायमें पूर्णरूपसे प्रसिद्ध होता है-प्राप्त होता है। पूर्णता प्रगट कहाँसे हुई? अंतरमें स्वभाव था उसके आश्रयसे। अहा! यह बात उच्च प्रकारकी है।

❋

वचनामृत-४०३

जैसे पूर्णमासीके पूर्ण चन्द्रके योगसे समुद्रमें ज्वार आता है, उसीप्रकार मुनिराजको पूर्ण चैतन्यचन्द्रके एकाग्र अवलोकनसे आत्मसमुद्रमें ज्वार आता है;—वैराग्यका ज्वार आता है, आनन्दका ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्यायका यथासम्भव ज्वार आता है। यह ज्वार बाहरसे नहीं, भीतरसे आता है। पूर्ण चैतन्यसमुद्रको स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दरसे चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है—सब कुछ उछलता है। धन्य मुनिदशा! ।।४०३।।

'जैसे पूर्णमासीके पूर्णचन्द्रके योगसे समुद्रमें ज्वार आता है, उसीप्रकार मुनिराजको पूर्ण चैतन्यसमुद्रके एकाग्र अवलोकनसे आत्मसमुद्रमें ज्वार आता है;—वैराग्यका ज्वार आता है, आनंदका ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्यायका यथासम्भव ज्वार आता है।'

समुद्रका प्राकृतिक ही ऐसा स्वभाव है कि पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रके योगसे उसमें पूरा ज्वार आता है। ग्यारह, बारस, तेरस आदि दिनोंमें उनके सीमित ज्वार होता है, परन्तु पूरा ज्वार तो पूर्णमासीके दिन ही आता है। चन्द्रमा और ज्वारका ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। चन्द्र तो निमित्तमात्र है; समुद्र स्वयं अपने मध्यबिन्दुसे उछलता है तब ज्वार आता है। मुनिराजको भी पूर्ण ज्ञायकचन्द्रके एकाग्र अवलोकनसे–एकाग्र संचेतनसे आत्मसमुद्रमें वैराग्य, आनन्दादि सर्व गुणोंकी पर्यायोंमें यथासम्भव ज्वार आता है। अहा! मुनि किन्हें कहा जाता है भाई! वर्तमानमें तो सम्यग्दर्शनका भी ठिकाना नहीं है और बन बैठे मुनि! अरे! नग्न हो गये इसलिये मुनिपना आ गया—ऐसा नहीं है। अंतरमें आनन्दके नाथको–निज ज्ञायकदेवको–जाग्रत करके जिनके प्रचुरतासे आनन्दका वेदन बढ़ गया हो उनको मुनिदशा कही जाती है। वस्त्रपात्रधारी तो मुनि हैं ही नहीं, वे तो मुनि नामधारी, गृहीतमिथ्यादृष्टि कुलिंगी हैं; उनको मुनि माननेवाले जीव भी गृहीतमिथ्यादृष्टि हैं। वे तो ठीक, परन्तु जिन्होंने मुनिदशाका बाह्य सच्चा लिंग–नग्नता–धारण किया है परन्तु भीतर सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति आदि परिणति प्रगट नहीं की, उनके स्वरूपकी भी जिनको खबर नहीं है वे सब द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि हैं। अहा! कठिन बात है भाई! मट्ठा माँगने जाय और बर्तन छिपाये तो नहीं चलेगा; वैसे ही मार्ग प्राप्त करना हो तो सत्यको छिपानेसे काम नहीं चलेगा; सत्यको स्पष्टरूपसे समझना चाहिये।

समुद्रमें जो पूर्ण ज्वार आता है उसमें पूर्णमासीका चन्द्र तो मात्र निमित्त है, ज्वार समुद्रके अपने कारणसे आता है; परन्तु मुनिराजको आत्मसमुद्रमें जो ज्वार आता है वह पूर्ण चैतन्य-चन्द्रके एकाग्र अवलोकन–चैतन्यसमुद्रके उग्र आश्रयसे आता है। दृष्टान्तमें पूर्णमासीका चन्द्रमा निमित्त कारण है और सिद्धान्तमें मुनिराजका पूर्ण चैतन्यचन्द्र आत्मसमुद्रमें ज्वारका आश्रय कारण है। त्रिकाल शुद्ध चैतन्यद्रव्यके आश्रयसे ही ज्वार अर्थात् शुद्धिकी वृद्धि होती है।

पूर्ण चैतन्यचन्द्रके उग्र आश्रयसे—एकाग्र अवलोकनसे आत्मसमुद्रमें काहेका ज्वार आता है? कि—वैराग्यका ज्वार आता है, अतीन्द्रिय आनन्दका ज्वार आता है, अतीन्द्रिय शान्तिका ज्वार आता है, सर्व गुणोंकी पर्यायोंमें यथासम्भव ज्वार आता है। समुद्रमें ज्वारके समय लहरें जिसप्रकार किनारे आती हैं, उसीप्रकार आत्मामें जब शुद्धिका ज्वार आता है तब वैराग्य, आनन्द, शान्ति, समाधिकी लहरें पर्यायमें आती हैं, अर्थात् चैतन्यचन्द्रके एकाग्र अवलोकनसे पर्यायमें वैराग्य, आनन्द, शान्ति, समाधि आदिकी वृद्धि होती है। अहा! ऐसी बात है। अरे! उसे समझनेका या निर्णयका भी ठिकाना नहीं है, तो उसका परिणाम क्या? इसे समझे बिना मरने पर कहाँ चला जायगा, उसका पता भी नहीं लगेगा।

पूर्ण चैतन्यचन्द्रके एकाग्र अवलोकनसे सर्वगुणोंकी पर्यायमें यथासम्भव ज्वार आता है, परन्तु उसमें वैराग्य और आनन्द इन दो को लिया है। ज्वार पर्यायमें आता है भाई! त्रैकालिक ध्रुव गुणमें नहीं। जितनी एकाग्रता हो उसके प्रमाणमें सर्व गुणोंकी पर्यायमें यथासम्भव निर्मलता बढ़ती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'यह ज्वार बाहरसे नहीं अन्दरसे आता है।'

ध्रुव चैतन्यस्वभावके आश्रयसे सर्व गुणोंकी पर्यायमें जो यथासम्भव ज्वार आता है वह बाहरसे नहीं, किन्तु भीतरसे आता है। हजारों नदियोंके पानीसे तथा सौ इंच वर्षासे भी समुद्रमें ज्वार नहीं आता, परन्तु समुद्र जब अपने मध्यबिन्दुसे उछलता है तब ज्वार आता है; वैसे ही आत्मसमुद्रमें ज्ञानका ज्वार बाहरसे–शास्त्र पढ़नेसे, वाणी सुननेसे या बाह्य ज्ञातृत्वसे–नहीं आता, श्रद्धाका ज्वार देव–शास्त्र–गुरु या तत्त्वके विकल्पोंसे नहीं आता, चारित्रका ज्वार व्रत, संयम, उपवासादि बाह्य क्रियाकाण्ड या शुभ विकल्पोंसे नहीं आता; परन्तु अंतरमेंसे, ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावका उग्र आश्रय लेनेसे, आता है। आत्माके दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि गुण बाह्यमें नहीं हैं कि जिससे उनकी पर्यायमें बाहरसे ज्वार आ जाय; वे सब गुण आत्मामें हैं; इसलिये उनकी पर्यायमें निर्मलताका ज्वार भीतर आत्मामेंसे आता है, बाहरसे नहीं। अहा! ऐसा है वस्तुस्वरूप।

'पूर्ण चैतन्यचन्द्रको स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दरसे चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है–सब कुछ उछलता है।'

पूर्ण ज्ञायकचन्द्रको श्रद्धा, ज्ञान और अंशतः स्थिरतापूर्वक तो सम्यग्दृष्टि और श्रावक भी निहारते हैं, परन्तु मुनिराज तो उसे संयमकी उग्र स्थिरतापूर्वक निहारते है। पूर्ण चैतन्यचन्द्रको उग्र स्थिरतापूर्वक निहारनेसे आत्मसमुद्रमें चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, शान्ति उछलती है, धैर्य उछलता है, आनन्द उछलता है, वीर्य उछलता है—सर्व गुणोंकी पर्यायोंमें निर्मलताका ज्वार आता है, सब उछलते हैं।

'धन्य मुनिदशा।'

अहा! स्वरूपस्थिरतारूप झूलेमें झूलते हुए उन मुनिराजकी आत्मलीनताका क्या कहना! वह तो कोई अद्‌भुत दशा है। मुनिराजका सर्व प्रवर्तन मात्र आत्मामय ही है। बहिन कहती हैं–धन्य वह मुनिदशा!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१६४

दिनांक २८-११-७८

वचनामृत–४०४

परसे भिन्न ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके, बारम्बार भेदज्ञानका अभ्यास करते–करते मति–श्रुतके विकल्प टूट जाते हैं, उपयोग गहराईमें चला जाता है और भोंयरेमें भगवानके दर्शन प्राप्त हों तदनुसार गहराईमें आत्मभगवान दर्शन देते हैं। इस प्रकार स्वानुभूतिकी कला हाथमें आने पर, किस प्रकार पूर्णता प्राप्त हो वह सब कला हाथमें आ जाती है। केवलज्ञानके साथ केलि प्रारम्भ होती है॥४०४॥

'परसे भिन्न ज्ञायकस्वभावका निर्णय करके, बारम्बार भेदज्ञानका अभ्यास करते–करते मति–श्रुतके विकल्प टूट जाते हैं, उपयोग गहराईमें चला जाता है और भोंयरेमें भगवानके दर्शन प्राप्त हों, तदनुसार गहराईमें आत्मभगवान दर्शन देते हैं।'

सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, स्वानुभूति प्रगट करना हो, निज शुद्ध भगवान आत्माके दर्शन करना हो, तो वे कैसे होंगे, उसकी यह बात है। धर्मका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनसे होता है। शरीर, इन्द्रियाँ, स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी आदि परपदार्थोंसे भिन्न, देव–शास्त्र–गुरु आदि धर्मके निमित्तोंसे भिन्न, शुभाशुभ रागसे भी स्वभावतः भिन्न, अरे! एक समयकी पर्यायके लक्षसे विकल्प होनेके कारण वह आश्रय लेने योग्य नहीं है इसलिये उस अपेक्षा उससे भी भिन्न, —ऐसे त्रिकालशुद्ध निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी अंतरमें यथार्थ महिमा लाकर, दृढ़ निर्णय करके, उसकी भिन्नताका बारम्बार अभ्यास करते–करते भगवान आत्माका सम्यग्दर्शन होता है। आत्माकी अनुभूति प्रगट होती है।

रंग, राग और भेदसे भिन्न निज ज्ञायकस्वभावकी अंतरप्रतीति करनेसे भेदज्ञान, स्वानुभूति और आत्मदर्शन होता है। रंगमें वर्ण–गंध–रस–स्पर्शवान कर्म और शरीरादि समस्त परद्रव्य आ गये, रागमें शुभाशुभ समस्त विभाव आ गये और भेदमें क्षणपरिणामी पर्याय और गुणभेद भी आ गये; इन सबसे भिन्न निज अभेद ध्रुव ज्ञायकस्वभावका अंतरमें बराबर निर्णय करके, बारम्बार भेदज्ञानका अभ्यास करते करते मति–श्रुतज्ञानके विकल्प टूटकर भीतर भगवान आत्माका साक्षात्कार होता है, निर्विकल्प स्वानुभूति प्रगट होती है। परसे अत्यन्त भिन्न तथा विभावसे रहित 'मैं परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध द्रव्य हूँ' ऐसा निर्णय पहले भले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही विकल्पसहित करे, परन्तु उस भिन्नताका–भेदज्ञानका–बारम्बार अभ्यास करते–करते मति–श्रुतके—भेदविचारके–विकल्प टूट जाते हैं, उपयोग भीतर गहराईमें चला जाता है और जैसे भोंयरेमें भगवानके दर्शन होते हैं वैसे ही अंतरकी गहराईमें भगवान आत्माके दर्शन होते हैं, उसकी निर्मल अनुभूति प्रगट होती है। अहा! ऐसी बात है, मार्ग बहुत अपूर्व है।

उपयोग भीतर गहराईमें चला जाता है अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका वर्तमान व्यापार, जैसे भोंयरेमें ऊपरसे नीचे जाने पर भगवानके दर्शन होते हैं, वैसे ही, पर्यायके नीचे जो ध्रुव ज्ञायक तल है उसमें चला जाता है और वहाँ निज आत्मभगवानके दर्शन होते हैं, आत्मानुभूति प्रगट होती है। ऐसी निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर ही ज्ञायकभगवान पूर्ण है। उसकी यथार्थ प्रतीति होती है। कितने ही लोग कहते हैं कि–निश्चय तो सिद्ध भगवानको ही होता है, नीचे साधक दशामें तो अकेला व्यवहार ही होता है। भाई! यहाँ तो कहते हैं कि जो पर्याय परसे तथा रागसे भिन्न होकर भीतर स्वोन्मुख हुई वही स्वाश्रयरूप निश्चय है; फिर भले ही उस निचली भूमिकामें मन्द स्वाश्रयरूप धर्मध्यान हो या ऊपरकी भूमिकामें उग्र स्वाश्रयरूप शुक्लध्यान हो। ऊपर अथवा नीचे स्वके–ज्ञायकके–आश्रयरूप निश्चयपरिणति तो है ही, और तब तो उसे मोक्षमार्ग हुआ कहा जाता है। 'नियमसार'में आता है न! 'स्वाश्रित निश्चयधर्मध्यान'। धर्मका अर्थ शुभभाव नहीं, किन्तु धर्मीको अर्थात् आत्माको ज्ञानानन्दस्वरूप निजस्वभावमें, पुण्य–पापरूप विभावसे बचाकर, सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरतापूर्वक धारण कर रखना वह धर्म है। स्वभावमें एकाग्र होनेको धर्मध्यान कहा जाता है।

सीधी बात है :—स्वका–चैतन्यमूर्ति निज द्रव्यस्वभावका—आश्रय लेना वह निश्चय है; जितना परका—देव–शास्त्र–गुरु आदिका—आश्रय लिया जाय वह व्यवहार है, विकल्प है, राग है। 'नियमसार'में अनेक स्थानों पर—परमार्थ–प्रतिक्रमण, निश्चय–प्रत्याख्यान, निश्चय–प्रायश्चित्त, निश्चय–आवश्यक, शुद्धोपयोग आदिमें—स्वाश्रित सो निश्चय, इसप्रकार निश्चय, निश्चय और निश्चयकी पुकार की है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्वयं कहते हैं, कि इस नियमसार शास्त्रकी रचना मैंने अपनी भावना हेतु की है। ऐसी बात है भाई! ऐसा अवसर कहाँसे प्राप्त होगा? और मिला तब ऐसा (विरोध) करता है! उसका परिणाम भयंकर आयगा भाई! इस बातका यथावत्, भले ही विकल्पसे सही, पहले ज्ञानमें निर्णय तो कर।

वर्तमान पर्याय जो प्रगट है उसे अन्तरोन्मुख करने पर पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्माके दर्शन होते हैं, उसकी प्रतीति होती है। भोंयरेमें भगवानके दर्शन हों, वैसे ही गहराईमें–पर्यायके समीप गहरा ध्रुव पिण्ड, ज्ञायक अन्तरात्मा है उसमें–उपयोग उन्मुख करनेसे आत्मभगवान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शन देते हैं, स्वभावसे परिपूर्ण आत्माका, अन्तर्मुख होने पर, ज्ञान और दर्शन होता है। अहा! ऐसा मार्ग है। 'एक होय त्रिकालमें, परमारथका पंथ।'

'इसप्रकार स्वानुभूतिकी कला हाथमें आने पर, किसप्रकार पूर्णता प्राप्त हो वह सब कला हाथमें आ जाती है, केवलज्ञानके साथ केलि प्रारम्भ होती है।'

पूर्णानन्द प्रभु निज 'ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी ओर पर्यायको उन्मुख करने पर जो आत्मप्रतीति और स्वानुभव हो वह कला कोई और ही है! वह स्वानुभूतिरूपकला हाथ लगने पर, केवलज्ञानादि पूर्णदशा कैसे प्राप्त होती है वह सब कला हाथ आ जाती है, केवलज्ञानके साथ केलि प्रारम्भ होती है। विषय-कषायरूप पाप-परिणाम तो दूर रह गये, परन्तु दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत, उपवासादि जो पुण्य–परिणाम वे भी दुःखरूप हैं, उनके समीप जो ज्ञानकी पर्याय, उस ज्ञानपर्यायके समीप-भीतर जो ज्ञानानन्दस्वरूप ध्रुव पिण्ड उसका पता उसने अंतरमेंसे प्राप्त किया, स्वानुभूति-परिणति प्रगट की, केवलज्ञानके साथ क्रीड़ा प्रारम्भ हुई। अहा! मक्खन है, मक्खन! बहुत संक्षिप्त और सरल गुजराती शब्द! अनेक शास्त्र नहीं पढ़ने पड़ेंगे; इस एकमें ही अध्यात्मका समस्त सार आ जाता है।

आत्मामें द्रव्य और पर्याय ऐसे दो पक्ष हैं; उसे शरीरादि परद्रव्योंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। 'मैं शुद्ध एक ज्ञायक हूँ' इसप्रकार मति–श्रुतज्ञानकी पर्यायमें पहले विकल्पयुक्त निर्णय होता है, परन्तु वहाँ अनुभव नहीं है। विकल्प छूटकर यदि अंतरमें प्रविष्ट हो तो धर्मध्यानकी निर्मलदशा प्रगट होती है—अंतरमें आत्माका अनुभव होता है। वह कला हाथमें आने पर पूर्णता कैसे प्राप्त की जाय–वह सब कला हाथ आ जाती है। वर्तमान वर्तती पर्याय जो ऊपर-ऊपर विभावमें रुकती थी, वह अब गहरे–गहरे अंतरमें उतर गई—त्रिकालशुद्ध द्रव्यके, ध्रुवदलके आलम्बनयुक्त हो गई; उसमें अब यदि वह विशेष गहरे जाय–ध्रुवदलके पूर्ण आलम्बनभावरूप परिणमित हो–तो पर्यायमें पूर्णताकी प्राप्ति हो; यह कला हाथ आ गई। दया–दानादि रागकी कोई क्रिया करूँ तो पूर्णताकी प्राप्ति हो–यह बात तो बिलकुल निकाल दी है। स्वरूपका पूर्ण आश्रय करूँ तो पूर्णता प्राप्त होती है—इसप्रकार 'अस्ति'से बात की है; स्वरूपके आश्रय बिना अन्य रीतिसे वह प्राप्त नहीं होती—इसप्रकार 'नास्ति'से बात नहीं की।

मुक्तिका उपाय सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिमें शास्त्र निमित्त हैं, शास्त्रोंकी उत्पत्तिमें आप्त पुरुष निमित्त हैं; इसलिये धर्मात्मा, मुक्तिको आप्त पुरुष श्री सर्वज्ञदेवकी कृपाका फल समझकर अपने ऊपर हुए उनके उपकारको नहीं भूलते। यद्यपि यह तो विकल्पकी बात है, परन्तु ऐसे विकल्प वास्तवमें आते कब हैं? कि—सहज ज्ञायकतत्त्वकी अंतरमें निर्विकल्प अनुभूति हो तब। अरे! यह कैसा उपदेश? भाई! परम सत्यमार्ग तो यही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक समयवर्ती पर्याय भी जिसमें—त्रिकाल ध्रुव द्रव्यसामान्यमें—नहीं है ऐसे चैतन्यबिम्ब ज्ञायक प्रभुके आश्रयसे पर्यायको अन्तर्मुख करनेसे–गहराईमें ले जानेसे–स्वानुभूति प्रगट होती है। अहा! इतना और ऐसा आत्मा है उसका श्रद्धा–ज्ञान होता है। इसप्रकार उपयोगको गहराईमें लेकर देखने पर–स्वानुभूतिकी कला हाथमें आने पर किसप्रकार पूर्णताकी प्राप्ति होती है वह कला हाथ आ जाती है। स्वरूपमें विशेष स्थिर होऊँ तो पूर्णता प्राप्त होगी; पूर्णता प्राप्त करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अहा! पंचमकालके साधु अप्रतिबुद्ध शिष्यको 'अनुभूतिकी कला हाथ आ जाये तो पूर्णता प्राप्त होती है' ऐसा उपदेश देते हैं। काल–बाल कुछ बाधक नहीं होता। भगवान ज्ञायक अनन्तगुणोंसे ज्योंका त्यों परिपूर्ण विद्यमान है, वहाँ वर्तमान पर्यायको भीतर ध्रुवतलमें ले जाने पर, गहराईमें आत्मभगवान दर्शन देता है। अहा! व्यवहारके पक्षवालोंको यह असह्य लगता है, परन्तु भाई! अंतरमें निश्चयरूप परिणमन हो तब वहाँ पहले विकल्परूप व्यवहार होता है, सच्चे देव–गुरुका बहुमान आता है; परन्तु अंतरमें निश्चयरूप वस्तु प्रगट हुए बिना बहुमानका विकल्प—देव–गुरु आदि परकी विनयका भाव—बंधका कारण है। अबंध दशा अर्थात् मुक्तिका कारण तो स्वानुभूति है; उसकी कला हाथमें आने पर, पूर्ण अबंधदशा किसप्रकार प्राप्त हो वह सब कला हाथ आ जाती है, केवलज्ञानके साथ क्रीड़ा प्रारम्भ होती है।

दूज उगी वह पूनम होगी ही। वर्तमान वर्तती ज्ञानकी पर्यायमें जिसने निज द्रव्यस्वभावकी गहराईमें जाकर पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको जाना–श्रद्धा की–अनुभव किया, उसे केवलज्ञान कैसे प्राप्त होता है उसकी कला भी हाथ आ गई। वह तो केवलज्ञानके साथ क्रीड़ा करने लगा है, उसका मति–श्रुतज्ञान सम्यक् होकर अन्तर्मुख हुआ वह केवलज्ञानको बुलाता है। अनादिकालसे राग और पुण्य–पापके भावोंके साथ जो क्रीड़ा कर रहा था उसके फलमें तो संसार फलित हुआ, चारों गतियोंमें भटका। अब स्वानुभूति होने पर वह साधक ऐसी पुकार करता है, कि केवलज्ञानकी पर्याय–मेरे ज्ञानस्वभावकी पूर्ण व्यक्ति–शीघ्र आओ, आओ! इसप्रकार वह केवलज्ञानके साथ क्रीडा करता है।

षट्खण्डागमकी 'धवला' टीकामें 'दिट्ठमग्गो' शब्द अनेक स्थानों पर आता है। जिसे स्वानुभूति प्रगट हुई उसने वस्तुस्वरूपकी गहराईमें कैसे उतरा जाय उसका 'मार्ग देखा' और केवलज्ञानके साथ केलि प्रारम्भ हुई। अब उसे अल्पकालमें केवलज्ञान प्रगट हो जायगा। अहा! ऐसा मार्ग! लोगोंने उसकी अन्यरूप कल्पना कर ली है। भाई! जिससे भवका अन्त आये, केवलज्ञान और मोक्षकी पर्याय प्रगट हो, वह पंथ जगतसे बिलकुल निराला है। पूर्णानन्दस्वरूप निज ज्ञायकभावके आश्रयसे केवलज्ञान और मोक्ष प्रगट होता है, पराश्रयसे कदापि प्रगट नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता। प्रभु! तू महान है न! तेरी महानताका क्या कहना? वह महानता जिसकी श्रद्धामें, स्वानुभूतिमें आयी, उसको केवलज्ञान प्राप्त करनेकी कला हाथ आ गई। अहा! बहिनने सादी भाषा और संक्षिप्त शब्दोंमें मूलतत्त्व प्रगट किया है।

❃

वचनामृत–४०५

अज्ञानी जीव ऐसे भावसे वैराग्य करता है कि—'यह सब क्षणिक है, सांसारिक उपाधि दुःखरूप है', परन्तु उसे 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होनेके कारण सहज शान्ति परिणमित नहीं होती। वह घोर तप करता है, परन्तु कषायके साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होनेसे आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता।।४०५।।

"अज्ञानी जीव ऐसे भावसे वैराग्य करता है, 'यह सब क्षणिक है, सांसारिक उपाधि दुःखरूप है', परन्तु उसे 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' ऐसे अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य नहीं होनेके कारण सहज शान्ति परिणमित नहीं होती।"

जिसे अंतरमें शरीरादि और रागादिसे भिन्न अपने सहज ज्ञानानन्दमयस्वरूपकी खबर नहीं है ऐसा अज्ञानी जीव 'यह शरीर, धन, वैभवादि सब अनित्य और क्षणभंगुर हैं, संसारका जाल दुःखरूप है' ऐसे बहिर्लक्षी भावसे वैराग्य उत्पन्न करता है, परन्तु वह सच्चा वैराग्य नहीं है। अरे! युवावस्थामें रेलगाड़ीसे कटकर मृत्यु हो जाती है; उसे लोग 'अकाल–मृत्यु' कहते हैं। भाई! उसे व्यवहारसे 'अकाल–मृत्यु' भले कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें तो जिस काल, जिस क्षेत्रमें और जिस विधिसे मृत्यु होना भगवानने देखा है, उस प्रकार तथा उसी समय होती है; उसमें इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र एक समय भी आगे–पीछे नहीं कर सकते। अरे रे! जैनकुलमें जन्म लिया हो तब भी यथार्थ वस्तुस्थितिकी खबर नहीं होती! 'इस संसारमें सब नाशवान है, सब उपाधियाँ दुःखरूप हैं' ऐसे भावसे वैराग्य प्रगट करे, परन्तु मेरा आत्मा ही सहज आनन्दस्वरूप है' ऐसे अनुभवपूर्वक सहजवैराग्य प्रगट नहीं करे, तो उसे अंतरमें सहज शान्तिका परिणमन नहीं होता।

जिसे नित्य एवं निरुपाधिस्वरूप निज परमात्मतत्त्वकी खबर नहीं है उसकी उदासीनता तो स्मशानवैराग्य है। पर्यायमें यह क्षणिक विभाव है तो भीतर द्रव्यस्वभावमें त्रिकाल शुद्ध निरुपाधि आनन्दस्वरूप होना ही चाहिये—ऐसा अंतरसे सहज आना चाहिये। 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' इसमें सब आ गया। 'मेरा आत्मा ही आनन्दस्वरूप है' ऐसा अंतरमें यथार्थ ग्रहण तथा रुचि होने पर रुचि परसे हट गई। निर्जरा अधिकार (समयसार) में आता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है कि—'सम्यग्दृष्टेः भवति नियतं ज्ञान–वैराग्यशक्तिः' पुण्य–पापरूप समस्त विभावोंसे हटकर त्रैकालिक आनन्दस्वरूप निज शुद्धात्मामें दृष्टि स्थिर हो उसे सच्चा वैराग्य कहा जाता है। मालवाके अधिपति भर्तृहरिने सारे राज्यका त्याग कर दिया, परन्तु वह सच्चा वैराग्य नहीं था। पूर्णानन्दस्वरूप निज ज्ञायककी दृष्टि हुए बिना, निज अनन्त महिमावन्त महा अस्तित्वको समझे बिना—स्वीकार किये बिना बाहरी 'नास्ति'का वैराग्य कभी सच्चा नहीं होता। वेश्याका दिया हुआ अमरफल भर्तृहरिने अपनी प्रिय रानी पिंगलाको दिया, पिंगलाने प्रेमी अश्वपालको दे दिया, अश्वपालने वेश्याको दिया और वेश्याने फिर भर्तृहरिको दिया। यह देखकर भर्तृहरिको लगा कि—अरे! यह क्या? यह अमरफल तो मैंने अपनी प्रिय रानी पिंगलाको दिया था, वह पुनः वेश्याके पास कैसे आ गया? ऐसा उद्वेग भरा आश्चर्य होता है और वेश्यासे पूछने पर पता चलता है, कि अश्वपाल रानी पिंगलाका प्रेमी है। अरेरे!—

देखा नहिं कुछ सार, जगतमें देखा नहिं कुछ सार;
प्यारी रानी पिंगला करे अश्वपालसे प्यार?
जगतमें देखा नहिं......

—ऐसा वैराग्य हो जाता है; परन्तु वह सब क्षणिक, आनन्दस्वरूप ज्ञायकतत्त्वकी प्रतीतिके बिना जो वैराग्य हो उसे सच्चा वैराग्य नहीं कहा जाता। भले ही बाबा बन जाय, परन्तु आत्मप्रतीतिसे रहित वह सच्चा वैराग्य नहीं है। जिसने क्षणिकके साथ शाश्वततत्त्वका अवलोकन नहीं किया, उपाधिके साथ निरुपाधिक तत्त्वको नहीं जाना, उसके वैराग्यको क्षणिक अथवा स्मशानवैराग्य कहा जाता है।

'मैं नित्य हूँ, क्षणिक नहीं हूँ; मेरा ज्ञायक प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है'—ऐसी दृष्टि अंतरमें होने पर जो स्थायी विरक्ति होती है उसे सच्चा वैराग्य कहते हैं। निज नित्यानन्दके नाथकी जिसे खबर नहीं है उसे स्वानुभूतियुक्त सच्चा वैराग्य—नित्यस्थायी वैराग्य—नहीं है। भले ही स्त्री–परिवार आदिका त्याग कर दे, बानवे लाख मालवाका स्वामी भर्तृहरि बाबा बनकर निकल पड़े, परन्तु वह कोई अनुभूतियुक्त यथार्थ वैराग्य नहीं है। अतीन्द्रिय परमानन्दका नाथ, अपार आनन्दका सागर ऐसे निज ज्ञायकप्रभुकी जिसे दृष्टि तथा अनुभव नहीं है, उसके वैराग्यको भगवान वैराग्य नहीं कहते। पुण्य-पापके विभावोंसे विरत तथा आनन्दमय अनुभवमें निरत, उसे वैराग्य कहा जाता है।

भगवान आत्मा शरीरादि पर द्रव्योंसे तो अत्यन्त भिन्न है ही, परन्तु उसकी वर्तमान अवस्थामें जो दया–दानादि पुण्यके अथवा विषय–विकारादि पापके क्षणिक विभाव हों वे भी उसका स्वभाव तो हैं नहीं, अरे! रागादिको जाननेवाली उसकी ज्ञानकी पर्याय भी क्षणिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, शाश्वत द्रव्यस्वभाव नहीं है। विभाव और पर्यायसे भी कथंचित् भिन्न, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति एवं पूर्ण वीतरागता आदि अनन्त गुणोंकी मूर्ति ऐसा जो निज त्रिकालशुद्ध ज्ञायक प्रभु उसके अनुभव बिना सच्चा वैराग्य नहीं कहा जाता। अनन्तबार मुनिपना ग्रहण किया, दिगम्बर दशा धारण की, महाव्रतोंका पालन किया, दुर्धर तप किये, परन्तु उससे क्या? आत्मज्ञान एवं स्वानुभूतिके बिना लेशमात्र भी वैराग्य, सुख या शान्ति प्राप्त नहीं कर सका, भवभ्रमण तो ज्योंका त्यों बना रहा। जिससे भवका अन्त आये ऐसे भवके अभावस्वरूप त्रैकालिक पूर्णानन्दमय निज ज्ञायकप्रभुका जिसे अंतरमें ज्ञान और वेदन हुआ है उसे पुण्य–पापके विभावसे विरक्ति अर्थात् सच्चा वैराग्य होता है।

अहा! अनेकोंको तो ऐसी बात सुननेको भी नहीं मिलती, दिनभर व्यापार–धंधेके तथा विषयभोगके प्रपंचमें पड़े रहते हैं, उनसे धर्म तो कोसों दूर है, अरे, पुण्यकी बात भी नहीं मिलती। अज्ञानी जीवने कदाचित् 'यह सब–शरीर, धन, वैभव, भोग आदि सब–नाशवान हैं, संसारकी विडम्बना दुःखरूप है' ऐसा वैराग्य बाह्यमें ऊपरी दृष्टिसे किया, परन्तु 'मेरा आत्मा ही स्वभावसे शान्ति, समाधि एवं आनन्दस्वरूप है, ऐसे आत्मज्ञान और आत्मानुभवके बिना उनको सहज विरक्ति एवं सहज शान्ति परिणमित नहीं हुई। शरीरादि परद्रव्योंसे तथा रागादि विभावोंसे भिन्न, निजानन्द भरपूर ज्ञायक आत्माकी अन्तर्दृष्टि होनेपर सम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक अनन्तानुबंधी कषायका अभाव होकर जो शान्ति होती है, अद्भुत शान्तरसका अनुभव होता है, उसे सच्ची शान्ति कही जाती है। हजारों रानियोंका त्याग करे, अरबों रुपयेकी कमाई छोड़ दे, घरबार छोड़कर साधु बन जाय, परन्तु अंतरमें सहज शान्तरसके सागरको–ज्ञायकको–दृष्टि और ज्ञानमें प्राप्त किये बिना शान्ति कदापि नहीं मिलेगी। शान्ति और धर्मकी प्राप्ति कब हो? कि जब अतीन्द्रिय शान्ति एवं आनन्दके समुद्र ऐसे निज भगवान आत्माके सन्मुख हो तब। आनन्दसागर निज आत्माके अनुभवपूर्वक सहज वैराग्य अज्ञानीको नहीं है इसलिये उसको सहज शान्ति परिणमित नहीं होती।

'वह घोर तप करता है, परन्तु कषायके साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होनेसे आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता।'

छह–छह महीनेके उपवास करे, पारणेके दिन नीरस आहार ले, तथापि उसे आत्मप्रतीति नहीं होनेके कारण धर्म नहीं है–शान्ति नहीं है। धर्म और शान्ति तो त्रिकाल शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप जो निज ध्रुव ज्ञायक प्रभु उसको पकड़नेसे अन्तर्मुख दृष्टि एवं ज्ञान द्वारा उसका अनुभवसहित ग्रहण करनेसे होता है; बाह्य क्षणिक वैराग्यसे धर्म और शान्ति नहीं होते। अहा! ऐसा मार्ग है। स्वानुभूतिपूर्वक सहज ज्ञान तथा वैराग्यकी खबर न हो और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाहरसे बालब्रह्मचारी रहे, उपवास करे, दीक्षा ले, सिर मुँड़ा ले, परन्तु उससे क्या होगा? जिसने अंतरमें सुखसागर निज ज्ञायकको नहीं पकड़ा उसका सब त्याग अत्याग है, वैराग्य अवैराग्य है। वह घोर तप करे तथापि, कषायके साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी होनेसे उसको आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता। अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायकतत्त्वके भान बिना कषायके साथकी एकता नहीं टूटती। व्रत, उपवासादिमें मन्दकषाय करे परन्तु वह तो रागका खेल है, अकषाय वीतराग भाव नहीं है, आत्मप्रतपन नहीं है।

'निजपद रमे सो राम कहिये'। अतीन्द्रिय आनन्दका सागर ज्ञायक अपने पदमें रमण करे उसे आतमराम कहते हैं। अपनेको भूलकर जो रागमें रमता है उसे 'हराम' कहते हैं। जो रागमें रमता है उसे कषायके साथ एकत्वबुद्धि नहीं टूटी है, इसलिये उसको आत्माका प्रतपन प्रगट नहीं होता। जिसप्रकार सोनेको गेरूसे धोने पर सोना दीपित होता है, वैसे ही अतीन्द्रिय आनन्दके कालमें, भीतर एकाग्र होने पर, अतीन्द्रिय आनन्दरूप शोभा—दीप्ति, प्रतपन–बढ़ती है। भगवान आत्माके श्रद्धाज्ञानपूर्वक विशेष स्वरूपस्थिरता—स्वरूपविश्रान्त निस्तरंग चैतन्यका प्रतपन—वह तप है। आत्मप्रतीतिके बिना उपवासादि सब लंघन है। आत्माके आनन्दमय जो प्रतपन–विशेष शोभा, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द उछले, उसे तप कहते हैं। अज्ञानीको, रागादि कषायके साथ एकत्वबुद्धि वर्तती है, इसलिये उसे आत्मप्रतपन प्रगट नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१६५

दिनांक २९-११-७८

वचनामृत-४०६

तू अनादि-अनन्त पदार्थ है। 'जानना' तेरा स्वभाव है। शरीरादि जड़ पदार्थ कुछ जानते नहीं हैं। जाननेवाला कभी नहिं-जाननेवाला नहीं होता; नहिं-जाननेवाला कभी जाननेवाला नहीं होता; सदा-सर्वदा भिन्न रहते हैं। जड़के साथ एकत्व मानकर तू दुःखी हो रहा है। वह एकत्वकी मान्यता भी तेरे मूलस्वरूपमें नहीं है। शुभाशुभ भाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है। —यह, ज्ञानी अनुभवी पुरुषोंका निर्णय है। तू इस निर्णयकी दिशामें प्रयत्न कर। मति व्यवस्थित किये बिना चाहे जैसे तर्क ही उठाता रहेगा तो पार नहीं आयेगा।।४०६।।

'तू अनादि-अनन्त पदार्थ है।'

प्रभु! तू कौन है? तू आदि और अन्त रहित स्वतःसिद्ध चैतन्य महापदार्थ है। भूतकालमें तेरी कभी नवीन उत्पत्ति नहीं हुई है और भविष्यकालमें तेरा कभी सर्वथा विनाश नहीं होना है; क्योंकि तू एक स्वतंत्र सत् पदार्थ है। भूतकालमें तू था, वर्तमानमें प्रत्यक्ष विद्यमान है और भविष्यकालमें नित्य रहनेवाला है, इसलिये तू अनादि-अनन्त अहेतुक स्वतःसिद्ध सत् पदार्थ है। पर्याय-अपेक्षासे तेरा उत्पाद-विनाश नहीं होता तथापि मूल वस्तुरूपसे तो तू ध्रुव—अनादि-अनन्त—पदार्थ है।

''जानना' तेरा स्वभाव है।'

आत्माको अनादि-अनन्त पदार्थ कहा, अब उसका स्वभाव कहते हैं। 'जानना' उसका स्वभाव है; शरीरकी क्रिया करना, राग करना या पुण्य करना, वह उसका स्वभाव नहीं है। आत्मा स्वभाववान है और 'जानना' अर्थात् 'ज्ञान' उसका सहज स्वभाव है।

'शरीरादि जड़ पदार्थ कुछ जानते नहीं हैं।'

शरीर, इन्द्रियाँ, वाणी, मन, धन, वैभव आदि मूर्तिक पदार्थ जड़ और अचेतन हैं, वे कुछ जानते नहीं हैं; उन्हें यह भी खबर नहीं है कि स्वयं कौन हैं। अरे! भीतर-आत्माकी दशामें-जो राग या दया-दानादिके विकल्प होते हैं वे भी नहीं जानते, कि स्वयं कौन हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग और विकल्पमें जाननेका स्वभाव नहीं है, 'जानना' तो आत्माका स्वभाव है। ज्ञाता भगवान आत्मा स्वयंको भी जानता है और रागादि विभावको तथा शरीरादि परको भी जानता है। 'जानना' वह तो उसका मूलभूत स्वभाव है। शरीरादि जड़ पदार्थ तो अपनेको भी नहीं जानते और ज्ञाताको—जाननेवालेको भी नहीं जानते।

'जाननेवाला कभी नहिं–जाननेवाला नहीं होता और नहिं–जाननेवाला कभी जाननेवाला नहीं होता; सदा–सर्वदा भिन्न रहते हैं।'

क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है भाई! जानना, जानना और जानना जिसका सहज स्वभाव है ऐसा जो आत्मद्रव्य–ज्ञातातत्त्व–वह, नहीं–जाननेवाले ऐसे कर्म और शरीरादि अचेतनरूप तथा रागादि विभावरूप कदापि नहीं होता। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि जो शुभ परिणाम अथवा काम, क्रोधादि जो अशुभ परिणाम, वे भी नहीं–जाननेवाले तत्त्व हैं। जाननेवाला ज्ञातातत्त्व स्वभावसे कभी नहीं–जाननेवाले (अजान) तत्त्वरूप नहीं होता। दया–दानादि विभावरूप अथवा शरीरादिरूप अजानतत्त्व कभी ज्ञाता (जाननेवाला) तत्त्वरूप नहीं होता। अहा! जाननेवाला ज्ञायक चैतन्यसूर्य वह नहीं–जाननेवाले ऐसे अंधकारमय मोह–राग–द्वेषरूप या जड़मय शरीरादिरूप कदापि नहीं होता, तथा नहीं–जाननेवाले ऐसे दया–दानादि रागके विकल्प या शरीरादि जड़ पदार्थ वे ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक ऐसे चेतनपदार्थरूप कदापि नहीं होते; वे सदैव निरन्तर भिन्न ही रहते हैं। रागादि तो भावसे भिन्न हैं और कर्म तथा शरीरादि तो वस्तुरूपसे भिन्न हैं। अहा! आया कुछ समझमें? ऐसी बात है। अरे! अंतरमें दृष्टि डालनेका अवकाश ही कब लेता है? मर रहा है संसारकी मजदूरी कर–करके। व्यापार–धन्धेकी मजदूरी, स्त्री–बच्चोंकी मजदूरी—सब पापकी मजदूरी, और आगे बढ़े तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके परिणाम करता है वह भी शुभरागकी मजदूरी है, क्योंकि वह विभावभाव अजानतत्त्व है। अजानतत्त्व कभी ज्ञायकतत्त्वरूप नहीं होता। इसलिये सर्वकाल अर्थात् निरन्तर ज्ञाता आत्मतत्त्व शरीरादि परद्रव्योंसे तथा रागादि परभावोंसे भिन्न रहता है।

'जड़के साथ एकत्व मानकर तू दुःखी हो रहा है।'

राग विभाव है और शरीर तथा कर्म जड़ हैं—वे सब अजान–तत्त्व हैं; उनके साथ ज्ञाता ऐसे आत्मतत्त्वका एकत्व मानकर तू दुःखी हो रहा है। भगवान आत्मा जो कि स्वभावसे ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, वह अजान ऐसे राग और दुःखरूप कभी नहीं होता और अजान ऐसी राग एवं दुःखमय दशा कभी ज्ञातारूप नहीं हुई है; दोनों स्वभावसे सदा भिन्न हैं, तथापि अनादि अज्ञानके कारण रागादि विभाव तथा शरीरादि जड़के साथ अध्यासके कारण तू चारों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गतिके परिभ्रमण करके दुःखी हो रहा है। शरीरादि अचेतन पदार्थ अथवा स्त्री, बच्चे और कुटुम्बादि परवस्तुओंको अपनी माने वह तो मिथ्यादृष्टि, महापापी और दुःखी ही है, परन्तु अजानतत्त्व ऐसे रागादि विभावको—भले ही वह दया, दान, व्रत और भक्तिका शुभराग हो—अपना माने, उसके साथ एकत्वका अध्यास करे, वह भी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी और महादुःखी है। अहा! बहुत कठिन है भाई! अजानतत्त्वके साथ—रागादि एवं शरीरादिके साथ—एकत्व मानकर जीव अनादिसे संसारमें भटक रहा है, दुःखी हो रहा है।

'वह एकत्वकी मान्यता भी तेरे मूल स्वरूपमें नहीं है।'

क्या कहा? कि—ज्ञातास्वभावका सागर प्रभुज्ञायक देहादि परद्रव्य तथा रागादि परभावके साथ एकत्व मानकर दुःखी हो रहा है; ऐसा होने पर भी वह एकत्वकी मान्यता उसके मूल ध्रुवस्वरूपमें नहीं है। अहा! यह बात—वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरकी बतलाये हुए मार्गकी रीति–कोई भिन्न ही है! अलौकिक है! लोगोंके साथ अथवा सम्प्रदायके साथ उसका मेल नहीं हो सकता। लोगोंने और आजकलके उपदेशकोंने भी वीतरागमार्गमें गड़बड़ी कर डाली हैं। वणिक जाति भले ही बुद्धिशाली कही जाती है, परन्तु व्यापार–धन्धेके कारण उन्हें सत्य एवं असत्यकी तुलना करनेका अवकाश ही नहीं मिलता। क्या किया जाय?.........

यहाँ कहते हैं कि—पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा जानन-स्वभावसे छलाछल भरा होने पर भी, पर्यायमें रागके साथ एकताके कारण दुःखी हो रहा है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभरागके साथ एकत्व माना है, वह एकत्वकी मान्यता भी आत्माके मूलस्वरूपमें नहीं है। चैतन्यस्वभावी और अनादि–अनन्त ऐसा जो आत्मतत्त्व वह रागादि विभावभावको तथा शरीरादि परद्रव्यको अपना मानकर दुःखी हो रहा है। उनके साथ जो एकताकी मान्यता है वही मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वयुक्त जीव मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं है, अन्यमती है। वह मिथ्यात्वभाव जीवकी वर्तमान पर्यायमें हैं, मूल वस्तुस्वरूपमें—ध्रुव ज्ञायक आत्मामें नहीं है।

प्रश्न :—वस्तुस्वरूपमें नहीं है तो क्या मिथ्यात्वभाव नवीन उत्पन्न करता है?

उत्तर :—हाँ, पर्यायमें नवीन उत्पन्न करता है, मूल द्रव्यस्वभावमें नहीं है। आया समझमें? मार्ग तो ऐसा है भाई! चैतन्यतत्त्व अनादि–अनन्त ध्रुव पदार्थ है; 'जानना' उसका सहज स्वभाव है। ज्ञाता–पदार्थ कभी अजान ऐसे रागादिरूप नहीं हुआ और अजान ऐसे रागादिभाव कभी ज्ञातारूप नहीं हुए। शरीर, स्त्री, बच्चे, कुटुम्ब और पैसेरूप तो हुआ ही नहीं परन्तु रागरूप—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभावरूप या विषयानुरागके अशुभभावरूप—भी भगवान आत्मा कभी हुआ नहीं है; क्योंकि शुभाशुभके परिणाम 'अजान' तत्त्व है। ज्ञाता अजान–तत्त्वरूप नहीं हुआ और 'अजान' तत्त्व ज्ञातृत्वरूप तत्त्वमें नहीं आया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। अहा! ऐसी बातें हैं! दुनियासे अलग लगती हैं, परन्तु क्या किया जाय भाई? वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

रागके साथका एकत्व, अजान-तत्त्वका जानन-तत्त्वके साथ एकत्व माननेरूप मिथ्यात्वभाव, वस्तुस्वरूपमें नहीं है—द्रव्यस्वभावमें नहीं है। अहा! क्या वीतराग जिनेश्वरदेवका कथन। अरे रे! बेचारे जैनमें जन्मे हुओंको भी इसकी खबर नहीं है; सब अन्यमती जैसे होकर पड़े हैं। उसमें यदि पच्चीस-पचास लाख या करोड़-दो करोड़ कमा लें तो उनको ऐसा हो जाता है कि 'मैं चौड़ा और गली सँकरी'; परन्तु भाई! रुपये तो जड़ हैं, धूल हैं, अजान -तत्त्व हैं। उस अजान-तत्त्वको जानन-तत्त्व मानकर—अपना मानकर-जीव मिथ्यात्वसे चारों गतिमें दुःखी हो रहा है। अरे! रुपया-पैसा और बाह्य वैभव तो कहीं दूर रहे, साथमें रहनेवाला शरीर भी कहीं दूर रहा (क्योंकि वह जड़, मिट्टी और धूल है), परन्तु भीतर जो शुभ और अशुभ राग होता है वह भी आत्माका मूल स्वरूप नहीं है, अजान और अचेतनतत्त्व है, जानना-स्वभावसे विपरीत स्वभाववाला है; उसमें जाननस्वभावका अभाव है। शरीरादि जड़ और रागादि विभावरूप अजान-तत्त्वका जानन-तत्त्वमें—आत्मामें—अभाव होने पर भी उनके साथ एकत्वका अध्यास करके जीव अनादिसे दुःखी हो रहा है। वह एकत्वका अध्यास तथा दुःख आत्माका मूलस्वभाव तो कदापि नहीं है। शरीरादि और रागादि अपने नहीं है तथापि उनके साथ जो एकत्वका अध्यास करता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं है। शरीरादि परद्रव्योंसे भिन्न तथा रागादि विभावसे रहित जो त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक है वह मेरी वस्तु है—ऐसा जिसे भीतर अनुभवमें आता हो वह जैन है, बाकी सब अजैन-अन्यमती हैं।

प्रश्न :—पाँच महाव्रतका पालन करे फिर भी जैन नहीं?

उत्तर :—महाव्रतका शुभराग तो पुण्य है, वह संवर-निर्जरारूप जैनधर्म नहीं है। नियमसारमें तो ऐसा कहा है कि—आनन्दस्वरूप आत्मामें श्रद्धा, ज्ञान एवं स्थिरतापूर्वक एकाकार हो जाना, तल्लीन हो जाना, वह महाव्रत है। 'भावप्राभृत'में कहा है कि— जिनेन्द्रभगवानने पूजा-व्रतादिमें पुण्य कहा है, धर्म (जैनत्व) तो मोह क्षोभरहित निज शुद्ध परिणामको कहा है। अहिंसा, सत्य आदि जो महाव्रत हैं वह राग, विकार, आस्रव और दुःख हैं। वह आस्रवभाव आत्माके जाननरूप स्वभावमें प्रविष्ट नहीं हुआ है, आत्माके मूल स्वरूपरूप नहीं हुआ है। निश्चयमहाव्रत तो अंतर स्वरूपमें जो एकाग्रता-लीनता हो उसे कहते हैं। वैसे अहिंसादि परलक्षवाली वृत्ति तो, जिनकी कभी मुक्ति नहीं होना है ऐसे अभव्य जीव भी करते हैं; वह कोई नई वस्तु नहीं है, स्वलक्षी वीतराग शुद्ध परिणति नहीं है। तू भले ही मान कि वह मेरा स्वभाव है, मुझे लाभदायक है, परन्तु वह मिथ्या मान्यता तेरे मूल स्वरूपमें नहीं है, ऊपर-ऊपर पर्यायमें रह जाती है, द्रव्यस्वभावमें प्रविष्ट नहीं होती। अहा!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवका ऐसा आदेश है। अरे रे! ऐसी सत्य बात जिन्हें सुननेको भी नहीं मिलती वे बेचारे मरकर कहाँ जायँगे? निगोद और नरकमें अवतरित होकर भ्रमण करते रहेंगे। अहा! शब्द तो सरल और सादे हैं, परन्तु भाव गम्भीर हैं।

'शुभाशुभ भाव भी तेरा असली स्वरूप नहीं है।'

भ्रान्ति, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयविकार आदि अशुभभाव हैं और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्यादि शुभभाव हैं। वे शुभाशुभ भाव भी आत्माका सच्चा स्वरूप नहीं है; वह तो पर्यायमें हुआ विकृतभाव है। लाखों-करोड़ोंका दान दे उसमें कदाचित् रागकी मन्दता हुई हो, तो वह भी आत्माका मूल स्वरूप नहीं है। आत्मा वस्तुतः विकाररूप नहीं हुआ है और विकार आत्मारूप नहीं हुआ है, दोनोंका स्वरूप बिलकुल भिन्न है। अहा! जो ज्ञायक प्रभु सदा सर्वदा रागके कणसे भी भिन्न पड़ा है उसे देखता नहीं है, मानता नहीं है, उसके सन्मुख होकर स्थिरता नहीं करता और विपरीतता करके, रागको अपना मानकर उसमें जो एकाग्र होता है वह दुःखके मार्ग पर चलता है; परन्तु भाई! तुझे खबर नहीं है कि—शुभाशुभ भाव भी तेरा सच्चा स्वरूप नहीं है। 'परन्तु' शब्द क्यों कहा है?—इसलिये कहा है कि जड़के साथ एकत्वकी मान्यता भी तेरे मूलस्वरूपमें नहीं है और शुभाशुभ भाव भी तेरे सच्चे स्वरूपमें नहीं हैं। जैसे-होलीमें मुँहपर कीचड़ लगा देते हैं वह कहीं मनुष्यका असली स्वरूप नहीं है। वैसे ही शुभाशुभ विकृत्ति भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है।

'—यह, ज्ञानी अनुभवी पुरुषोंका निर्णय है।'

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरके मार्गमें हुए ज्ञानी पुरुषोंका—आनन्दस्वरूप आत्माका अनुभव करनेवालोंका—उपरोक्त निर्णय है।

'तू इस निर्णयकी दिशामें प्रयत्न कर।'

प्रभु! तू यह निर्णय कर ले, नहीं तो मरकर चला जायगा चौरासीके अवतारमें। शुभाशुभ राग आत्माका असली-सच्चा-स्वरूप नहीं है, द्रव्यस्वभाव रागरूप नहीं हुआ है, द्रव्यस्वभावमें रागका प्रवेश नहीं हुआ है—यह, ज्ञानी पुरुषोंका स्वानुभवपूर्वक सच्चा निर्णय है। तू इस निर्णयकी दिशामें प्रयत्न कर।

'मति व्यवस्थित किये बिना चाहे जैसे तर्क ही उठाता रहेगा तो पार नहीं आयगा।'

मतिको स्वसन्मुख किये बिना चाहे जैसे तर्क ही करता रहेगा कि—कुछ दया-दानादि करेंगे तो कल्याण होगा न? ऐसे ही—ज्ञानकी बातें करते रहनेसे—क्या कल्याण हो जायगा? —तो मर जायगा, तेरे कुतर्कोंका कभी अन्त नहीं आयगा। मतिको व्यवस्थित किये बिना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् ज्ञानकी पर्याय अन्तर्मुख करने जैसी है ऐसा दृढ़ निर्णय बिना, पहले कुछ व्यवहार करेंगे तो निश्चयकी प्राप्ति होगी न! पहले व्यवहार तो सुधारना चाहिये न!—ऐसे तर्क करता रहेगा तो कल्याण होना कठिन है! अहा! कितनी अच्छी बात है? अन्तिम पैरे (बोल) तो बहुत ही अच्छे आये हैं। बड़ी सादी, सरल और गुजराती भाषा! चौथी तक पढ़ा हुआ भी समझ सकता है; संस्कृत और व्याकरण पढ़ा हो तभी समझ सके ऐसा यह नहीं है। मति व्यवस्थित करके तू आत्माके निर्णयकी दिशामें प्रयत्न कर! आत्माकी प्राप्ति अवश्य होगी।

❋

वचनामृत–४०७

यहाँ (श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए) कुन्दकुन्दाचार्यभगवानको पंचपरमेष्ठीके प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! पाँचों परमेष्ठीभगवन्तोंका स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक कैसा नमस्कार किया है! तीनों कालके तीर्थंकरभगवन्तोंको—साथ ही साथ मनुष्यक्षेत्रमें वर्तते विद्यमान तीर्थंकरभगवन्तोंको अलग स्मरण करके—'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक –प्रत्येकको मैं वंदन करता हूँ' ऐसा कहकर अति भक्तिभीने चित्तसे आचार्यभगवान नम गये हैं। ऐसे भक्तिके भाव मुनिको—साधकको–आये बिना नहीं रहते। चित्तमें भगवानके प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधकको भगवानका नाम आने पर रोम–रोम उल्लसित हो जाता है। ऐसे भक्ति आदिके शुभ भाव आयें तब भी मुनिराजको जो ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है इसलिये शुद्धात्माश्रित उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है और शुभ भाव तो ऊपर–ऊपर ही तरते हैं तथा स्वभावसे विपरीतरूप वेदनमें आते हैं।।४०७।।

'यहाँ (श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए) कुन्दकुन्दाचार्यभगवानको पंचपरमेष्ठीके प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है।'

त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवानकी वाणीके—दिव्यध्वनिरूप प्रवचनके–साररूप 'प्रवचनसार' परमागमकी रचना करते हुए उसके मंगलाचरणमें भगवानश्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवको पंच परमेष्ठीके प्रति कैसा भक्तिभाव उल्लसित हुआ है! दिगम्बर संत श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विक्रम संवत् ४९में महाविदेहक्षेत्रमें वर्तमानमें विराज रहे श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे। सीमंधर भगवानका शरीर पांचसौ धनुष ऊँचा और आयु एक करोड़ पूर्वकी है। दो हजार वर्ष पहले भी वे थे, वर्तमानमें भी हैं और जबतक यहाँ आनेवाली चौबीसीके तेरहवें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तीर्थंकर होंगे तब तक वहाँ विराजमान रहेंगे, पश्चात् शरीर त्याग कर 'सिद्ध' हो जायँगे। वर्तमानमें वे 'णमो अरिहंताणं' पदमें हैं। यहाँ श्री महावीर भगवान आदि चौवीस तीर्थंकर 'णमो सिद्धाणं' पदको प्राप्त हो गये हैं; श्री सीमंधर भगवानको अभी 'णमो सिद्धाणं' पद प्राप्त करनेमें देर लगेगी। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे, वहाँसे आकर उन्होंने जिन शास्त्रोंकी रचना की उनमेंसे एक यह 'प्रवचनसार' शास्त्र है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर भावलिंगी महान संत थे। जैनके साधु तीनों काल द्रव्य–भाव संयमके धारी नग्न दिगम्बर ही होते हैं। सनातन जैन श्रमणमार्गमेंसे भ्रष्ट होकर, इस कलिकालमें दो हजार वर्ष पहले, वस्त्र–पात्र सहित मुनिपना स्थापित करनेवाले हुए। वास्तवमें वस्त्र–पात्र सहित मुनिपना वह वीतरागका मार्ग नहीं है, उन्मार्ग है।

अहा! श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवको पंचपरमेष्ठीके प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरतामें शुद्धात्मा ही जिनका मुख्य विषय है ऐसे स्वानुभवी संतोंको भी अल्प रागयुक्त छद्मस्थ दशा है इसलिये, गुणी पुरुषों—पंचपरमेष्ठी—के प्रति भक्तिका शुभ विकल्प तो आता है, परन्तु साथ ही जानते हैं कि यह शुभ विकल्प भी राग है तथा बंधका कारण है, अशक्तिके कारण ऐसे भाव आते हैं। पंच परमेष्ठीमें आत्मज्ञानी–ध्यानी साधु भी परमेष्ठी हैं। प्रचुर स्वसंवेदनयुक्त–अतीन्द्रिय आनन्दके रसिक—साधुको भी परमेष्ठी तथा भगवान कहा जाता है।

'पाँचों परमेष्ठी भगवन्तोंका स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक कैसा नमस्कार किया है!'

जो आत्मानन्दके रसिक हों, जिनकी बाह्यदशा सहजरूपसे नग्न हो गई हो और अंतरमें प्रचुर स्वसंवेदनमें जिनके बारम्बार निर्विकल्पदशा आती हो, ऐसे वीतराग दिगम्बर जैन संत ही आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीमें आते हैं। कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में जैन तथा अजैन सभी साधु आते हैं। भाई! अजैन साधु तो परमेष्ठीमें धूल भी नहीं आ सकते; अरे! आत्मज्ञान एवं स्वानुभव रहित जैन साधु वेशधारी भी 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में नहीं आते। अहा! अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—पाँचों परमेष्ठी भगवन्तोंका—अपनी–अपनी भूमिकानुसार परम पदमें स्थित पाँचों भगवन्तोंका —स्मरण करके भक्तिभावभीना कैसा नमस्कार किया है।

"तीनों कालके तीर्थंकर भगवन्तोंको—साथ ही साथ मनुष्यक्षेत्रमें वर्तते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तोंको अलग स्मरण करके—'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक–प्रत्येकको वंदन करता हूँ' ऐसा कहकर अति भक्तिभीने चित्तसे आचार्य भगवान नम गये हैं।"

आचार्यदेव कहते हैं कि—'तीनों कालके तीर्थंकर भगवन्तोंको मैं वंदन करता हूँ।' षट्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खण्डागमकी 'धवला' टीकामें श्री वीरसेनाचार्यने कहा है कि—'णमो लोए सव्वसाहूणं' में जो 'लोए' और 'सव्व' शब्द है वह अन्तदीपक पद है इसलिये वह पूर्वके चारों परमेष्ठीको लागू होता है। वह इसप्रकार—'णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आयरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं और णमो लोए सव्व साहूणं'; 'धवला' टीकामें सव्व पदका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि—सर्वको अर्थात् त्रिकालवर्ती अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुको नमस्कार हो। इसमें अन्यमतके साधु–बाधु नहीं आते। अरे रे! जैनमें भी आजकल साधुके स्वरूपमें अत्यन्त विकृति कर डाली है। क्या किया जाय? काल ही हलका है। आत्मज्ञान और स्वानुभूतिके बिना भले ही बाह्यमें नग्नदशा हो तथापि वह परमेष्ठी नहीं है, वंदनीय नहीं है। मुनिदशाको उचित अंतरंग शुद्धि वंदनीय है, व्रतादिके विकल्प या क्रिया वंदनीय नहीं है। अहा! भारी फेरफार!

तीनोंकालके तीर्थंकर भगवन्तोंको और साथ–साथ मनुष्यक्षेत्रमें विचरते विद्यमान तीर्थंकर भगवन्तोंको–सबको एकसाथ तथा प्रत्येकको भिन्न—मैं वंदन करता हूँ—ऐसा कहकर आचार्य भगवान अति भक्तिभीने चित्तसे झुक गये हैं। 'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' अहा! वीर प्रभुके साथ तीसरे स्थानपर जिनका स्मरण किया जाता है वे आचार्यदेव भी पंचपरमेष्ठीके प्रति भक्तिभीने चित्तसे झुक गये हैं।

'ऐसे भक्तिके भाव मुनिको–साधकको–आये बिना नहीं रहते।'

आचार्यदेव साधकदशामें हैं न! उनको अभी वंद्यवंदकभाव है। वीतराग सर्वज्ञ केवलीको, सातवें गुणस्थानसे ही वंद्यवंदकभावका–विकल्पका–अभाव हो जानेसे, गुरु या भगवान आदि अन्यको वंदन या विनय कहनेके भाव कभी नहीं होते; परन्तु छद्मस्थ साधकको विकल्पदशामें ऐसे भक्तिके भाव आये बिना नहीं रहते।

'चित्तमें भगवानके प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधकको भगवानका नाम आने पर भी रोम–रोम उल्लसित हो जाता है।'

जिनको शरीरादि परद्रव्यसे तथा रागादि विभावसे भिन्न निज शुद्धात्माका श्रद्धान –ज्ञान हुआ है, अंतरमें आत्माके अवलम्बनसे अतीन्द्रिय आनन्दका, अपनी–अपनी भूमिकानुसार, अनुभव हुआ है ऐसे श्रमण, श्रावक और सम्यक्त्वी—सब साधक हैं। साधकको भगवानका नाम आते ही रोम–रोम उल्लसित हो उठता है। पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें 'मैं चिदानन्द हूँ, सिद्ध हूँ—इत्यादि विचार आनेसे सहज ही आनन्दतरंग उठती है, रोमांच होता है' ऐसा आता है। वह तो सविकल्पद्वारके आधारसे निर्विकल्प होनेकी बात है, परन्तु यहाँ तो अंतरमें भक्तिका भाव उछलता है तब साधकको पंच परमेष्ठीका नाम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आने पर भी वह रोमांचित हो जाता है ऐसा कहना है।

'ऐसे भक्ति आदिके शुभभाव आयें तब भी मुनिराजको ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है, इसलिये शुद्धात्माश्रित उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है और शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तरते हैं तथा स्वभावसे विपरीतरूप वेदनमें आते हैं।'

प्रत्येक साधकको अंतरमें दृष्टिके विषयभूत त्रिकाल शुद्ध निज ज्ञायक द्रव्यकी ही मुख्यता रहती है; उसे भगवानके प्रति भक्तिभाव उल्लसित होता हो, इसलिये शुभराग मुख्य हो जाता है-ऐसा नहीं है। मुनिराजको भक्तिभावके समय भी निज ध्रुव ज्ञायक तत्त्वका उग्र आलम्बन सतत होनेसे, विशेष समाधिरूप परिणमन निरन्तर वर्तता ही रहता है; और भक्ति आदि शुभभाव तो ऊपर-ऊपर ही तैरते हैं भीतर स्वरूपके साथ एकरूप नहीं हो जाते, तथा वे शुभभाव स्वभावसे विपरीतरूप-दुःखरूप-वेदनमें आते हैं। सर्व साधकोंको, अंतरमें अपनी-अपनी भूमिकानुसार ध्रुव ज्ञायकतत्त्वका आलम्बन सतत वर्तता होनेसे, शुद्धात्माश्रित शान्तिरूप परिणमन निरंतर वर्तता ही रहता है और उनको जो शुभाशुभ भाव आयें वे तो ऊपर-ऊपर तैरते हैं, अंतरमें स्वरूपके साथ उनका एकत्व नहीं होता, तथा वे स्वभावसे विपरीतरूप-दुःखरूप—वेदनमें आते हैं।

समस्त सिद्धान्तका सारमें सार तो बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख होना है। श्रीमद्‌ने कहा है न!—'उपजे मोहविकल्पसे समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहिं वार।' ज्ञानीके एक वचनमें अनंत गम्भीरता भरी है। अहो! भाग्यशाली होगा उसे इस तत्त्वका रस आयगा और तत्त्वके संस्कार गहरे उतरेंगे।

—पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१६६

दिनांक ३०-११-७८

वचनामृत–४०८

अहो! सिद्धभगवानकी अनन्त शान्ति! अहो! उनका अपरिमित आनन्द! साधकके अल्प निवृत्त परिणाममें भी अपूर्व शीतलता लगती है, तो जो सर्व विभावपरिणामसे सर्वथा निवृत्त हुए हैं ऐसे सिद्धभगवानको प्रगट हुई शान्तिका तो क्या कहना! उनके तो मानों शान्तिका सागर उछल रहा हो ऐसी अमाप शान्ति होती है; मानों आनन्दका समुद्र हिलोरें ले रहा हो ऐसा अपार आनन्द होता है। तेरे आत्मामें भी ऐसा सुख भरा है, परन्तु विभ्रमकी चादर आड़ी आ जानेसे तुझे वह दिखता नहीं है॥४०८॥

'अहो! सिद्धभगवानकी अनन्त शान्ति!'

क्या कहते हैं? कि—यह भगवान ज्ञायक आत्मा शान्तिका सागर, अकषाय वीतराग स्वभावका पिण्ड और अतीन्द्रिय सुखका भण्डार है। उसकी जिसे अंतरमें सम्यक् दृष्टि होती है उसे सिद्धभगवानकी जातिकी अतीन्द्रिय शान्ति और सुखके अंशका वेदन होता है। धर्मका प्रारम्भ होने पर वीतराग अविकारी शान्तरसकी मूर्ति ऐसे त्रिकाल शुद्ध निज ज्ञायक प्रभुका भीतर श्रद्धा एवं ज्ञानमें स्वीकार होने पर, 'यह मैं हूँ' इसप्रकार उसमें अहंपना—प्रतीति आने पर, शुभाशुभ समस्त विभावोंमें अशान्ति लगती है, दुःख भासित होता है तथा हेयबुद्धि हो जाती है। विषयानुरागरूप अशुभ भाव तो अशान्ति और दुःखरूप है ही, परन्तु दया, दान, व्रत और भक्ति—भले ही वह भगवानकी हो या गुरुकी हो—आदिके शुभ परिणाम भी राग है, अशान्ति है, धर्म नहीं है; धर्म तो शुभाशुभ विभावरहित अकषाय शान्तिका सागर ऐसे त्रैकालिक भगवान आत्माके आश्रयसे होनेवाले वीतराग परिणाम हैं। यहाँ ऐसा कहते हैं कि निज ज्ञायक भगवान आत्मा जो कि अकेला शान्ति, शान्ति और शान्तिका सागर है उसकी जहाँ दृष्टि एवं अनुभूति सम्यक् हुई वहीं शान्तिका अंशतः अनुपम वेदन आता है, तब फिर सिद्ध भगवानकी सम्पूर्ण शान्तिका तो क्या कहना!

'अहो! उनका अपरिमित आनन्द!'

पूर्णानन्द ज्ञायकप्रभुका अंतरमें अवलम्बन लेकर, उसका आश्रय करके जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो वहाँ भी अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः वेदन होता है, तो जहाँ सम्यग्दर्शन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

–ज्ञानपूर्वक चारित्रकी पूर्णता, पूर्ण वीतरागता, परिपूर्ण शान्ति प्रगट हो गई है ऐसे सिद्ध भगवानके अपरिमित—अमर्यादित अनन्त–अनन्त–अनन्त—अतीन्द्रिय आनन्दका तो क्या कहना!

'साधकके अल्प निवृत्त परिणाममें भी अपूर्व शीतलता लगती है, तो जो सर्व विभाव परिणामसे सर्वथा निवृत्त हुए हैं, ऐसे सिद्ध भगवानको प्रगट हुई शान्तिका तो क्या कहना!'

प्रथम भूमिकाका धर्मी—अविरत सम्यग्दृष्टि—भी साधक है। उसके सहज निवृत्त परिणाममें—निज पूर्णानन्द प्रभुके अंशतः आलम्बनरूप अंतर्मुख प्रवृत्तिकी और शुभाशुभसे सहज निवृत्तिकी दशामें—भी अपूर्व एवं अलौकिक शीतलता लगती है, तब जो निज पूर्णानन्द प्रभुके परिपूर्ण अवलम्बन द्वारा समस्त शुभाशुभ विभावसे परिपूर्ण निवृत्त हुए हैं ऐसे सिद्ध भगवानको प्रगट हुई पूर्ण शान्ति एवं अपरिमित पूर्णानन्दका तो क्या कहना! 'भी' शब्द क्यों रखा है?—ऐसा बतलानेके लिये कि साधकदशाका प्रारम्भ होते ही अंशतः किसी अपूर्व शीतलताका वेदन होता है तब साध्यदशाको प्राप्त सिद्ध भगवानकी ज्ञानानन्दमय पूर्ण शीतलताका तो क्या कहना!

वीतराग परिणाम वह धर्म और शुभाशुभ रागपरिणाम वह अधर्म है। आत्मा द्रव्यसे तथा गुणसे तो त्रिकाल शुद्ध, शीतल, शीतल और शीतल है; उसका आश्रय लेनेसे पर्यायमें अपूर्व शीतलताका अनुभव प्रगट होता है। पूर्वकालमें अनन्तबार दिगम्बर जैन साधु हुआ, अति उच्च शुभभाव किये, शुक्ल लेश्या प्रगट की, परन्तु अंतरमें दृष्टि विपरीत रहनेसे, शुद्धात्माके आश्रयसे प्रगट होनेवाली अपूर्व शीतलताका कभी अंशतः भी अनुभव नहीं हुआ। भले ही हजारों रानियोंका त्याग किया हो, पंचमहाव्रतादिके शुभभावमें रुकता हो, परन्तु वे भाव शान्ति या धर्म नहीं हैं। अहा! साधकको स्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाले सहज निवृत्तिके परिणाममें भी अपूर्व शीतलता लगती है, तब जो समस्त विभावसे सम्पूर्णरूपसे निवृत्त हुए हैं ऐसे सिद्धभगवानको प्रगट हुई परिपूर्ण शान्तिका तो कहना ही क्या!

अरे रे! जगतने कहीं न कहीं—शुभराग एवं बाह्य क्रियाओंमें—धर्म मनवा दिया है। धर्म तो वीतरागपरिणति है, जो कि त्रैकालिक वीतराग स्वभावके आश्रयसे होता है। वीतराग स्वभावके आश्रयसे जो वीतराग दशा प्रगट हो वह जैनधर्म है; जैनधर्म कोई पंथ या पक्ष नहीं है वह तो वस्तुका स्वभाव है। पुण्य-पापके भाव विभाव एवं दुःखरूप हैं, उनसे जो थोड़ा—दृष्टि-अपेक्षासे—निवृत्त हुआ, जिसको विभावकी रुचि छूटकर पूर्ण शीतलस्वरूप ज्ञायककी रुचि एवं दृष्टि हुई, उसे भी अपूर्व शान्ति अंशतः वेदनमें आती है, तब जो सर्व विभावसे रहित परमात्मा हुए हैं उनकी पूर्णानन्दमय शान्तिका तो क्या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहना? अहा! ऐसा मार्ग! लोग बेचारे समझते नहीं हैं, इसलिये पुकार करते हैं कि सोनगढ़का धर्म एकान्त है, एकान्त है। बात सच है—उनके माने हुए मिथ्या अनेकान्तसे यह बात कोई अलग ही है, अर्थात् सम्यक् एकान्त है। आत्माके द्रव्य-गुण तो त्रिकालशुद्ध हैं, उसकी वर्तमान पर्यायमें जो पुण्य-पापके परिणाम हैं वे अशान्ति और दुःख हैं। उस विभावपर्यायके ऊपरसे दृष्टि हटाकर तथा भगवान शान्तमूर्ति ज्ञायक पर दृष्टि स्थापित करके, साधकको, प्रगट हुए सहज निवृत्त परिणाममें भी, अपूर्व शीतलताका वेदन होता है तब जो विभावपरिणामसे सम्पूर्णरूपसे निवृत्त हुए हैं ऐसे सिद्धभगवानको प्रगट हुई शान्तिकी तो बात ही क्या!

प्रश्न :—ऐसा मार्ग कहाँसे निकाला?

उत्तर :—निकालें कहाँ से? भगवानका कहा हुआ मार्ग ही यह है। 'एक होय त्रिकालमें, परमारथका पंथ।' वीतराग जिनेश्वर द्वारा कहा गया अनादिसे यह एक ही मार्ग है। लोग भूल गये और हाथ न आये उससे कहीं मार्ग बदल जाता है? पूर्णानन्दके पिण्ड शुद्ध शान्त शीतल ज्ञायक आत्माकी दृष्टि करके, आकुलता और अशीतलतास्वरूप पुण्य-पापसे दृष्टि हटाकर, जो इस ओर—भीतर ज्ञायकस्वरूपमें—ढला है ऐसे जघन्य धर्मीको—अविरत सम्यग्दृष्टिको—भी स्वाभाविक शीतलताका अंशतः अपूर्व वेदन आता है, तब जो विपरीत श्रद्धा और अस्थिरताको सम्पूर्ण छोड़कर परिपूर्ण स्वरूपस्थिरतारूप परिणमित हो गये हैं ऐसे सिद्ध भगवानको प्रगट हुई परिपूर्ण शान्तिका तो कहना ही क्या! ज्ञानी धर्मात्मा दृष्टि-अपेक्षासे विभावसे निवृत्त हुआ है, तथापि अस्थिरताकी अपेक्षासे वह अभी शुभाशुभ विभावसे सम्पूर्ण निवृत्त नहीं हुआ है। विभावसे अंशतः निवृत्त हुए ज्ञानीको भी कोई अलौकिक शीतलताका वेदन होता है, तो सर्व विभावसे सर्वथा निवृत्त हुए सिद्ध भगवानको प्रगट हुई परिपूर्ण शान्तिकी तो बात ही क्या!

'उनके तो मानों शान्तिका सागर उछल रहा हो ऐसी अमापशक्ति होती है; मानों आनन्दका समुद्र हिलोरें ले रहा हो ऐसा अपार आनन्द होता है।'

साधक जीवोंको—सम्यग्दृष्टि, श्रावक या मुनिको—पतली धारसे अल्प शान्तिसुधाका पान होता हो ऐसे स्वसंवेदनसे सन्तोष नहीं होता। उनको तो प्रतिसमय जिसमें शान्तिसुधाका सागर उछलता है ऐसी पूर्णदशाकी इच्छा रहती है। वे तो उत्कृष्ट-निर्मल दशाकी भावना भाते हैं। गन्नेके रससे भरे हुए घड़ेमेंसे जैसे कोई पतली धारसे रस पिये, वैसे ही मुनिराज अंतरमें जो शान्ति और आनन्दका सागर भरा है उसमेंसे, पतली धारासे शान्ति और आनन्दका वेदन करते हैं। अहा! समझमें आता है कुछ! भाई! मुनिपना वह कोई अलौकिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु है। अरे! अभी तो इसकी भी खबर नहीं है कि सम्यग्दर्शन किसे कहा जाता है? वहाँ मुनिपना कहाँसे आयगा?

सम्यग्दृष्टि—धर्मकी प्रथम सीढ़ीवाला—जहाँ अशान्तिसे किंचित् हटा और स्वभावकी दृष्टि एवं रुचिरूप परिणमित हुआ वहाँ उसे भी अंशतः अपूर्व शान्तिका वेदन होता है, तब फिर जिनको विभावका—अश्रद्धा और अस्थिरताका—सम्पूर्ण नाश होकर परिपूर्ण सिद्धदशा प्रगट हुई है, उनकी परिपूर्ण शान्तिका तो क्या कहना! उनके तो मानों शान्तिका सागर उमड़ रहा हो ऐसी असीम शान्ति होती है। जैसे समुद्र घहराता हुआ उछलता है वैसे ही आनन्दसागर भगवान ज्ञायक आत्मा सर्व विभावपरिणामसे सर्वथा निवृत्त होकर जिनकी पर्यायमें उछल रहा है उन सिद्धभगवानको मानों सुख और शान्तिका सागर उछल रहा हो ऐसी अपार शान्ति एवं समाधि होती है; मानों आनन्दका सागर हिलोरें ले रहा हो ऐसा असीम आनन्द होता है।

अहा! जिनकी पर्यायमें शान्तिका सागर उछलता हो और अतीन्द्रिय आनन्दकी हिलोरें आती हों ऐसे सिद्ध भगवानकी बातें सुननेको मिलना भी अति दुर्लभ है भाई! भले ही दुनिया कुछ भी कहे, एकान्त कहे, परन्तु वस्तु तो यह जो कही जा रही है वही है। अरे रे! यह तत्त्व सुननेको भी नहीं मिलता वहाँ उसे विचारमें तो कब लाये? और रुचिमें कब जमाये? सिद्ध भगवानको मानों आनन्दका सागर हिलोरें ले रहा हो ऐसा अपार अतीन्द्रिय आनन्द होता है। सिद्धदशा वह कोई द्रव्य या गुण नहीं है, परन्तु आत्माकी परिपूर्ण शुद्ध पर्याय है। द्रव्य और गुण त्रैकालिक हैं और पर्याय तो नवीन प्रगट होती है। अनन्त गुणोंका आश्रय वह द्रव्य है और द्रव्यके आश्रयसे रहनेवाले ज्ञान, दर्शन, सुख आदि त्रैकालिक स्वभाव वे, जीवद्रव्यके गुण हैं। अनन्त गुणात्मक शुद्धात्मद्रव्यका उग्र आलम्बन लेकर रागसे पूर्ण निवृत्त होने पर जो परिपूर्ण शुद्ध पर्याय प्रगट होती है उसमें, मानों आनन्दका सागर हिलोरें ले रहा हो ऐसा अपार अतीन्द्रिय आनन्द होता है।

अरेरे! दिनभर व्यापार-धन्धेकी तथा स्त्री-बच्चोंकी सार-सँभालमें लगा रहे उसे तो वीतरागकी यह बात भी सुननेको नहीं मिलती और कदाचित् धर्मकी बात सुनने जाय तो मिलती है दूसरी बात। उपाश्रयमें जाय तो कहते हैं कि व्रत करो, प्रोषध करो, सामायिक करो, उपवास करो, णमोकार मंत्रका पाठ करो, मूर्तिपूजा करो, मन्दिर बनवाओ, प्रतिष्ठा कराओ, शान्तिस्नात्र या सिद्धचक्रकी पूजा धामधूमसे कराओ और पाँच-दस लाख रुपये खर्च करो, उपधान तप करो, दीक्षा ग्रहण कराओ, परन्तु भाई! यह तो सब विकल्प हैं; यदि अंतरमें कषायकी मन्दता हो तो शुभराग है; शुभराग भी अशान्ति और आकुलता है; उसमें अन्तरकी यथार्थ शान्ति, अनाकुलता या धर्म नहीं है। सच्ची शांति, आनन्द और धर्म तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकाल शुद्ध सहजज्ञान एवं आनंदस्वरूप, निरंजन, निर्विकल्प एवं उदासीन ऐसे निज भगवान ज्ञायक आत्माका अंतरमें आश्रय करनेसे, उसके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्ध परिणति प्रगट करनेसे होता है।

वि.सं. १९६४की बात है, मेरी उम्र अठारह वर्ष थी। पालेजसे दुकानका माल खरीदनेके लिये बड़ौदा गया; तब वहाँ 'सती अनुसूया' नाटक देखा था। अहा! उस समय नाटक भी वैराग्यकी प्रेरणा देनेवाले होते थे। कुँवारी अनुसूया स्वर्गमें जा रही थी, इतनेमें आकाशवाणी हुई कि 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'—पुत्रहीनको उच्चगति—स्वर्गकी प्राप्ति—नहीं होती। (यह सब हैं तो गप्पें) तो क्या करना? नीचे पृथ्वी पर जा और जो नीचे बैठा हो उससे विवाह कर। नीचे एक अंधा ब्राह्मण बैठा था उससे वह विवाह करती है। उसको एक पुत्र उत्पन्न होता है; पुत्रको पालने झुलाते हुए लोरी गाती है कि—'बेटा! शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, उदासीनोऽसि, निर्विकल्पोऽसि—तू शुद्ध है, ज्ञानका पिण्ड है, उदासीन है, निर्विकल्प है। अहा! उन दिनों तो नाटकमें भी वैराग्यकी बातें होती थीं, आजकल तो सम्प्रदायमें भी यह बात नहीं चलती। यह करो और वह करो, पूजा करो, भक्ति करो, यात्रासंघ निकालो, उपवास करो और उपधान करो—इसप्रकार लोगोंको बाह्य क्रियामें चढ़ा दिया है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि —सम्यग्दर्शन अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप निज त्रैकालिक भगवान आत्माका अंतरमें जघन्य आश्रय एवं दृष्टि होनेसे भी शुभाशुभ समस्त विभावकी रुचि छूटकर अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः स्वाद—भले ही सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रममें हो या चक्रवर्ती पदमें हों—आता है, तो जिनको विभावका परिपूर्ण अभाव हो गया है और स्वभावपरिपूर्ण प्रगट हुआ है उनकी पर्यायमें आनन्दकी हिलोरोंका क्या कहना? उनको तो अपार आनन्द होता है।

'तेरे आत्मामें भी ऐसा सुख भरा है, परन्तु विभ्रमकी चादर आड़ी आ जानेसे तुझे वह दिखता नहीं है।'

'णमो सिद्धाणं,' अहा! सिद्ध भगवानको अपने आत्मामें से इतना—अपार आनन्द एवं शान्ति प्रगट हुई, तो तेरा आत्मा भी, सिद्ध भगवानके आत्माकी भाँति, पूर्ण आनन्द एवं शान्तिसे भरपूर है, वहाँ दृष्टि लगा न! सिद्ध भगवानको अपार आनंद कहीं बाहरसे नहीं आया, भीतर शक्तिरूपसे था वह उछलकर बाहर पर्यायमें व्यक्त हुआ है। तेरे आत्मामें भी शक्तिरूपसे ऐसा सुख भरा है, परन्तु भ्रान्तिकी चादर आड़ी आ गई है, इसलिये तुझे दृष्टिगोचर नहीं होता।

समयसारमें दृष्टान्त आता है न! कि—ऊँची-ऊँची लहरोंसे लहराते हुए विशाल समुद्रके आड़े चार हाथकी चादर आ जाय तो चादरके सामने खड़े हुए मनुष्यको चादर ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिखाई देती है, समुद्र दिखाई नहीं देता। यदि चादरको हटा दे तभी लहरोंसे लहराता हुआ विशाल समुद्र दिखाई देता है; उसीप्रकार सुखसमुद्र ऐसे निज ज्ञायक आत्माके आड़े 'शरीर, स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी, कुटुम्बादि मेरे और मैं उनका, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभाव सो मैं,' ऐसे पर द्रव्य और परभावमें अपनत्वकी भ्रमणारूप—मिथ्यात्वरूप चादर आड़ी आ गई है, इसलिये वह दिखायी नहीं देता; यदि विभ्रमकी चादर हटा दे तो सुखसमुद्र भगवान आत्मा दिखाई दे और अंशतः सुख तथा शान्तिका प्रगट वेदन हो। अहा! वीतरागका मार्ग अति कठिन है! लोगोंने कहींकी कहीं कल्पना कर ली है—राग और बाह्यक्रियामें मान लिया है, परन्तु वह सब भ्रमणाकी चादर है; उसे दूर करनेसे ही सुखसमुद्र ज्ञायक आत्माके दर्शन होते हैं; सुखके मार्गका प्रारम्भ होता है।

खिड़की–दरवाजे बन्द करके दो–तीन रजाइयाँ ओढ़कर सोता हो, आँखोंमें कीचड़ जम गया हो, उससे कहे कि 'उठ! आँखें खोलकर देख—सोनेके नलिये हो गये (सोने जैसी सूरजकी धूप घरके नलियों पर फैल गई)।' परन्तु वह देखे कैसे? उसी प्रकार पूर्णानन्द भरपूर जागती ज्योति, चैतन्यस्वरूप शुद्ध अस्तित्वमय, अनन्त वीतरागी गुणोंसे विभूषित निज ज्ञायक भगवान आत्माकी दृष्टि एवं रुचि नहीं करे और रागकी रुचि तथा प्रेमरूप विभ्रममें ही सोता रहे तो उसे सुखसमुद्र भगवान आत्माके दर्शन कहाँसे होंगे? नहीं हो सकते। अरेरे! यह मनुष्य भव चला जा रहा है और फिरसे मरकर कहीं चला जायगा। तुझे मरकर कहाँ जाना है भाई! यह महँगा मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ है तो उसमें आत्मा कुछ कार्य कर ले न!

❃

वचनामृत–४०९

जिस प्रकार वटवृक्षकी जटा पकड़कर लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दुकी तीव्र लालसामें पड़कर, विद्याधरकी सहायताकी उपेक्षा करके विमानमें नहीं बैठा, उसी प्रकार अज्ञानी जीव विषयोंके कल्पित सुखकी तीव्र लालसामें पड़कर गुरुके उपदेशकी उपेक्षा करते शुद्धात्मरुचि नहीं करता, अथवा 'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' इस प्रकार प्रवृत्तिके रसमें लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीतिके उद्यमका समय नहीं पाता, इतनेमें तो मृत्युका समय आ पहुँचता है। फिर 'मैंने कुछ किया नहीं, अरेरे! मनुष्य भव व्यर्थ गया' इसप्रकार वह पछताये तथापि किस कामका? मृत्युके समय उसे किसकी शरण है? वह रोगकी, वेदनाकी, मृत्युकी, एकत्वबुद्धिकी और आर्तध्यानकी चपेटमें आकर देह छोड़ता है। मनुष्यभव हारकर चला जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मी जीव रोगकी, वेदनाकी या मृत्युकी चपेटमें नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्माकी शरण प्राप्त की है। विपत्तिके समय वह आत्मामेंसे शान्ति प्राप्त कर लेता है। विकट प्रसंगमें वह निज शुद्धात्माकी शरण विशेष लेता है। मरणादिके समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निज सुखसरोवरमें विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है—जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है, शान्तिकी अखूट निधि है। वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है, उसका जीवन सफल है।

तू मरणका समय आनेसे पहले चेत जा, सावधान हो, सदा शरणभूत—विपत्तिके समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्यको अनुभवनेका उद्यम कर॥४०९॥

'जिस प्रकार वटवृक्षकी जटा पकड़कर, लटकता हुआ मनुष्य मधुबिन्दुकी तीव्र लालसामें पड़कर, विद्याधरकी सहायताकी उपेक्षा करके विमानमें नहीं बैठा, उसीप्रकार अज्ञानी जीव विषयोंके कल्पित सुखकी तीव्र लालसामें पड़कर गुरुके उपदेशकी उपेक्षा करके शुद्धात्मरुचि नहीं करता, अथवा 'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' इसप्रकार प्रवृत्तिके रसमें लीन रहकर शुद्धात्मप्रतीतिके उद्यमका समय नहीं पाता, इतनेमें तो मृत्युका समय आ पहुँचता है।'

शास्त्रमें दृष्टान्त आता है न! कि—वटवृक्षकी जटाको पकड़कर एक मनुष्य लटक रहा है। उसके सिर पर वटवृक्षकी डालसे एक मधुछत्ता लगा है और उसमेंसे मधुकी एक-एक बूँद कुछ-कुछ देरके बाद टपकती है—मधुकी धारा नहीं। नीचे एक कुआँ है, जिसमें भयंकर अजगर और ४ सर्प रहते हैं जो मुँह फाड़कर इसके गिरनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऊपर उस जटाको जिसे पकड़कर वह मनुष्य लटक रहा है—दो चूहे एक सफेद और दूसरा काले रंगका—दिन-रात—काट रहे हैं। उसी समय एक विद्याधर अपने विमानमें बैठकर निकलता है और करुणापूर्वक कहता है कि—'भाई! अभी यह जटा कट जायगी और तू नीचे इस अँधेरे कुएँमें जा गिरेगा जहाँ भयंकर अजगर तुझे खा जायँगे; यदि तुझे बचना हो तो आ जा, मेरे विमानमें बैठ जा।' परन्तु वह मूर्ख मनुष्य मधुबिन्दुकी लालसामें कि कब बूँद गिरेगी, अब गिरेगी—इसप्रकार मधुकी तीव्रलालसामें पड़ा हुआ वह विद्याधरकी सहायताकी उपेक्षा करके विमानमें नहीं बैठा। यह तो दृष्टान्त हुआ। उसी प्रकार यह मोही जीव विषयोंमें कल्पित सुखकी तीव्र लालसामें रहकर—शरीरके स्पर्शमें विषयकी वासनाका सुख, रसमें मेसूर, रबड़ी आदि खाने-पीनेका सुख, गंधमें इत्र-फुलेलादि सुगंधित वस्तुओंको सूंघनेका सुख, रूपमें शरीरकी सुघड़ रचना देखकर उसकी सुन्दरताका सुख आदि पाँच इन्द्रियोंके रुचिकर विषयोंमें सुख मानकर उनकी लालसामें ललचाकर—'विषय तो जड़, अचेतन, धूल हैं, उनमें किंचित्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुख नहीं है, सुख तो शरीर, इन्द्रियाँ और विषयोंसे भिन्न और तत्सम्बन्धी वासनाओंसे भी भिन्न निज आत्मामें है' ऐसे गुरुके उपदेशकी उपेक्षा करके सुखसागर निज शुद्धात्माकी रुचि नहीं करता।

प्रभु! विषयोंमें क्या सुख है? विषय तो परवस्तु हैं, तू क्या उन्हें प्राप्त कर सकता या भोग सकता है? तू मेसुर, फूल या स्त्रीको नहीं भोगता, परन्तु 'यह विषय अच्छे हैं, आनन्द देते हैं'—ऐसा राग करके रागको भोगता है। लड़का कमाई कर रहा हो, स्त्री अनुकूल हो, करोंड़ोंकी सम्पत्ति मिली हो, कीर्ति चारों ओर फैल रही हो, परन्तु भाई! उस धूलमें क्या सुख है? भाई! इन जड़ विषयोंकी मिठासमें तू घिर गया है, विषयसुखकी तीव्र तृष्णामें तू आकर्षित होकर चिपक रहा है।

जिसप्रकार वटवृक्षकी जटा पकड़कर लटक रहे मनुष्यने विद्याधरकी सहायताका अनादर किया, वैसे ही अज्ञानी जीव भी 'विषयोंमें सुखकी लालसा छोड़ दे, दिन और रातरूपी चूहे तेरी आयुरूपी जटाको निरंतर काट रहे हैं, अभी कुछ ही समयमें आयु पूर्ण हो जायगी और चौरासीके अवतारमें—भवरूपी भयंकर कुएँमें—कहीं गिर जायगा; यदि तुझे इस दुःखमय संसारसे छूटना हो तो अंतरमें सुखनिधान ऐसे अपने शुद्ध आत्मा पर दृष्टि लगा, उसे ग्रहण कर।'—ऐसा गुरुका उपदेश प्राप्त हुआ तथापि उसका अनादर करके निज शुद्धात्माकी रुचि नहीं करता।

गुरुने उपदेशमें कहा—प्रभु! तू रागके सुखसे भिन्न है; विषयानुरागमें किंचित् सुख नहीं है, परन्तु एकान्त दुःख है। शरीरके भोगमें तुझे रागका सुख लगता है; शरीर तो हाड़मांसका पुतला है, जड़ अचेतन है, उसमें सुख नहीं है, तथापि 'उसके स्पर्शमें आनन्द आता है' ऐसा भ्रमसे मानकर अज्ञानी जीव मात्र अपने रागभावको करता और भोगता है। मदिरा पिये हुए मनुष्यको शीखंडका स्वाद गायके दूध जैसा लगता है, उसीप्रकार जिसने भ्रान्तिरूपी मदिरा पी रखी है ऐसे अज्ञानीको विषयोंमें तथा रागमें सुख लगता है; भीतर भगवान आत्मामें विषयातीत अतीन्द्रिय सुख भरा है वहाँ वह दृष्टि नहीं करता। अरेरे! चींटी, कौआ और कुत्तेके अवतार! भाई! तूने गुरुके उपदेशका अनादर किया, मरकर कहाँ जायगा तू? अहा! यह तो एक बार संसारका हर्ष और उत्साह टूट जाय ऐसी बात है। हर्ष और उत्साह तो प्रभु! भीतर आनन्दस्वभावी अपने आत्मामें करने जैसे हैं।

दो-चार करोड़ रुपये इकट्ठे हुए हों और पुत्रका विवाह हो, जिसमें पाँच-दस लाख खर्च करना हों तो फिर देखो! उसका पागलपन! 'समाजमें सबको आमंत्रित करना है, घर-घरमें बड़े-बड़े बरतन बाँटना हैं।' अरे प्रभु! तू यह क्या करता है? कहाँ उलझ गया?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह सब तो बाहरी पुण्यका ठाठ है, उसमें कहीं किंचित् सुख नहीं है। मुंबईमें एक भाटिया गृहस्थके यहाँ पुत्रका विवाह था। विवाहकी खुशीमें अपनी पूरी समाजमें (एक हजार घरमें) बरतन बाँटे। अरे! पुण्यके पलटनेमें क्या देर लगेगी? पुत्रवधूकी प्रथम प्रसूतिके समय खर्चके भी पैसे नहीं थे, पैसे माँगने जाना पड़ा! अहा! यह तो जगतकी धूप–छाँव है भाई! छाया मिटकर धूप–पुण्य मिटकर पाप—होनेमें जरा भी देर नहीं लगती। जयपुरमें किसी समयके प्रसिद्ध जौहरीके लड़केको वृद्धावस्थामें भीख माँगते देखा है। यह सब संसारकी धूप–छाँव है। ऐसे भिखारीके भी अनन्त अवतार इस जीवने किये हैं; परन्तु प्रभु! अंतरमें आत्मा क्या वस्तु है उसे कभी सुना और देखा नहीं है। कदाचित् गुरु मिले भी, परन्तु उनके उपदेशकी उपेक्षा करके 'इतना काम कर लूँ, इतना काम कर लूँ' ऐसी बाह्य प्रवृत्तिमें पड़कर अपने आत्माको पहिचाननेका प्रयत्न नहीं किया, अवकाश नहीं निकाला, इतने में तो मरणका समय आ पहुँचता है। विशेष अब कहेंगे।

अहा! सन्त आत्माका एकत्व–विभक्त स्वरूप बतलाते हैं। अपूर्व प्रीति लाकर वह श्रवण करने योग्य है। जगतका परिचय छोड़कर, प्रेमपूर्वक आत्माका परिचय करके अंतरमें उसका अनुभव करने जैसा है। ऐसे अनुभवमें परम शान्ति प्रगट होती है और अनादिकालीन अशान्ति मिटती है। आत्माके ऐसे स्वभावका श्रवण–परिचय –अनुभव दुर्लभ है, परन्तु वर्तमानमें उसकी प्राप्तिका सुलभ अवसर आया है। इसलिये हे जीव! अन्य सब भूलकर अपने शुद्धस्वरूपको लक्षमें ले और उसमें निवास कर। यही करने योग्य है।

—पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१६७

दिनांक १-१२-७८

वचनामृत–४०९ (चालू)

यह वचनामृतका ४०९वाँ बोल है। थोड़ा कल चला था। अज्ञानी जीव, जिस प्रकार वटवृक्षकी जटा पकड़कर लटका हुआ मनुष्य मधुबिन्दुकी तीव्र लालसामें रहकर विद्याधरकी सहायताकी उपेक्षा करके विमानमें नहीं बैठा, वैसे ही पाँच इन्द्रियोंके रुचिकर विषयोंकी —शब्द, रूप, रस, एवं स्पर्शकी—तृष्णामें रहकर गुरुके हितकारी उपदेशकी उपेक्षा करके शुद्धात्मरुचि नहीं करता। आत्मामें ज्ञानावरणीयादि तथा शरीरादि समस्त कर्म–नोकर्मका तो सर्वथा अभाव है, परन्तु वर्तमान पर्यायमें होनेवाले रागादि दोषरूप औदयिकभाव और ज्ञानादिके क्षायोपशमिक, क्षायिकादि चार भाव भी उसका सहजस्वभाव नहीं है, क्योंकि उनका आश्रय लेनेसे शुद्धताका, धर्मका लाभ नहीं होता; 'त्रैकालिक ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मवस्तुकी अंतरमें रुचि, दृष्टि एवं अनुभूति करना ही धर्मका तथा सुखका साधन है' —ऐसे गुरुके कल्याणकारी वचनोंकी अवहेलना करके निजशुद्धात्माकी रुचिका उद्यम नहीं करता। 'अवहेलना' अर्थात् 'पहले रोटीका उपाय करो, भूखे पेट कहीं धर्म होता होगा? अभी वर्तमानमें पैसा कमा लो, फिर वृद्धावस्थामें धर्म करेंगे, धर्म तो सांसारिक कार्योंसे निवृत्त हुए लोगोंका काम है, हमें तो अभी बहुत कुछ करना है, फलाना काम करना है, ढिकना करना है, निवृत्त होंगे तब वृद्धावस्थामें धर्म करेंगे'—ऐसे वायदे करना। इसप्रकार गुरुके उपदेशकी उपेक्षा करके अज्ञानी जीव निज शुद्धात्माकी रुचि नहीं करता। अथवा 'इतने काम तो कर लूँ कि—बेटे–बेटियोंका पालन–पोषण करके पढ़ा–लिखाकर बड़ा कर दूँ, उनके विवाह भी कर लूँ; मैं स्वयं भी कुछ अभ्यास कर लूँ, पढ़ लूँ, व्रत–उपवासादि कर लूँ'—इसप्रकार बाह्य अशुभ या शुभ प्रवृत्तिके प्रेममें पड़े रहकर, उसकी मिठासका वेदन करता हुआ, शुद्धात्मप्रतीतिके अन्तर्मुख प्रयत्नका समय नहीं निकालता; और इतनेमें तो मरणका समय आ पहुँचता है।

भाई! मृत्यु तो इसी भवमें आनेवाली है और वह भी अचानक आयगी; 'मैं आ रही हूँ इसलिये तैयार हो जाना' ऐसे समाचार देकर नहीं आयगी, वह तो अचानक ही आकर तुझे उठा ले जायगी; इसलिये आत्माका हित बादमें कर लूँगा, पहले इतने काम कर लूँ, लोगोंको समझाता जाऊँ—ऐसी बाह्य प्रवृत्तियोंको छोड़कर सत्समागम, स्वाध्याय एवं सद्विचार द्वारा अंतरमें आत्मकल्याणका उद्यम कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानी जीव बाह्य प्रवृत्तिके रसमें निरन्तर लगा रहता है और आत्माको समझनेका उद्यम फिर करूँगा, जरूर करूँगा—ऐसे वायदे करके यह दुर्लभ मानवजीवन व्यर्थ गँवा देता है; 'करूँगा–करूँगा'में रह जाता है और इतनेमें तो आयु पूर्ण होनेका समय आ जाता है।

"फिर मैंने कुछ किया नहीं, अरे रे! मनुष्यभव व्यर्थ गया' इस प्रकार पछताये तथापि किस कामका ?"

ऐसा मूल्यवान मनुष्यभव प्राप्त हुआ, सच्चे गुरु तथा सत्का श्रवण मिला, गुरुने समझाया कि—तू अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणसामर्थ्यसे परिपूर्ण, एक, स्वतःसिद्ध, स्वाधीन और परिपूर्ण वस्तु है, उसकी अंतरमें दृष्टि, प्रतीति तथा रुचि कर। अरेरे! मैंने समझनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। भाई! जब समझनेका समय था तब तो समझा नहीं और फिर 'अरे रे! यह दुर्लभ मनुष्यभव व्यर्थ चला गया—इसप्रकार मृत्युके समय पछतावा करे तो किस कामका?

एक तो संसारके—व्यापार–धन्धे तथा विषयभोगके—कार्योंसे अवकाश नहीं मिलता; यदि थोड़ा समय मिले तो धर्मके नाम पर बाह्य प्रवृत्ति—पूजा, भक्ति, व्रत, तप, पठन –श्रवण, वांचन तथा करने–कराने आदि—बाह्य क्रियाओंमें लगा रहता है, आत्माको समझनेका अवकाश ही नहीं मिलता; इतनेमें अचानक काल आ पहुँचता है, फिर मृत्युके समय पछतावा करे कि—'मैंने आत्मकार्य नहीं किया, यह मनुष्यभव सांसारिक जंजालमें व्यर्थ गँवा दिया,' तो वह किस कामका?

पूर्णानन्दका नाथ ऐसा निज त्रिकालशुद्ध भगवान आत्मा; उसमें शरीर, वाणी या स्त्री –पुत्रादि परद्रव्य तो नहीं हैं, परन्तु रागादि सांसारिक विभाव—समस्त शुभाशुभ विकारी भाव—उसका स्वभाव नहीं है, अरे! औपशमिक क्षायोपशमिक तथा क्षायिक पर्यायें भी उसका परमभाव–सहज स्वभाव–नहीं है। ऐसे निज भगवान आत्माकी रुचि, प्रतीति, समझ एवं अनुभूति करना चाहिये वह नहीं की उसके उद्यमका समय निकालना चाहिये वह नहीं निकाला और स्त्री, बच्चे, परिवार, ग्राम, समाज तथा देशके काम आ पड़े उनमें लग गया, उनमें एकाकार होकर जीवन गँवा दिया, फिर 'अरे रे! मैंने अपने आत्माका कुछ नहीं किया' इसप्रकार दुःखी होकर पछतानेसे क्या होगा? जीवनमें जैसे परिणाम किये हों तदनुसार चार गतियोंमें भ्रमण करनेको चला जायगा।

दुनियाका बड़प्पन मिले, पच्चीस–पचास करोड़ रुपये मिलें, दो–चार कारखाने हों और बड़ा उद्योगपति कहलाये, तो उसमें तेरा क्या हुआ? पाप कर–करके, मरकर तुझे जाना कहाँ है? अहा! जिसके बड़प्पनके समक्ष सिद्धपर्यायका बड़प्पन भी अल्प है, गौण है,—ऐसे अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रैकालिक पूर्णानन्दसागर चैतन्य द्रव्यस्वभावकी समक्ष और रुचिके लिये समय नहीं निकाला; बाह्यमें व्रत, नियम, भक्ति, पूजादिमें धर्म मानकर उनमें रुक गया, परन्तु वे शुभभाव तो राग हैं, आत्माके शुद्धभावरूप धर्म नहीं हैं। भाई! धर्मका प्रारम्भ तो सम्यग्दर्शनसे होता है। सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक वस्तु है! अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका ध्रुव पिण्ड, त्रिकाल शुद्ध चैतन्य ज्ञायक प्रभु, जिसमें वर्तमान पर्यायका, अरे! पर्यायमात्रका अभाव है—पर्यायमात्र गौण है—तुच्छ है, ऐसी निजवस्तुकी दृष्टि और रुचि करनेका समय नहीं निकाला और यों ही जीवन गँवा दिया। मृत्युकाल आने पर फिर पछताता है कि—'अरे रे! मैंने आत्मकार्य किंचित् नहीं किया, यह बहुमूल्य मानवजन्म विषयोंमें तथा बाहरी बड़प्पनमें व्यर्थ चला गया।' लेकिन अब पछतानेसे क्या होगा?

एक–एक महीनेकी तपस्या–उपवास करे, लोग प्रशंसा करे ऐसी विशाल रथयात्रा निकाले, परन्तु भाई! उसमें तेरा कल्याण क्या हुआ? तपस्यामें भी यदि कषाय मन्द किये हों तो वह शुभरागकी क्रिया है; भीतर एकसमयमें परिपूर्ण, पूर्णानन्दका स्वामी ऐसे निज ज्ञायक परमभावमें—शुद्धात्म चैतन्यप्रभुमें—संसारका राग या धर्मके नामसे कथित व्रतादिका शुभराग तो नहीं है, परन्तु औपशमिक, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिकरूप धर्मकी वर्तमान निर्मल पर्याय जितना वह नहीं है।—ऐसे त्रैकालिक ज्ञानानन्द–आदि अनन्त सामर्थ्यसे परिपूर्ण भगवान आत्माकी समझ, रुचि, प्रतीति एवं श्रद्धा करनेका समय नहीं निकाला और ऐसे ही सांसारिक कार्योंमें अथवा धर्मके नाम पर व्रत, भक्ति आदिमें यह अमूल्य मानवभव गँवा दिया। संसारके पाप कार्योंसे निवृत्त नहीं हुआ। 'आत्मप्राप्ति फिर करूँगा, फिर करूँगा' ऐसे वायदे करते –करते आयु पूर्ण होनेका समय आ गया, फिर वह पछताता है, परन्तु उससे क्या होगा?

'मृत्युके समय उसे किसकी शरण है?'

शरीर छूटनेके समय भाई! किसकी शरण है? त्रिकाल शरणभूत निज चैतन्य प्रभुकी–ज्ञायक परमभावकी—अंतरंग प्रतीति तो की नहीं और बाह्यमें शरणके लिये मिथ्या प्रयत्न करता है, परन्तु बाह्यमें किसकी शरण है? जीवनभर पाप करके कमाई हुई लक्ष्मीका ढेर करे और स्त्री–पुत्र–परिवारको सामने खड़ा रखकर कहे कि—"मैंने तुम्हारे लिये मेरा सारा जीवन व्यतीत कर दिया, खूब पाप किये, अब तुम सब मेरी सहायता करो; कोई मुझे शरण दो!' परन्तु कौन शरण दे?.......कोई कुछ भी नहीं दे सकता। विषयोंके लिये पागल होकर जीवन गँवा दिया, फिर मृत्युके समय अभिलाषा करे–तीव्र आर्तध्यान करे, तो उससे क्या होगा?.....अरे! मृत्युकालमें कदाचित् 'भगवान....भगवान' करे, पंरपरमेष्ठीका स्मरण करे, परन्तु अंतरमें सदा शरणभूत ऐसे निज ज्ञायकभगवानको गुरुगमसे जाना नहीं उसकी रुचि –प्रतीति–श्रद्धा की नहीं, तो प्रभुस्मरणका शुभराग भी क्या शरण देगा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'वह रोगकी, वेदनाकी, मृत्युकी, एकत्वबुद्धिकी और आर्त्तध्यानकी चपेटमें आकर देह छोड़ता है।'

शरीरके साथ एकता और संसारमें लिप्त जीव मृत्युका समय आनेपर, रोगकी चपेटमें —डबल न्युमोनिया हुआ हो, श्वास लेने पर पसलियोंमें असह्य वेदना होती हो, दिलका दौरा पड़ने पर रक्तवाहिनीमें रक्त जम जानेसे भयंकर पीड़ासे कराहता हो ऐसे रोगोंकी चपेटमें— आकर शरीर छोड़ता है। मरकर चला जाता है नरक और पशुगति आदि चौरासीके अवतारमें। वहाँ उसे किसकी शरण है? अवसर आया तब आत्मकार्य बिलकुल नहीं किया, फिर पछतानेसे क्या होता है?.......'यह बहु भूल भई हमरी, फिर कहा काज पछताये'—अब पश्चाताप करनेसे क्या होगा? वह व्याधिकी, पीड़ाकी, मृत्युकी, देहादिके साथ एकत्वबुद्धिकी तथा पापध्यानकी चपेटमें आकर शरीर छोड़ता है; उस समय कौन उसे शरणभूत है?—अंतरमें सदा शरणभूत निज शुद्धात्मतत्त्वको—ज्ञायक परमपदको—तो कभी देखा नहीं है।

'मनुष्यभव हारकर चला जाता है।'

भले ही करोड़ों रुपये इकट्ठे हुए हों, पचास-पचास लाखके राजमहल जैसे बंगले बनवाये हों, पाँच-पाँच लाखकी गाड़ियाँ खरीदी हों, नौकर-चाकर आदिका बड़ा काफिला हो, लेकिन उससे हुआ क्या? वह सब वैभव छोड़कर मौतकी चपेटमें आकर अज्ञानी जीव मनुष्यभव हारकर चला जाता है पशु और नरक आदि योनियोंमें भटकनेके लिये। आत्मा स्वभावसे पूर्ण ज्ञानानन्दमय भगवान होने पर भी भिखारीकी भाँति भीख माँगता है कि—मुझे यह दे दो, वह दे दो। बड़प्पन मिल जाय, लोग मुझे बड़ा मानें; परन्तु भाई! तेरा बड़प्पन-तेरी महानता तो सच्चिदानन्द ज्ञायकप्रभुमें—अतीन्द्रिय आनन्दके पिण्ड ऐसे निज चैतन्यनिधानमें—है। आनन्दनिधान निजज्ञायक भगवान जोकि सदा शरणभूत है उसमें दृष्टि देना चाहिये वह तो दी नहीं और बाह्यमें दया, दान, व्रत, भक्तिमें—विभावमें दृष्टि करके उसमें अटक गया। वह विभाव परिणाम राग है, धर्म नहीं है—यह बात कैसे बैठे? कि—उनमें कोई शरणभूत नहीं है, वह सब तो विकार, भवका कारण और संसार है। अहा! पुण्य और पापके भावसे भिन्न जो त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायक भगवान उसकी तो शरण ली नहीं, उसे पहिचाना नहीं, उसका मूल्य नहीं जाना और राग तथा पुण्यका मूल्यांकन करके मरकर निकल गया चौरासीके अवतार करने......दुर्लभ मनुष्यभव हारकर चला गया भववनमें भटकने को।

'धर्मी जीव रोगकी, वेदनाकी या मृत्युकी चपेटमें नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्माकी शरण प्राप्त की है।'

जिसे अंतरमें आनन्दसागर भगवान आत्माकी दृष्टि और रुचि हुई है, जिसे शरीर-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मन–वाणी, कुटुम्ब–परिवार, अरे! पुण्य–पापके समस्त विभाव वह मैं नहीं हूँ,—ऐसी अंतरमें अनुभवसहित प्रतीति हुई है वह जीव धर्मी है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'—इस न्यायसे समस्त आत्मा स्वभावसे सिद्ध भगवान जैसे हैं। यदि स्वभावसे भगवान न हो तो पर्यायमें –दशामें भगवानपना कहाँसे आयगा? क्या भगवानपना कहीं बाहरसे आता है? अहा! ऐसी बातें हैं; बाह्य प्रवृत्तिके रसिकोंको कठिन लगे ऐसी हैं। जिसे अंतरसे रागकी तथा पर्यायकी रुचि छूट गई है और पूर्णानन्दके नाथकी—भगवान आत्माकी दृष्टि एवं अनुभूति हुई है उसे धर्मी कहा जाता है। जिस प्रकार नरियलका गोला भीतर पृथक् होता है उसीप्रकार धर्मीजीवको आत्म–गोला राग और शरीरसे अंतरमें भिन्न भासित होता है—अनुभवमें आता है। श्रद्धा, ज्ञान और अनुभवमें जिसको चैतन्यपिण्ड अंतरमें पृथक् हो गया है ऐसा धर्मी जीव रोगकी, वेदनाकी तथा मृत्युकी चपेटमें नहीं आता, क्योंकि उसने अशरीरी अतीन्द्रिय निज शुद्ध ज्ञायक परमभावकी शरण प्राप्त की है।

जिस प्रकार नरियलका गोला ऊपरके जटोंसे कठिन नरेलीसे तथा नरेलीकी ओर रहनेवाली लालरंगकी छालसे भिन्न सफेद है, उसीप्रकार यह औदारिक शरीर भी जटोंके समान है, जड़कर्म नरेलीके समान हैं और कर्मकी ओरके जो शुभाशुभ भाव—दया, दान, व्रत, तप अथवा काम–क्रोधादिके भाव—वे नरेलीकी ओर रहनेवाली लालरंगकी छालके समान हैं। भगवान आत्मा भीतर उन सबसे भिन्न है। अहा! यह बात कब बैठेगी और कब आत्माकी साधना करेगा? उसके लिये अवकाश ही कहाँ है? ज्ञानानन्दस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा जिसे अंतरमें ज्ञात हुआ, अनुभवमें आया वह ज्ञानी जीव अनेक प्रकारकी व्याधिकी, यातनाकी या मृत्युकी चपेटमें नहीं आता, क्योंकि उसने अंतरमें निज आत्माकी शरण प्राप्त की है, निजनिधान दृष्टिगोचर हो गया है। अहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरका मार्ग कोई अलौकिक है। वर्तमानमें तो वीतरागका मार्ग चारों ओरसे छिन्नभिन्न हो गया है। आया कुछ समझमें? धर्मी जीव उसे कहते हैं कि—'अंतरकी लच्छीसों अजाची लच्छपति हैं।' जिनको अंतरमें अनन्त आनन्द–तथा अनन्त ज्ञानकी लक्ष्मी दृष्टिगोचर हुई है, अंशतः अनुभवमें आयी है, वह अब बाह्यमें नहीं देखता कि मुझे पैसेकी–धूलकी–प्राप्ति हो जाय। वह तो—'दास भगवन्तके उदास रहैं जगतसौं, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।'

वीतराग दिगम्बर संत श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अपनी भावनाके हेतु नियमसार शास्त्रकी रचना की है। उसमें वे कहते हैं कि—ज्ञायक कारण परमात्मा शरीरादि परद्रव्योंसे तो भिन्न है ही, परन्तु जो रागादि विभाव होते हैं वह उसका स्वभाव नहीं है और क्षायिकभाव आदि जो निर्मल पर्यायें प्रगट हों वह भी उसका त्रैकालिक सहज स्वभाव नहीं है। अरे! ऐसा मार्ग? ऐसा तो अन्यत्र कहीं सुननेको नहीं मिलता; जहाँ जाओ वहाँ 'सामायिक करो, प्रोषध करो,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतिक्रमण–चौविहार–भक्ति आदि करो, यह करो और वह करो'—ऐसा सुननेको मिलता है, परन्तु यह सब तो रागकी क्रियाएँ हैं, आत्माका स्वभाव नहीं है। 'शुद्ध चेतनासिंधु हमारो रूप है'—आत्माका स्वरूप समस्त शुभाशुभ राग एवं क्रियासे रहित शुद्धचेतनामय है। अहा! कैसी है यह बात! देखने योग्य, अनुभव करने योग्य तो आनन्दसे छलाछल भरा हुआ भगवान आत्मा है, उसका अवलम्बन लेकर पर्यायमें उसकी प्रतीति एवं अनुभूति जिसे हुई है ऐसा ज्ञानी जीव रोगकी, वेदनाकी या मरणकी चपेटमें नहीं आता, क्योंकि उसने निज शुद्धात्माकी—ज्ञायक परमभावकी शरण प्राप्त की है।

'विपत्तिके समय वह आत्मामेंसे शान्ति प्राप्त कर लेता है।'

शान्तिका सागर भगवान आत्मा जिसे दृष्टि एवं अनुभवमें आया वह धर्मी जीव प्रतिकूलताके भीषण घेरेमें—असाध्य रोग या भयंकर उपसर्गोंमें—भीतर आत्मामेंसे शान्ति प्राप्त कर लेता है। अहा! ऐसी बात कभी सुनी न हो, इसलिये लोगोंको कठिन लगती है। सम्मेद शिखर, गिरनार या शत्रुंजयकी यात्रा करनेको कहो तो वह समझमें आता है, परन्तु भाई! उसमें समझने जैसा क्या है? वह तो शुभरागकी बात है। शुभराग आत्माका स्वभाव नहीं है। गजब बात है! चाहे जैसे कठिन विपत्तिके समय मैं ज्ञानी धर्मात्मा आत्माकी प्रतीति एवं संवेदन होनेसे, आत्मामेंसे शान्ति प्राप्त कर लेता है।

'विकट प्रसंगमें वह निज शुद्धात्माकी शरण विशेष लेता है।'

धर्मी जीवको सम्यग्दर्शन होने पर शरीरादि परद्रव्यों एवं रागादि विभावोंसे भिन्न त्रिकाल शुद्ध ज्ञानानन्दकन्द निज आत्मा जाननेमें आया है, अनुभवमें आया है, इसलिये उतनी अकषाय शान्ति तो उसको अविच्छिन्नरूपसे निरन्तर वर्तती है, परन्तु जब कोई प्रतिकूल या विकट परिस्थिति आये—अपमान या झूठी निन्दा हो, लकड़ी या पत्थरके प्रहार हों आदि अनेक प्रकारके उपसर्ग आयें—तब वे अन्तर्मुख पुरुषार्थ द्वारा शान्तिनिधान ऐसे निज शुद्धात्माकी शरण विशेष ग्रहण करते हैं,—अंतरमें सहज शुद्ध द्रव्यस्वभावका विशेष आश्रय लेते हैं; उपयोगको बाहरसे—आये हुए विकट प्रसंगसे—हटाकर अंतरमें विशेष उतार देते हैं।

असामान्य स्थितिमें ज्ञानी निज शुद्धात्माका—भगवान अथवा पंचपरमेष्ठीकी नहीं, क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं, उनकी शरण लेनेसे तो शुभराग और पुण्यबंध होगा, अंतरमें धर्म या अकषायशान्ति नहीं होगी, —शरण विशेष लेते हैं। अहा! ऐसी बात है; कठिन लगेगी भाई! परन्तु क्या किया जाय? परमात्मा जिनेश्वरदेवकी यह आज्ञा है, उसमें अज्ञानी जीव स्वमतिसे कुछकी कुछ चाहे जैसी कल्पना करके मान्यता बना ले उससे कहीं वस्तुका स्वरूप नहीं बदल जायगा। ज्ञानीको जो वीतराग शान्त पर्याय प्रगट हुई है उस त्रिकाल शुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागस्वभावकी शरण—आश्रय लेकर प्रगट हुई है। वीतराग जिनेन्द्रका कहा हुआ धर्म वीतराग पर्याय है। वीतरागपर्याय स्वयं धर्म है, परन्तु वह धर्म प्रगट कैसे हुआ? क्या दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभरागकी सेवा-उपासना की इसलिये प्रगट हुआ? नहीं, नहीं, अंतरमें वीतरागस्वरूप निज द्रव्यस्वभाव है उसका आश्रय करनेसे प्रगट हुआ है।

प्रश्न :—तब तो पूजा, भक्ति आदि समस्त व्यवहारका लोप हो जायगा?

उत्तर :—भाई! व्यवहार अर्थात् राग। प्रारम्भिक भूमिकामें ऐसा राग आता है; परन्तु उस रागकी रुचि छोड़े, अरागी आत्मस्वभावका आश्रय ग्रहण करे, तो वीतरागधर्मका प्रारम्भ हो। भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। वीतराग पर्याय प्रगट करे वही जैन है, बाह्य क्रियाकाण्डमें अथवा 'जैन' नाम धारण कर लेनेमें जैनत्व नहीं है। थैलीमें काला जीरा भरकर ऊपर मिश्री लिख दे तो उससे क्या कालाजीरा मीठा हो जायगा? वैसे ही स्वभावकी प्रतीतिके बिना 'जैन' नाम धारण करके उससे क्या 'जैन' हो जायगा? यहाँ कहते हैं कि—जो अंतरसे सच्चा जैन है वह विकट—असामान्य परिस्थितियोंमें भी आत्मामेंसे सच्ची शान्ति प्राप्त कर लेता है।

'मरणादिके समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निजसुख सरोवरमें विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है—जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है, शान्तिकी अखूट निधि है।'

इस देह-देवालयके भीतर विद्यमान भगवान आत्मा शाश्वत-नित्य है, अनादि-अनन्त है। वह कहीं सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं हुआ है अथवा उसका सर्वथा नाश नहीं होता। उस शाश्वत वस्तुमें सुख भरा है। सुखसरोवर ऐसें निज शाश्वत शुद्धात्मामें, मरणादि विकट समयमें धर्मी जीव विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है। कैसा है वह सुखसरोवर?—कि जिसमें किसी भी प्रकारका रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है, शान्तिका अक्षय—कभी जिसका क्षय न हो ऐसा—भण्डार है।

भाई! पच्चीस-पचास हजारका दान करे उससे कहीं धर्म या आत्मशान्ति नहीं होती। रुपया तो जड़ परद्रव्य है, उसे कौन दे और कौन ले? दान देते समय तृष्णा-लोभ कम करके मन्द कषाय की हो तो वह शुभभाव है, पुण्यबन्धका कारण है, शान्ति या धर्म नहीं है। शरीर, वाणी, रुपया-पैसा और शुभराग आदि परद्रव्य एवं परभावोंको अपना माने वह तो पागल है। दुनिया पागल है, वह ऐसी सत्य बात सुनकर सत्य कहनेवालेको पागल कहती है, क्योंकि यह बात उसे पागलों जैसी लगती है। क्या किया जाय? मिथ्यात्वकी मदिरा पी रखी है, इसलिये ऐसा लगता है। शरीरकी तथा पैसेकी क्रियासे भगवान आत्मा भिन्न है ऐसी जब जीवको अंतर्प्रतीति हो तब उसे सम्यग्दर्शन और आत्मशान्ति प्रगट होती है। वह जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मरणादि प्रतिकूलताके विकट प्रसंग पर शाश्वत ऐसे निज सुखसरोवरमें विशेष-विशेष लीन हो जाता है कि जहाँ समस्त प्रतिकूलता रहितमात्र शान्तिकी अक्षय-अखूट निधि है।

अरे! उसका विश्वास कैसे आये? गुरुगमसे अंतरमें-आत्मामें देखे और जाने कि 'यह तो आनन्दका सागर है' तो पर्यायमें अंशतः आनन्द आने पर 'यह आनन्दरूपसे अनुभवमें आ रहा सम्पूर्ण आत्मा अक्षय-अखूट आनन्दका महासागर है' ऐसा प्रतीतिमें बराबर आता है। शान्तिकी अक्षय निधिको जिसने देखा है वह धर्मी जीव शरीर छूटनेके समय शान्ति, शान्ति, शान्तिपूर्वक अंतरमें आनन्दके नाथकी शरण लेकर स्वरूपमें विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है।

'वह शान्तिपूर्वक शरीर छोड़ता है।'

श्रीमद् राजचन्द्रने, जो कि ज्ञानी धर्मात्मा थे उन्होंने, शरीर छूटनेके समय अपने भाईसे कहा कि—मनसुख! माताजीको दुःखी मत होने देना, मैं अपने स्वरूपमें जाता हूँ। अहाहा! सच है, शान्तिपूर्वक शरीर छूट गया। ज्ञानी निजसुखसरोवरमें विशेष लीनता करके अपूर्व शान्तिपूर्वक शरीर छोड़ते हैं।

'उसका जीवन सफल है।'

जिसने आनन्दके नाथका—निज ज्ञायकभावका—अनुभव किया और मरणके समय निजानन्दसरोवरमें विशेष लीन होकर शान्तिपूर्वक शरीरका त्याग किया, उसका जीवन और उसकी साधना सचमुच सफल है; एक-दो भवमें वह केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जायगा।

'तू मरणका समय आनेसे पहले चेत जा, सावधान हो, सदा शरणभूत—विपत्तिके समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्यको अनुभवनेका उद्यम कर।'

भाई! यह अमूल्य मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, कल्याणका अवसर मिला है; इसलिये तू मृत्युकाल आनेसे पूर्व चेत जा—सावधान हो जा, सदा शरणभूत ऐसे निज शुद्धात्मद्रव्यको अनुभवनेका प्रयत्न कर। सदा शरणभूत, त्रिकाल अस्तित्ववान ऐसा जो निज ज्ञायकतत्त्व —शुद्धात्मद्रव्य—उसे शरीर छूटनेका समय आनेसे पूर्व, अंतरमें चेतकर—सावधान होकर अनुभवनेका उद्यम कर। निज ज्ञायक भगवान आत्माकी ही वास्तवमें सच्ची शरण है। अरहंते सरणं पव्वज्ञामि, सिद्धे सरणं पव्वज्ञामि, साहू सरणं पव्वज्ञामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्ञामि—यह तो विकल्प है, शुभराग है। 'धर्म' भी पर्यायकी बात है। अरहंतादि परद्रव्य तो इस आत्माको परमार्थतः शरणभूत नहीं हैं, किन्तु धर्म भी, पर्याय होनेसे, सदा शरणभूत नहीं है। सदा शरणभूत तो त्रिकाल शुद्ध परमानन्दपिण्ड निज भगवान आत्मा ही है। भगवान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा साधकपरिणतिको सदा शरणभूत तो है ही, परन्तु विपत्तिके समय—डबल न्युमोनिया हो, साँस लेनेमें भयंकर वेदनासे कराहता हो, आँखोंसे आँसूकी धारा बह रही हो, ऐसे समय—विशेष शरणभूत होता है। शरणभूत ऐसे निज शुद्धात्मद्रव्यको अनुभवमें ले, उसका वेदन कर। अहा! यह ४०९वाँ बोल अति सरस आया है, वीतरागभावका अधिकार है। भीतर परद्रव्यसे तथा रागादि विभावोंसे भिन्न–निराला–जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है वही सदा शरणभूत है, विपत्तिके समय विशेष–विशेष शरणभूत है। बहिनके ३७७वें बोलमें उदाहरण आया था न! कि—जिसप्रकार माताका पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ कठिनाई दिखने पर विशेष जोरसे पल्ला पकड़ लेता है, उसीप्रकार धर्मी जीव विपत्तिके समय—परिषह–उपसर्ग आने पर—निज शुद्धात्मद्रव्यको उग्ररूपसे पकड़ता है, शुद्ध चैतन्यको पकड़कर उसको अनुभवनेका उग्ररूपसे उद्यम करता है।

यहाँ भी ऐसा कहते हैं कि—तू शरीर छूटनेका समय आनेसे पूर्व अंतरमें चेत जा, सावधान हो जा, सदा शरणभूत–संकटके समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे आनन्दनिधान निज शुद्धात्मद्रव्यको अनुभवनेका शीघ्र उद्यम कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१६८

दिनांक २-१२-७८

वचनामृत-४१०

जिसने आत्माके मूल अस्तित्वको नहीं पकड़ा, 'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुखसे भरपूर है' ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणतिकी धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखोंको नाशवंत और भविष्यमें दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो, भले ही वह दुर्द्धर तप करता हो और उपसर्ग-परिषहमें अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाणका कारण नहीं होता, स्वर्गका कारण होता है; क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिलकुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेयबुद्धिसे—वर्तता है। वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो तथापि उसने आत्माका मूल द्रव्यसामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होनेसे वह सब अज्ञान है।

सच्चे भावमुनिको तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है, कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है, उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है, परम समाधि परिणमित होती है। वे शीघ्र-शीघ्र निजात्मामें लीन होकर आनन्दका वेदन करते रहते हैं; उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है। वह दशा अद्भुत है, जगतसे न्यारी है। पूर्ण वीतरागता न होनेसे उनके व्रत-तप-शास्त्ररचना आदिके शुभभाव आते हैं अवश्य, परन्तु वे हेयबुद्धिसे आते हैं। ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्तिका कारण है॥४१०॥

"जिसने आत्माके मूल अस्तित्वको नहीं पकड़ा, स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनन्त सुखसे भरपूर है' ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणतिकी धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखोंको नाशवंत और भविष्यमें दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो, भले ही वह दुर्द्धर तप करता हो और उपसर्ग-परिषहमें अडिग रहता हो तथापि उसे वह सब निर्वाणका कारण नहीं होता; स्वर्गका कारण होता है; क्योंकि उसे शुद्धपरिणमन बिलकुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेय बुद्धिसे—वर्तता है।"

जिसने ज्ञानस्वरूप आत्माके मूल अस्तित्वको, कर्म-नोकर्मसे भिन्न तथा रागादि विभावोंसे रहित शुद्ध त्रैकालिक सत्त्वको अंतरमें ग्रहण नहीं किया उसको व्रत, तपादि

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाह्यक्रियाएँ अथवा शास्त्रोंका बहिर्लक्षी ज्ञातृत्व—वह सब धर्म या मोक्षका कारण नहीं होता। इस बोलमें बात कुछ सूक्ष्म है भाई! 'मैं, मैं, मैं' रूपसे संवेदनमें आता हुआ यह 'आत्मा' है न! सर्वज्ञ जिनेश्वरदेवने उसका जो मूल अस्तित्व—स्थायित्व, शुद्ध सत्त्व—कहा है वह ज्ञानावरणीयादि समस्त कर्मोंसे तथा शरीर, मन, वाणी आदि नोकर्मसे भिन्न और उसकी पर्यायमें पुण्य–पापके जो विभाव होते हैं उनसे भी रहित है; अरे! उसकी एक समयकी शुद्ध पर्याय भी उसका मूल त्रैकालिक अस्तित्व नहीं है। उसका मूल अस्तित्व तो ज्ञान एवं आनन्दादि अनंत गुणस्वभावोंसे रचित एकरूप अभेद सामान्य द्रव्य है। वह एकरूप, केवलज्ञानादि अनन्त सामर्थ्योंसे परिपूर्ण, त्रिकाल शुद्ध, द्रव्यसामान्यरूप निज मूल अस्तित्वको जिसने अंतरमें ग्रहण नहीं किया है उसे धर्मके नामसे कहे जानेवाले दीक्षा, व्रत, तप शास्त्राभ्यास आदि सर्व साधन निर्वाणका कारण नहीं होते, स्वर्गका कारण होते हैं, क्योंकि उसके अंतरमें द्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाला शुद्ध परिणमन अंशतः भी नहीं वर्तता, मात्र शुभपरिणाम ही—वह भी कर्तृत्वबुद्धिसे—वर्तता है।

अपने मूल अस्तित्वको पकड़ा नहीं है और 'आत्मा अनादि–अनन्त नित्यस्थायी शाश्वत, स्वतःसिद्ध, अनन्त सुखसे भरपूर, अनन्त महिमावन्त महान पदार्थ है'—ऐसे अपने त्रैकालिक शुद्धस्वरूपका अनुभव करके शुद्ध परिणतिकी धारा प्रगट नहीं की है, इसलिये उसे धर्म या धर्मका फल—मोक्ष नहीं होता। तीन बातें कही हैं—आत्माका मूल अस्तित्व, उसका अनादि –अनन्त रहनेवाला स्वयंसिद्ध शाश्वत तत्त्व तथा अनन्तसुखसे परिपूर्णता। अहा! उसका मूल अस्तित्व शरीर नहीं, वाणी नहीं, शुभाशुभ विभाव नहीं, अरे! पर्याय जितना भी नहीं, परन्तु अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर त्रैकालिक द्रव्यसामान्यरूप है। उसका अंतरमें स्वीकार करके–अनुभव करके साधकभावरूप शुद्धपरिणतिकी धारा जिसने प्रगट नहीं की उसे कोई भी बाह्यत्यागादि कल्याणका किंचित् कारण नहीं होता।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरने जो 'आत्मा' कहा है उसका मूल अस्तित्व शरीरादि सर्व परद्रव्योंसे न्यारा है; उसका मूलस्वरूप शाश्वत है, उसके ज्ञान और आनन्दादि समस्त गुण भी शाश्वत हैं—इसप्रकार उसके द्रव्यसामान्यरूप शुद्ध सत्त्वको अंतरमें ग्रहण करके, 'यह चिन्मय शुद्ध एकरूप अस्तित्व ही मैं हूँ' ऐसा अंतरमें स्थाप कर—उसका अतीन्द्रिय अनुभव करके जिसने शुद्ध परिणतिकी धारा प्रगट नहीं की उसे दुर्द्धर तप, उपसर्ग –परिषह सहन करना आदि निर्वाणका किंचित् कारण नहीं होता। आत्मा ज्ञानादि अनंत शक्तियुक्त वीतराग स्वरूपमें विराजमान है, उसकी प्रत्येक शक्ति—जीवत्वशक्ति, ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति, वीर्यशक्ति आदि समस्त शक्तियाँ—वीतरागस्वरूपमें विराजमान है। ऐसे अनंतशक्तियुक्त निज द्रव्यसामान्यका अंतरमें स्वसन्मुख दृष्टि करके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव नहीं करे तो शुद्ध परिणतिकी धारा—मोक्षमार्गरूप निर्मल दशा—कहाँसे प्रगट होगी?

जिसने आत्माके शुद्धस्वरूपको ग्रहण नहीं किया, अनन्त सुखसे भरपूर निज शाश्वत तत्त्वका अनुभव करके जिसने शुद्ध परिणतिकी धारा प्रगट नहीं की, उसने भले ही सांसारिक विषयसुखोंको नाशवान तथा भविष्यमें दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो—पाँच इन्द्रियोंके विषय वर्तमानमें दुःखरूप हैं ऐसा न जाना हो, परन्तु भविष्यमें दुःख देनेवाले हैं, इसलिये मुझे छोड़ देने चाहिये—ऐसा जानकर इन्द्रियसुखोंका त्याग कर दिया हो तथा बाह्य मुनिपना ग्रहण कर लिया हो—बाह्यमें हजारों रानियोंको छोड़कर राजपाट छोड़कर नग्न मुनिदशा अंगीकार की हो; भले ही वह दुर्द्धर तप करता हो—एक-एक महीनेके उपवास करके पारणेके दिन रुखा आहार लेता हो—भले ही उपसर्ग-परिषहमें अडिग रहता हो—गर्जना करते हुए सिंह और वाघ जैसे प्राणियोंके भयंकर उपसर्गमें अचल रहता हो, तथापि वह सब उसे मोक्षका कारण नहीं होता। उससे स्वर्ग प्राप्त होगा, किन्तु जन्म-मरणका अंत नहीं हो सकता। मरकर देव होगा, अरबपति सेठ—धूलका स्वामी—होगा और फिर चार गतियोंमें भटकता फिरेगा, क्योंकि उसे शुद्ध चिदानन्दरूप निज मूल अस्तित्वके ग्रहणपूर्वक ज्ञानादि अनन्त सामर्थ्यभरपूर अपने शाश्वत तत्त्वके अनुभवसहित शुद्ध परिणमन अंशतः भी नहीं वर्तता। मात्र दया, दान, व्रत, तप, भक्ति आदि शुभ परिणाम ही—और वे भी उपादेयबुद्धिसे—वर्तते हैं।

शुद्ध परिणमन कैसे प्रगट होता है? कि—निज त्रैकालिक शुद्धात्म द्रव्यसामान्यको लक्षगत करके उसका अनुभव करनेसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं अंशतः स्वरूपस्थिरतारूप शुद्ध परिणमन प्रगट होता है। जिसने शुद्धात्म द्रव्यस्वभावका आश्रय लेकर शुद्ध परिणमनकी धारा प्रगट नहीं की वह भले ही स्त्री-बच्चोंको छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर ले, कठिन तप करे, भयंकर उपसर्ग एवं परिषह सहे, कषाय मन्द करके शुक्ल लेश्या—शुक्लध्यान नहीं—प्रगट करे, तथापि उसे वह सब मुक्तिका कारण नहीं होता, शुभभाव है इसलिये स्वर्गका कारण होता है। सम्यग्दर्शनके बिना शुभभावसे देव होगा, परन्तु ऐसा देवत्व तो जीव अनन्त बार प्राप्त कर चुका है।

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

पंच महाव्रत पाले, इन्द्रिय-दमन करे, तथापि वह स्वर्गका कारण है, मोक्षका कारण नहीं है; क्योंकि उसे द्रव्य स्वभावकी दृष्टि तथा तदाश्रित शुद्ध परिणति बिलकुल नहीं वर्तती। नववें ग्रैवेयकमें जाय ऐसे शुक्ललेश्याके परिणाम वर्तमान कालमें तो हैं नहीं, परन्तु पूर्व भवोंमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे शुभभाव जीवने अनन्तबार किये हैं। उसने नहीं किया तो एकमात्र निज परमात्मस्वभावको अंतरमें ग्रहण करनेका यथार्थ प्रयत्न नहीं किया। अहा! अंतरमें सुखका सागर वीतराग ज्ञायक परमात्मा विराजता है। अरिहंत भगवानको पर्यायमें जो अनंत आनन्द है वह कहाँसे आता है? क्या बाहरसे आता है? भीतर त्रैकालिक द्रव्य स्वभावके आश्रयसे आता है। उसकी जिसे अंतरंग रुचि तथा उन्मुखता नहीं है उसका परिणमन अशुद्ध ही रहता है। कदाचित् कषाय मन्द करे तो शुभभाव होता है और उसके फलरूप स्वर्गमें जाता है, परन्तु वहाँसे चयकर परिणामानुसार नर-पशु आदि चार गतियोंमें भ्रमण करता है। 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पायो, फिर पीछे पटक्यो'—आनन्दसागर आत्माका सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक अनुभव प्रगट किये बिना द्रव्यसंयम अंगीकार करके शुक्ल लेश्याके बलसे अनन्तबार नववें ग्रैवेयकमें हो आया, परन्तु एक भव भी कम नहीं हुआ; वहाँसे पटका तो मनुष्य हुआ, वहाँसे मरकर पशुपर्याय धारण की, फिर मरकर जायगा नरक-निगोदमें। अहा! ऐसी बात है भाई!

पालेजमें जब दुकान पर बैठता था तब 'सज्झायमाला' की दो बातों पर—'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पायो, फिर पीछे पटक्यो' तथा 'केवलीके आगे रह गयो कोरा'—लक्ष गया था। 'केवलीके आगे रह गया कोरा' का अर्थ क्या? जीव वीतराग केवलज्ञानी परमात्माके पास अनन्तबार गया है; विदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधर भगवान आदि बीस तीर्थंकर केवलज्ञानी परमात्माके रूपमें वर्तमानमें विराज रहे हैं; महाविदेहक्षेत्रमें तीनों काल केवली परमात्मा सदा विराजते हैं, वर्तमान विराजमान तीर्थंकर और केवली मोक्ष जाते हैं और दूसरे नये होते हैं; विदेहक्षेत्र कभी तीर्थंकरों एवं केवलियोंसे रिक्त नहीं होता। वहाँ भी यह जीव अनंतबार समवसरणमें गया, अनंतबार द्रव्यलिंगी दिगम्बर मुनि हुआ, परन्तु 'केवलीके आगे रह गया कोरा'—अंतरमें, केवली परमात्माके कहे हुए शुद्धात्मतत्त्वका स्पर्श नहीं दिया, बाह्य क्रियाकाण्डमें लीन रहा, क्रियासे और रागसे भिन्न जो त्रिकाल शुद्ध निजचैतन्यस्वरूप उसका स्पर्श नहीं किया—अंतरमें नहीं उतारा, निज ज्ञायकभावका अनुभव नहीं किया। उसने बाह्य मुनिपनेका पालन किया, दुर्द्धर तप किया, शुक्ललेश्या प्रगट की, तथापि अंतरमें शुद्धात्माके अनुभव बिना वह सब मुक्तिका कारण नहीं होता, मात्र स्वर्गका कारण होता है।

आत्मज्ञानशून्य जीवको, भले ही वह करोड़ों वर्ष तक मुनिपनेका पालन करे, उग्र तपश्चर्या करे, अंतरमें शुद्ध परिणमन किंचित् नहीं वर्तता, मात्र शुभपरिणाम ही—और वह भी उपादेय बुद्धिसे—वर्तते हैं। अशुभ और शुभ दोनों विभाव हेय हैं, मात्र शुद्धभाव ही उपादेय है। शुभपरिणाममें उपादेयबुद्धिका वर्तना ही मिथ्यात्व है, क्योंकि उसने हेयतत्त्वको उपादेय माना। अंतरमें त्रिकाल शुद्ध चैतन्य परमभाव ज्ञायक प्रभु जो कि परम उपादेय है उसे उसने हेयरूप किया और रागको उपादेयरूप किया, वह मिथ्यात्व और अनन्त संसारका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण है। जिसे शुभरागमें उपादेय बुद्धि वर्तती है वह भले ही व्रत, उपवास, भक्ति, पंचपरमेष्ठीका स्मरणादि करे, तथापि उसे किंचित्‌मात्र धर्म नहीं होता, कषायकी मन्दता हो तो स्वर्गकी, उससे भी अधिक नववें ग्रैवेयककी प्राप्ति होती है; परन्तु भवका अभाव अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति कदापि नहीं होती।

'वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो तथापि उसने आत्माका मूल द्रव्य सामान्यस्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होनेसे वह सब अज्ञान है।'

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव बाह्य मुनिपना लेकर ग्यारहअंग और नौ पूर्व जितने द्रव्यश्रुतका अभ्यास करले, परन्तु अंतरमें निज शुद्धात्माके ग्रहण तथा अनुभवनस्वरूप भावश्रुतका अंशतः भी परिणमन नहीं होनेसे, उसका वह समस्त बहिर्लक्षी ज्ञातृत्व—अध्ययन अज्ञान है। अंग और पूर्वका विस्तार बहुत विशाल है। प्रथम आचारांगमें अठारह हजार पद हैं, एक-एक पदमें इक्यावन हजार श्लोक हैं। तत्पश्चात् दूसरे अंग अनुक्रमसे दुगुने-दुगुने विस्तारवाले हैं। ऐसे ग्यारह अंग और नौ पूर्वको पहले अनन्तबार पढ़ गया, परन्तु जो पढ़ना था वह—निज शुद्धात्माका स्वरूप—नहीं पढ़ा। आत्माका मूल द्रव्यसामान्यस्वरूप -नवतत्त्वरूप विशेषोंको गौण करके निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—अनुभव सहित नहीं जाना होनेसे वह सब बाह्य ज्ञातृत्व अज्ञान है, धर्म या धर्मका साधन नहीं है। अहा! ऐसी भाषा! अरे भाई! क्या किया जाय? द्रव्यसामान्यस्वरूप मूल वस्तुके बिना बाह्यमें—जानकारी और क्रियामें—दौड़धाम की, परन्तु जन्म-मरणका अन्त नहीं आया।

'आत्मा सामान्य-विशेषात्मक वस्तु है; उसके शुभ, अशुभ या शुद्ध भावरूप विशेषोंको गौण करके उसका मूल सामान्यस्वरूप देखा जाय तो वह त्रिकाल शुद्ध, ज्ञान एवं आनंदादि अनन्त शक्तियोंसे सदा परिपूर्ण है'—ऐसा ग्यारहअंग और नौ पूर्वके अभ्यासमें आया, धारणामें लिया, परन्तु अपने त्रिकाल शुद्ध ज्ञानादि सामर्थ्य भरपूर मूल द्रव्यसामान्यस्वरूपको अनुभवपूर्वक नहीं जाना, इसलिये उसकी अन्य सब जानकारी अज्ञान है। अहा! यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) पढ़कर भावनगरका वह प्रोफेसर कहता है कि—'इसमें तो निधान भरे हैं।' अरे! अन्य धर्मावलम्बी भी समझना चाहे तो समझ सके ऐसा है।

सामान्य अर्थात् वस्तुका त्रैकालिक एकरूप ध्रुव द्रव्य और विशेष अर्थात् वस्तुकी वर्तमान पलटती हुई क्षणिक पर्याय। अरेरे! जैनमें जन्म लेकर, द्रव्य क्या और पर्याय क्या—उसकी भी खबर नहीं होती। वणिकोंको व्यापार-धंधेसे अवकाश नहीं मिलता, और कदाचित् घन्टे -दो घन्टेका समय निकालकर सुनने जायँ तो वहाँ कुगुरु उनका समय लूट लेते हैं। यह करो और वह करो, व्रत करो और तप करो, दान करो और भक्ति करो—इसप्रकार बाह्यक्रियामें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्म मानकर—मिथ्यात्वका पोषण करके—कुगुरुके कुसंगसे उसने अपने आत्माका घात कर दिया, भयंकर भावमरण किया। अरे रे! संसारमें कहाँ भटकता फिर रहा है? अपने द्रव्यस्वभावमें यदि पवित्रताका परिपूर्ण सामर्थ्य नहीं हो तो तीर्थंकरोंको—अरिहंतोंको पर्यायमें जो पूर्ण पवित्रता प्रगट होती है वह कहाँसे आयगी? क्या कहीं बाहरसे आती है? अंतरमें परिपूर्ण पवित्र द्रव्य स्वभावको अनुभवपूर्वक नहीं जाना, इसलिये उसका सब अभ्यास-अध्ययन तथा महाव्रतादिका आचरण अज्ञान और मिथ्याचारित्र है।

अब सच्चे मुनिकी बात करते हैं।—

'सच्चे भावमुनिको जो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्ध परिणति चलती रहती है, कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है, उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है, परम समाधि परिणमित होती है।'

वीतराग सर्वज्ञ परमात्माके पंथमें ही सच्चे भावमुनि हो सकते हैं, अन्य किसी पंथमें नहीं हो सकते। जिनको अंतरमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकतापूर्वक आनन्दका अनुभव प्रगट हुआ है ऐसे भावलिंगी मुनिवरको तो निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके अवलम्बनसे प्रगट हुई मुनियोग्य उग्र शुद्ध परिणति चलती ही रहती है। 'मुनियोग्य उग्र शुद्ध परिणति'—ऐसा क्यों कहा? कि—प्रथम भूमिकाके धर्मीको—अविरत सम्यग्दृष्टिको तथा देशविरत श्रावकको भी शुद्ध परिणति सतत वर्तती है, परन्तु मुनि जैसी उग्र शुद्धपरिणति उनके नहीं होती। श्रेणिक राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने पर भी उनके, अपने योग्य—अविरत भूमिकाके योग्य—शुद्ध परिणति थी। मुनियोग्य उग्र शुद्ध परिणति तो निज शुद्धात्मद्रव्यके आश्रयसे विशेष स्थिरतारूप परिणमित सच्चे संतको—भावलिंगी मुनिराजको ही—निरन्तर वर्तती रहती है। वह उग्र शुद्धपरिणति वीतराग सर्वज्ञ जितनी परिपूर्ण भी नहीं है, तथा अविरत सम्यग्दृष्टि जितनी अल्प भी नहीं है, मध्यम है।

अहा! देहादि परद्रव्य, रागादि विकारी भाव, दया-दानादि प्रशस्त विकल्पादिसे भिन्न ऐसे निज शुद्धात्माके अवलम्बनसे जिनके मुनियोग्य शुद्धपरिणति सतत चलती रहती है ऐसे सच्चे भावमुनिको कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होते ही छूट जाता है। क्या कहा? कि—'मैं परद्रव्यकी क्रिया कर सकता हूँ, पर जीवको मार या बचा सकता हूँ, सुखी-दुःखी कर सकता हूँ, बाँध या मुक्त कर सकता हूँ'—ऐसी कर्तापनेकी परिणति तो आत्मप्रतीति होते ही छूट जाती है। हाथको हिलानेकी क्रिया तो आत्माकी नहीं है, किन्तु आत्माकी पर्यायमें जो शुभाशुभ राग हो वह भी आत्माका स्वभावकर्म नहीं है, परमार्थसे आत्मा उसका कर्ता नहीं है; —ऐसा परका तथा विभावका कर्तृत्व तो ज्ञानीको सम्यग्दर्शन होते ही छूट जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे रे! वीतराग सर्वज्ञ भगवानका विरह हुआ! तीन लोकके नाथ महावीर प्रभु मोक्ष पधारे। वर्तमानमें श्री सीमंधरभगवान आदि बीस तीर्थंकर विदेहक्षेत्रमें अरिहंतपद पर विराज रहे हैं। भरतक्षेत्रमें भगवानका विरह हुआ; उनका कहा हुआ सनातनमार्ग बहुत छिन्न-भिन्न हो गया। यहाँ कहते हैं कि—जैनदर्शनमें जो सच्चे संत—भावलिंगी मुनिवर—होते हैं उनको शुद्धात्मस्वभावके आश्रयसे मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति निरन्तर वर्तती ही रहती है। धर्मकी प्रारम्भिक दशावाले सम्यग्दृष्टिको भी स्वयोग्य शुद्ध परिणति होती है, अन्यथा वह धर्मी ही नहीं है।

उग्र शुद्ध परिणतिके साथ मुनिराजको भले ही पंचमहाव्रतादिके शुभ विकल्प आयें, परन्तु वे तो राग हैं, उनका कर्तृत्व तो सम्यग्दर्शन होते ही छूट गया है। 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—इन सच्चे सन्तोंको अंतरंगमें वीतराग परिणति उग्ररूपसे वर्त रही है, प्रचण्ड ज्ञानधारा सतत प्रवाहमान है। ऐसे भाव मुनिराजको 'पंचमहाव्रतके निर्दोष पालन हेतु शरीरकी निरवद्य क्रिया मैं कर सकता हूँ, भाषा समितिपूर्वक हित–मित–प्रियवचन मैं बोल सकता हूँ'—ऐसे पर द्रव्यभावका कर्तृत्व सम्यग्दर्शन होते ही छूट जाता है। मैं शरीरकी क्रिया कर सकता हूँ, खान–पानकी, व्यापार–धन्धेकी तथा खेलने–कूदनेकी क्रिया मेरी है—ऐसी परकी –जड़की क्रियाका अपनेको कर्ता माननेवाला जीव मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। वह जैन नहीं है, वह तो परका कर्ता होकर मिथ्यात्वभावका सेवन करता है। आत्मा मात्र ज्ञानस्वरूप भगवान है—ऐसी प्रतीतिपूर्वक जहाँ सम्यग्दृष्टिपना हुआ वहाँ परकी क्रियाका कर्तृत्व तो छूट ही जाता है, परन्तु जो अस्थिरतारूप रागकी क्रिया अपनी पर्यायमें होती है उसका कर्तापना भी, द्रव्यदृष्टिके बलसे, छूट जाता है। अहा! ऐसी बातें हैं......आता है कुछ समझमें?

ज्ञायकभावमें उग्र अवलम्बनरूप वर्तते हुए शुद्धज्ञानधारावन्त मुनिराजको परका और विभावका कर्तृत्व छूट जाता है और साथ ही साथ उग्र ज्ञातृत्वधारा—मैं मात्र शुद्ध ज्ञाता हूँ—ऐसी अनुभवयुक्त परिणमनधारा—अविच्छिन्न वर्तती है। पंचमहाव्रत एवं पाँचसमिति आदिके परिणाम आयें, परन्तु उनके वे कर्ता नहीं होते; क्योंकि अंतरमें सम्यग्दर्शन –अनुभवसहित शुद्धात्मदर्शन—होते ही परके तथा विकल्पके (व्रतादिके भाव भी विकल्प हैं, राग हैं) कर्तृत्वकी बुद्धि छूट गई है। अहा! जिन्हें साधु परमेष्ठी कहा जाता है वे सच्चे सन्त कैसे होते हैं? उनके तो वस्त्रका एक टुकड़ा भी नहीं होता, वे नग्न दिगम्बर दशासे वनमें वास करते हैं। ऐसे वीतरागी साधक सन्तको 'मैं मात्र ज्ञाता–द्रष्टा हूँ, परके तथा रागादि विभावके कर्ता–भोक्तापनेकी गंध भी मेरे स्वभावमें नहीं है'—ऐसी उग्र ज्ञातृत्वधारा अविच्छिन्न—खण्डित हुए बिना—वर्तती है। अरे रे! इस समय इस क्षेत्रमें ऐसे भावलिंगी सच्चे सन्तोंका विरह हुआ है। अविच्छिन्न ज्ञातृत्वधाराका प्रारम्भ तो चतुर्थ गुणस्थानमें ही हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाता है और मुनिराजको तो वह अति उग्र होती है। वह वीतरागी ज्ञानधारा मात्र जानती है; राग हो उसे जानती है, ज्ञान हो उसे जानती है, वीतरागता हो उसे जानती है। अहा! जैन परमेश्वर द्वारा कहा गया वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है भाई! वीतरागमार्गमें प्रवर्तन करते हुए सच्चे सन्तोंको तीनकषायोंका (अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण—इन तीन कषायचौकड़ीका) अभाव तथा उग्र ज्ञातृत्वधारा—ज्ञानचेतनामात्र परिणति अखण्ड वर्तती है।

उस उग्र ज्ञातृत्वधारारूप सतत वर्तते हुए सन्तोंको परमसमाधि परिणमित हुई है। अहा! परमसमाधि किसे कहते हैं? कि—अंतरमें ज्ञायकस्वभावके उग्र अवलम्बनसे अतीन्द्रिय आनन्दकी दशामें तीव्र वृद्धि हुई हो, अकषाय शान्ति, शान्ति, शान्तिकी सहज स्थिति परिणमित हुई हो उसे परमसमाधि कहा जाता है। साधु–बाबा लोग प्राणायामके बलसे अमुक दिनों तक धरतीमें गड्ढा खोदकर दबे रहें वह कोई समाधि नहीं है। अंतरमें—आत्मामें—आधि, व्याधि एवं उपाधिके परिणामसे रहित समतारूप वीतराग परिणाम हों उसे समाधि कहा जाता है। उपाधि अर्थात् स्त्री, पुत्र, व्यापार–धन्धा आदि बाह्य संयोग, व्याधि अर्थात् शरीरमें रोग होना आदि और आधि अर्थात् मनके सम्बन्धसे होनेवाले पुण्य–पाप तथा सुख–दुःखके विकल्प—इन तीनों चिन्ताओंसे—आधि, व्याधि और उपाधिके परिणामसे—रहित परम समाधिरूप आनन्दकी दशामें मुनिराज उग्ररूपसे परिणमित हो जाते हैं। धर्मोपदेश श्रवण करूँ–श्रवण कराऊँ ऐसे विकल्पमें आये न आये और दूसरे ही क्षण भीतर स्वरूपमें समा जाते हैं। अहा! ऐसी दशारूप परिणमित साधक सन्त अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेते हैं।

'वे शीघ्र–शीघ्र निजात्मामें लीन होकर आनन्दका वेदन करते रहते हैं।'

मुनिराज शुद्ध चिदानन्दमूर्ति निजज्ञायक प्रभुका उग्र आश्रय लेकर—शीघ्र–शीघ्र स्वरूपमें लीन होकर—अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन करते हैं। भीतर चैतन्यभवनमें तो आनन्द ही आनन्द है, बाहर विकल्पमें आने पर परदेशमें आ जाने जैसा दुःख लगता है। बहिनके ४०१वें वचनामृतमें आया था न! कि—ज्ञानीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपकी ओर आनन्दमें ढल रहा होता है। उनको व्रतादिके विकल्प आते हैं वहाँ ऐसा लगता है कि 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है, इस विभावरूप परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? यह व्रत, तप और भक्ति आदिके विकल्प हमारा परिवार नहीं है; हमारा परिवार तो भीतर ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द तथा वीर्यादि अनन्तगुणरूप निर्मलताएँ हैं।' अहा! ऐसी बातें और ऐसा मार्ग है, सुनना कठिन लगे ऐसा है।

'उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि—प्रचुर आनन्दझरता स्वसंवेदन हमें वर्त रहा है। आनन्दझरता स्वसंवेदन सम्यग्दृष्टिको अल्प होता है, मुनिराजको प्रचुर होता है। मुनिराजको तो अतीन्द्रिय आनन्दका उफान आता है। दूधका उफान तो पोला होता है, यह ठोस होता है। मुनिराज शीघ्र-शीघ्र निजात्मामें लीन होकर आनन्द झरते प्रचुर स्वसंवेदनका वेदन करते हैं।

'वह दशा अद्भुत है, जगतसे न्यारी है।'

'होता एक त्रिकालमें, परमारथका पंथ।' अहा! वीतरागस्वरूप प्रभुका यह पंथ कोई अलौकिक है—यह कोई अलौकिक दशा है—जगतसे बिलकुल न्यारी है।

अंतरमें भावमेंसे—गहरायीमेंसे भावना उठे तो मार्ग सरल हो। आत्मा शुद्ध चैतन्य है। अंतरंग रुचिपूर्वक उसकी भावना जागृत हो और वस्तुके लक्षसहित पठन-मनन करे तो मार्ग प्राप्त हो। श्री मोक्षमार्ग प्रकाशकमें आता है कि—पठन सच्चा हो तथापि जो मान और पूजाके लिये पढ़ता हो उसका ज्ञान मिथ्या है। उसका हेतु जगतको सन्तुष्ट करने तथा अपनी विशेषता-बड़प्पनकी पुष्टि करनेका हो तो उसका सब पठन-मनन अज्ञान है। —पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१६९

दिनांक ३-१२-७८

वचनामृत–४१० (चालू)

भगवान आत्मामें अनन्तगुण परिपूर्ण विद्यमान हैं। ज्ञान और आनन्दादि प्रत्येक गुण स्वभावसे परिपूर्ण है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरको ज्ञान एवं सुखादि गुणोंकी निर्मलताका परिपूर्ण स्वसंवेदन होता है। मुनिराजको भी एकदेश प्रचुर स्वसंवेदन और सम्यग्दृष्टिको अल्प स्वसंवेदन होता है। सामर्थ्यसे भरपूर ऐसे निज पूर्ण ज्ञायक स्वरूपकी अन्तर्दृष्टि होने पर जितने गुण हैं उनका निर्मल अंश सम्यग्दृष्टिको प्रगट हो जाता है। श्रीमद्‌में 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' और पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें 'चौथे गुणस्थानमें ज्ञानादि गुण एकदेश व्यक्त होते हैं' —ऐसा आता है। सर्वज्ञको ज्ञानादि गुण पूर्ण प्रगट हो गये हैं, निचली साधकदशामें एकदेश प्रगट हुए हैं। अहा! यह तत्त्वज्ञान तो अगम प्याला है भाई! ज्ञानकी पर्यायका स्व–पर प्रकाशक स्वभाव है, इसलिये वह अल्पज्ञानके समय भी स्वको तथा परको, स्वभावको तथा विभावको यथावत् जानता है। ज्ञान द्रव्यको जानता है, पर्यायको जानता है, विभावको जानता है और निमित्तको भी जानता है; उसका लक्ष अर्थात् रुचिका जोर पर्याय, विभाव या निमित्त पर नहीं है। ज्ञानका जोर तो अनन्त गुणके पिण्ड स्वरूप निज ध्रुव द्रव्यस्वभाव पर ही होता है। स्वभावके प्रति रुचिका जोर होनेके कारण चतुर्थ एवं पंचम गुणस्थानवर्ती साधक जीवको ज्ञान, आनन्द और शान्तिका स्वसंवेदन होता है, परन्तु वह अल्प होता है।

मुनिराजको तो ज्ञान, आनन्द और शान्तिका प्रचुर स्वसंवेदन होता है। उनकी प्रचुर स्वसंवेदनयुक्त दशा कोई अद्‌भुत है! दुनियासे बिलकुल न्यारी है। अहा! मुनिदशा अर्थात् परमेष्ठीदशा! अरे! आजकल तो एकाध शिष्य बन जाय तो हो जाते हैं आचार्य!......प्रभु! यह क्या करता है तू? अभी तो इसकी भी खबर नहीं है कि—दृष्टिका विषय क्या है? दृष्टि क्या है? सम्यग्दर्शन या साधुपना कुछ नहीं है वहाँ आचार्यपना कहाँसे आ गया? अरे! दुनियासे यह बात बिलकुल भिन्न है। समझमें नहीं आती, इसलिये लोगोंको दुःख लगता है और विरोध करते हैं, लेकिन क्या किया जाय? यहाँ कहते हैं कि—भगवान आत्मामें जो ज्ञान और आनन्दादि अनन्तानन्त गुण हैं उन सर्वगुणोंका, सम्यग्दर्शन होने पर अल्प वेदन होता है; मुनिदशामें तो उन सर्वगुणोंका प्रचुर संवेदन होता है। अहा! अद्‌भुत है वह दशा, जगतसे बिलकुल न्यारी है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'पूर्ण वीतरागता नहीं होनेसे उनको व्रत–तप–शास्त्ररचना आदिके शुभभाव आते अवश्य हैं, परन्तु वे हेयबुद्धिसे आते हैं।'

मुनिराजके विषयानुरागरूप अशुभपरिणाम तो होते ही नहीं; कदाचित् अल्प आर्तध्यान हो जाय, परन्तु उसकी गिनती नहीं है। उनके तो शुद्धपरिणतिरूप ज्ञानधारा तथा शुभपरिणतिरूप कर्मधारा—ऐसी शुद्ध और शुभ दो ही गिननेमें आयी हैं; आर्तध्यान कदाचित् है, परन्तु उसे गौण माना गया है। मुनिराजको पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई है, इसलिये व्रत–तप–भक्ति–शास्त्ररचना आदिके शुभपरिणाम आते अवश्य हैं, परन्तु उनमें उनको उपादेयबुद्धि नहीं है, कर्तृत्वबुद्धि नहीं है। 'आते अवश्य हैं'—ऐसा क्यों कहा? कि—ऐसे भूमिकानुसार शुभभाव वास्तवमें आते हैं, नहीं आते—ऐसा नहीं है। अन्तरमें ज्ञातृत्वपरिणतिरूप परिणमित हो गये हैं और इसलिये शुभभावके भी वे ज्ञाता हैं, कर्ता नहीं हैं—उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि उनको उनकी भूमिकाके योग्य व्रतादिके शुभभाव आते ही नहीं; आते अवश्य हैं, परन्तु वे हेयबुद्धिसे आते हैं।

अरे रे! आजकल तो त्यागी भी शुभभावको धर्म और चारित्र मानते हैं। सम्प्रदायके कोई साधु तो ऐसा भी कहते हैं कि—वर्तमान पंचमकालमें तो अकेला शुभयोग ही होता है। अरे! प्रभु! यह तुम क्या कहते हो? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव भी पंचमकालमें हुए हैं; उन्हें क्या अकेला शुभयोग था? क्या शुद्ध परिणति और शुद्धोपयोग थे ही नहीं? यदि शुद्ध परिणति और शुद्धोपयोग नहीं हो तो उनको क्षण–क्षणमें सातवाँ गुणस्थान–अप्रमत्त दशा कैसे सम्भव होगी? अरे रे! मार्गमें बहुत गड़बड कर दी है। शुभयोग तो आस्रव–बंधका कारण तथा दुःखरूप है। पंचमकालमें मुनिको तो मात्र वह शुभयोग ही होगा?—नहीं। मुनिराजकी अंतरंगदशामें शुद्धपरिणति निरन्तर बनी ही रहती है जो कि संवर–निर्जरारूप तथा मोक्षका कारण है। आनन्दनिधान भगवान ज्ञायकके उग्र आलम्बनसे जो दशा हुई वह शुद्ध, पवित्र एवं अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादवाली है। ऐसी शुद्ध साधकदशा पंचमकालमें भी प्रगट हो सकती है। मुनिराजको अंशतः वीतरागता प्रगट हुई है, पूर्ण वीतरागता नहीं हुई, इसलिये उनको व्रत, तप, स्वाध्याय आदिके शुभविकल्प आते हैं अवश्य, परन्तु वे हेयबुद्धिसे आते हैं।

'ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्तिका कारण है।'

भूमिकानुसार मुनिराजको व्रतादिके शुभभाव आने पर भी, उनको अंतरमें प्रचुर स्वसंवेदन सहित ज्ञानादि अनन्त गुणोंकी पर्यायमें जो व्यक्ततारूप शुद्ध परिणति हुई है वही मुक्तिका कारण है। प्रचुर स्वसंवेदनमय उग्र ज्ञानधारा ही—पवित्र मुनिदशा ही—मुक्तिका कारण है, व्रतादिका शुभराग नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–४११

अनन्त कालसे जीव भ्रान्तिके कारण परके कार्य करनेका मिथ्या श्रम करता है, परन्तु परपदार्थके कार्य वह बिलकुल नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे परिणमित होता है। जीवके कर्ता–क्रिया–कर्म जीवमें हैं, पुद्गलके पुद्गलमें हैं। वर्ण–गंध–रस–स्पर्शादिरूपसे पुद्गल परिणमित होता है, जीव उन्हें नहीं बदल सकता। चेतनके भावरूपसे चेतन परिणमित होता है, जड़ पदार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकते।

तू ज्ञायकस्वभावी है। पौद्गलिक शरीर–वाणी–मनसे तो तू भिन्न ही है, परन्तु शुभाशुभ भाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। अज्ञानके कारण तूने परमें तथा विभावमें एकत्वबुद्धि की है, वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा। शुद्ध आत्मद्रव्यकी यथार्थ प्रतीति करके—शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्तिका प्रयाण प्रारम्भ होगा।।४११।।

'अनन्तकालसे जीव भ्रान्तिके कारण परके कार्य करनेका मिथ्याभ्रम करता है, परन्तु पर पदार्थके कार्य वह बिलकुल नहीं कर सकता।'

अनादिकालसे जीव स्वरूपके अज्ञानके कारण, मिथ्यात्वरूप भ्रमके कारण परके कार्य –देशके, ग्रामके, समाजके, जातिके, संघके, कुटुम्बके, शरीरके तथा दया–दानादिके कार्य –करनेका प्रयत्न करता है, परन्तु परवस्तुके कार्य वह बिलकुल नहीं कर सकता। जीव परके कार्य तो नहीं कर सकता, परन्तु अपनी पर्यायमें जो शुभाशुभ विभाव होते हैं वह भी उसका स्वभावकार्य नहीं है। यह अँगुली हिलती है वह तो पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है। उसका कर्ता आत्मा नहीं है। वस्तु प्रति समय अपने षट्कारकरूप परिणमित होकर कार्यरूप होती है, उसमें अपने षट्कारकरूप परिणमता हुआ अन्य पदार्थ कुछ नहीं कर सकता। शरीरके रजकण अपने कारकोंरूप परिणमित होकर, हलन–चलन क्रिया करते हैं वहाँ उसे 'जीवने किया' ऐसा मानना वह भ्रम है। यह वस्त्र ऐसा था और ऐसा हो गया; वहाँ आत्मा तो उसकी क्रियाका कर्ता नहीं है, परन्तु ऐसा करनेका जीवको विकल्प आये वह भी उस वस्त्रकी क्रियाका कर्ता नहीं है। भ्रान्तिसे जीव मानता है कि मैंने विकल्प किया तो परपदार्थका कार्य—पैसेका लेन–देन, दान, पूजा, भक्ति आदि—हुआ।

'यह करूँ, वह करूँ, दयाका पालन करूँ, परजीवका घात न करूँ, सत्य बोलूँ—यह बाह्य क्रियाएँ करनेका प्रयत्न अज्ञानी जीव करता है, परन्तु परपदार्थमें वह कुछ कर नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकता; क्योंकि परपदार्थ और स्वपदार्थके बीच अत्यन्त-अभाव है। ऐसे तो वस्तुमें अपने द्रव्य-गुण-पर्यायके बीच भी अभाव है, परन्तु वह पृथक्त्वरूप अर्थात् भिन्न प्रदेशत्वरूप अभाव नहीं है, अतत्पनेरूप अभाव है। जीव और शरीरादि पुद्गलके बीच तो पृथकतारूप—भिन्न प्रदेशत्वरूप—अभाव है। आया कुछ समझमें? भाषा बोलनेका प्रयत्न करे, परन्तु बोलनेकी क्रिया आत्मासे नहीं होती। अहा! ऐसी बातें हैं! दुनियाको तो कठिन लगेंगी। पण्डित होकर ऐसा कहते हैं कि—'जीव परद्रव्यका नहीं कर सकता'—ऐसा मानते हैं वे जैन नहीं हैं। अरे प्रभु! तुझे यह क्या हो गया है? वीतराग सर्वज्ञ भगवान तो ऐसा कहते हैं, कि जीव शरीरादि परद्रव्योंके कार्य बिलकुल नहीं कर सकता। तो क्या भगवान दिगम्बर जैन नहीं हैं?

तथा कितने ही लोग कहते हैं कि—जीव निश्चयसे परद्रव्यके कार्य नहीं कर सकता, परन्तु व्यवहारसे कर सकता है। भाई! इसका क्या अर्थ? व्यवहार तो आरोपित कथन है। उसका अर्थ ऐसा है कि—जीव वास्तवमें द्रव्यके कार्य नहीं कर सकता, परन्तु जब परद्रव्यके कार्य उसके अपने कारण होते हैं तब उनके अनुकूल (जीवकी) इच्छा और योगका निमित्तपना होनेसे, जीवको व्यवहारसे कर्ता कहा जाता है, वास्तवमें जीव उनका कर्ता नहीं है। भाई! जगतमें अनन्त पदार्थ हैं या नहीं? वे पदार्थ अनन्तरूपसे पृथक् कब रहेंगे? सब अपने-अपने स्वरूप-अस्तित्वमें रहकर अपना ही—परका बिलकुल नहीं—कार्य करें तभी रहेंगे। आया कुछ समझमें?

परकी दया पालना, यत्नपूर्वक चलना, जहाँ जीव-जन्तु दिखायी दें वहाँ पाँवको ऊपर ले लेना—यह सब तो किया जा सकता है न? भाई! परमें कुछ भी नहीं कर सकता। परके कार्य किंचित् नहीं कर सकता, तथापि करनेका प्रयत्न करता है अर्थात् भाव करता है उन भावोंका भी कर्ता हो वह जीव, अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है। अहा! यह बात लोगोंको 'एकान्त' लगती है। कथंचित् कर्ता और कथंचित् अकर्ता—ऐसा अनेकान्त करो न! —ऐसा वे कहते हैं। भाई! अपना सब करे और परका बिलकुल न करे—यही सच्चा अनेकान्त है। परके कार्यमें तो जीवका बिलकुल अकिंचित्करपना है। समयसारके बन्ध अधिकारमें आता है न! कि—'जो हेतु कुछ भी नहीं करे वह अकिंचित्कर कहा जाता है। यह बाँधने-छोड़नेका अध्यवसान भी परमें कुछ नहीं करता; क्योंकि वह अध्यवसान नहीं हो तब भी जीव अपने सराग-वीतराग परिणामसे बंध-मोक्षको प्राप्त करता है, और वह अध्यवसान हो तब भी अपने सराग-वीतराग परिणामके अभावसे बंधमोक्षको प्राप्त नहीं करता। इसप्रकार अध्यवसान परमें अकिंचित्कर होनेसे स्व-अर्थक्रिया करनेवाला नहीं है, इसलिये मिथ्या है।' इसप्रकार जीव परके कार्य—खाना, पीना, कमाना आदि—बिलकुल नहीं कर सकता, तथापि वह परके कार्य करनेका मिथ्या प्रयत्न करता है—यह उसकी भ्रान्ति और अज्ञान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे परिणमित होता है।'

जीवादि प्रत्येक द्रव्य परिणाम स्वभावी होनेसे प्रति समय अपने उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप परिणाम स्वतंत्ररूपसे करता है। वस्तु प्रतिसमय अपने नवीन परिणामका उत्पाद करती है। नवीन परिणामका उत्पाद करनेमें वस्तु सम्पूर्ण स्वतंत्र है, उसमें किसी अन्य द्रव्यकी परमार्थतः सहायता या अपेक्षा नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपना कार्य करनेमें सम्पूर्ण स्वतंत्र होनेसे, आत्माके कारण परके कार्य होते हैं—ऐसा वस्तुस्वरूप वास्तवमें है ही नहीं। लोटकी लोई चौड़ी–गोल हुई वह बेलन और पटेके कारण नहीं। रोटी और बेलन दोनों पुद्गल होने पर भी उनके बीच अभाव है। अहा! ऐसा है तत्त्वका स्वरूप। भाई! यह तो धैर्यवानोंका कार्य है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्पर्श नहीं करता अर्थात् जीवादि कोई भी द्रव्य अन्य किसी द्रव्यका कार्य नहीं करता। तत्त्वका ऐसा स्वरूप भगवानने बनाया है—ऐसा नहीं है; भगवानने तो वस्तुस्वरूपको जैसा है वैसा जाना है। अहा! स्वतंत्ररूपसे निज कार्यरूप परिणमित होनेवाले तत्त्वको परद्रव्यके कार्यका कर्ता मानना वह अज्ञानीकी भ्रान्ति है।

'जीवके कर्ता–क्रिया–कर्म जीवमें हैं, पुद्गलके पुद्गलमें हैं।'

स्वभाव परिणमन हो या विभाव परिणमन हो—जीवकी क्रिया और कारक जीवमें हैं और पुद्गलकी क्रिया तथा कारक पुद्गलमें हैं। जीव और पुद्गल आदि जगतके समस्त पदार्थ स्वयं 'सत्' हैं; सत् होनेसे वे अनादि–अनन्त, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त स्वतःसिद्ध एवं पूर्ण स्वतंत्र हैं। वे मूल स्वरूपमें स्थायी एकरूप रहकर प्रतिसमय नवीन–नवीन क्रिया अर्थात् पर्यायें करता रहता है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण—यह छह क्रियाके कारक—क्रियाके साथ सम्बन्ध रखनेवाले विशेष—हैं। जीवकी विकारी या अविकारी क्रिया जीवमय है, इसलिये उसके कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि कारक जीवमय हैं; पुद्गलकी अणुरूप, स्कन्धरूप अथवा नव–जीर्णरूप क्रिया पुद्गलमय है, इसलिये उसके कारक पुद्गलमय हैं। इसप्रकार जीव और पुद्गल दोनों पृथक् पदार्थ होनेसे उनकी पर्यायके कारक भी पृथक् हैं। जीवपर्याय अपने अभिन्न छह कारकोंसे और पुद्गलपर्याय अपने अभिन्न छह कारकोंसे उत्पन्न होती है। जानना–देखना आदि जीवक्रिया अपने–जीवमय–कारकोंसे होती है और शरीरका हिलना, खाना, पीना आदि पुद्गलक्रिया अपने—पुद्गलमय—कारकोंसे होती है। इसप्रकार दोनोंकी पृथक्ताका भेदज्ञान होने पर अंतरमें जीवस्वभावका लक्ष होकर सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। अहा! ऐसी बातें हैं।

अगम पियाला पियो मतवाला, चिह्ने अध्यात्मवासा;
आनन्दघन चेतन है खेले, देखे लोक–तमासा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य ही अपनी पर्यायका कर्ता है और अपनी पर्याय ही द्रव्यका कर्म है; एक द्रव्यको पृथग्भूत अन्य द्रव्यके साथ वास्तवमें बिलकुल कर्ता-कर्मसम्बन्ध नहीं है। जीवको और उसके स्वभाव-विभाव परिणामको कर्ता-कर्म सम्बन्ध है और पुद्गलका तथा उसके कर्म-नोकर्म परिणामका कर्ता-कर्म-सम्बन्ध है। समयसारके सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें आता है न! कि —'सर्व द्रव्योंको अपने परिणामोंके साथ तादात्म्य है। इसप्रकार जीव अपने परिणामोंसे उपजता होने पर भी उसका अजीवके साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सर्व द्रव्योंको अन्य द्रव्यके साथ उत्पाद्य-उत्पादकभावका अभाव है; वह कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होने पर, अजीवको जीवका कर्मपना सिद्ध नहीं होता; और अजीवको जीवका कर्मपना सिद्ध नहीं होनेसे, कर्ता-कर्मकी अन्य द्रव्यसे निरपेक्षरूपसे स्वद्रव्यमें ही सिद्धि होनेके कारण जीवको अजीवका कर्तापना सिद्ध नहीं होता। इसलिये जीव अकर्ता सिद्ध होता है।' इसप्रकार जीव परपदार्थके कार्य बिलकुल नहीं कर सकता।

पंचास्तिकायसंग्रहकी ९वीं गाथामें द्रव्यकी व्याख्या करते हुए कहा है कि—'जं दवियदि गच्छादि ताइं ताइ सब्भाव-पज्जयाइं तं दवियं भण्णतै—उन-उन क्रमभावी और सहभावी स्वभावविशेषोंको जो द्रवता है—प्राप्त करता है—सामान्यरूप स्वरूपमें व्याप्त होता है वह द्रव्य है।' इस कथन द्वारा ऐसा कहना है कि जीवादि द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायोंको ही द्रवते हैं, करते हैं; कोई द्रव्य अन्य द्रव्यकी पर्यायको द्रवता नहीं है, करता नहीं है।

वि.सं. २०१३में मधुवन (सम्मेदशिखर) में तत्त्वचर्चा हुई थी। तब पंचास्तिकायसंग्रहकी ६२वीं गाथाका आधार देकर विस्तारसे कहा था कि—जीव और पुद्गल कर्म, निश्चयनयसे अभिन्नकारक होनेसे, अपनी-अपनी पर्यायके कर्ता हैं, परन्तु परस्पर (एक-दूसरेके) कर्ता नहीं हैं अर्थात् जीवके स्वभाव-विभाव कार्यका पुद्गलकर्म कर्ता नहीं है और पुद्गलकर्मके कार्यका जीव कर्ता नहीं है। जीवके औदयिकादि भावरूपसे परिणमित होनेकी क्रियामें वास्तवमें जीव ही स्वयमेव छह कारकरूप वर्तता होनेसे उसे अन्यकारकोंकी अपेक्षा नहीं है तथा पुद्गलकी कर्मोदयादिरूप या कर्मबन्धादिरूप परिणमित होनेकी क्रियामें वास्तवमें पुद्गल ही स्वयमेव छह कारकरूपसे वर्तता होनेसे उसे अन्य कारकोंकी अपेक्षा नहीं है। जीवकी और पुद्गलकी उपरोक्त क्रियाएँ एक ही कालमें वर्तती होने पर भी जीवभावरूप क्रियामें वर्तते हुए जीवके छह कारक पुद्गल कारकोंसे बिलकुल भिन्न तथा निरपेक्ष हैं और पौद्गलिक क्रियामें वर्तते हुए पुद्गलके छहकारक जीवकारकोंसे बिलकुल भिन्न तथा निरपेक्ष हैं। वास्तवमें किसी द्रव्यके कारकोंको किसी अन्य द्रव्यके कारकोंकी अपेक्षा नहीं होती। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे परिणमित होता है। जीवके कर्ता-कर्म-क्रिया जीवमें हैं और पुद्गलके पुद्गलमें हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार जीव परपदार्थोंके कार्यको बिलकुल नहीं कर सकता, तथापि भ्रान्तिके कारण अनादिकालसे परके कार्य करनेका मिथ्या प्रयत्न करता है।

अहा! यह तो स्वतंत्रताका ढिंढोरा है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे अपनी पर्यायका कर्ता है, उसके बदले ऐसा मानना कि आत्मा परके कार्य करता है—यह कितना महान भ्रम है? कौनसा द्रव्य पर्यायरहित है कि दूसरा द्रव्य उसकी पर्यायको करेगा? 'जीव परके कार्य करनेका प्रयत्न करता है'—ऐसा कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कार्य कदापि नहीं कर सकता। अधिक कहा जाय तो 'परके कार्य कर सकता हूँ' ऐसी भ्रान्ति और 'परके कार्य कर दूँ' ऐसा राग जीव करता है, परन्तु वह भ्रान्ति और राग जीवका स्वभाव नहीं है। 'मैं शुद्ध मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसी ज्ञातापरिणतिरूप परिणमना ही जीवका स्वभावभाव है। भूतार्थके आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय है।' अपने त्रिकालशुद्ध एकरूप ज्ञायक भूतार्थ स्वभावका आश्रय करके जीव अन्य द्रव्यकी अपेक्षा रखे बिना, स्वयमेव निज षट्कारकरूपसे परिणमता हुआ सम्यग्दर्शनरूप निर्मल पर्यायको उत्पन्न करता है।

जीवद्रव्य स्वभावतः ज्ञायक है। निज त्रिकालशुद्ध ध्रुव भूतार्थस्वभावका अंतरमें आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई, वह जीवने अपने षट्कारकरूप परिणमित होकर स्वयं प्रगट की है। वह कार्य होनेमें कर्म या अन्य निमित्तोंका कोई हिस्सा नहीं है। अहा! ऐसी बात है। जगतको कठिन लगेगी, लेकिन क्या करें? भूतार्थपना तो जीवका स्वभाव है, इसलिये उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं। तत्त्वाभ्यासके शुभरागसे तथा देव-शास्त्र-गुरुके निमित्तसे सम्यग्दर्शनादि होते हैं—ऐसा व्यवहारनयका कथन आता है, परन्तु वस्तुस्वरूपका वर्णन करते हुए तो जिसप्रकार होता है उसीप्रकार कहा जायगा। इसप्रकार जीव परद्रव्यके और परद्रव्य जीवके कार्य बिलकुल नहीं कर सकते।

प्रत्येक द्रव्य पारिणामिकभावसे अवस्थित है। प्रति समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी एकतारूप परिणाम करते रहना वह उसका सहज स्वभाव है। जीव भी प्रतिसमय अपनी मूल चैतन्यजातिको छोड़े बिना ध्रुवरूप रहकर पूर्वपर्यायका व्यय और नवीन पर्यायका उत्पाद करता है। अपनी मूल जातिका त्याग नहीं करता, इसलिये वह कथंचित् अपरिणामी है और अपने छह कारकोंसे नवीन-नवीन पर्यायको उत्पन्न करता है, इसलिये कथंचित् परिणामी है। इसप्रकार परिणामी तथा अपरिणामी अर्थात् नित्यता तथा अनित्यता वस्तुका सहज स्वरूप है। अनित्यता भी कथंचित् वस्तुका स्वरूप होनेसे, जीवके कर्ता-क्रिया-कर्म जीवमें हैं और पुद्गलके पुद्गलमें हैं। ऐसा वस्तुस्वभाव है, उसमें फिर प्रश्न क्या?

'वर्ण-गंध-रस-स्पर्शादिरूपसे पुद्गल परिणमित होता है जीव उन्हें नहीं बदल सकता।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्ण, गंध, रस और स्पर्शादि तो पुद्‌गल द्रव्यके त्रैकालिक गुण हैं। लाल, पीली, हरी तथा सुगन्ध–दुर्गन्ध, खट्टी–मीठी और कठोर–कोमल आदि दशाएँ उसकी पर्यायें हैं। उन पर्यायोंरूपसे स्वयमेव पुद्‌गल परिणमित होता है, जीव उसमें कुछ नहीं कर सकता। जीवादि अन्य द्रव्योंकी भाँति पुद्‌गलमें भी 'उत्पाद–व्यय–ध्रुवत्व' नामकी एक शक्ति है; उस शक्तिके कारण पुद्‌गल भी अपनी मूल जातिको छोड़े बिना अर्थात् ध्रुव एकरूप नित्य रहकर हरी –पीली आदि पर्यायोंरूपसे उत्पाद–व्यय करता है। अन्य द्रव्यकी भाँति उसमें एकत्व–अनेकत्व नामकी शक्तियाँ भी हैं। इसलिये द्रव्य–अपेक्षासे अर्थात् ध्रौव्य–अपेक्षासे वह सदा एकत्व तथा पर्याय–अपेक्षासे अर्थात् उत्पाद–व्ययकी अपेक्षासे अनेकत्वको धारण कर रखता है। प्रत्येक वस्तु द्रव्य–गुण–पर्याय ऐसे तीनरूप है। वस्तुमें द्रव्यत्व तथा पर्यायत्व नामकी शक्तियाँ भी हैं; इसलिये प्रत्येक वस्तु द्रव्यरूपसे—ध्रुवरूपसे—नित्य रहकर प्रतिसमय उत्पाद–व्यय अर्थात् पर्याय करती है। जहाँ वस्तु स्वयं ही अपनी पर्यायकी कर्ता है वहाँ अन्य वस्तु उसके कार्य —पर्याय करती है ऐसा मानना बड़ी भ्रान्ति है।

'चेतनके भावरूप चेतन परिणमित होता है उसमें जड़ पदार्थ कुछ नहीं कर सकते।'

चेतनके भाव अर्थात् चेतनकी पर्याय। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानकी पर्यायरूपसे –चेतनके भावरूपसे परिणमता है। द्रव्यको 'भाव' कहा जाता है, गुणको 'भाव' कहा जाता है और पर्यायको भी 'भाव' कहा जाता है। चेतनके अर्थात् जीवके भावरूपसे—वर्तमान पर्यायरूपसे, वर्तमान दशारूपसे—चेतन अर्थात् जीव परिणमता है, उसमें शरीर, वाणी, इन्द्रियादि जड़ पदार्थ कुछ नहीं कर सकते। भगवान आत्मा स्वभावतः ज्ञायकभाव है; उसकी वर्तमान पर्याय, जो कि स्व–पर प्रकाशकरूप परिणमती है, वह अपने षट्‌कारकोंसे परिणमती है; उसमें अन्य तत्त्व कुछ नहीं कर सकते।

द्रव्य सर्वज्ञस्वभावी है। जिसने सर्वज्ञको अपनी पर्यायमें स्थापित किया उसको सर्वज्ञ होनेका निर्णय आ गया। बस, वह 'ज्ञ' स्वभावमें विशेष स्थिरता करते–करते पर्यायमें सर्वज्ञ हो जायगा। —पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१७०

दिनांक २६-१२-७८

(दिनांक ४-१२-७८ से दिनांक २५-१२-७८ तक प्रवचन नहीं हुए थे)

वचनामृत–४११ (चालू)

उस दिन (दिनांक ३-१२-७८ के दिन) वचनामृतका ४११वाँ बोल आधा हो चुका था। आज थोड़ा फिरसे......अनादिकालसे जीव भ्रान्तिके कारण परके कार्य करना चाहता है, परन्तु वह परपदार्थोंका कार्य बिलकुल नहीं कर सकता। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि—'आत्माकी सत्ता द्वारा वे प्रवर्तते हैं ऐसा जानो।' तो दोनोंमें सच्चा क्या? भाई! शरीर, वाणी, इन्द्रियाँ और मनके कार्य आत्माकी सत्ताके कारण होते हैं—ऐसा कदापि नहीं है। शरीरका हलन–चलन आदि जड़के कार्यरूपसे पुद्गल द्रव्य स्वतंत्ररूपसे परिणमता है। श्रीमद्का कहना ऐसा नहीं है कि—'आत्माकी सत्ता द्वारा शरीरादिके कार्य होते हैं'; परन्तु शरीर, वाणी आदिकी नैमित्तिक व्यवस्थित प्रवृत्ति द्वारा निमित्तभूत तदनुकूल इच्छा और चेष्टारूप परिणत भिन्न आत्माका 'अस्तित्व' सिद्ध करना है। वास्तवमें तो आत्मा परपदार्थका कुछ कर नहीं सकता। खानेके समय रोटीके कौर तोड़ना, दाल पीना, मुँह खोलना, चबानेके लिये डाढ़ोंका हिलाना आदि परके कार्य जीव बिलकुल नहीं कर सकता।

प्रश्न :—परके कार्योंमें जीव निमित्त तो होता है ना?

उत्तर :—भाई! निमित्तका अर्थ ही वह है कि जो वास्तवमें परमें—नैमित्तिकभूत परपर्यायमें—कुछ करे नहीं। निमित्तमें व्यवहारसे अनुकूलतारूप परिणमन होने पर भी वह, कार्यमें कुछ करता नहीं है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है और स्व पर प्रकाशकपना वह ज्ञानका स्वरूप है। ज्ञानवन्त आत्मा परके कार्यको जानता है, परन्तु करता नहीं है। अनुकूल पदार्थ कार्यमें कुछ करता नहीं है, इसलिये वह निमित्त कहलाता है, यदि कुछ करे तो वह निमित्त न रहकर, उपादान हो जाय। उपादान–उपादेय सम्बन्ध तो सदा एक ही वस्तुमें होता है, दो वस्तुओंके बीचके सम्बन्धको तो निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं। वास्तवमें तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके कार्यमें कुछ कर नहीं सकता।

जीवादि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे परिणमता है। निमित्तकी अपेक्षा रखे बिना प्रत्येक पदार्थ अपनी नई–नई पर्यायरूपसे स्वतंत्र परिणमित होता है। जीवके कर्ता–कर्म–क्रिया जीवमें

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, पुद्गलके पुद्गलमें हैं। जीव और पुद्गलमें प्रतिसमय जो नया–नया कार्य होता है वह अपने–अपने कर्ता–कर्म–करणादि षट्कारकोंसे होता है, निमित्तके कारकोंसे नहीं। खाना, पीना, बोलना, चलना आदि क्रिया-रूपसे पुद्गल परिणमता है, जीव उन्हें नहीं कर सकता। चेतनकी पर्यायरूप चेतन परिणमता है, शरीर, वाणी आदि जड़ पदार्थ उसमें कुछ कर नहीं सकते। उस दिन इतना चल चुका था, अब आगे.....

'तू ज्ञायकस्वभावी है।'

तू भगवान आत्मा है, जानना.....जानना.....जानना यह तेरा सहज स्वभाव है, परन्तु स्व–परको जानना अर्थात् ज्ञातारूपसे रहना–वह तेरा सहज स्वभाव है, परन्तु परका या रागादि विभावका करना—भोगना—यह तेरा स्वभाव नहीं है; इसलिये तू अपनेको परमार्थतः शुद्ध ज्ञायकरूपसे ग्रहण कर।

'पौद्गलिक शरीर–वाणी–मनसे तो तू भिन्न ही है, परन्तु शुभाशुभ भाव भी तेरा स्वभाव नहीं है।'

उठना, बैठना, चलना, सोना, खाना, नहाना आदि शरीरकी क्रियाएँ, वाणीरूप शब्दवर्गणाके परिणमनरूप क्रिया और द्रव्यमनके परिणमनरूप क्रिया तो जड़ ही है, पौद्गलिक ही है, ज्ञानस्वरूप आत्मासे बिलकुल भिन्न ही है; परन्तु आत्माकी वर्तमान दशामें जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके शुभविकल्प उठें वे, और भ्रान्ति, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, काम–क्रोधादिके अशुभभाव आयें वह भी आत्माका सहज स्वभाव नहीं है।

'अज्ञानके कारण तूने परमें तथा विभावमें एकत्वबुद्धि की है, वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा।'

जीवस्वभावसे तो ज्ञायक—ज्ञाता.....ज्ञाता.....ज्ञाता—है, परन्तु भ्रान्ति और अज्ञानके कारण अनादिकालसे उसने शरीरादि पर द्रव्यमें तथा रागादि विभावभावमें एकत्वबुद्धि की है। वास्तवमें जीवको शरीर, वाणी आदि परद्रव्य तथा शुभाशुभ विभावके साथ एकत्व नहीं है। जीव अर्थात् भगवान आत्मा तो निराला है; परद्रव्यसे तो निराला है, परन्तु रागादि विभावसे भी निराला है। उनके साथ आत्मा एकरूप नहीं हुआ है, परन्तु 'एकरूप हो गया हूँ'—ऐसा भ्रान्तिसे माना है। वह भ्रान्ति भी आत्माका स्वरूप नहीं है। प्रभु! वह एकत्वबुद्धि तूने स्वयं बनायी है; जिसने बनायी है वही छोड़ेगा; वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा।

ज्ञायकभाव—चैतन्य ध्रुव पिण्ड—शुभाशुभ रागसे भी त्रिकाल निराला ही है, तथापि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायमें रागादिके साथ तूने एकत्व माना है, परन्तु प्रभु! तू स्वभावसे कैसा और कितना है उसका तुझे ज्ञान नहीं है; अज्ञानके कारण तूने रागमें अपना अस्तित्व मान रखा है, उसमें एकत्वबुद्धि की है। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, पूर्णानन्द रसकन्द, ज्ञातास्वभावी सूर्य है, उसके अज्ञानके कारण जीवने रागमें एकत्वबुद्धि बनायी है। पर्यायमें बनाया हुआ एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव वस्तुके मूलस्वरूपमें नहीं है। वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा। ज्ञाता स्वभावको भूलकर पर्यायमें पर तथा विभावके साथ तूने एकत्वबुद्धि की है, इसलिये तू छोड़ और ज्ञाता हो जा। अहा! ऐसी बात है; कठिन काम है।

द्रव्य–गुण–पर्यायात्मक वस्तु स्वतःसिद्ध है। स्वयंसिद्ध आत्मवस्तु स्वभावसे ज्ञायक, ध्रुव और सत् है। 'द्रव्यं सत्–लक्षणम्' और 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'—वस्तुस्थिति ही ऐसी है। यदि वस्तु स्वरूप ऐसा न हो तो, किसी प्रकार वस्तु सिद्ध नहीं होगी। वस्तु सत् है, इसलिये उसका सत्त्व 'सत् द्रव्य, सत् गुण और सत् पर्याय'—ऐसे तीनोंमें व्याप्त है। जो सत् हो उसका अन्य कोई हेतु नहीं होता अर्थात् वह अहेतुक होता है। वस्तु स्वभावतः सत् होनेसे उसके द्रव्य–गुण–पर्याय तथा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य सब अहेतुक अर्थात् स्वहेतुक होते हैं। ज्ञायकस्वभावी आत्मा शरीरादि परपदार्थोंके कार्योंके प्रति अहेतुक अर्थात् अकिंचित्कर है। ज्ञायकभाव शरीर, वाणी आदि परपदार्थोंसे भिन्न है और शुभाशुभ राग भी उसका स्वभाव नहीं है, तथापि अज्ञानके कारण उसने परमें और विभावमें एकत्वबुद्धि की है। यदि वह एकत्वबुद्धि छोड़कर ज्ञातापरिणति प्रगट करे तो मुक्तिकी ओर प्रयाण प्रारम्भ हो जाय।

चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा अज्ञानके कारण 'दया, दान, व्रत और भक्ति आदि रागकी क्रिया मेरी है और मैं उसका कर्ता हूँ'—इसप्रकार परमें तथा विभावमें एकत्वपनेकी भ्रान्तिमें पड़ा है; अब उस भ्रान्तिको छोड़कर 'मैं तो मात्र शुद्ध ज्ञाता हूँ' ऐसी परिणति प्रगट करके ज्ञाता हो जा।

परमार्थसे तू ज्ञाता ही है। समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके परिशिष्टमें 'ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—सब आत्मा ही है' ऐसा आता है। परन्तु अरे! ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञप्ति—ऐसे भेद भी व्यवहार अर्थात् सद्भूत व्यवहार है। आत्मा और ज्ञान—ऐसा गुण–गुणीका भेद उठे वह अनुपचरित सद्भुत व्यवहारनयका विषय है। शुद्ध अभेद एकरूप त्रैकालिक तत्त्व वह निश्चयनयका विषय है। उसमें, 'भेद हो' इसलिये व्यवहार, 'अपनी जातिका अंश' इसलिये सद्भूत, 'अपनी जातिका गुणरूप अंश' इसलिये अनुपचरित सद्भूत व्यवहार और 'अपनी जातिका पर्यायरूप अंश' इसलिये उपचरित सद्भूत व्यवहार; तथा 'अपनी जातिका नहीं, परन्तु विभावका अंश' इसलिये असद्भूत व्यवहार; उसमें 'जो स्थूल एवं बुद्धिगम्य विभावांश' वह उपचरित असद्भूत व्यवहारनयका विषय है और 'जो सूक्ष्म तथा बुद्धिगम्य नहीं ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विभावांश' वह अनुपचरित असद्भूत व्यवहारका विषय है। यह चारों व्यवहार प्रतिषेध्य हैं और अभेद एकरूप निश्चयनय उनका प्रतिषेधक है।

अहा! ऐसी कठिन बात! इसका अभ्यास नहीं है, परन्तु तत्त्वकी वास्तविक स्थिति यही है। समयसारकी ११वीं गाथामें व्यवहारनयको जो समस्त अभूतार्थ कहा है, उसमेंसे व्यवहारनयके चारों बोल निकलते हैं :—अनुपचरित सद्भूत व्यवहार, उपचरित सद्भूत व्यवहार, अनुपचरित असद्भूत व्यवहार और उपचरित असद्भूत व्यवहार। यह चारों नय अभूतार्थ अर्थात् निषेध्य हैं और शुद्धनय एक ही भूतार्थ अर्थात् निषेधक है। 'ज्ञान सो आत्मा' ऐसा जानना और कहना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है। उसमें ज्ञान 'गुण' है, इसलिये अनुपचरित, अपना 'स्वभाव' है, इसलिये सद्भूत और 'भेद' हुआ इसलिये व्यवहार। 'ज्ञान रागको, स्वको या परको जानता है' ऐसा जानना या कहना वह उपचरित सद्भूत व्यवहार है। उसमें रागको, स्वको या परको जाननेरूप 'पर्याय' है, इसलिये उपचरित, जाननेरूप पर्याय अपना 'स्वभाव' है इसलिये सद्भूत और 'भेद' हुआ इसलिये व्यवहार। असद्भूत व्यवहारनयके भी दो भेद हैं :—उपचरित असद्भूत व्यवहार और अनुपचरित असद्भूत व्यवहार। 'आत्मा रागी है' ऐसा जानना या कहना वह असद्भूत व्यवहारनय है, क्योंकि राग (कोई भी विभाव) आत्माका 'स्वभाव नहीं है' इसलिये असद्भूत है। उसमें जो रागादि विभाव छद्मस्थके जाननेमें आ सकें ऐसे स्थूल हैं, बुद्धिपूर्वक हैं और बाह्यविषयोंका अवलम्बन लेकर होते हैं उन्हें आत्मा जानना या कहना वह उपचरित असद्भूत है और उस समय जो रागादि विभाव छद्मस्थके जाननेमें न आ सकें ऐसे सूक्ष्म हैं, अबुद्धिपूर्वक हैं तथा बाह्य विषयोंका अवलम्बन लिये बिना होते हैं उन्हें आत्मा जानना या कहना वह अनुपचरित असद्भूत है। इन चारों व्यवहारोंको अभूतार्थ, अविद्यमानार्थ और असत्यार्थ कहा गया है; क्योंकि भगवान आत्मा जहाँ अपने त्रिकाल शुद्ध अभेद स्वरूपको देखता है, अनुभवता है वहाँ 'राग सो आत्मा' ऐसा तो नहीं, परन्तु 'ज्ञान सो आत्मा' ऐसा भी कोई भेद दिखायी नहीं देता। अभेद सामान्यमें कोई भेद दिखायी नहीं देता इसलिये 'भेद नहीं है' ऐसा कहा गया है। अहा! वस्तुस्थिति ऐसी है; अनजान लोगोंको तो ऐसा लगे कि—यह क्या कहते हैं? भाई! मार्ग तो ऐसा है प्रभु!

प्रश्न :—पर्याय और गुणभेद वस्तुके ही भेद होने पर भी उनको अभूतार्थ कैसे कहा जायगा?

उत्तर :—जब तक आत्मपरिणाम पर्याय तथा गुणभेदकी ओर ढला हुआ है, तब तक बंधमार्ग है; और जब वहाँसे मुड़कर आत्मपरिणमन त्रिकाल शुद्ध अभेद ध्रुवसामान्यकी ओर ढलता है तब मोक्षकी ओर प्रयाण प्रारम्भ होता है। इसलिये साधकके आलम्बन हेतु ध्रुव सामान्य भूतार्थ है और पर्यायादि अभूतार्थ हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई! अज्ञानके कारण तूने परमें और विभावमें जो एकत्वबुद्धि की है, उसे छोड़कर तू ज्ञाता बन जा, जाननहार हो जा, ज्ञातारूप परिणम जा। स्वभाव-अपेक्षा तू ज्ञाता है, त्रिकाल है, परन्तु पर्याय-अपेक्षासे तू 'जाननहार' अर्थात् 'मैं त्रिकाल शुद्ध ज्ञाता हूँ' ऐसी परिणतिवाला हो जा।

पर तथा रागके साथ एकत्वबुद्धि ही मिथ्यात्व अर्थात् भ्रान्ति है—भले ही फिर वह राग दया, दान, व्रत या भक्तिका हो। अरे रे! सबको बाह्य क्रियाकाण्डसे धर्म मनवाना है और उससे अंतरमें शुद्धिरूप निश्चय धर्म होगा—ऐसी मान्यता रखना है। यहाँ तो कहते हैं कि पर तथा रागके साथ जो एकत्वबुद्धि है उसे, जो चैतन्यरससे परिपूर्ण ध्रुव महाप्रभु है ऐसे निज ज्ञायकभावके आश्रयसे छोड़कर, तू ज्ञाता बन जा, जाननहार हो जा।

'शुद्ध आत्मद्रव्यकी यथार्थ प्रतीति करके—शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायक परिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्तिका प्रयाण प्रारम्भ होगा।'

त्रिकालशुद्ध ज्ञायक द्रव्यस्वभावकी यथार्थ प्रतीति करके—बुद्धिकी धारणामें ले लिया—ऐसा नहीं, परन्तु शुद्ध चैतन्यस्वरूप निज महा पदार्थ वस्तुस्वभावसे जैसा है वैसी ही उसकी अंतरमें स्वभावोन्मुख होकर, यथार्थ प्रतीति करके—तू 'मैं सहज शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी परिणति प्रगट कर कि जिससे मोक्षका प्रयाण प्रारम्भ हो जाय। क्या कहा? कि—आत्माकी वर्तमानपर्यायमें जो लक्ष परके ऊपर था, रागके ऊपर दृष्टि थी, निज त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि नहीं थी, उस लक्ष और दृष्टिको अन्तरोन्मुख कर दे! पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि कर ले। आया कुछ समझमें? वस्तु तो वस्तु—जो है वह—है, परन्तु जीवका लक्ष मात्र उसकी पर्यायके ऊपर था, रागमें अपना पूर्ण अस्तित्व मानता था—क्योंकि अंतरमें जो यह चैतन्य महाप्रभु विद्यमान है, परमार्थभूत ज्ञायक पदार्थ अपने अस्तित्व सहित विराजमान है, वह तो दृष्टिमें आया नहीं, उसके अस्तित्वकी श्रद्धाका तो अभाव है और मात्र रागके अस्तित्वमें श्रद्धा रुक गई है—उसे अब छोड़ दे। तू जिसमें रुका हुआ है उसे अब छोड़......किसी कर्मके कारण तू रुका है—ऐसा नहीं है।

प्रश्न :—पर्याय दृष्टि—'रागमें एकता'—छोड़ना कैसे?

उत्तर :—प्रश्न बराबर है। जिसे छोड़ना है उसे 'कैसे छोड़ना?' यह प्रश्न आता है। जो सच्चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक महाप्रभु भीतर विराजमान है उसकी श्रद्धा नहीं है, उसका अज्ञान है, इसलिये तू वर्तमान रागमें अपनत्व मानता है, तुझे ज्ञायकके शुद्ध अस्तित्वकी खबर नहीं है इसलिये राग और विकल्पमें अपनत्वरूप एकत्वबुद्धि करता है, अब तू शुद्धात्मद्रव्य की—आत्माके ज्ञानानन्दमय सहजशुद्ध अस्तित्वकी—यथार्थ समझ और प्रतीति करके 'रागमें रुकना-एकता करना छोड़ दे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'शुद्ध आत्मद्रव्यकी यथार्थ प्रतीति करके—शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके......' अर्थात् क्या? कि—तू वर्तमान जिस पर्यायदृष्टि तथा रागदृष्टिमें खड़ा है उसे छोड़कर, दृष्टिको अंतरमें शुद्ध आत्मद्रव्यमें ले जा, अर्थात् त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकभावका आश्रय लेकर शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट कर। दृष्टि स्वयं श्रद्धागुणकी निर्मल पर्याय है। 'द्रव्य दृष्टि प्रगट करके' कहा है, द्रव्य प्रगट करके नहीं। शुद्ध त्रैकालिक द्रव्यका आश्रय जिस काल स्वयं करता है उस काल द्रव्यदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शनरूप निर्मल पर्याय प्रगट होती है। द्रव्यका जितना सामर्थ्य है उतना द्रव्यदृष्टि प्रतीतिमें ले लेती है। दृष्टिरूप पर्यायमें सम्पूर्ण त्रैकालिक द्रव्य नहीं आ जाता, परन्तु उसके विषयमें सम्पूर्ण द्रव्यसामान्य आ जाता है। आया कुछ समझमें?

शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर। समयसारकी ११वीं गाथाकी टीकामें आता है न! कि—व्यवहारसे विमोहित हृदयवाले जीव आत्माको, जिसका एक सहज ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है—ढँक गया है ऐसा अनुभव करते हैं। वहाँ ज्ञायक तो जो है सो है, परन्तु अनादिकालसे वह जीवके लक्षमें नहीं आया है—पर्यायमें लक्षगत नहीं हुआ है, इसलिये वह 'तिरोभूत हो गया है' ऐसा कहा जाता है। जब जीव भूतार्थ दृष्टि प्रगट करे तब निज एक ध्रुव सहज ज्ञायकभावको अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत करता है। पर्यायमें लक्षगत करना उसे आविर्भूत किया—प्रगट किया कहा जाता है। ज्ञायकभाव तो त्रिकाल एकरूप शुद्ध है, तो वह जो है सो है, वह कहीं इधर-उधर अर्थात् आविर्भूत-तिरोभूत नहीं होता, मात्र पर्यायमें ज्ञायकभाव लक्षगत होने-न होनेको आविर्भूत-तिरोभूत हुआ कहा जाता है। ज्ञायकभाव पर्यायमें लक्षगत हुआ उसे 'ज्ञायकभाव प्रगट हुआ' कहा जाता है।

प्रश्न :—दृष्टिने ज्ञायकको कब्जेमें ले लिया है?

उत्तर :—दृष्टि तो श्रद्धागुणकी पर्याय है। क्षणस्थायी पर्याय त्रैकालिक ध्रुवतत्त्वको क्या कब्जमें लेगी? त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकका पूर्ण सामर्थ्य जितना है उतना दृष्टिने प्रतीतिमें ले लिया है। त्रैकालिक ध्रुव सामर्थ्य तो सामर्थ्यरूप ही रहता है, वह कहीं एकसमयकी पर्यायमें नहीं आ जाता, मात्र प्रतीतिरूप पर्यायका विषय अर्थात् आश्रय बनता है। अहा! यह बात जगतसे बिलकुल भिन्न है।

'किसीको ज्ञान देनेसे ज्ञान बढ़ता है' यह भी व्यवहारका कथन है; वास्तवमें तो स्वयं सम्यक् श्रद्धान-ज्ञानपूर्वक अंतरमें एकाग्र हो तो ज्ञानधारामें वृद्धि होती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवके जीवने पिछले भवमें मुनिराजको वनमें शास्त्र दिया था जिससे उनको इस भवमें शुद्धात्म ज्ञान बहुत हुआ—यह सब व्यवहारकी बातें हैं। दशलक्षणधर्ममें त्यागधर्मके कथनमें शास्त्रदानको भी त्यागधर्म कहा है। वहाँ स्वभावकी प्रतीतिपूर्वक आसक्तिका राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किंचित् छोड़ा है, इसलिये 'त्यागधर्म' कहा है; वैसे तो वास्तवमें शास्त्रादि परपदार्थोंका त्याग आत्मामें कहाँ है? समयसारकी ३४वीं गाथामें कहा है न! कि—आत्माको परभावके त्यागका कर्तापना है वह नाममात्र है। स्वयं तो ज्ञानस्वभाव है। परद्रव्यको पर जाना, पश्चात् परभावका ग्रहण नहीं वही त्याग है, इसप्रकार स्थिर हुआ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है, ज्ञानके सिवा अन्य कोई भाव नहीं है। अहा! यह तो कोई बात है!

शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्तिका प्रयाण प्रारम्भ होगा। मुक्तिका प्रयाण अर्थात् मोक्षकी ओर गमन, प्रस्थान। आत्मा द्रव्यस्वभावसे सदा मुक्त ही है। समयसारमें 'स हि मुक्त एव' आता है। भगवान आत्मा तो मुक्तस्वरूप ही है, परन्तु पर्यायमें 'मैं सहज ज्ञायक हूँ' ऐसी परिणति प्रगट करे तो मुक्तिका प्रयाण—पर्यायमें मुक्तिकी ओर प्रस्थान—प्रारम्भ हो जाय।

प्रश्न :—ध्रुव द्रव्य तो प्रयाण करनेवाला नहीं है, पर्यायको प्रयाण करना हो तो करे!

उत्तर :—आत्मा द्रव्यसे मुक्त होने पर भी पर्यायमें उसीको अनादिबंधसे छूटकर मुक्ति होती है। महा आनन्दका लाभ सो मुक्ति है। मुक्तस्वभावी त्रैकालिक ध्रुव सामान्यकी अंतरमें दृष्टि होने पर उसी आत्मवस्तुको पर्यायमें मुक्तिका प्रयाण उसकी साधना, उसका पंथ प्रारम्भ होता है। अहा! यह बात तो जो निर्मानी मनुष्य हो और जिसे अपना आत्मकार्य करना हो उसके लिये है भाई! जिसे बाह्यमें प्रसिद्धिकी भावना हो वह तो बहिरात्मा—मिथ्यादृष्टि है; जिसे आत्मामें जानेकी भावना है वह निरभिमानी-निर्मानी होता है।

तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर। रागके साथ एकत्वबुद्धि छोड़कर 'मैं त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी ज्ञायकपरिणति प्रगट कर। तू ध्रुव ज्ञायकरूप तो त्रिकाल है, परन्तु पर्यायमें 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी ज्ञातापरिणतिका उत्पाद और रागकी एकत्वबुद्धिका व्यय कर, जिससे तेरा मुक्तिकी ओर प्रयाण प्रारम्भ होगा। प्रभु! तुझमें तेरी प्रभुता पूर्ण विद्यमान है, तेरा प्रत्येक गुण अनन्त प्रभुतासे परिपूर्ण है। अहा! तेरी प्रभुता अपरम्पार है! ज्ञानप्रभु, दर्शनप्रभु, आनन्दप्रभु, वीर्यप्रभु—ऐसी अनन्तानन्त प्रभुताके पिण्डरूप जो अखण्ड ज्ञायकभाव उस पर दृष्टि पड़ने पर, उसका अन्तरमें ग्रहण करने पर तुझे ज्ञायकपरिणति होगी और उससे तुझे मुक्तिका प्रयाण प्रारम्भ होगा। मुक्तिका कारण अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी परिणति तुझे प्रगट होगी। वह मोक्षमार्गरूप परिणति मुक्तिका प्रयाण है, पूर्णदशाकी प्राप्तिका कारण है। वह तुझे शुरु होगा। जहाँ प्रारम्भ होगा वहीं पूर्ण होगा, अर्थात् ज्ञायकपरिणति प्रारम्भ होगी और ज्ञायकपरिणतिकी पूर्णतामें समाप्ति होगी। अहा! ऐसा मार्ग है!

❁

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१७१

दिनांक २७-१२-७८

वचनामृत–४१२

मरण तो आना ही है जब सब कुछ छूट जायगा। बाहरकी एक वस्तु छोड़नेमें तुझे दुःख होता है, तो बाहरके समस्त द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा? मरणकी वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा? तू भले ही धनके ढेर लगा दे, वैद्य–डॉक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे–सम्बन्धियोंकी ओर तू भले ही दीनतासे टुकुर–टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मामेंसे शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभीसे वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मँडरा रही है' ऐसा बारम्बार स्मरणमें लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवनमें एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।।४१२।।

'मरण तो आना ही है जब सब कुछ छूट जायगा।'

देहधारी जीवको, वर्तमानगतिकी आयु पूर्ण होने पर, देहके वियोगरूप मरण तो अवश्य आना ही है; उस समय शरीर, इन्द्रियाँ, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, परिवार आदि सब कुछ छूट जायगा। पूर्वभवमेंसे, प्रारब्ध अनुसार अकेला ही आया था और अब इस भवमें, उपार्जित प्रारब्धानुसार अकेला ही चला जायगा। उसे, जन्म–मरणके प्रकारोंमें, किसीका संग–साथ नहीं है, मरणकालमें यहाँ का सब कुछ छूट जायगा, मात्र बाँधे हुए कर्म अपना फल देनेके लिये साथ जायँगे।

'बाहरकी एक वस्तु छोड़नेमें तुझे दुःख होता है तो बाहरके समस्त द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा?

अरे! बाहरकी एकवस्तु छोड़ने पर तुझे दुःख होता है, तो बाहरका सब कुछ–बाहरके सब द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव–एकसाथ छूट जायगा, बदल जायगा, तब तुझे कितना असह्य दुःख होगा?

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मरणकी वेदना भी कितनी होगी?'

जिसको शरीरके साथ तीव्र एकत्वबुद्धि है उसे शरीर छूटनेके समय मरणकी वेदना भी तीव्र होती है; मरणके समय वह रोगकी, वेदनाकी, मरणकी एकत्वबुद्धि तथा आर्तध्यानकी चपेटमें आकर शरीर छोड़ता है। बहिनने ३४९वें बोलमें कहा है न! कि—'तू स्थिरता–अपेक्षासे बाहरका सब नहीं छोड़ सके तो श्रद्धा–अपेक्षासे तो छोड़! छोड़नेसे तेरा कुछ नहीं जायगा, उलटा परम पदार्थ—आत्मा—प्राप्त होगा।' अरे ज्ञानानन्दस्वरूप त्रिकाल शुद्ध निज चैतन्यके सिवा संयोग या संयोगीभावका—रागका—एक कण भी मेरा नहीं है; मैं उसका नहीं हूँ, वह मुझमें नहीं है, राग या रजकण मेरे नहीं हैं—इसप्रकार पहले उसे श्रद्धा–अपेक्षासे तो छोड़! अंतरमें स्वरूपस्थिरता होकर, अस्थिरता छूटे वह तो बात ही अलग है; परन्तु आत्मा सहज ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसके सिवा रागका कण या रजका कण—सब परभाव है, उसे यदि श्रद्धा–अपेक्षा भी नहीं छोड़ेगा तो तुझे शरीर छूटनेके समय तीव्र दुःख होगा, तेरी दृष्टि शरीर पर रहेगी और रोगकी, वेदनाकी, मरणकी, एकत्वबुद्धिकी तथा आर्तध्यानकी पीड़ामें तू दब जायगा। अहा! शरीर छूटते समय मृत्युकी कितनी पीड़ा होगी!

" 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा।"

शरीरके साथ एकत्वबुद्धिकी चपेटमें दबकर अज्ञानी जीवको शरीरसे पृथक् होना अच्छा नहीं लगता। मृत्युके समय 'मुझे कोई बचाओ' ऐसा उसका हृदय याचना करता है, परन्तु वहाँ उसकी कौन सुने? 'अब बचनेका कोई उपाय नहीं है'—ऐसा कहकर वैद्य और डॉक्टर निरुपाय हो जायँगे। भले ही तेरा हृदय पुकार करे कि 'मुझे कोई बचाओ'......

'परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा?'

राजकोटमें एक भाईको डबल न्युमोनिया हो गया और शरीर छूटनेकी स्थिति आ गई। रोगकी तीव्रताके कारण आँखोंसे आँसू बह रहे हैं; उस समय क्या हो सकता है? शरीर छूटनेके प्रसंगमें कौन बचाये और कौन रखे?

'तू भले ही धनके ढेर लगा दे, वैद्य–डॉक्टर भले ही सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे–सम्बन्धियोंकी ओर तू भले ही दीनतासे टुकुर–टुकुर देखता रहे तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है?'

बम्बईमें आजकल कमला (पीलिया) रोग फैल रहा है, अपने परिचितोंमेंसे दो आदमी रोगकी तीव्रताके कारण मर गये हैं। ३८वर्षकी अल्पायुमें शरीर छोड़कर चले गये! बचनेके लिये दस–दस हजार रुपये खर्च किये, परन्तु पैसा क्या करे? बड़े करोड़पति हों और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विलायतसे बड़े–बड़े डॉक्टरोंको बुलवायें, पर जब मृत्युका समय आ गया हो तब वहाँ कौन बचा सकता है? आसपास खड़े हुए सगे–सम्बन्धियोंकी भीड़ भले ही तेरी दीर्घायुकी कामना कर रही हो और तू भी दीनभावसे उनकी ओर टुकुर–टुकुर देख रहा हो, परन्तु क्या वे तुझे बचा सकेंगे? क्या कोई तुझे शरणभूत होगा? शरणभूत तो भीतर शान्ति और समाधि देनेवाला निजज्ञायक परमात्मा है; उसकी ओर दृष्टि नहीं करेगा, उसकी रुचि, प्रतीति एवं अनुभूति नहीं करेगा तो बाह्यमें क्या अन्य कोई तुझे शरणभूत हो सकता है?

'यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति—अनुभूति करके आत्म –आराधना की होगी, आत्मामेंसे शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी।'

इस संसारमें जहाँ संयोगमात्र सब क्षणिक हैं वहाँ कौन शरण देगा भाई! यदि तूने स्वयंसिद्ध, शाश्वत एवं स्वयंरक्षित त्रिकाल शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप निज आत्माकी अंतरमें यथार्थ समझ, श्रद्धा एवं अनुभूति करके आत्माकी आराधना की होगी, ज्ञायकमेंसे सच्ची शान्ति प्रगट की होगी तो एक ही तुझे शरण देगी। दया, दान, व्रत और भक्तिके शुभभाव तो पुण्यबन्धके कारण हैं। वे शुभभाव और पुण्यकर्म स्वयं अनित्य हैं, विनाशी हैं, आत्माको शरणभूत नहीं हैं। शरण कौन दे सकता है? कि—जो स्वयं शाश्वत, स्वभावभूत एवं सुखरूप हो। शुभभाव है तो क्षणिक और विभावस्वरूप हैं—आकुलता स्वरूप हैं, वे कैसे शरण देंगे? वे तो आत्माके लिये अशरण हैं।

भगवान आत्मा 'सत्' होनेसे शाश्वत अर्थात् अनादिनिधन और स्वतःसिद्ध होनेसे स्वयंरक्षित है। सहज ज्ञान तथा सहज आनन्द—यह दो उसके मुख्य गुण हैं। सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दस्वरूप निज ज्ञायक आत्माकी, स्वसन्मुख होकर तथा परसे—शरीरादिसे तथा रागादि विभावोंसे—विमुख होकर, सच्ची समझ, प्रतीति एवं अनुभूति अर्थात् आत्माकी आराधना की होगी, अंतरसे शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही शरणभूत होगी। बहुत अधिक पढ़ा होगा, शास्त्रोंका खूब ज्ञान होगा, तो वह शरणभूत होगा—ऐसा नहीं है। परलक्षी ज्ञान तो ज्ञेयनिमग्न है, आत्मनिमग्न नहीं है। जैसे शुभाशुभभाव विभाव, दुःखरूप और अशरणभूत हैं वैसे ही ज्ञेयनिमग्न ज्ञान—शास्त्रोंका बहिर्लक्षी ज्ञातृत्व भी—विभाव, दुःखरूप और अशरणभूत है। जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, परन्तु यदि सहज ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्ध अस्तित्वको—स्वतः सिद्ध, शाश्वत एवं स्वयंरक्षित निज ज्ञायकस्वरूपको—ग्रहण न करे और तद्रूप परिणमन न करे, तो वह ज्ञेयमूढ़ गँवार ही रहता है; जो भी कुछ बाह्य जानकारी करे उसमें तल्लीन हो जाता है, मानों ज्ञान और आनन्द बाहरसे आते हों ऐसे भावका वेदन करता रहता है। शास्त्राभ्यास आदिका प्रयोजन तो ज्ञानानन्दस्वरूप निज आत्माकी प्रतीति—अनुभूति करके आत्माराधन करना था। जिस ज्ञानके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा आत्माराधन न सधे वह आत्माको क्या शरण देगा? जो ज्ञान आत्मनिमग्न हो, ज्ञायककी आराधनारूप परिणमित हो, वही अंतरकी सच्ची शान्ति एवं समाधि देगा, वह एक ही आत्माको शरणभूत होगा।

भगवान आत्मा जैसे सहज दर्शन और सहज ज्ञानस्वरूप है वैसे ही सहज चारित्र अर्थात् अकषाय वीतराग शान्तिस्वरूप भी है; शक्तिरूपसे सदा शान्तिस्वरूप है, परन्तु पर्यायमें शांतिकी व्यक्ति—प्रगटता स्वभावकी ओर उन्मुखतासे होती है। कहा है न कि—

घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन;
मत-मदिराके पान सौं, मतवाला समुझै न।

निजज्ञायक प्रभु जिनस्वरूप अर्थात् शान्तिस्वरूप ही है। उसके सन्मुख होकर, उसका आश्रय ग्रहण करके अंतरमेंसे जो शान्ति प्रगट की होगी वह एक ही तुझे शरणभूत होगी; बाकी सब-सगे सम्बन्धी, वैद्य-डॉक्टर, औषधि-सेवन आदिका-लक्ष छोड़ देना। मृत्यु तो आना ही है, शरीर तो छूटनेके समय छूटना ही है, दूसरा समय हो अथवा शरीर छूटे बिना दूसरा भव हो वह अशक्य है। इस भवमें ही शरीर छूटेगा। इसलिये स्वयंरक्षित तथा शाश्वत निज ज्ञायक तत्त्वमेंसे शान्ति प्रगट की होगी तो वह एक ही तुझे स्थायी शरणभूत होगी। अरहंता सरणं, सिद्धा सरणं, साहू सरणं, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं—यह भी परमार्थ शरण नहीं हैं, व्यवहारसे हैं। उनको व्यवहारसे भी शरणभूत कब कहा जायगा? कि—तू शान्तिके सागर, शान्तिके पर्वत ऐसे निज आत्मामें एकाग्रता करके वर्तमान पर्यायमें अतीन्द्रिय शान्ति प्रगट करेगा तब। मरण-कालमें 'मांगलिक' सुननेका भाव भी शुभराग है; भाई! सुननेका राग भी छोड़ दे और भीतर शान्तिके सागरका अवलोकन कर। उस ओर दृष्टि करके अंतरमेंसे शान्ति प्रगट की होगी तो वह एक ही तुझे शरण देगी, अरिहंतादि कोई शरणभूत नहीं होंगे।

'वह एक ही' तुझे शरण देगी—इसमें एकान्त नहीं हो जाता? कथंचित् भगवानका स्मरण भी शरण देगा—ऐसा कहो न? ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी जो आराधना वह एक ही शरण देगी, वह अरिहंतादि बाह्य वस्तुएँ नहीं—यही अस्ति-नास्तिस्वरूप सच्चा अनेकान्त है। भीतर भगवान ज्ञायक जो अतीन्द्रिय शान्तिका पिण्ड है उसमें एकाग्रता करना ही जीवको शरणभूत है; जो दया-दानादिके शुभभाव हों वे शरण नहीं हैं। वे तो राग हैं उनसे पुण्यके परमाणु बँधे, उसमें तुझे क्या शरण मिली भाई? सम्यग्दृष्टिको दर्शनविशुद्धि आदि जो शुभभाव होकर तीर्थंकर नामकर्मका बंध हुआ, उसमें—शुभरागमें—उनको शरण क्या मिली? दृष्टिका विषय जो सहज ज्ञानानन्दस्वरूप त्रिकाल शुद्ध ध्रुव चैतन्यप्रभु उसमें एकाग्र होकर पर्यायमें जो शान्ति प्रगट की होगी तो वह एक ही तुझे शरण देगी?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'इसलिये अभी से वह प्रयत्न कर।'

इसलिये आत्म-आराधनाका अभीसे उद्यम कर। वर्तमानमें ही उसका प्रारम्भ कर दे। 'फिर करूँगा, फिर करूँगा' ऐसे वायदे करना छोड़ दे। कहा है न! कि—'काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।' कल कभी आयगा नहीं और कार्य कभी होगा नहीं। प्रवचनसारमें आता है कि—'स्याद्‌वाद विद्याके बलसे विशुद्ध ज्ञानकी कला द्वारा इस एक पूर्ण शाश्वत स्वतत्त्वको प्राप्त करके आप्तजन परमानन्दपरिणामरूप परिणमन करो....उस चित्स्वरूप आत्माको ही आत्मा आज अत्यन्त अनुभवो।' इसलिये रागसे भिन्न निज भगवान आत्माकी अनुभूतिका अभीसे उद्यम कर; मरण आयगा तब उद्यम करूँगा—ऐसा वायदा मत कर। समयसारकी पाँचवीं गाथामें कहा है;—'जदि दाएज्ज पमाणं'—उस एकत्वविभक्त शुद्ध आत्माको जो दर्शाऊँ तो प्रमाण करना; सुनकर मात्र हाँ करना—ऐसा नहीं, परन्तु उसे स्वानुभवप्रत्यक्ष करके—उसकी अनुभूति करके प्रमाण करना। अहा! दिगम्बर सन्तोंकी सचोट भाषा तो देखो! भगवान आत्मा आनन्दका सागर है; उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये अभीसे प्रयत्न कर।

प्रश्न :—अभीसे? मृत्यु आये तब नहीं?

उत्तर :—अभीसे प्रयत्न कर। घरमें आग लगने पर यदि कुआँ खोदेगा तो कब पानी निकलेगा और कब आग बुझायेगा? पानी निकलेगा तब तक तो घर जलकर भस्म हो जायगा। घरको बचाना हो तो पहलेसे पानीकी सुविधा होनी चाहिये। उसीप्रकार मृत्युका समय आ जाये तब नहीं किन्तु पहलेसे—अभीसे—आत्माकी आराधना प्रारम्भ करनेका उसकी अनुभूति प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। सुना तभीसे प्रयत्न प्रारम्भ कर दे। अहा! दिगम्बर सन्तोंकी वाणी! पंचमकालके अत्यन्त अप्रतिबुद्ध श्रोतासे कहते हैं कि—भाई! आत्मानुभूति प्राप्त करनेके लिये अभी से प्रयत्न कर। समयसारकी ३८वीं गाथाकी टीकामें कहा है कि—विरक्त गुरु द्वारा निरन्तर समझाये जाने पर, दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप परिणत होकर जो सम्यक् प्रकारसे एक आत्माराम हुआ है वह श्रोता-शिष्य ऐसा कहता है कि कोई भी पर द्रव्य परमाणुमात्र भी अपनेरूप भासित नहीं होता कि जो मुझे भावकरूपसे तथा ज्ञेयरूपसे मेरे साथ एक होकर पुनः मोह उत्पन्न करे; क्योंकि निजरससे ही मोहको मूलसे उखाड़कर —पुनः अंकुरित न हो ऐसा नाश करके, महान ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है। अहा! पंचमकालका अप्रतिबुद्ध शिष्य जो प्रतिबोध प्राप्त करता है वह कहता है—हमें प्रगट हुआ ज्ञानप्रकाश अप्रतिहत है; भले क्षायोपशमिक भावसे है तथापि वह अप्रतिहत होनेसे जोड़णी क्षायिक है, इसलिये पुनः हमको मिथ्यात्वका अंकुर उत्पन्न नहीं होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—प्रतिबुद्ध शिष्य अपना अप्रतिहत भाव किसके पास जाकर प्रगट करता है?

उत्तर :—अपना जो ज्ञायक भगवान उसके पास जाकर कहता है, अभेद ज्ञायकमें एकाकार होकर कहता है कि मेरी जो निर्मल परिणति प्रगट हुई है वह सादि–अनन्तमें एकाकार हो जायगी। 'सादि अनंत, अनंत समाधि सुखमें'। अहा! क्या शैली है! हलकी –पतली बात ही नहीं। बहिनके बोलमें आता है न! कि—जागता जीव विद्यमान है वह कहाँ जायगा? अवश्य प्राप्त होगा ही। जागता जीव कहो अथवा ध्रुव ज्ञायकभाव कहो या वस्तुका नित्य स्थायी अंश कहो—सब एक ही है। पर्याय तो वस्तुका पलटता अंश है। स्थायी अंशमें दृष्टि देगा तो वह स्थिर होगी और वह एक ही तुझे शरण देगी। उसके लिये अभीसे प्रयत्न कर। अहा! बड़ी मीठी–मधुर बात है। आनन्दसे भरपूर समुद्रको उल्लसित करके उसका ज्वार पर्यायमें ला!

" 'सिर पर मौत मँडरा रही है' ऐसा बारम्बार स्मरणमें लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये न मरेंगे' ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके।"

अरे! मृत्यु आने पर यह शरीर, कुटुम्बमेला, धन, मकान, गाड़ी, बाग–बगीचे सब छूट जायँगे, दुःखकी बेलामें कोई सहायता नहीं करेगा। देहकी स्थिति समाप्त होनेकी नौबत बज रही है। मौत अचानक आ धमकेगी, सूचना देकर नहीं आयगी। शरीरका संयोग अनित्य है और भगवान आत्मा ध्रुव नित्य तत्त्व है। आत्माका कभी नाश नहीं होता। शरीर और आत्मा स्वभावसे तो भिन्न हैं ही, मात्र निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्धके कारण पर्याय–अपेक्षासे एक क्षेत्रावगाहरूपसे साथ रहते हैं। वास्तवमें तो वे दोनों अपने–अपने स्वक्षेत्रमें ही रह रहे हैं। आकाशके एक क्षेत्रमें दोनों साथ रहते हैं, उनके पृथक् होनेका नाम 'मृत्यु' है। मृत्यु अवश्य आनेवाली है ऐसा बारम्बार स्मरण करके भी तू अन्तरोन्मुखताका पुरुषार्थ कर कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसी सावधानीमें तू समाधिपूर्वक मृत्यु प्राप्त कर सकेगा।

निज त्रिकालशुद्ध चैतन्यभगवान तो सदा अमर ही है, उसका मरण कैसा? शरीरके सम्बन्धकी स्थिति पूर्ण होनेकी अपेक्षा उसे मरण कहते हो तो कहो, परन्तु अनादिनिधन सत् और स्वतः सिद्ध ऐसे ज्ञायकप्रभुकी स्थिति कभी पूर्ण नहीं होती, वह तो सदा अमर है। 'देह छूटनेके नगाड़े बज रहे हैं, सिर पर मौत मँडरा रही है'—ऐसा बारम्बार स्मरण करके भी तू सदा अमर ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्वके प्रति उग्र आलम्बनके बलपूर्वक तू पुरुषार्थको बढ़ा कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'—आनंदघनजीके शब्द हैं—ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देह त्याग कर सके। मरणकालमें कदाचित् निर्विकल्प शुद्धोपयोग नहीं भी हो, भले ही विकल्प हो, परन्तु स्वभावके आश्रयसे परिणतिमें प्रगट हुई जो निरन्तर वर्तती शुद्धिकी धारा है वह एकाग्रता और समाधि ही है। ज्ञानीको दृष्टिकी अपेक्षा तथा जितनी स्वरूपस्थिरता हुई है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उतनी स्थिरताकी अपेक्षा निर्विकल्प दशा सतत वर्त रही है, परन्तु शरीर छूटनेके समय उपयोग निर्विकल्प ही हो, उपयोगमें विकल्पका अंश न रहे—ऐसा कुछ नहीं है। विकल्प हो, परन्तु अंतरमें स्वभावके आश्रयसे परिणतिमें साधना प्रगट हुई है, एकाग्रता है, इसलिये मरणकालमें उसका शरीर समाधिपूर्वक छूटेगा। ज्ञानीको ख्यालमें आये कि शरीर छूटनेके समय ऐसे विकल्प है तथापि उसको अंतरमें समाधि है। मोक्षमार्ग प्रकाशकमें आता है न! कि –'मुनिजनोंको स्त्री–आदिका परीषह हो और उसे वे जाने ही नहीं, मात्र अपने स्वरूपका ही जानना रहे—ऐसा मानना मिथ्या है; उसे वे जानते तो हैं, परन्तु रागादिक नहीं करते।' इसप्रकार ज्ञानीको, मरणकालमें विकल्प होने पर भी अंतरमें वीतरागभाव होनेसे, समाधिपूर्वक शरीर छूटता है। अहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

श्रीमद्ने भी अंतसमयमें अपने छोटे भाईसे कहा था कि—'मनसुख! माताजीको दुःखी म़त होने देना, मैं स्वरूपमें लीन होता हूँ।' स्वरूपकी दृष्टि और अनुभव तो है, परन्तु 'माताजीको दुःखी नहीं होने देनेका' विकल्प आया, पश्चात् थोड़ी देर तक घुरघुराहट चली, घुरघुराहट चले उससे क्या? वह तो जड़ आवाजकी क्रिया है, स्वयं तो अंतरमें लीन हो गये हैं।

प्रश्न :—कोई ज्ञानी मरणकालमें बेसुध हो जायँ अथवा बकवाद करने लगें तब भी समाधि कहेंगे?

उत्तर :—ज्ञानीको कदाचित् इन्द्रिय–निमित्तक ज्ञानमें किंचित् परिवर्तन हो जाय, उसे कुछ उन्माद, अचेतदशा या सन्निपात हो जाय, तथापि अंतरमें ज्ञानधारा सतत वर्तती होनेसे समाधि है। 'समाधिशतक'में आता है न! कि—भेदज्ञानी–अंतरात्मा निद्रावस्थामें या उन्माद दशामें होने पर भी कर्मबंधनसे मुक्त होता है—विशिष्ट रूपसे कर्मोंकी निर्जरा करता है।

'तन दृष्टि सर्वांगमी जाग्रत भी नहि मुक्त,
आत्मदृष्टि उन्मत्त या निद्रित भी है मुक्त।

अहा! ऐसी वस्तुस्थिति है। भाई! अंतरमें स्वोन्मुखताका ऐसा बलवान पुरुषार्थ कर, जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे—ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके।

'जीवनमें एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।'

देव–गुरु आदि निमित्त नहीं चिन्तन–मननका राग नहीं, मति–श्रुतकी पर्यायें नहीं, अरे! गुण–गुणीका भेद भी नहीं, परन्तु त्रिकाल शुद्ध एक आत्मद्रव्य ही जीवनमें उपादेय है। दुनिया माने या न माने, सम्मान दे या न दे, बाह्यमें अपनी प्रसिद्धि हो या न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वह कोई सारभूत वस्तु नहीं है। सारभूत वस्तु, आराधने योग्य महान पदार्थ तथा उपादेय वस्तु तो निज एक शुद्ध ज्ञायक द्रव्य है। जीवनमें उसीका आदर, उसीका स्वीकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और उसीका सत्कार करने योग्य है। निजशुद्ध ज्ञायकद्रव्यका जिसने अंतरमें स्वीकार किया है, आश्रय किया है उसका जीवन सफल है। अहा! बात तो बड़ी अच्छी है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्माका पंथ कोई अलौकिक है! वह पंथ बाह्यमें नहीं होता, भीतर आत्मामें है।

अखण्ड एक शुद्ध अभेद ज्ञायक आत्मा ही उपादेयरूपसे प्राप्त होने पर भविष्यमें जीव सर्वज्ञदशाको प्राप्त हो सकेगा। समाधिपूर्वक देहत्याग करने पर भले उसी भवमें सर्वज्ञता नहीं आये, परन्तु भविष्यमें एक–दो भवमें अवश्य सर्वज्ञता प्रगट होगी।

सर्वज्ञ भगवान परिपूर्ण ज्ञानपर्यायरूप परिणमित हो गये हैं। वे पूर्णरूपसे अपनेको —अपने द्रव्यको, अपने अनंत गुणोंको तथा अपने सर्वगुणोंकी अविभाग प्रतिच्छेदों सहित त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंको—तथा विश्वके समस्त पदार्थोंको, उनकी भूत–वर्तमान–भावि पर्यायों सहित, एक समयमें युगपद प्रत्यक्ष जानते हैं। अहा तत्त्वकी अचिन्त्य अद्भुतता कोई अलौकिक है। सब एकसाथ प्रत्यक्ष जानना वह सर्वज्ञताकी अथवा ज्ञानपर्यायकी पूर्णताकी व्याख्या है। जो पर्यायें वर्तमानमें नहीं हैं उनको—अर्थात् बीत गई पर्यायोंको तथा अनागत पर्यायोंको—भी सर्वज्ञपर्याय वर्तमानवत् प्रत्यक्ष युगपद् जानती है। अहा! इतनी महान अर्थात् परिपूर्ण पर्याय प्रगट हुई तो क्या द्रव्य और गुण किंचित् भी क्षीण हो गये हैं? नहीं; वे तो परिपूर्ण हैं, ज्योंके त्यों हैं। वस्तुके आश्रयसे पूर्ण पर्याय प्रगट हुई उससे क्या वस्तुमें कोई न्यूनता आ गई? नहीं; परिपूर्ण गुणोंसे भरपूर वस्तु अपनी पर्यायमें परिपूर्णरूपसे परिणमित हो जाती है। पूर्ण वस्तुके अवलम्बनसे पर्याय पूर्णरूपसे परिणित हुई है तथापि वस्तु तो परिपूर्णरूपसे उतनी की उतनी ही है। आगे ४१५वें बोलमें आयगा कि—'मुनिराज कहते हैं—हमारा आत्मा तो अनंत गुणोंसे भरपूर, अनंत अमृतरससे परिपूर्ण, अक्षय घट है। उस घटमेंसे पतली धारसे अमृतपान हो ऐसे स्वसंवेदनसे हमें संतोष नहीं होता। हमें तो प्रति समय पूर्ण अमृतपान हो ऐसी पूर्णदशा लेना है। उस पूर्णदशामें सादि–अनन्तकाल पर्यंत प्रतिसमय पूर्ण अमृतपान होता है और घट भी सदैव पूरेका पूरा भरा रहता है।' अहा! वस्तुका—द्रव्य और गुणका—स्वभाव ही कोई ऐसा है कि उसमेंसे परिपूर्ण पर्याय प्रगट हो तब भी वस्तु उतनीकी उतनी ही रहती है। सर्वज्ञतारूप परिणमित हुआ ज्ञान स्वक्षेत्रमें रहकर, ज्ञेयके समीप गये बिना, पर सन्मुख हुए बिना, निराला रहकर लोकालोकके सर्व पदार्थोंको, उनके सर्वगुणोंको तथा सर्व अविभाग प्रतिच्छेदों सहित उनकी त्रैकालिक सर्व पर्यायोंको एकसमयमें युगपद् अतीन्द्रियरूपसे प्रत्यक्ष जानता है। 'महिमा अहो यह ज्ञानकी!'

ऐसे अनुपम और अद्भुत परिपूर्ण ज्ञानके आश्रयभूत ऐसा जो निज एक शुद्ध ज्ञायक आत्मा वह एक ही जीवनमें उपादेय है।

❀

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१७२

दिनांक २८-१२-७८

वचनामृत–४१३

सर्वज्ञभगवान परिपूर्णज्ञानरूपसे परिणमित हो गये हैं। वे अपनेको पूर्णरूपसे—अपने सर्वगुणोंके भूत–वर्तमान–भावी पर्यायोंके अविभाग प्रतिच्छेद सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्रमें रहकर, परके समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोकके सर्व पदार्थोंको अतीन्द्रियरूपसे प्रत्यक्ष जानते हैं। परको जाननेके लिये वे परसन्मुख नहीं होते। परसन्मुख होनेसे तो ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता। जो ज्ञान पूर्णरूपसे परिणमित हो गया है वह किसीको जाने बिना नहीं रहता। वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्रमें रहते हुए, तीनों कालके तथा लोकालोकके सर्व स्व–पर ज्ञेयोंको मानों ज्ञानमें उत्कीर्ण हो गये हों वे उस प्रकार, समस्त स्व–परको एक समयमें सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है उस सबको भी पूरा जानता है, जो आगे होना है उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्‌भुत है।।४१३।।

'सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूपसे परिणमित हो गये हैं।'

सर्वज्ञ परमात्मा कैसे होते हैं? उनकी केवलज्ञान पर्याय कितनी बड़ी होती है? सर्वज्ञ भगवान तो, उनके भाव तथा द्रव्य घातिकर्मोंका क्षय हो जानेके कारण, स्वयमेव परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं। वे छद्मस्थ जीवोंकी भाँति क्रमसे नहीं जानते, परन्तु विश्वके सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको एकसाथ पूर्णरूपसे जानते हैं।

'वे अपनेको पूर्णरूपसे–अपने सर्वगुणोंके भूत–वर्तमान–भावी पर्यायोंके अविभाग प्रतिच्छेद सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं।'

केवली परमात्मा अपनेको—अपने द्रव्य–गुण–पर्याय तथा अपने सर्वगुणोंकी तीनोंकालकी पर्यायोंको—सम्पूर्णरूपसे प्रत्यक्ष जानते हैं।

'साथ ही साथ वे स्वक्षेत्रमें रहकर, परके समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोकके सर्वपदार्थोंको अतीन्द्रियरूपसे प्रत्यक्ष जानते हैं।'

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानका स्वभाव स्व–पर प्रकाशक है। केवलज्ञानरूपसे परिणमित आत्मा अपने सर्वगुणोंकी भूत–वर्तमान–भावी पर्यायोंके अविभाग प्रतिच्छेद सहित विश्वके समस्त पदार्थोंको, स्वक्षेत्रमें रहकर, ज्ञेयरूप परपदार्थोंके समीप गये बिना, परिणतिको परसन्मुख किये बिना, बिलकुल निराला रहकर अतीन्द्रियरूपसे प्रत्यक्ष जानता है।

'परको जाननेके लिये वे परसन्मुख नहीं होते।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा एक समयमें सम्पूर्ण लोकालोकको—स्व–पर समस्तको—एक साथ जानते हैं। लोकालोकको जाननेके लिये वे लोकालोक–सन्मुख नहीं होते। 'नहीं उन ज्ञेयोंमें तुझ परिणति सन्मुख जराः' अंशतः भी परसन्मुख हुए बिना स्वयं स्वतः जानते हैं।

'परसन्मुख होनेसे तो ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता।'

ज्ञान पूर्ण स्वोन्मुख होने पर पर्यायमें पूर्ण ज्ञानरूपसे परिणमित होता है; वस्तु द्रव्यस्वभावसे जैसी कृतकृत्य है वैसी, पर्यायमें कृतकृत्य हो जाती है। कृतकृत्य होनेसे नवीन करना कुछ नहीं रहा है। ज्ञान स्वोन्मुख न होकर यदि परोन्मुख हो जाय तो वह दब जाता है—आवृत हो जाता है, विकसित नहीं होता। स्वसन्मुख होनेसे ज्ञानका विकास होता है, परसन्मुख होनेसे वह रुक जाता है, मुँद जाता है।

'जो ज्ञान पूर्णरूपसे परिणमित हो गया है वह किसीको जाने बिना नहीं रहता।'

परिपूर्णरूपसे परिणमित हो गई ज्ञानकी पर्याय एकसमयमें युगपद् सब जानती है; समस्त चेतन–अचेतन पदार्थ, उनके गुण, उनकी त्रैकालिक पर्यायें—सब एकसाथ प्रत्यक्ष जानती है। पूर्णरूपसे परिणमित ज्ञान किसीको जाने बिना नहीं रहता।

'वह ज्ञान स्वक्षेत्रमें रहते हुए तीनोंकालके तथा लोकालोकके सर्व स्व–पर ज्ञेय मानों ज्ञानमें उत्कीर्ण हो गये हों उसप्रकार, समस्त स्व–परको एकसमयमें सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानता है, जो बीत गया है उस सबको भी पूरा जानता है, जो आगे होना है उस सबको भी पूरा जानता है।'

सर्वज्ञ परमात्माका ज्ञान निज चैतन्यप्रदेशोंमें—स्वक्षेत्रमें—रहते हुए, भूत–वर्तमान –भावी विचित्र पर्याय समूहवान लोकालोकके सर्व पदार्थोंको—मानों वे पदार्थ अपने सम्पूर्ण विशेषों सहित ज्ञानमें उत्कीर्ण हो गये हों, चित्रित हो गये हों, दब गये हों, गड़ गये हों, डूब गये हों, समा गये हों, प्रतिबिम्बित हुए हों, इसप्रकार—एक समयमें ही सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानता है। जगतके समस्त भावोंको एकसमयमें ही सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है, वर्तमान वर्त रहा है और अब पश्चात् जो होनेवाला है उस सबको परिपूर्ण जानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ज्ञानशक्ति अद्भुत है।'

ज्ञानगुणकी शक्ति तो स्वभावसे अद्भुत है ही, परन्तु उसकी परिपूर्ण विकसित पर्यायकी शक्ति भी अद्भुत है। ज्ञानके पूर्ण परिणमनका ऐसा सहजस्वभाव है कि अपने और परके भूत–वर्तमान–भविष्यके सर्वभावोंको एक समयमें सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानता है। सर्वज्ञरूपसे परिणमित पर्याय यदि सबको युगपद् प्रत्यक्ष न जाने तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या? अनन्त महिमावन्त केवलज्ञानकी तो यह दिव्यता है कि वह अनन्त द्रव्योंकी समस्त पर्यायोंको —भूत एवं भावी पर्यायोंको भी—सम्पूर्णरूपसे एक ही समयमें प्रत्यक्ष जानता है। वास्तवमें परिणमित हुई–व्यक्त हुई—ज्ञानशक्ति भी अद्भुत है।

*

वचनामृत–४१४

कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी, अपने पास ऋद्धिके भण्डार भरे होने पर भी, बाहर भीख माँगता हो, वैसे तू स्वयं तीन लोकका नाथ होने पर भी, तेरे पास अनंत गुणरूप ऋद्धिके भण्डार भरे होने पर भी, 'पर पदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना, मुझे सुख देना 'इस प्रकार भीख माँगता रहता है!' मुझे धनमेंसे सुख मिल जाय, मुझे शरीरमेंसे सुख मिल जाय, मुझे शुभ कार्योंमेंसे सुख मिल जाय, मुझे शुभ परिणाममेंसे सुख मिल जाय' इस प्रकार तू भीख माँगता रहता है! परन्तु बाहरसे कुछ नहीं मिलता। गहराईसे ज्ञायकपनेका अभ्यास किया जाय तो अंतरसे ही सब कुछ मिलता है। जैसे भोंयरेमें जाकर योग्य कुंजी द्वारा तिजोरीका ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों और दारिद्र दूर हो जाये, उसी प्रकार गहराईमें जाकर ज्ञायकके अभ्याসरूप कुंजीसे भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये तो अनंत गुणरूप निधान प्राप्त हों और भिक्षुकवृत्ति मिट जाये।।४१४।।

''कोई स्वयं चक्रवर्ती राजा होने पर भी अपने पास ऋद्धिके भण्डार भरे होने पर भी, बाहर भीख माँगता हो, वैसे तू स्वयं तीन लोकका नाथ होने पर भी, तेरे पास अनन्त गुणरूप ऋद्धिके भण्डार भरे होने पर भी, परपदार्थ मुझे कुछ ज्ञान देना, मुझे सुख देना' इस प्रकार भीख माँगता रहता है!''

पहले दृष्टान्त कहते हैं :—कोई स्वयं विपुल ऋद्धिधारी चक्रवर्ती राजा अपने पास नवनिधि आदि ऋद्धिके अक्षय भण्डार भरे होने पर भी मिट्टीका पात्र लेकर भीख माँगे, तदनुसार हे जीव! तू स्वयं तीनलोकका नाथ चैतन्यचक्रवर्ती होने पर भी, सच्चिदानन्दस्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक भगवान—सत् अर्थात् शाश्वत, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय अनाकुल सुख, इत्यादि अनंत गुणरूप ऋद्धिका भण्डार—होने पर भी परपदार्थमेंसे मुझे ज्ञान और सुख प्राप्त होगा—ऐसी आशासे बाहर भीख माँगता रहता है! शरीरादि परपदार्थोंसे तथा रागादि मलिनभावोंसे भिन्न निज शुद्ध ज्ञायक आत्माका भेदज्ञान करने पर अंतरमें आत्माकी समृद्धि—सहज अनंत ज्ञान, सहज अनंत आनन्द, सहज अनंत शान्ति, सहज अनंत स्वच्छता, सहज अनंत प्रभुता आदि जो अनंत गुणरूप ऋद्धिके भण्डार भरे हैं वह—दिखायी देगी, अनुभवमें आयगी। तीनलोक और तीनकालको एकसाथ प्रत्यक्ष जानने-देखनेकी शक्तिका धारक होनेसे आत्मा तीनलोकका नाथ है। ज्ञान और दर्शन जिसका सहजस्वभाव है उसको जानने-देखनेमें मर्यादा कैसी? सर्वको जाने ऐसी सर्वज्ञत्वशक्ति आदि अनन्त अचिन्त्य चमत्कारिक गुणरूप ऋद्धिके भण्डार आत्मामें सदा भरे हैं। आत्मा वस्तु है न? वस्तु किसे कहते हैं? गुणपर्यायौ वसतः यस्मिन् इति वस्तु' —जिसमें गुण-पर्यायोंका वास हो वह 'वस्तु' है। भगवान आत्मा अनन्त गुणरूप ऋद्धिका भण्डार—अपरिमित अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शान्ति, अनंत स्वच्छता आदि अक्षय समृद्धिसे भरपूर—होने पर भी, 'परपदार्थसे मुझे ज्ञान होगा, देव-गुरुकी कृपासे मेरा ज्ञान विकसित होगा, शास्त्रसे मुझ ज्ञान होगा तथा स्त्री, लक्ष्मी, मकानादि परपदार्थोंसे मुझे सुख और शान्ति मिलेगी' इसप्रकार बाहरकी भीख माँगता है। अहा! स्वयं स्वभावसे भगवान होने पर भी पर्यायमें भिखारी हो रहा है! अरिहंत परमात्माको जो वीतरागता एवं सर्वज्ञता प्राप्त हुई वह कहाँसे आयी है? रागादिके विकल्प और अल्पज्ञता आदि विभाव तो आत्माके मूल स्वभावमें हैं ही नहीं। आत्माका स्वभाव तो पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण आनन्द है। भगवानको जो अतीन्द्रिय पूर्णानन्द प्रगट हुआ वह क्या बाहरसे आता है? नहीं; भीतर स्वभावमें अतीन्द्रिय आनन्द शक्तिरूपसे छलाछल भरा पड़ा है उसमेंसे —उसका आश्रय लेनेसे—आता है। अरे! स्वयं सुखका भण्डार होने पर भी 'शरीरसे, इन्द्रिय विषयोंसे सुख प्राप्त हो जाय, स्त्री, लक्ष्मी, प्रतिष्ठा आदिसे सुख प्राप्त हो जाय' इसप्रकार दीन-हीन-भिखारी होकर बाहर भीख मांगता है! ज्ञान और सुखका भण्डार तो भगवान आत्मा है, परन्तु उस ओर दृष्टि नहीं है, उसका अंतरमें विश्वास नहीं है, इसलिये 'परसे ज्ञान और सुख प्राप्त होंगे'—ऐसा अज्ञानीको भ्रम है—मिथ्या अभिप्राय है। क्या परसे, शास्त्र श्रवणसे या शास्त्र स्वाध्यायसे ज्ञान होता है? ज्ञान तो अपना सहज स्वभाव है, उसकी प्रतीति और विश्वास नहीं है, इसलिये 'बाहरसे ज्ञान और सुख प्राप्त होंगे' ऐसी भ्रान्तिवश भीख मांगता फिरता है। अपनेमें ज्ञान, आनन्द और शान्तिका अक्षय भण्डार है—ऐसा विश्वास अंतरमें लाये तो बाहर भीख माँगना मिट जाये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

" 'मुझे धनमेंसे सुख मिल जाय, मुझे शरीरमेंसे सुख मिल जाय, मुझे शुभकार्योंमेंसे सुख मिल जाय, मुझे शुभपरिणामोंमेंसे सुख मिल जाय'—इसप्रकार तू भीख माँगता रहता है।"

धन अर्थात् लक्ष्मी तो जड़ है, धूल है। क्या धनमें—जड़में सुख है? भीतर आत्मस्वरूपमें आनन्दधन भरा है उसकी दृष्टि और विश्वास नहीं है, और 'दया-दानादि करूँ तो मुझे सुखकी प्राप्ति होगी' ऐसी जो भिक्षुकवृत्ति हो गई है वह मूढ़ता है। अपने स्वभावमें सुख-सामर्थ्य है उसे अंतरंग दृष्टि करके देखता नहीं है और शरीरसे, इन्द्रियोंसे सुख मिलेगा —ऐसी मिथ्या अभिलाषा अज्ञानी करता है। दया पालने, दान देने, व्रताचरण तथा भक्ति आदि करनेके बाह्य शुभकार्य मैं कर सकता हूँ और उन बाह्य कार्योंसे मुझे सुख प्राप्त होगा —ऐसे भ्रमका सेवन करके अज्ञानी बाह्य सुखकी आशा रखते हैं, अपनेमें सुख है उसे नहीं खोजते। बाह्य शुभकार्योंसे कुछ आगे बढ़कर माने तो भीतर शुभपरिणाम करनेसे सुख मिलेगा—ऐसा मानकर अज्ञानी जीव पंचमहाव्रत, दया-दान, भगवानका नामस्मरण, पंचपरमेष्ठीकी भक्ति आदि विभावपरिणामोंमेंसे सुखकी भीख माँगता रहता है! परन्तु शुभपरिणाम भी, काम-क्रोधादि अशुभ परिणामोंकी भाँति आस्रवभाव हैं, अशुचि हैं, स्वभावसे विपरीत हैं, दुःख हैं और दुःखका कारण हैं। उनमेंसे सुख प्राप्त हो जायगा वह महान भ्रम है। क्या दुःखमेंसे सुख मिलेगा?

श्रोता :—बहुत दुःख भोगेंगे तो सुख मिलेगा न?

उत्तर :—दुःख भोगना वह तो आर्त्तध्यान है और उसका परिणाम दुःख ही है। भगवान आत्मा अनाकुलताका—आनन्दका भण्डार है, शुभभाव तो आकुलता उत्पन्न करनेवाले हैं। आकुलता कारण और अनाकुलता कार्य, ऐसा नहीं होता। व्यवहाररत्नत्रयका शुभराग भी आस्रवभाव और दुःख है; उससे निश्चयरत्नत्रय अर्थात् संवर-निर्जरा और सुख हो—ऐसा नहीं है। अहा! लोगोंको असह्य लगेगा! क्या कहा? कि—शुभकार्य तथा शुभपरिणाम—ऐसी दो बातें कहीं। शरीरादि जड़की शुभक्रियासे या व्रतादिके विभावपरिणामोंसे क्या सुख मिलेगा? शुभभाव कारण और शुद्धभाव कार्य—ऐसा जो कहा जाता है वह भ्रम है, अज्ञान है। शुभकार्य करूँ और शुभपरिणाम करूँ—भक्ति, यात्रा, गुरुकी विनय आदि शुभभाव करूँ—तो उसमेंसे सुख मिलेगा—यह मान्यता मिथ्यात्व है, धर्म नहीं है। भीतर शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्माका बहुमान करना वह परमार्थ विनय और धर्मका मूल है। बाहर भगवानकी विनय तो शुभराग—विकल्प है। भगवान आचार्यदेव कहते हैं कि—'पर दव्वादो दुग्गई.....'

'पर द्रव्यथी दुर्गति, खरे सुगति स्व द्रव्यथी थाय छे;
—ए जाणी, निजद्रव्ये रमो, पर द्रव्यथी विरमो तमे।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान कहते हैं कि हमारे ऊपर भक्तिका जो शुभराग है वह भी चैतन्यपरिणामकी दुर्गति—विभाव, आस्रव, अशुचि और दुःख—है, वह चैतन्यकी सुगति–स्वभाव, संवर–निर्जरा, शुचि और सुख नहीं है। अहा! भगवानकी यात्रादि शुभभावसे सुख होगा ऐसे भ्रममें दुनियाँ अनादिसे पड़ी है। समयसारके मोक्ष–अधिकारमें तो प्रतिक्रमणादिके शुभभावको विषकुम्भ कहा है। विषमेंसे आनन्द मिल सकता है? कदापि नहीं मिलेगा। यह तो कोई अपूर्व मार्ग है, दुनियाँसे यह बात बिलकुल भिन्न ही है।

भगवान आत्मा तो भीतर सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दका सागर है; उसकी दृष्टि और महिमाके बिना, दिगम्बर साधु होकर 'शुभक्रियासे तथा व्रतादिके शुभपरिणामोंसे सुख और शान्ति प्राप्त होंगे'—इसप्रकार तू बाहर भीख माँगता रहता है!

'परन्तु बाहरसे कुछ नहीं मिलता।'

शुभकार्यसे या शुभपरिणामसे आत्माको कोई लाभ नहीं होता। तेरी वस्तु अंतरमें है, वह बाहर कहाँसे मिलेगी? बाहर लक्ष करनेसे तो दुःख मिलेगा, आत्माकी शान्ति और सुख किंचित् प्राप्त नहीं होंगे।

'गहराईसे ज्ञायकपनेका अभ्यास किया जाय तो अंतरसे ही सब कुछ मिलता है।'

शुभाशुभ भाव तो ऊपरी विभावपर्याय है, भीतर गहराईमें—धरातलमें—भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य ज्ञायक पिण्ड है। 'मैं सुखनिधान ज्ञायकपिण्ड हूँ, मात्र जानना–देखना ही मेरा स्वरूप है'—ऐसी ऊपरी पर्यायमात्रको दृष्टिमेंसे निकालकर, गहराईसे ज्ञायकतलमें उतरकर, ज्ञायकपनेका सतत अभ्यास किया जाय तो भीतर स्वभावमेंसे ही सुख, शान्ति तथा समाधि आदि सब मिलते हैं।'

रागादि समस्त व्यवहारिक भावोंसे विमुख होकर अंतरमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्तानन्त गुणोंका भण्डार ऐसा जो निज ज्ञायकभाव उसकी गहराईमें उतरकर ग्रहण करना—उत्पाद–व्ययरूप वर्तमान पर्यायको ध्रुव स्वभावकी ओर मोड़नेका उद्यम करना—उसे ज्ञायकत्वका अभ्यास कहते हैं। दया–दानादि विभावको अपना मानना वह बहिरात्मबुद्धि है। परसे तथा विभावसे आत्माका भेदज्ञान करनेपर 'अंतरात्म दशा' प्राप्त होती है। भीतर अंतरात्मदशारूप क्रियासे—शुद्ध परिणतिसे—परमात्म पद प्राप्त होता है। बाहरसे—क्रियाकाण्ड अथवा शुभरागसे—कुछ नहीं मिलता।

'जैसे भोंयरेमें जाकर योग्यकुंजी द्वारा तिजोरीका ताला खोला जाये तो निधान प्राप्त हों और दरिद्र दूर हो जाये, उसीप्रकार गहराईमें जाकर ज्ञायकके अभ्यासरूप कुंजीसे भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये तो अनंत गुणरूप निधान प्राप्त हों और भिक्षुकवृत्ति मिट जाये।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भोंयरेमें रखी हुई तिजोरीमें अपार धन भरा है; उसमें जाकर योग्य चावी द्वारा तिजोरी खोले तो सम्पत्ति मिले और निर्धनता दूर हो जाय; वैसे ही आनन्दसागर चैतन्यप्रभुकी गहराईमें—निमित्त, राग एवं वर्तमान उत्पाद–व्ययरूप पर्याय आदि ऊपरी भावोंका लक्ष छोड़कर चैतन्य ध्रुव धरातलरूप भोंयरेमें—उतरकर ज्ञायकके अभ्यासरूप भेदज्ञानकी चावी द्वारा भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाये तो ज्ञान, दर्शन, सुख, शान्ति, समाधि आदि अनन्त गुणरूप चैतन्यनिधानकी प्राप्ति हो और अनादिकालीन भिक्षुकवृत्ति मिट जाये। अहा! कठिन बात है भाई! आजकल तो धर्मके नामपर बड़ी गड़बड चल रही है, उसमें यह बात रखना........! रागसे मुझे लाभ होगा ऐसी जो बुद्धि है वह मिथ्यात्वरूपी ताला है, उसमें चैतन्यनिधान बन्द हो गया है। अंतरमें आनन्दस्वरूप आत्माकी गहराईमें—ध्रुव ज्ञायक पिण्डमें—उतरकर ज्ञायकके अभ्यासरूपी योग्य चावी लगा दे तो सुख, शान्ति, समाधि आदि अनन्त गुणरूप निधान खुल जायेंगे और पर्यायमें जो अनादिकी भिक्षुकवृत्ति है, दीनता और दरिद्रता है वह दूर हो जायगी, मिट जायगी। अहा! ऐसी बात! भाषा सादी परन्तु भाव तो अति गम्भीर हैं!

वस्तुमें पर्याय ऊपर–ऊपर है, ध्रुव ज्ञायकभाव भीतर धरातलमें—भोंयरेमें—भरा है। 'मैं मात्र ज्ञाता—द्रष्टा ही हूँ' इसप्रकार धरातलमें—गहराईमें—उतरकर ज्ञायकके अभ्यासरूपी चाबी लगाकर परके तथा रागके साथ एकताकी भ्रान्तिरूप ताला खोल दिया जाय तो ज्ञान, सुख आदि अनन्त गुणरूप निधान प्राप्त हों और बाहर ज्ञान तथा सुखकी भीख माँगना मिट जाय। अहा! भाषा बिलकुल सादी और भाव बहुत ऊँचे! यह तो सम्यग्दृष्टिकी बात कही, अब मुनिराज कैसे होते हैं वह कहेंगे।

❃

वचनामृत–४१५

मुनिराज कहते हैं :—हमारा आत्मा तो अनन्त गुणोंसे भरपूर, अनन्त अमृतरससे भरपूर, अक्षय घट है। उस घटमेंसे पतली धारसे अल्प अमृत पिया जाय ऐसे स्वसंवेदनसे हमें सन्तोष नहीं होता। हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृतका पान हो ऐसी पूर्ण दशा चाहिये। उस पूर्ण दशामें सादि–अनन्त काल पर्यन्त प्रतिसमय पूरा अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है। चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत द्रव्य और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन! ऐसी उत्कृष्ट–निर्मल दशाकी हम भावना भाते हैं। (ऐसी भावनाके समय भी मुनिराजकी दृष्टि तो सदा शुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।) ॥४१५॥

'मुनिराज कहते हैं :—'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिराज कैसे होते हैं वह कहते हैं। पहले निज शुद्धात्माका स्वानुभूति सहित सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होनेके पश्चात् स्वरूपस्थिरतामें आगे बढ़कर जिनको अंतरमें, अनन्तानुबंधी आदि तीन कषायोंका अभाव हुआ होनेसे, आनन्दका प्रचुर स्वसंवेदन सतत वर्तता है वे भावलिंगी मुनिराज हैं। महाव्रतादिकी शुभ क्रिया अथवा शुभ परिणाम तथा नग्नता आदि परमार्थसे मुनिपना नहीं है। अंतरमें जो आनन्दका सहज प्रचुर स्वसंवेदन है वही भावलिंगी मुनिराजका अंतरंग चिह्न है। अविरत सम्यग्दृष्टिको भी आनन्दमुद्रित स्वसंवेदन है, परन्तु वह अल्प है, मुनिराजको तो प्रचुर अर्थात् तीव्र है। प्रचुर–स्वसंवेदन दशारूप परिणमित हुये मुनिराज कहते हैं :—

'हमारा आत्मा तो अनन्त गुणोंसे भरपूर, अनन्त अमृतरससे भरपूर, अक्षय घट है।'

शरीर, इन्द्रियाँ तथा विषयभूत पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न और शुभाशुभ विभावभावोंसे भी परमार्थतः रहित ऐसा यह आत्मा स्वभावतः ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंसे सदा भरपूर है। धर्मीजीवकी दृष्टिमें अपने आत्मा–ज्ञायकभाव–के अतिरिक्त जगतकी अन्य कोई वस्तु अधिक दिखायी नहीं देती। ज्ञानादि अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण, अनन्त अमृतरससे भरपूर यह आत्मा अक्षय—जिसका कभी क्षय–नाश नहीं होता, जिसके आलम्बनसे पर्यायमें पूर्ण अमृतरस प्रगट होनेपर भी जो अपूर्ण नहीं होता, ऐसा सदा अविनाशी एवं परिपूर्ण—घट है। यह शरीर भी घट जैसा है न! भीतर शरीर–प्रमाण रहा हुआ आत्मा भी ज्ञान और आनन्दादिसे भरपूर अक्षय घट है। प्रचुर–स्वसंवेदनधारी मुनिराज कहते हैं कि—

'उस घटमेंसे पतली धारसे अल्प अमृत पिया जाय ऐसे स्वसंवेदनसे हमें सन्तोष नहीं होता।'

मुनिराजको प्रचुर स्वसंवेदन होनेपर भी वह अमृतरस केवलज्ञानी परमात्माकी अपेक्षा अत्यल्प है। केवली भगवान चैतन्यघटके पूर्ण अमृतरसका पान करते हैं और मुनिराज तो पतली धारसे पीते हैं। मुनिराज कहते हैं कि—पतली धारसे आनन्दामृतका पान करें ऐसे अपूर्ण स्वसंवेदनसे हमको सन्तोष नहीं होता। रागसे भिन्न भगवान आत्माका जहाँ अनुभव हुआ वहाँ भेदज्ञानकी धाराका आरम्भ हुआ। वहाँ अतीन्द्रिय अमृतकी धारा भी साथ ही प्रवाहित है। चौथे–पाँचवें गुणस्थानवर्ती ज्ञानीकी अपेक्षा छठवें–सातवें गुणस्थानमें झूलते हुए भावलिंगी मुनिराजको अमृतधाराका प्रचुर स्वसंवेदन है; परन्तु चैतन्यघटमेंसे आनन्दका जो पूर्ण वेदन आना चाहिये वह नहीं आता। वह अमृतरस पतली धारसे वेदनमें आता है। इसलिये मुनिराज कहते हैं कि—पतली धारसे अल्प अमृतपान हो ऐसे स्वसंवेदनसे हमें संतोष नहीं होता।

'हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृतका पान हो ऐसी पूर्ण दशा चाहिये।'

छठवें गुणस्थानमें आत्मज्ञानी स्वानुभवी मुनिराजको—सच्चे निर्ग्रंथ दिगम्बर संतको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर ध्रुव धरातलमें विशेष एकाग्रतासे पर्यायमें आनन्दामृतकी प्रचुर धारा चलती है। 'घट घट अंतर जिन बसे, घट–घट अंतर जैन।' जिनप्रभु अर्थात् वीतराग अमृतका सागर घट घटमें—प्रत्येक आत्मामें—बिराजमान है। शरीररूपी इस जड़ घटसे भिन्न भीतर चैतन्यघट है। मुनिराजको मुनियोग्य प्रचुर अमृतधाराका वेदन सतत वर्त रहा है तथापि इतनेसे संतोष नहीं है; उनको तो प्रतिसमय आनन्द घटमें भरा हुआ परिपूर्ण अमृत पिया जाय ऐसी पूर्ण दशा चाहिये। अहा! देखो तो मुनिराजकी यह दशा! भगवान उन्हें सच्चा मुनि कहते हैं। उनको महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुणके विकल्प—शुभभाव—आते हैं परन्तु वे अंतरमें दुःखरूप लगनेसे तथा बंधका कारण होनेसे, उनकी भावना नहीं है; भावना तो स्वरूपमें पूर्ण स्थिरतासहित—असंख्यात समयमें ख्याल आये ऐसी पतली धारासे वर्तते हुए प्रचुर स्वसंवेदनरूप अपूर्ण दशा छूटकर—पूर्ण अमृतका पान हो ऐसी पूर्ण दशाकी है। अहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त वार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' पंचमहाव्रतका निर्दोषरूप पालन करके अनन्तबार नववें ग्रैवेयकका अहमिन्द्र हुआ परन्तु आत्माके अनुभव बिना आनन्दकी एक बूँद भी नहीं मीली। महाव्रतके परिणाम भी दुःखरूप हैं, इसलिये मुनिराज भावना भाते हैं कि व्रतादिके दुःखमय विकल्प छूटकर प्रतिसमय पूर्ण अमृत पिया जाय ऐसी पूर्ण दशा हमें प्राप्त हो जाय।

'उस पूर्ण दशामें सादि–अनन्तकाल पर्यन्त प्रतिसमय पूरा अमृत पिया जाता है और घट भी सदा परिपूर्ण भरा रहता है।'

मुनिराजको पूर्ण दशाकी भावना है। पूर्णदशाका प्रारम्भ है परन्तु उसका भविष्यमें कभी अन्त नहीं है। 'सादि–अनन्त अनन्त समाधिसुखमें, अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो।'—इसप्रकार जहाँ प्रतिसमय पूर्ण अमृतका पान होनेपर भी घट परिपूर्ण भरा रहे ऐसी पूर्णदशाकी आवश्यकता है।

पर्यायमें निर्विकल्प आनन्दकी पूर्णताका नाम मोक्ष है। मोक्षस्वरूप पूर्णदशामें सादि–अनन्तकाल पर्यन्त प्रतिसमय पूर्ण अमृतका पान होता है फिर भी आनन्दामृत घट—भगवान आत्मा—आनन्द सामर्थ्यसे सदा परिपूर्ण भरा रहता है, उसमें कभी न्यूनता नहीं आती। दुनियाँको यह बात कठिन लगेगी, परन्तु क्या किया जाय? वस्तुस्वरूप और सत्यमार्ग तो यही है।

'चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत द्रव्य और प्रतिसमय ऐसी ही पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन!'

द्रव्यस्वभाव तथा गुणस्वभावमें कभी न्यूनता नहीं आती; पर्यायमें अल्प आनन्द आये या पूर्ण आनन्द आये तब घट—चमत्कारिक शक्तिवाला शाश्वत द्रव्य—तो सदा परिपूर्ण रहता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। अहा! है न आश्चर्यजनक बात? अंतरमें—तलमें—अमृतघट परिपूर्ण भरा होनेपर भी, पर्यायमें अल्पअमृत पिया जाय वह मुनिदशा और परिपूर्ण अमृतका पान हो वह परमात्म दशा।

आत्मा स्वभावसे कभी हीनाधिक नहीं होता ऐसा चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवाला शाश्वत द्रव्य है, वह साधारण मनुष्यके ख्यालमें नहीं आता। पर्यायमें परिपूर्ण आनन्द आया तो पूर्ण स्वभावमेंसे कुछ कमी हुई या नहीं?—नहीं; परिपूर्ण आनन्दामृतस्वरूप भगवान आत्मामेंसे पूर्ण आनन्द तथा केवलज्ञान प्रगट होनेपर भी ज्ञायकघट तो सदा परिपूर्ण ही है। द्रव्य और गुण तो सदा परिपूर्ण भरे पड़े हैं। अहा! वस्तुस्वभाव ही कोई चमत्कारिक है! परन्तु लोगोंको किसप्रकार बैठे? वस्तुकी भाँति गुणस्वभाव भी ऐसा ही चमत्कारिक है। प्रतिसमय पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन प्रगट होनेपर भी पूर्ण शक्तिवान शाश्वत द्रव्य किंचित् हीनाधिक हुए बिना, ज्योंका त्यों पूर्ण रहता है—यही उसका कोई अजब चमत्कार है। अहा! जैसा चमत्कारिक पूर्ण शक्तिवान शाश्वत आत्मद्रव्य, वैसा ही चमत्कारी उसका प्रतिसमय होता पूर्ण व्यक्तिवाला परिणमन!

'ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशाकी हम भावना भाते हैं।'

वस्तुका गुणस्वभाव ऐसा ही कोई चमत्कारिक है कि शक्ति अपेक्षासे सदा परिपूर्ण तथा व्यक्ति अपेक्षासे भी ऐसा ही परिपूर्ण परिणमन! प्रतिसमय पूर्ण आनन्द वेदनमें आये तथापि वस्तु तो शक्तिरूपसे सदैव परिपूर्ण भरी पड़ी है। अतीन्द्रिय आनन्दका जिस परमात्मदशामें परिपूर्ण वेदन हुआ उसमें भी षड्गुण हानिवृद्धिरूपसे—अनन्तभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, संख्यातभाग हानि, संख्यातगुण हानि, असंख्यातगुण हानि, अनन्तगुण हानि तथा अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धिरूप, संख्यातभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, अनन्तभाग वृद्धिरूपसे—परिणमन है, तथापि परिपूर्णतामें किंचित् न्यूनता नहीं आती। अहा! कैसा चमत्कारिक स्वरूप! वस्तु तो कोई वस्तु है! द्रव्य, गुण और पर्यायें—तीनों चमत्कारिक! अहा! पूर्ण शक्तिवान शाश्वत चमत्कारिक द्रव्य! और प्रतिसमय ऐसी पूर्ण व्यक्तिवाला चमत्कारिक परिणमन! मुनिराज भावना भाते हैं कि—ऐसी उत्कृष्ट-निर्मल दशा हमें प्रगट हो!

'(ऐसी भावनाके समय भी मुनिराजकी दृष्टि तो सदा शुद्ध आत्मद्रव्य पर ही है।)'

ज्ञानीकी, पूर्णदशाकी भावनाके समय भी, दृष्टि तो त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायक द्रव्य सामान्य पर ही है, परिपूर्ण पर्याय पर नहीं है। पूर्ण पर्यायकी भावनाके समय भी और पूर्ण पर्यायके कालमें भी दृष्टि तो सदा शुद्ध आत्मद्रव्य पर ही होती है। शुद्धात्मद्रव्यसामान्य परसे दृष्टि कभी हटती नहीं है। अहा! वस्तुस्वरूपकी महिमा कोई अलौकिक है! ❊ ❊

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन-१७३

दिनांक २९-१२-८५

वचनामृत-४१६

भवभ्रमण चलता रहे ऐसे भावमें यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है। भवके अभावका प्रयत्न करनेके लिये यह भव है। भवभ्रमण कितने दुःखोंसे भरा है उसका गंभीरतासे विचार तो कर! नरकके भयंकर दुःखोंमें एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है वहाँ सागरोपम कालकी आयु कैसे कटी होगी? नरकके दुःख सुने जाएँ ऐसे नहीं हैं। पैरमें काँटा लगने जितना दुःख भी तुझसे सहा नहीं जाता, तो फिर जिसके गर्भमें उससे अनन्तगुने दुःख पड़े हैं ऐसे मिथ्यात्वको छोड़नेका उद्यम तू क्यों नहीं करता? गफलतमें क्यों रहता है? ऐसा उत्तम योग पुनः कब मिलेगा? तू मिथ्यात्व छोड़नेके लिये जी-जानसे प्रयत्न कर, अर्थात् साता-असातासे भिन्न तथा आकुलतामय शुभाशुभ भावोंसे भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभावका अनुभवनेका प्रबल पुरुषार्थ कर। यही इस भवमें करने योग्य है। ४१६।

'भवभ्रमण चलता रहे ऐसे भावमें यह भव व्यतीत होने देना योग्य नहीं है।'

चार गतियों तथा चौरासीलाख योनियोंके भवमें परिभ्रमण चलता रहे—ऐसे भावमें—भवभ्रमणके हेतुभूत ऐसे मिथ्यात्वभावमें—यह दुर्लभ मनुष्यभव गँवा देना योग्य नहीं है।

'भवके अभावका प्रयत्न करनेके लिये यह भव है।'

'बहु पुण्य पुंज प्रसंगसे, शुभ देह मानवका मिला;' पूर्वके महाभाग्यसे जो यह उत्तम मनुष्यभव मिला है वह, भवभ्रमणके अभावका प्रयत्न करनेके लिये मिला है; यह भव कहीं भवोंको बढ़ानेके लिये नहीं मिला। क्या कहा? कि—अब और भवभ्रमण न हो—ऐसे भविष्यके भवका अभाव करनेके लिये यह मनुष्यभव है। भवका अभाव, उसके प्रयत्न हेतु यह भव है; यह भव भवमें वृद्धि हेतु नहीं है।

'भवभ्रमण कितने दुःखोंसे भरा है उसका गंभीरतासे विचार तो कर।'

अरे! नरक और निगोदके दुःखोंकी तो क्या बात! जिनके एकक्षणका भी दुःख करोड़ों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भवमें तथा करोड़ों जिह्वाओं द्वारा नहीं कहा जा सकता—ऐसे नरक और निगोदके जीव वास्तवमें महादुःखी हैं। उन भयंकर यातनाओंका गंभीरतासे विचार तो कर! कितने भव किये तथा कितने और कैसे दुःख सहे, उनकी गम्भीरतापूर्वक थाह तो ले!

'नरकके भयंकर दुःखोंमें एक क्षण निकलना भी असह्य लगता है वहाँ सागरोपम कालकी आयु कैसे कटी होगी?'

प्रथम नरकमें जघन्य आयु दस हजार वर्षकी और सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपमकी है। जहाँ पहले नरकके नारकीका एक क्षणका दुःख भी सुना नहीं जाता इतना भयंकर है, वहाँ सातवें नरकके नारकीके दुःखकी तो क्या बात? यहाँ किसी मनुष्यको रात्रिमें रोगकी वेदना कुछ अधिक हो तो रात्रि व्यतीत होना कठिन लगता है न? रात्रि कहीं लम्बी नहीं हो गई है, रात्रि तो जितनी है उतनी है, परन्तु वेदनाके कारण रात्रि लम्बी लगती है, बीत नहीं रही है ऐसा उसे लगता है। अरे! यहाँ मनुष्यभवमें तो नरककी अपेक्षा अनन्तवें भाग वेदना है; पहले नरककी वेदना भी असह्य है। नरकके उन भयंकर दुःखोंमें एक क्षण व्यतीत होना भी कठिन लगता है तब तेतीस–तेतीस सागरोपम कालकी आयु कैसे पूरी हुई होगी? जहाँ एक क्षणके दुःख भी अति भयंकर हैं वहाँ सागरोपमकी आयु कैसे बिताई होगी? अरेरे! जीवने उसका कभी विचार नहीं किया!

'नरकके दुःख सुने जायँ ऐसे नहीं हैं।'

अति पाप परिणामोंसे—क्रूर, परिणामोंसे मनुष्य और तिर्यंचके जीव मरकर नरकमें जाते हैं; वहाँके दुःख कहे या सुने नहीं जायँ ऐसे हैं। वहाँकी भूमिके स्पर्शमात्रसे इतनी वेदना होती है मानों हजारों बिच्छुओंने डंक मारा हो; सेमल वृक्षोंके धारदार पत्ते तलवारकी भाँति शरीरको चीर देते हैं; मेरु पर्वत जितना लोहेका पिण्ड क्षणमात्रमें गल जाय ऐसी वहाँ भीषण ठण्ड और गर्मी होती है; नारकी परस्पर लड़ते हैं और शरीरके तिल–तिल जितने टुकड़े कर देते हैं। परमाधामी–असुरकुमार देव उन्हें परस्पर लड़वाते हैं। प्यास इतनी तीव्र होती है कि समुद्र भर पानी पीनेका मन होता है, तथापि वहाँ पानीकी एक बूँद भी नहीं मिलती। तीनलोकका अनाज खा जाने पर भी शांत न हो इतनी भूख लगती है, फिर भी एक दाना खानेको नहीं मिलता। शरीर तो पारेकी भाँति बिखर जाता है और फिर मिल जाता है; अरे! ऐसे दुःख तूने अनन्तबार अनेक सागरोपम काल तक सहन किये हैं। नरकके वे भीषण दुःख सुने जायँ ऐसे नहीं हैं।

'पैरमें काँटा लगने जितना दुःख भी तुझसे सहा नहीं जाता, तो फिर जिसके गर्भमें उससे अनन्तानंत गुने दुःख पड़े हैं ऐसे मिथ्यात्वको छोड़नेका उद्यम तू क्यों नहीं करता?'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बबूलका एक काँटा लगने पर आह निकल जाती है, आँखमें एक किरकिरी चली जाय तो सही नहीं जाती; अरे! इतना दुःख भी तू सहन नहीं कर सकता, तो फिर जिसके गर्भमें उससे अनंतानंतगुने नरक और निगोदके दुःख पड़े हैं ऐसे मिथ्यात्वको—शरीर तथा स्त्री-पुत्रादि परपदार्थोंमें सुख मिलना, रागादि विभावको अपना स्वभाव मानना, अपनेको मात्र पलटती पर्याय जितना मानना आदि भ्रान्तियुक्त विपरीत भावोंको—छोड़नेका उद्यम तू क्यों नहीं करता?

अहा! पर्यायबुद्धिके अर्थात् मिथ्यात्वभावके गर्भमें अनन्तानन्त भव पड़े हैं। वास्तवमें तो मिथ्यात्वको ही 'अनन्त' कहा है। मिथ्यात्वके साथ रहे हुए कषायको ही अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं। ज्ञानीको अस्थिरताके कारण क्रोधादिकषाय होते हैं परन्तु साथमें मिथ्यात्वभाव नहीं है इसलिये, उसके गर्भमें अनन्तानन्त भव नहीं हैं। जिसमें अनन्तानन्तगुने दुःख भरे हैं ऐसे मिथ्यात्वको छोड़नेका पुरुषार्थ तू क्यों नहीं करता? मिथ्यात्व दोषके साथ अनन्तानुबंधी कषाय होता ही है। हाँ, दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबंधी कषाय अकेला भी होता है, परन्तु वह तो अल्प क्षणकी बात है, उस बातकी अपेक्षा अलग है। अहा! अनन्तानन्त गुणोंका सागर ऐसा जो निजभगवान आत्मा उसके अनादरपूर्वक जो मिथ्यात्वभाव होता है उसके गर्भमें अनन्त-अनन्त भव विद्यमान हैं। अरे! प्रथम यह मिथ्यात्वका महापाप छोड़ना चाहिये, परन्तु उसे छोड़नेकी चिन्ता नहीं है। रागकी मन्दतारूप डालें पत्ते तोड़ दिये परन्तु भव परिभ्रमणका मूल मिथ्यात्व तो सुरक्षित रह गया है! महान भूल! 'यह बहु भूल भई हमरी, फिर कहा होत पछताये।' शरीरादिक परद्रव्योंको अपना मानना, रागादि विभावसे लाभ मानना—वह बड़ी भयंकर भूल मैंने की, अब अफसोस करनेसे क्या लाभ? स्वाश्रयसे अनन्तानन्त गुणोंको लाभ होता है—ऐसा न मानकर 'पराश्रयसे—रागसे—लाभ होगा' ऐसी मान्यता वह मिथ्यात्व है। उसके गर्भमें अनन्तानन्त दुःख भरे हैं। अरे! ऐसे भयंकर मिथ्यात्वभावको छोड़नेका उद्यम तू अंतरसे क्यों नहीं करता?

'गफलतमें क्यों रहता है?'

यह महँगा मनुष्यभव तो भवका अभाव करनेके लिये है; तो फिर भवका हेतु ऐसा जो मिथ्यात्वभाव उसे छोड़नेका प्रयत्न क्यों नहीं करता? प्रमाद क्यों करता है?

'ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा?'

भाई! ऐसा योग प्राप्त होना अति दुर्लभ है। दुर्लभ परम्परामें निगोदसे निकलकर त्रसपर्याय प्राप्त होना भी महादुर्लभ है। 'दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रस तणी;' त्रसपना प्राप्त करना भी चिन्तामणि समान अति दुर्लभ है। उसमें भी मनुष्यपना,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैनकुलमें जन्म, वीतरागी देव-गुरुका समागम, जिनवाणीका श्रवण आदि उत्तरोत्तर महा दुर्लभ हैं। अहा! ऐसा उत्तम योग फिर कब प्राप्त होगा?

पैसा और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति वह कोई दुर्लभ नहीं है। वह तो अनन्तबार मिल चुके हैं। 'जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें, कह न सके उसको भी श्री भगवानजी;'—आत्माके गुणोंका वर्णन सर्वज्ञ भी पूर्णतः नहीं.कर सकते। एक-एक गुणको क्रमानुसार कहने जाय तो अनन्तकाल चाहिये, परन्तु इतनी आयु तो किसीकी होती नहीं है। इतने अनन्तगुणोंसे विरुद्ध रहकर प्रभु! तूने मिथ्यात्वका सेवन किया है। उसे छोड़नेका प्रयत्न क्यों नहीं करता? मिथ्यात्व छोड़नेका उत्तम योग प्राप्त हुआ है, तो कार्य कर लेने जैसा है। 'बिजलीकी चमकमें मोती पिरो लो, झटसे पिरो लो।' वह चमक-ऐसा उत्तम योग—दीर्घकाल तक नहीं रहेगा। ऐसा मनुष्य भव और उसमें ऐसी उत्तम बात—वीतरागकी वाणी—कानोंमें पड़ना कठिन है! फिर ऐसा उत्तम अवसर कब प्राप्त होगा?

'तू मिथ्यात्व छोड़नेके लिये जी-जानसे प्रयत्न कर अर्थात् साता-असातासे भिन्न तथा आकुलतामय शुभाशुभभावोंसे भी भिन्न ऐसे निराकुल ज्ञायकस्वभावको अनुभवनेका प्रबल पुरुषार्थ कर।'

भाई! अनन्त संसारके हेतुभूत उस भयंकर अनिष्टको—मिथ्यात्वभावको—छोड़नेके लिये तीव्र पुरुषार्थ कर, जी-जानसे प्रयत्न कर। समयसारमें कहा है न? कि—'अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्....' हे भाई! तू किसी भी प्रकार महा प्रयत्नसे अथवा मरकर भी तत्त्वोंका कौतूहली होकर, इन शरीरादि मूर्त द्रव्योंका दो घड़ी पडौसी होकर, आत्माका अनुभव कर कि जिससे अपने आत्माको ज्ञान एवं आनन्दके विलासरूप, सर्व परद्रव्योंसे पृथक् देखकर इन शरीरादिक मूर्तिक पुद्गलद्रव्य तथा रागादि विभावके साथ एकत्वके मोहको—मिथ्यात्वभावको—तू तुरन्त ही छोड़ेगा।

भाई! दुनिया क्या कहेगी, कैसे मानेगी आदि तथा दुनियाके मान-सन्मान तथा दुनियाकी प्रसिद्धि आदिको एक ओर रख दे। गिनने योग्य-गिनतीमें लेने योग्य—तो ज्ञान और आनन्दादि अनन्त-अनन्त गुणरत्नोंसे भरपूर निज चैतन्य रत्नाकर ज्ञायकदेव है। 'देवः स्वयं शाश्वतः'—अपने पुरुषार्थसे मिथ्यात्वभावको छोड़कर अंतरंगमें देखे तो यह आत्मा अपने अनुभवसे ही ज्ञात होने योग्य जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा व्यक्त (अनुभव गोचर), निश्चल, शाश्वत, नित्य, कर्मकलंकसे रहित ऐसा स्वयं स्तुति करने योग्य देव विराजमान है। त्रिकालशुद्ध ज्ञायक चैतन्यरत्नाकरका अनादर और एक-समय-स्थायी क्षणिक रागादि विभावका आदर, यही मिथ्यात्वभाव है। वह मिथ्यात्व-आत्मभ्रान्ति—छोड़नेका जी-जानसे प्रयत्न कर, अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सातासे-पानी, आहार, सोना, बैठना, बिछाना, ओढ़ना आदि बाह्य अनुकूलतासे—तथा अशातासे—रोग, दारिद्र, अपमान आदि बाह्य प्रतिकूलतासे—भिन्न तथा आकुलतामय शुभाशुभ भावसे भिन्न ऐसे त्रिकाल निराकुल ज्ञायकस्वभावको अनुभवनेका प्रबल पुरुषार्थ कर।

श्रोता :—पहले द्रव्यसंयम लेनेको शास्त्रोंमें कहा है न?

उत्तर :—भावसंयम प्रगट होनेसे पूर्व चौथे-पाँचवें गुणस्थानमें महाव्रत लेनेके विचार आते हैं, परन्तु उन विकल्पोंसे क्या भावसंयम प्रगट होता है? प्रथम ऐसे विकल्प होते अवश्य हैं, परन्तु भावसंयम तो भीतर ज्ञायकस्वभावके उग्र आश्रसे ही प्रगट होता है। जैसे कार्यके समय अनुकूल निमित्त होता है, परन्तु क्या वह नैमित्तिक कार्यमें कुछ करता है? वैसे ही व्रतादिके विकल्परूप व्यवहार होता है परन्तु उससे क्या वह भावसंयमरूप कार्य करता है? भावसंयम तो आकुलतामय शुभाशुभ भावोंसे भी भिन्न ऐसे निराकुल निज ज्ञायकस्वभावको अनुभवनेके प्रबल पुरुषार्थसे होता है। अंतरंगस्वरूप रमणताकी शुद्धिमें वृद्धि होना वह भाव संयम है, तदनुरूप शुभभाव नहीं। मुनि होनेसे पूर्व व्रतादि द्रव्यसंयम धारण करे तथापि अंतरमें ज्ञायकके आश्रयसे स्थिरताका प्रबल पुरुषार्थ न करे तो, भावसंयम नहीं होगा। भीतर चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान रहेगा और बाह्यमें क्रिया द्रव्यसंयमकी हो जायगी। जबतक उग्र स्थिरतारूप भावसंयम प्रगट न हो तबतक वह भी द्रव्यलिंगी साधु है। भावसंयमशून्य द्रव्यलिंगीके तीन प्रकार हैं : मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी, अविरत सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी और देशविरत सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी। ज्ञान और आनन्दादि अनन्तानन्त गुणोंके पिण्डस्वरूप जो निज ज्ञायक सम्राट, उसका सम्यक् श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक स्थिरता-अपेक्षासे उग्र आश्रय ले तो भावसंयम हो। अहा! बहुत कठिन!

जीवने द्रव्यसंयम अनन्तबार लिया, परन्तु दृष्टि मिथ्या होनेके कारण, कोल्हूके बैलकी भाँति, वह जहाँका तहाँ रहा। 'द्रव्यसंयमसे ग्रैवेक पाया, फिर पीछे पटका।' द्रव्यलिंग धारण करनेके पश्चात् भी कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, परन्तु वह किस कारण से?—शुभभाव और शुभ प्रवृत्तिके कारण नहीं; अंतरमें वह त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे स्व-परका तथा स्वभाव-विभावका ग्रन्थिभेद करता है इसलिये सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूतिको प्राप्त होता है। विकल्प आया इसलिये भावसंयम आ जाता है—ऐसा नहीं है। अहा! थोड़ेसे फेरमें कितना फेर है, उसकी खबर नहीं है! शुभ और अशुभभाव आकुलतामय हैं तथा भगवान आत्मासे विपरीतस्वरूप हैं; उनसे भिन्न ऐसे निराकुल निज स्वभावको अनुभवनेका अदम्य पुरुषार्थ कर।

'यही इस भवमें करने योग्य है।'

भवके अभावका प्रयत्न करना—यही इस भवका कर्तव्य है। स्वभावकी प्राप्ति तथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भवके अभावके प्रयत्नहेतु ज्ञायकस्वभावको अनुभवनेका प्रबल पुरुषार्थ कर। स्वभावका भाव (प्राप्ति) और भवका अभाव—इसप्रकार अस्ति-नास्तिसे बात कही है। अहा! भाषा बहुत संक्षिप्त परन्तु भाव अति उच्च हैं!

श्रोता :—'यही इस भवमें करने योग्य है;' परन्तु वह होगा कितनी अवधिमें?

उत्तर :—अन्तर्मुहूर्तमें। उपयोग अन्तर्मुहूर्तका है इसलिये ऐसा कहा; परन्तु वास्तवमें तो जो लक्ष बाहर है उसे अन्तर्मुख करना; वह कार्य एक समयमें होता है; क्योंकि पर्यायका काल एकसमयका है। आचार्यदेवने कहा है कि यदि समझनेमें विलम्ब हो तो छह महीनेसे अधिक नहीं होगा। 'स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्'—एक चैतन्यमात्र वस्तुका, स्वयं निश्चल होकर, छह महीने तक अभ्यास कर; ऐसा करनेसे तुझे निज ज्ञायक आत्माकी प्राप्ति होगी ही। यही इस भवमें करनेयोग्य उत्तम कार्य है। अहा! शब्द तो अल्प हैं परन्तु भाव अति गम्भीर हैं।

❋

वचनामृत—४१७

सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे ऐसी दशा हो तब मुनिपना आता है। मुनिको स्वरूपकी ओर बढ़ती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गई होती है कि वे घड़ी-घड़ी आत्मामें प्रविष्ट हो जाते हैं। पूर्ण वीतरागताके अभावके कारण जब बाहर आते हैं तब विकल्प तो उठते हैं परन्तु वे गृहस्थदशाके योग्य नहीं होते, मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं और वे भी हठ रहित होते हैं। मुनिराजको बाहरका कुछ नहीं चाहिये। बाह्यमें एक शरीरमात्रका सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है। बड़ी निःस्पृह दशा है। आत्माकी ही लगन लगी है। चैतन्यनगरमें ही निवास है। 'मैं और मेरे आत्माके अनन्त गुण ही मेरे चैतन्यनगरकी बस्ती है। उसीका मुझे काम है। दूसरोंका मुझे क्या काम?' इस प्रकार एक आत्माकी ही धुन है। विश्वकी कथासे उदास हैं। बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है;—मानों चलते-फिरते सिद्ध! जैसे पिताकी झलक पुत्रमें दिखायी देती है उसीप्रकार जिनभगवानकी झलक मुनिराजमें दिखती है। मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें रहें उतना काल कहीं (आत्मशुद्धिकी दशामें आगे बढ़े बिना) वहींके वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं। केवलज्ञान न हो तब तक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं। यह, मुनिकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतःसाधना है। जगतके जीव मुनिकी अंतरंग साधना नहीं देखते। साधना कहीं बाहरसे देखनेकी वस्तु नहीं है, अंतरकी दशा है। मुनिदशा आश्चर्यकारी है, वंद्य है॥४१७॥

'सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे ऐसी दशा हो तब मुनिपना आता है।'

सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति हो तभी, स्वरूपस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, यथार्थ मुनिपना आता है। पूर्ण ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप भगवान आत्माको शरीरादि परद्रव्योंसे तथा रागादि परभावोंसे भिन्न करके—ग्रहण करके, निजशुद्ध ज्ञायकस्वरूपकी, अंतर्‌अनुभूति होकर, जो प्रतीति हो उसे भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। पहले तो सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है, उसकी प्राप्ति कैसे होती है—यह सब यथार्थ समझना चाहिये। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति आदि लाखों क्रियाकाण्ड करे तब भी उससे सम्यग्दर्शन नहीं होगा; वह तो बाह्यक्रियाएँ तथा शुभराग है। परिपूर्ण स्वभावसे भरपूर भगवान ज्ञायक आत्मामें पर्यायको मोड़ने पर शुद्धस्वरूपका अनुसरण करके जो अंतरमें जो आनन्दके वेदन सहित जो प्रतीति हो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। स्वानुभूति सहित निज शुद्धात्मदर्शन होनेके पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते-बढ़ते, बारम्बार स्वरूपलीनता होती रहे ऐसी सहज दशा हो तब, यथार्थ मुनिपना प्रगट होता है। पैसा और प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही हो, तब लोग कहते हैं न! कि—अपना सितारा तो आजकल बुलन्द है! भाग्योदय वृद्धिगत है, जो बढ़ रहा है उसे बढ़ने दो;—यह बात तो बाहरकी है, भाई! यहाँ अंतरमें सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् आत्मलीनतामें वृद्धि होते-होते—'दिट्ठमगे' अनुभव किये हुए मार्गमें बारम्बार जाय—ऐसी दशा हो—तब सच्चा मुनिपना आता है। व्रतादिके विकल्प आते हैं इसलिये मुनिपना आया है—ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन होनेपर जो अल्प स्वसंवेदन हुआ है उसमें खूब वृद्धि हो—प्रचुर स्वसंवेदन दशा हो—भीतर स्वरूपमें बारम्बार लीन होता रहे, तब सच्चा संतपना—मुनिपना आता है।

'मुनिको स्वरूपकी ओर ढलती हुई शुद्धि इतनी बढ़ गई होती है कि वे घड़ी-घड़ी आत्मामें प्रविष्ट हो जाते हैं।'

मुनिराजको ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे परिणतिमें शुद्धि इतनी बढ़ गई होती है कि वे क्षण-क्षण आत्मामें प्रविष्ट हो जाते हैं। छठवें-सातवें गुणस्थानमें झूलते हुए वे मुनिराज चलते-फिरते आहार करते, उपदेश देते हुए बारम्बार भीतर स्वरूपमें प्रविष्ट हो जाते हैं।

'पूर्ण वीतरागताके अभावके कारण जब बाहर आते हैं तब विकल्प तो उठते हैं परन्तु वे गृहस्थदशाके योग्य नहीं होते, मात्र स्वाध्याय-ध्यान-व्रत-संयम-तप-भक्ति इत्यादि सम्बन्धी मुनियोग्य शुभ विकल्प ही होते हैं और वे भी हठरहित होते हैं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिराजको अभी पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई है इसलिये उपयोग स्वरूपसे हटकर जब बाहर आता है तब रागके विकल्प तो आते हैं, परन्तु वे गृहस्थदशा जैसे नहीं होते, अपनी भूमिकाके अनुरूप मात्र शास्त्रस्वाध्याय, तत्त्वचिन्तन, व्रत, तप, भक्ति आदि शुभविकल्प ही होते हैं और वे भी हठरहित, अंतरंगशुद्धिसे मिलते हुए तथा सहज होते हैं।

'मुनिराजको बाहरका कुछ नहीं चाहिये। बाह्यमें एक शरीरमात्रका सम्बन्ध है, उसके प्रति भी परम उपेक्षा है।'

मुनिराजको बाह्यमें एकमात्र शरीरका सम्बन्ध है और उसके प्रति भी परम–उपेक्षा है। उनको तो—

'सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम हेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहीं,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो।

—ऐसी दशा होती है। अहा! धन्य मुनिदशा!

'बड़ी निस्पृह दशा है।'

भावलिंगी संतको अंतरमें स्वरूपस्थिरता तथा स्वरूपतृप्ति इतनी बढ़ गई है कि उन्हें बाहरका कुछ नहीं चाहिये, बाहरकी सब स्पृहा उड़ गई है; दशा अत्यन्त निस्पृह हो गई है।

'आत्माकी ही लगन लगी है।'

मुनिराजको भगवान आत्माके अनाकुल आनन्दकी तीव्र लगन लगी है, भूमिकानुसार महाव्रतादिका शुभराग बिना हठके सहज आता है परन्तु उसकी अंतरमें लगन या इच्छा नहीं है, लगन भीतर आत्मामें लगी है। अहा! धन्य मुनिदशा! अत्यन्त निस्पृह दशा है, आत्माकी ही लगन लगी है।

'चैतन्यनगरमें ही निवास है।'

सहजज्ञान, सहज आनन्द, सहज वीर्य आदि अनन्तगुण जिसकी बस्ती है ऐसे निज चैतन्यनगरमें ही मुनिराजका निवास है; व्रत, तप और भक्ति आदिका शुभराग आता है परन्तु उसमें वास्तवमें मुनिराजका निवास नहीं है; अभेदज्ञायकमें—चैतन्यनगरमें—ही उनका निवास है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

“ ‘मैं और मेरे आत्माके अनन्तगुण ही मेरे चैतन्यनगरकी बस्ती है। उसीका मुझे काम है, दूसरोंका मुझे क्या लाभ?’ इसप्रकार एक आत्माकी ही धुन है।”

मुनिराजको एक निज शुद्धात्मतत्त्वकी पूर्ण प्राप्ति करनेकी ही धुन है। वे तो निजस्वरूपमें—अपने अनन्तगुणरूप बस्तीसे भरपूर चैतन्यनगरमें—परिपूर्णरूपसे स्थिर होनेको तरसते हैं। स्वरूपनगरसे किंचित् बाहर आने पर उन्हें ऐसा लगता है कि इस विभावरूप परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमारी नगरी तो वह है जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार रहता है। हमें शीघ्रतासे अपने चैतन्यनगरमें जाकर आरामसे निवास करना है जहाँ सब हमारे हैं। उनका ही हमें काम है, दूसरोंका हमें क्या काम?—ऐसी एक आत्मसाधनाकी ही धुन है।

‘विश्वकी कथासे उदास हैं।’

मुनिराज अंतरमें आनन्दकी साधनामें इतने तल्लीन हैं कि जिससे उनका अंतःपरिणमन दुनियाके झंझटोंसे सहज विरक्त—बिलकुल उदास—हो गया है। ‘बात नहीं रुचती इस दुनियाकी आठों पहर रहते हैं उदास!’—ऐसी स्वरूप तृप्तिके बलसे, सहजदशा हो जानेके कारण वे सांसारिक बातोंसे उदास रहते हैं।

‘बस, एक आत्मामय ही जीवन हो गया है;—मानों चलते-फिरते सिद्ध!

मुनिराजका जीवन बस, एक आत्मामय ही हो गया है। मिथ्यात्व और तीन कषायका अभाव होकर स्वसंवेदनमें वीतरागताकी उग्र दशा प्रगट हो जानेके कारण जीवन मात्र शुद्ध ज्ञानानुभूतिमय बन गया है;—मानों चलते-फिरते सिद्ध भगवान!

‘जैसे पिताकी झलक पुत्रमें दिखायी देती है, उसीप्रकार जिनभगवानकी झलक मुनिराजमें दिखती है।’

वीतराग जिनेन्द्र भगवानकी झलक मुनिराजमें दिखती है। मुनिदशाके योग्य व्रत, तप, भक्ति आदिके विकल्प आते हैं, तथापि वे बारम्बार भीतर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मामें डुबकी लगाते हैं। अहा! कैसी वीतरागी शान्त-शान्त दशा!—मानो जिनभगवानकी झलक! जिन नहीं परन्तु जिनेन्द्रके समान! मुनिराज अंतरमें तृप्त-तृप्त हैं, इसलिये उनके शरीरमें भी वीतरागदशा छा गई है। अहा! मुनिदशा!

‘मुनि छठवें-सातवें गुणस्थानमें रहे उतने काल कहीं (आत्मशुद्धिकी दशामें आगे बढ़े बिना) वहींके वहीं खड़े नहीं रहते, आगे बढ़ते जाते हैं; केवलज्ञान न हो तबतक शुद्धि बढ़ाते ही जाते हैं। —यह मुनिकी अंतःसाधना है।’

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अतीन्द्रिय आनन्दके झूलेमें झूलते हुए मुनिराज, व्रतादिका विकल्प आये छठवाँ गुणस्थान और विकल्प टूटकर स्वरूपमें समा जायँ तब सातवाँ गुणस्थान—इसप्रकार प्रमत्त और अप्रमत्त दशामें रहें उतने कालतक, अंतरमें प्रतिसमय आत्मशुद्धिकी दशामें आगे बढ़े बिना जहाँके तहाँ खड़े नहीं रहते—भीतर साधनामें वृद्धि हुए बिना एक समान दशा रहती है—ऐसा नहीं है; शुद्धिमें प्रतिसमय आगे बढ़ते जाते हैं, पूर्ण वीतरागदशा प्राप्त करनेकी ओर भीतर शुद्धिकी प्रगति होती ही जाती है। आया कुछ समझमें? निर्विकल्प प्रचुर स्वसंवेदनसहित ज्ञानधारा निरंतर बहती रहती है और आत्मशुद्धिकी दशामें आगे बढ़ते जाते जाते हैं। शुद्धिकी दशामें आगे बढ़े बिना, छठवें-सातवें गुणस्थानकी भूमिकारूप पर्यायमें, जहाँके तहाँ रहते हैं—ऐसा नहीं है। अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ, श्रद्धा और स्थिरता अपेक्षासे जाग्रत हुआ है उसमें—आनन्दसागरमें—विशेष विशेष डूबते-लीन होते जाते हैं। अहा! ऐसा है मुनिपना! 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में जिन्हें गणधरभगवानके भी नमस्कार पहुँचते हों वह मुनिपना कैसा होगा! अंतरमें तीन कषायके अभावजनित आत्मशुद्धि और बाह्यमें यथाजात नग्न दिगम्बर दशा होती है। मुनिराजको भूमिकानुसार व्रतादिके विकल्प आते हैं तथापि, अंतरमें भेदज्ञान एवं आनन्दकी धारा तो सतत चलती ही रहती है और प्रतिसमय शुद्धिकी दशा आगे बढ़ती जाती है। कब तक? कि—केवलज्ञान न हो तबतक। —यह मुनिराजकी अंतःसाधना है। मुनिराज, परिपूर्ण ज्ञान तथा परिपूर्ण आनन्दकी सिद्धि न हो तबतक, अंतरमें ज्ञान एवं आनन्दकी साधना बढ़ाते ही जाते हैं। अहा! ऐसी है मुनिराजकी अंतरंग साधना!

'जगतके जीव मुनिकी अंतरंग साधना नहीं देखते।'

जगतके अज्ञानी जीव मुनिराजकी अंतःसाधना नहीं देखते, बाह्य क्रियाएँ देखते हैं। 'बालाः पश्यन्ति लिंगम्।'—अज्ञानी जीव बाहरी वेश, क्रियाएँ और अधिक तो व्रतादिके बाह्य परिणाम देखते हैं; परन्तु वह कोई मूल दशा नहीं है। मूल दशा तो अंतरकी शुद्धिमय वीतराग साधना है। मुनिराजकी अंतरंग आनन्दमय साधना जगतके जीव नहीं देखते।

'साधना कहीं बाहरसे देखनेकी वस्तु नहीं है, अंतरकी दशा है।'

साधनाका माप बाह्य लिंग, प्रवृत्ति या विकल्पसे नहीं परन्तु अंतरंग साधनामय वीतराग परिणतिसे होता है। वीतरागी शुद्ध परिणतिमय साधनाका माप कहीं बाहरसे निकले—बाहरसे दिखायी दे—ऐसी वस्तु नहीं है; वह तो अंतरकी कोई अद्‌भुत दशा है!

'मुनिदशा आश्चर्यकारी है, वंद्य है!'

अहा! मुनिदशा किसे कहते हैं? मुनिराज तो वनमें रहते हैं—जहाँ सिंह और वाघ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गर्जना करते हों, सिरपर मूसलधार वर्षा हो रही हो और घोर अँधेरी रात तथा भयानक वातावरण हो; तथापि वे अंतरमें आनन्दमय आत्मसाधनामें निर्भयरूपसे इतने लीन होते हैं कि बाहरी वातावरणका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अहा! मुनिदशा कोई अलौकिक एवं आश्चर्यकारी है, वंद्य है।

अहा! गुरु किन्हें कहें?......जो निर्ग्रंथ हैं अर्थात् जिनके मिथ्यात्व एवं अविरतिके रागादिकी गाँठ गल गई है और आत्माकी ज्ञानानन्दमय उग्र शुद्धतामें एकाग्रता हो गई है, तथा तदुपरान्त स्वभावके ओरकी शुद्धिकी धारामें निरंतर वृद्धि होती जाती है उनको मुनिदशारूप निर्ग्रन्थ गुरु कहा जाता है। उनके अशुभ परिणति तो होती नहीं है शुभ होती है; परन्तु अंतरमें स्वभावके आश्रयसे शुद्धताकी ओरका जो प्रवाह चल रहा है वह प्रतिसमय बढ़ता जाता है।

अरे! मुनिराज वनमें वास करते हों और वहाँ शरीरमें दमा, क्षय, कुष्ठ आदि अनेक रोग हो जायँ, तथापि वे अंतरमें आत्माकी निरोग एवं निःशंक दशारूप वर्तते हैं; वहाँ उनको कोई औषधि आदि नहीं होते; उनकी औषधि तो अंतरमें रागकी एकता तोड़कर आनन्दस्वरूप भगवान आत्माके निधान खोले हैं वे हैं। इसका नाम अंतरंग मुनिदशा है। वह कोई बाहरसे देखनेकी वस्तु नहीं है। मुनिदशा तो वास्तवमें कोई आश्चर्यकारी है, वंदनीय है। वह तो त्रिलोकवंद्य—तीनलोकके इन्द्रों द्वारा वंदन योग्य—कोई अनुपम दशा है। अहा! मुनिदशाका वर्णन भी (बहिनने) अलौकिक किया है।

रागमें शुभ और अशुभ ऐसे दो भेद भले करो, उसका विवेक भले करो, परन्तु उन दोनों भावोंका समावेश आस्रव और बंधमार्गमें होता है, संवर–निर्जरामें नहीं; वह एक भी भेद मोक्षमें या मोक्षके कारणमें नहीं आता। मोक्षका मार्ग और मोक्ष—संवर, निर्जरा और मोक्ष—तो उन दोनोंसे भिन्न जातिके ही हैं। शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके रागमें कषायका स्वाद है, आकुलता है, चैतन्यकी शान्तिका स्वाद, निराकुलता उन दोनेंमेंसे एकमें भी नहीं है। —पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१७४

दिनांक ३-१२-७८

वचनामृत–४१८

सिद्धभगवानको अव्याबाध अनन्त सुख प्रगट हुआ सो हुआ। उसका कभी नाश नहीं होता। जिनके दुःखसे बीज ही जल गये हैं वे कभी सुख छोड़कर दुःखमें कहाँसे आयेंगे? एक बार जो क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं वे भी कभी अभिन्नरूप—एकरूप नहीं होते, तब फिर जो सिद्धरूपसे परिणमित हुए वे असिद्धरूप कैसे परिणमित होंगे? सिद्धत्वपरिणमन प्रवाहरूपसे सादि–अनन्त है। सिद्धभगवान सादि–अनन्त काल प्रतिसमय पूर्णरूपसे परिणमित होते रहते हैं। यद्यपि सिद्धभगवानके ज्ञान–आनन्दादि सर्व गुणरत्नोंमें चमक उठती ही रहती है—उत्पाद–व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सर्व गुण परिणमनमें भी सदा ज्योंके त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं। स्वभाव अद्भुत है।।४१८।।

'सिद्धभगवानको अव्याबाध अनन्त सुख प्रगट हुआ सो हुआ।'

इस बोलमें बहिनने सिद्धभगवानका स्वरूप कहा है। वह (४१७वें बोलमें) स्वानुभवयुक्त सम्यग्दर्शन होनके पश्चात् आत्मस्थिरता बढ़ते–बढ़ते प्रगट होनेवाली मुनिदशाकी व्याख्या थी। अब यहाँ सिद्धदशाकी व्याख्या करते हैं। 'णमो सिद्धाणं'—यह सिद्धपद कैसा होता है? द्रव्यस्वभावमें जो अनन्त अव्याबाध अतीन्द्रिय पूर्णानन्द शक्तिरूपसे था वह सिद्धभगवानको अन्तरमें आत्मध्यानके कारण व्यक्तिरूपसे प्रगट हुआ सो हुआ; अब वह कभी पीछे नहीं हटेगा।

'उसका कभी नाश नहीं होता।'

जिसप्रकार द्रव्यस्वभाव अविनाशी है वैसे ही उसके परिपूर्ण आश्रयसे पर्यायमें जो अव्याबाध, परिपूर्ण और अनन्त आनन्द प्रगट हुआ वह भी अविनाशी हो गया। अहा! सिद्ध भगवानके अविनाशी अव्याबाध अनन्त आनन्दकी तो क्या बात!

'जिनके दुःखके बीज ही जल गये हैं वे कभी सुख छोड़कर दुःखमें कहाँसे आयेंगे?'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोह, राग और द्वेष दुःखके बीज हैं। आत्मस्वरूपका अज्ञान—आत्मभ्रान्ति—दुःखका मूल है। 'जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनन्त;' स्वरूपकी नासमझ वह दुःखका बीज है और स्वरूपकी समझ वह सुखका बीज है। सिद्ध भगवानको दुःखके बीज—मिथ्यात्व, आसक्ति, प्रमाद और कषायादि—जल गये हैं; वे कभी भी सुखको छोड़कर दुःखमें क्यों आयँगे?—दुःखके आयतनरूप भवको—अवतारको—क्यों धारण करेंगे? कोई कहे कि—भक्तोंका संकट दूर करनेके लिये भगवान भव धारण करते हैं; परन्तु भाई! भवधारण तो दुःख है; जिनके अनन्त-अनन्त आत्मिक आनन्द प्रगट हो गया है और दुःखके समस्त कारण जल गये हैं वे सिद्ध भगवान कभी स्वाभाविक सुख छोड़कर दुःखमें क्यों आयँगे?—अनन्त आनन्द छोड़कर भव किसलिये धारण करेंगे? 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति......तदात्मानं सृजाम्यहम्'—जब-जब धर्मकी हानि होती है तब-तब मैं अवतार धारण करता हूँ; पृथ्वी पर दानवोंका—राक्षसोंका जोर बढ़ जाता है और भक्तों पर भीड़ पड़ती है तब भगवान भी अवतार धारण करते हैं;—ऐसा भी कुछ लोग कहते हैं। अरे भाई! भगवानको जहाँ अनन्तानन्त आनन्द प्रगट हुआ है वहाँ वे उस पूर्णानन्दको छोड़कर भवधारणरूप दुःखमें क्यों लौटकर आयँगे?—कदापि नहीं आयँगे। यह बात अब न्याय देकर समझाते हैं।

'एक बार जो क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके भिन्नरूप परिणमित होते हैं वे भी कभी अभिन्नरूप-एकरूप-नहीं होते, तब फिर जो सिद्धरूपसे परिणमित हुए वे असिद्धरूप कैसे परिणमित होंगे ?

सिद्धभगवान पूर्णानन्दको छोड़कर फिर भवके दुःखमें क्यों आयँगे?—यह समझानेके लिये विशेष न्याय दिया है। पूर्णानन्दका नाथ भगवान ज्ञायक आत्मा जिनके क्षायिक सम्यग्दर्शनके विषयरूपसे प्रगट हुआ है वे भी परद्रव्य और परभावसे भिन्न परिणमित होते हैं, कभी पर तथा विभावके साथ एकमेक नहीं होते, तब फिर जो विभावका—दुःखका सम्पूर्ण नाश करके सिद्धदशारूपसे परिणमित हुए वे फिरसे असिद्धरूप—विभाव एवं दुःखरूप—क्यों परिणमित होंगे?

भरत चक्रवर्ती, श्रेणिक राजा आदिको गृहस्थदशामें क्षायिक सम्यग्दर्शन था। वे, भूमिकानुसार राग होनेपर भी, शरीरादिके संगसे तथा रागादिसे रहित त्रिकालशुद्ध, सहजज्ञान एवं सहजानन्दादि अनन्तानन्त सामर्थ्यसे भरपूर, स्वसंवेद्य ऐसे निज ज्ञायकतत्त्वकी श्रद्धा, रुचि एवं प्रतीतिरूप ऐसे परिणमित हुए कि जिसकारण सम्यक्त्व क्षायिकभावरूपसे प्रगट हुआ। एकबार जो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके रागादि विकल्पसे भिन्न परिणमित होते हैं वे कभी विभावके साथ एकत्व प्राप्त नहीं करते, तब फिर जो समस्त प्रकारके क्षायिकभावको प्रगट करके पूर्णानन्दस्वरूप सिद्धरूप परिणमित हुए वे पुनः असिद्धरूपसे—औदयिक आदि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सांसारिक भावरूपसे—क्यों परिणमित होंगे? चौथे गुणस्थानमें क्षायिक सम्यग्दृष्टिको भी रागके साथ कभी एकत्वबुद्धि नहीं होती, तब फिर जो विभावका सम्पूर्ण नाश करके सिद्ध हुए हैं उनका पुनः असिद्धत्व भावरूप परिणमन कैसे होगा? उनका पुनः अवतार कैसे होगा? अहा! चौथे गुणस्थानके क्षायिक सम्यक्त्वका न्याय देकर, उसके साथ तुलना करके, सिद्धदशाका अचलपना-अप्रतिहतपना समझाया है।

यहाँ तो क्षायिक सम्यग्दर्शनके साथ मिलान करके बात कही है, परन्तु क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके प्रकारोंमें एक 'जोड़णी क्षायिक' होता है जो कि प्रतीतिकी धाराको अप्रतिहतभावसे बढ़ाकर नियमसे क्षायिकके साथ जोड़ देता है। समयसारकी ३८वीं गाथा और प्रवचनसारकी ९२वीं गाथाकी टीकामें आता है न! कि—स्वरूपानुभव द्वारा प्रतापवन्त ऐसे मुझे कोई भी परद्रव्य परमाणुमात्र भी अपनेरूप भासित नहीं होता कि जो मुझे भावकरूपसे तथा ज्ञेयरूपसे मेरे साथ एक होकर पुनः मोह उत्पन्न करे; क्योंकि निजरससे ही मोहको मूलसे उखाड़कर—पुनः अंकुरित न हो ऐसा नाश करके, महान ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है। बहिर्मोह दृष्टि तो आगमकौशल्य तथा आत्मज्ञान द्वारा विनष्ट हो जानेसे अब मुझे पुनः उत्पन्न नहीं होनी है। अहा! जिसे गुरु-उपदेश और आगमके अभ्यास द्वारा अप्रतिहतभावसे आनन्दसागर भगवान आत्माका सानुभव ज्ञान और दर्शन हुआ उसे मिथ्यात्वका अंकुर कभी उत्पन्न नहीं होता।

आत्मज्ञानी विरक्तगुरुने बिलकुल अप्रतिबद्ध शिष्यको समझाया है कि—हे भव्य! तू तो स्वभावसे पूर्णानन्दका नाथ है; राग तो तेरा स्वभाव है ही नहीं, परन्तु अल्पज्ञता भी तेरा मूलस्वरूप नहीं है; तू तो सर्वज्ञ और पूर्णानन्दस्वभावी प्रभु है। पंचमकालके अप्रतिबुद्ध—अज्ञानी शिष्यको विरक्त श्रीगुरुने इसप्रकार रागादिसे भिन्न आत्माका स्वरूप समझाया; और अंतरमें रागसे भिन्न होकर उसे सम्यग्दर्शन हुआ। अहा! पंचमकालका वह क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि अपने अप्रतिहतभावके विश्वासपूर्वक कहते हैं कि—मुझे अब पुनः मिथ्यात्वका अंकुर उत्पन्न नहीं होना है। हम पंचमकालके आराधक जीव हैं, तथापि अब हमारे गिरने-बिरनेकी बात नहीं है। अहा! दिगम्बर सन्तोंके कथनोंमें अंतरंगका कितना बल है! दिगम्बर सन्तोंके तीव्र वचनों द्वारा सत्य स्पष्टरूपसे समझा जा सकता है। रागसे भिन्न होकर जिसकी स्वभावके साथ एकता हुई है वह श्रोता—श्रावक हो अथवा श्रमण—कहता है कि अब हमें रागके साथ एकता कदापि नहीं होगी। स्वयं पंचमकालके साधु हैं इसलिये कालधर्म पाकर स्वर्गमें जायेगें, चारित्रसे च्युत हो जाय और देवगतिमें चतुर्थ गुणस्थानमें रहे, तब भी कहते हैं कि—हमारा जो सम्यग्दर्शन है वह कभी गिरेगा नहीं। अहा! ऐसी दशा! जिसे अंतरमें वीतरागस्वरूपके अनुभवकी दशा—क्षायिक सम्यक्त्वकी दशा—प्रगट हुई, वे भी पुनः रागके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साथ एकत्वबुद्धि नहीं करते, तब फिर जिसे परिपूर्ण निर्मल दशा—सिद्ध दशा—प्राप्त हुई वह पुनः रागको प्राप्त हो और अवतार धारण करे—ऐसा कैसे होगा?

जिसे क्षायिक या अप्रतिहत क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है वह भी रागके साथ एकत्व प्राप्त नहीं करता, तब फिर जिनको अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य एवं अनन्त–आनन्दादि सर्व गुण पर्यायमें पूर्णरूपसे परिणमित हुए हैं ऐसे सिद्ध भगवान असिद्धरूपसे कैसे परिणमित होंगे? अनन्त–अनन्त आनन्दकी तृप्तिवान सिद्ध भगवान रागके दुःखमें क्यों आयँगे?—ऐसा कहकर यह सिद्ध करना है कि—परमात्मा अवतार धारण करे यह बात असत्य है। संसारके दुःख, भक्तों पर राक्षसोंकी भीड़, जैनशासनके विरोधियोंका जोर देखकर भगवान अवतार धारण करे—यह बात बिलकुल गप्प है। एकबार जो क्षायिक या अप्रतिहत क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, नरेलीसे पृथक् हुए नरियलके गोलेकी भाँति, रागके कणसे भिन्न परिणमते हैं वे भी (रागके साथ) कदापि एकत्वको प्राप्त नहीं होते, तो फिर जो सिद्धरूपसे परिणमित हुए वे असिद्धरूपसे कैसे परिणमित होंगे?

भगवान आदिनाथ और भगवान महावीर पूर्वभवोंमें स्वर्गलोकमें सम्यग्दृष्टि थे। वे यहाँ भरतक्षेत्रमें अवतरित हुए तो क्या रागकी एकतासे हुए हैं? श्रेणिकराजाने भगवान महावीरके समवसरणमें क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था। भले ही वर्तमानमें पहले नरकमें हैं, परन्तु वहाँसे निकलकर क्षायिक सम्यक्त्व साथ लेकर आनेवाले हैं। वे अवतार धारण करेंगे, तो क्या उनकी राग और अवतारके साथ एकता होगी? अहा! अवतार भिन्न रहेगा और अवतारसे न्यारा आत्मा भी भिन्न रहेगा। पहले नरकसे निकलकर श्रेणिकराजा इस भरतक्षेत्रकी आगामी चौबीसीमें प्रथम महापद्म तीर्थंकर होंगे। वे भी, अंतरमें रागके साथ एकता टूट गई होनेसे, अब कभी रागादिविभावके साथ एकत्व नहीं करेंगे, तब फिर जो सिद्धरूप परिणमित हुए वे पुनः असिद्धरूप–संसाररूप—कहाँसे परिणमित होंगे? यहाँ दो सिद्धान्त रखे हैं—(१) क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी रागकी एकतारूप परिणमित नहीं होते, भिन्न ही परिणमते हैं; (२) जो सिद्धपदको प्राप्त हुए वे असिद्धरूप क्यों परिणमित होंगे?—कदापि नहीं होंगे।

'सिद्धत्वपरिणमन प्रवाहरूपसे सादि–अनंत है।'

सिद्ध भगवान कैसे होते हैं उनकी पहिचान बतलाते हैं। सिद्धदशा आत्माकी प्रतिसमय परिणमित होती क्षायिकभावरूप ज्ञान और आनन्दादि सर्व गुणोंके परिपूर्ण विकासमय निर्मल पर्याय है। वह सिद्धत्वरूप परिणमन, जैसे पानीका प्रवाह—सीधा चलता है तदनुसार काल–अपेक्षासे ऊर्ध्व प्रवाहरूपसे सादि–अनन्त है। सिद्धदशाका प्रारम्भ है, परन्तु पर्याय समयवर्ती होनेपर भी प्रवाहरूपसे ज्योंकी त्यों पूर्ण निर्मलपर्याय नई–नई होती रहनेसे, उसका कभी अन्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है। अरे रे! णमोकार मंत्रमें 'णमो सिद्धाणं' प्रतिदिन बोलते रहते हैं परन्तु जानते नहीं है कि सिद्ध किन्हें कहना?

''सिद्धभगवान सादि–अनन्तकाल प्रतिसमय पूर्णरूपसे परिणमित होते रहते हैं।'

प्रत्येक द्रव्यकी भाँति आत्मा भी वस्तुरूपसे अनादिनिधन–अनादि–अनन्त है। आत्माकी संसारदशा अनादि होनेपर भी उसका अन्त आ जाता है और मोक्षदशाका प्रारम्भ होनेपर भी उसका कभी अन्त नहीं आता। सिद्धदशारूप कृतकृत्यताको प्राप्त आत्मा सादि–अनन्तकाल प्रतिसमय अविच्छिन्नरूपसे पूर्णरूप परिणमित होता रहता है। अहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनन्त गुणोंकी जो पूर्ण पर्याय प्रारम्भ हुई वह प्रवाहरूपसे अनन्तकाल ज्योंकी त्यों परिपूर्णरूपसे परिणमित होती ही रहेगी।

'यद्यपि सिद्ध भगवानके ज्ञान–आनन्दादि सर्व गुणरत्नोंमें चमक उठती ही रहती है—उत्पाद–व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सर्वगुण परिणमनमें भी सदा ज्योंके त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं।'

सिद्धदशा प्रगट होनेपर आत्मा वहाँ सर्वथा कूटस्थ नहीं हो जाता, वहाँ भी ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि सर्व गुणोंमें स्वाभाविक चमक प्रतिसमय उठती ही रहती है। 'चमक' अर्थात् जगमगाहट, पर्याय, परिणति, उत्पाद–व्ययरूप परिणमन। द्रव्य और उसके सर्व गुण शक्तिरूपसे ध्रुव होनेपर भी उनमें प्रतिसमय चमक अर्थात् उत्पाद–व्ययरूप परिणति होती ही रहती है। सिद्ध भगवानको सादि–अनन्तकाल पूर्ण परिणतिरूप नई–नई चमक उठती ही रहती है। यदि सिद्धदशामें उत्पाद–व्ययरूप परिणमन न हो तो द्रव्य ही नहीं रहेगा। परन्तु द्रव्यका कभी नाश नहीं होता, इसलिये वहाँ भी द्रव्यके साथ अविनाभावी ऐसी उत्पाद–व्ययरूप परिणति सादि–अनन्तकाल होती ही रहती है। सिद्ध भगवान कृतकृत्य हो गये हैं इसलिये उनको पर्यायमें अब कुछ नया प्रगट करना नहीं रहा है, परन्तु सर्वगुणोंकी पर्यायमें जो परिपूर्णता प्रगट हुई है तद्रूप सादि–अनन्तकाल पुनः पुनः परिणमित होते ही रहेंगे।

जिसने पर्यायमें कार्य परिपूर्ण कर लिया है उसे 'कृतकृत्य' कहते हैं। जिसके ज्ञान एवं आनन्दादि कार्य परिपूर्ण प्रगट हो गया है उसे अब क्या करना शेष रहेगा? उसको ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनन्तानन्त गुणोंकी पूर्णता पर्यायमें प्रगट हो गई है इसलिये अब सिद्धदशामें उसका परिणमन थम गया है—ऐसा नहीं है; उन समस्त गुणरत्नोंमें ज्योंकी त्यों परिपूर्ण तथापि नई–नई चमक अर्थात् परिणति उठती ही रहती है—पर्यायका उत्पाद–व्यय होता ही रहता है। दूसरे समय 'वही नहीं किन्तु ऐसीकी ऐसी' नई पर्याय उत्पन्न होती है।

श्रीमद्ने भी कहा है न! कि—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुखमें,
अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो।' अपूर्व०......

जहाँ अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञान सहित सादि-अनन्त काल तक अविरतरूपसे रहनेवाली अनन्त समाधिरूप सुखदशा प्रगट हो गई है उसे सिद्धपना कहते हैं। 'लोगस्स'के पाठमें भी 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' आता है, परन्तु उसका अर्थ कौन जानता है? हे सिद्ध भगवन्तो! 'मुझे सिद्धपद दिखाओ' यह तो 'लोगस्स'में—चौवीसंघोमें—स्तुतिरूप व्यवहारनयका कथन है, उसका निश्चय-अर्थ ऐसा है कि—मैं शीघ्र केवलज्ञान प्रगट करके सिद्धपद प्राप्त करूँ। चौवीस तीर्थंकरों और अनन्त केवलियोंकी चाहे जितनी विकल्पात्मक स्तुति करो, परन्तु वह तो शुभभाव है, बंधका कारण है। सूक्ष्म बात है भाई! मोक्षपाहुड़में 'परदव्वादो दुग्गइ' आता है न! अरिहंत और सिद्ध आदि पंचपरमेष्ठी इस आत्मासे पर हैं। उस परद्रव्यकी ओर लक्ष जानेसे आत्माको शुभराग होता है। शुभराग भी, स्वभावपरिणतिसे विपरीत होनेके कारण, दुर्गति है, शुद्धपरिणतिरूप सुगति नहीं है।

समयसारकी पहली गाथामें 'वन्दित्तु सव्वसिद्धे'—सर्व सिद्धोंको, अपने और परके आत्मामें स्थापकर, वंदन किया है। वहाँ अनन्त सिद्ध जो पर हैं उनको अपनेमें स्थापित करनेका जो विकल्प है वह व्यवहार है और 'नमः समयसाराय'में—आत्मख्याति टीकाके पहले कलशमें—तो पूर्णानन्दस्वरूप जो त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकभाव उसमें मैं निर्विकल्परूपसे झुक जाता हूँ, ढल जाता हूँ—इसप्रकार स्वाश्रित परिणति होनेसे, निश्चय है। यहाँ ऐसा कहते हैं कि—सिद्धभगवानको आनन्दादि अनन्त गुणरत्नोंमें प्रतिसमय उत्पाद-व्ययरूप चमक उठती ही रहती है। 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्।' क्या उत्पादव्ययध्रौव्यमय परिणाम सिद्धमें नहीं है? यदि नहीं है, तो सिद्धदशा होनेपर आत्मद्रव्यका ही सर्वथा नाश हो जाय; परन्तु द्रव्यका सर्वथा नाश असम्भव है। सिद्धभगवानको भी केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्त आनन्दकी नवीन पर्यायका उत्पाद और ऐसी ही परिपूर्ण पूर्व-पर्यायका विनाश प्रतिसमय होता ही रहता है, तथापि वे सर्व गुणरत्न परिणमनमें भी सदा ज्योंके त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं।

नियमसारकी ३८वीं गाथामें कहा है कि 'जीवादि बहितच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा'—जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं; कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायोंसे व्यतिरिक्त आत्मा आत्माको उपादेय है। अहा! देखो, यह आचार्यदेवका वचन! अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड त्रिकालशुद्ध ध्रुव अविनाशी ज्ञायकतत्त्व ही साधक जीवको, आश्रय करनेके लिये, उपादेय है; प्रतिसमय परिणमित सिद्धपर्याय, पूर्ण होनेपर भी आश्रय करनेके लिये उपादेय नहीं है, हेय है। आश्रय करनेके लिये सिद्धदशा हेय होनेपर भी यहाँ उसका ज्ञान कराते हैं कि—यद्यपि सिद्धदशारूप परिणमित सिद्धभगवानको ज्ञान-आनन्दादि सर्व गुणरत्नोंमें प्रतिसमय परिपूर्ण निर्मल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणतिरूप चमक उठती ही रहती है—उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सर्वगुण परिणमनमें भी सदा ज्योंके त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं।

क्या कहा? कि—अनन्त गुणरत्न पर्यायमें परिपूर्ण परिणमते हैं, तथापि आत्मवस्तु तो द्रव्यस्वभावसे पूर्णरूपेण जो है सो है, उसमें कोई विभाव या न्यूनता नहीं है। किसीको ऐसा लगे कि—निगोदके भवमें ज्ञान क्षीण होकर अक्षरके अनन्तवें भाग जितना रह गया है; इसलिये भीतर त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव भी क्षीण हो गया होगा और पर्यायमें केवलज्ञानरूप समुद्र उछलनेसे मानों द्रव्यस्वभावमें भी वृद्धि हो गई होगी; परन्तु ऐसा है नहीं; जीव निगोदमें हो या सिद्धदशामें हो, द्रव्यस्वभाव तो हानि-वृद्धि रहित सदा परिपूर्ण है। अहा! अलौकिक बातें हैं भाई!

'स्वभाव अद्भुत है।'

निगोदकी पर्यायमें ज्ञान अति अल्प था, वीर्य अल्प था, तथापि भीतर आत्माके जो ध्रौव्यरूपसे ज्ञान और वीर्यादि अनन्त गुण हैं वे तो परिपूर्ण सामर्थ्यवान उतने और वैसे ही रहे हैं; भीतर ध्रुवसामर्थ्यमें अणुमात्र भी क्षति नहीं पहुँची है। अहा! ऐसा ही कोई वस्तुस्वभाव है। अरिहंत एवं सिद्धदशा प्रगट होनेपर, उसमें अनन्त केवली और सिद्धोंको, अरे! विश्वके समस्त भावोंको एकसाथ प्रत्यक्ष जानें इतनी केवलज्ञानकी परिपूर्ण पर्याय प्रगट हुई, पर्यायमें परिपूर्ण अनन्त आनन्द तथा परिपूर्ण अनन्त पुरुषार्थ आदि अनन्तगुणोंकी पर्यायें परिपूर्ण प्रगट हुई, तथापि अंतरमें अस्तिरूपसे—ध्रुवसामर्थ्यरूपसे—ज्ञान, आनन्द और वीर्यादि अनन्त गुण ज्योंके त्यों ही रहे हैं। पर्यायमें पूर्णता हुई तब भीतर गुण भी सामर्थ्यसे बढ़ गये हैं और पर्यायमें हीनता थी तब गुण भी सामर्थ्यमें क्षीण हो गये थे—ऐसा नहीं है। अहा! वस्तु और उसके गुणोंका स्वभाव ही ऐसा कोई अद्भुत है कि पर्यायमें हानि-वृद्धि होनेपर भी वे तो ज्योंके त्यों ही परिपूर्ण सामर्थ्यवान रहते हैं। अहा! वस्तुस्वभाव अद्भुत है; वह कोई ऊपरी तर्कका विषय नहीं है। यद्यपि प्रवचनसारमें आता है कि—आगम द्वारा सभी द्रव्य ज्ञात होते हैं, क्योंकि समस्त द्रव्य आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क उसके साथ मेलवाले हैं अर्थात् वे आगमानुसार विस्पष्ट विचारसे ज्ञात हों ऐसे हैं। परन्तु वह कौनसा तर्क? आगमानुसार तथा स्वभावके लक्षसे उठता सम्यक् तर्क। ऐसे सम्यक् तर्कसे स्वभावकी अद्भुतता अंतरमें बराबर बैठ जाती है।

अहा! सिद्ध भगवानके द्रव्य और गुणके सामर्थ्यकी तो क्या बात करें? वे तो ज्योंके त्यों और वैसेके वैसे भरपूर भरे पड़े हैं। चारित्रगुणकी पर्यायमें यथाख्यातस्वरूप परिपूर्ण आत्मरमणता प्रगट हो गई, तथापि चारित्रगुण तो ज्योंका त्यों सामर्थ्यभरपूर रहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्रुवस्वभावमेंसे—गुणमेंसे पर्याय आती है यह भी व्यवहार कथन है। ध्रुव गुणस्वभाव तो सदा एकरूप परिपूर्ण रहता है, उसमें कुछ भी आना-जाना नहीं होता। ध्रुव स्वभाव सदा ज्योंका त्यों हानिवृद्धिरहित परिपूर्ण रहने पर भी उसके आलम्बनसे पर्यायमें निर्मलताकी प्रगटता, वृद्धि और पूर्णता होती है।

वस्तुमें—आत्मामें सिद्धदशा प्रगट होनेपर अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रभुत्व, ऐश्वर्य आदि जो परिपूर्णता प्रगट हुई है वह अपने (आत्माके) कर्ता, कर्म, करण आदि छह अभिन्न कारकोंरूपसे स्वयं परिणमित होकर हुई है। उस समय भी भीतर गुण तो उतनेके उतने परिपूर्ण रहे हैं। अहा! क्या है वह अद्‌भुत वस्तु! वास्तवमें द्रव्य और गुणोंका ऐसा ही कोई आश्चर्यकारी अद्‌भुत स्वभाव है। साधारण लोगोंकी तो शक्ति नहीं है कि यह बात मान सकें। सिद्ध भगवानको सर्व गुणरत्नोंमें अद्‌भुत चमक उठती ही रहती है—उत्पाद-व्यय होते ही रहते हैं, तथापि वे सब गुण परिणमनमें भी सदा ज्योंके त्यों ही परिपूर्ण रहते हैं। सर्व गुणोंमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छत्व, प्रभुत्व, विभुत्व आदि समस्त गुण आ गये न! सिद्ध भगवान कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि अपने अभिन्न षट्कारकों द्वारा सर्वगुणोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे-उत्पाद-व्ययरूपसे परिणमित होते ही रहते हैं, तब भी वे सर्व गुण परिणमनमें भी सदा ज्योंके त्यों रहते हैं।

यह बोल समाप्त करते हुए अन्तमें कहा है कि—'स्वभाव अद्‌भुत है'। क्या कहें भाई! द्रव्य और उसके गुणोंका स्वभाव कोई अद्‌भुत है! साधारण मापके द्वारा उसका पता चले ऐसा नहीं है। साधारण लोगोंको तो ऐसा लगेगा कि—जब रागकी दशामें दुःख था तब भी भीतर आनन्दस्वभाव परिपूर्ण ज्योंका त्यों! और जब पर्यायमें पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द परिणमित हुआ तब भी अंतरमें आनन्दस्वभाव उतनेका उतना! राग था तब और पूर्ण यथाख्यात चारित्र प्रगट हुआ तब भी चारित्रगुण तो उतनेका उतना? अहा! स्वभाव वास्तवमें अद्‌भुत है!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१७५

दिनांक ३१-१२-७८

वचनामृत–४१९

प्रश्न :—हम अनन्त कालके दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?

उत्तर :—'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विभावसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' इस मार्ग पर जानेसे दुःख दूर होगा और सुखकी घड़ी आयगी। ज्ञायककी प्रतीति हो और विभावकी रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्नके पीछे विकल्प टूटेगा और सुखकी घड़ी आयगी। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा पहले भले ही ऊपरी-भावसे कर, फिर गहराईसे कर, परन्तु चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा। शुभाशुभ भावसे भिन्न ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करके ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायकको गहराईसे प्राप्त करना, वही सादि–अनंत सुख प्राप्त करनेका उपाय है। आत्मा सुखका धाम है, उसमेंसे सुख प्राप्त होगा। ४१९।

प्रश्न :—हम अनन्त कालके दुखियारे, हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?

बोल ४१८तक सीधे तत्त्वके निरूपणस्वरूप वचनामृत हैं और अन्तमें ४१९से ४३२ तक १४ बोलोंमें कुछ प्रश्न और उनके उत्तर हैं। बहिनोंमेंसे किसीने बहिनसे प्रश्न पूछा होगा कि—हम अनन्त कालसे दुःखी हैं, हमारा वह दुःख कैसे दूर हो? प्रश्न पूछनेवालेको इतना तो निर्णय हुआ कि—'हम दुःखी हैं, सुखी नहीं हैं।' शरीरकी निरोगता, लक्ष्मीके भण्डार, हीरा–माणिकका व्यापार, बड़ी प्रतिष्ठा आदि बाह्य साधन चाहे जितने हों तथापि जीवको सुख नहीं है, अरे! बड़े–बड़े करोड़पती और राजा भी दुःखी हैं। वह दुःख कैसे दूर हो—ऐसा प्रश्न यहाँ किया है।

'उत्तर :—'

उस प्रश्नका यहाँ बहिनने उत्तर दिया है कि—

" 'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, विभावसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' इस मार्ग पर जानेसे दुःख दूर होगा और सुखकी घड़ी आयगी।"

समयसारकी छठवीं गाथामें 'नहिं अप्रमत्त या प्रमत्त नहिं जो एक ज्ञायकभाव है'

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार 'अस्ति' और 'नास्ति'से बात कही है वही यहाँ 'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ' ऐसे दो बार 'अस्ति'से और 'विभावसे भिन्न ज्ञायक हूँ' इसप्रकार नास्तिपूर्वक 'अस्ति'से सादी भाषामें कही है। स्वभावसे ज्ञायक ऐसे आत्माकी वर्तमान बदलती पर्यायमें जो शुभ, अशुभ और अपूर्णता है वह तो विभाव है ही, परन्तु एक न्यायसे औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक—यह चारों भाव विभाव हैं; एक ज्ञायक परमपारिणामिकभाव ही, सहजभाव होनेसे, स्वभाव है। विभावका अर्थ विकारी भाव नहीं, परन्तु कर्मसंबंधके सद्भाव या असद्भाववाला विशेषभाव है। वे चार भाव त्रिकालशुद्ध सहज ज्ञायक ध्रुव परमभावमें नहीं हैं इसलिये उनको विभावरूप परभाव कहा है। चार भाव पर्यायरूप हैं; और पर्यायके आश्रयसे धर्म होता नहीं है; धर्म, शान्ति और सुख तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे ही होता है। 'भूतार्थकि आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय है'—भूतार्थ ध्रुव ज्ञायकके आश्रयसे ही जीव वास्तवमें सम्यग्दृष्टि होता है। अहा! यह सिद्धान्त तो जैनदर्शनका प्राण है। नियमसारमें औपशमिक आदि चारों भावोंको विभाव कहा है; परन्तु यहाँ, 'विभावसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' उसमें तो सामान्यरूपसे पुण्य-पापके समस्त विभावोंसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा कहना है। 'मैं ज्ञायक हूँ' अर्थात् ज्ञाता पर्याय जितना हूँ—ऐसा नहीं, किन्तु त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकभाव हूँ।

ज्ञायकका मार्ग वह सुखका मार्ग है। ज्ञायकपना तो आत्माका त्रिकाल ध्रुवभाव है, परन्तु 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी जो पर्यायमें प्रतीति और ज्ञानरूप परिणति होती है वह सुखरूप है। आया कुछ समझमें? बात कुछ सूक्ष्म है भाई! यह तो मूल रकम है। ज्ञायकभाव कहो या पारिणामिकभाव कहो, परम स्वभावभाव कहो—सब एक ही हैं। परन्तु यहाँ पारिणामिक भावकी मुख्यतासे नहीं कहा है, क्योंकि पारिणामिकभाव परमाणु आदि अन्य द्रव्योंमें भी है। आत्माके सहज पारिणामिकभावको ज्ञानगुणकी प्रधानतासे 'ज्ञायकभाव' कहा है। ऐसे तो आत्मा ज्ञान, दर्शन, सुख आदि अनन्त गुणोंका अभेद एक पिण्ड है, परन्तु शेष अन्य गुणोंको गौणतामें रखकर, ज्ञानगुणकी मुख्यतासे आत्माको 'ज्ञायक' कहा है। विभावसे भिन्न और सुखसमुद्र ऐसे निज ज्ञायककी राह पर चलनेसे अनादिकालका दुःख टल जायगा। मार्ग ऐसा है भाई! आजकल तो मार्गके नाम पर इतनी गड़बड़ चल रही है कि बात न पूछो! भक्ति करना, यात्रा करना, स्वाध्याय-श्रवण करना—इस समस्त विभावोंसे भिन्न ऐसा मैं परिपूर्ण ज्ञायकभाव हूँ—ऐसी जो प्रतीति और ज्ञान अंतरसे आता है वह सुखका पंथ है। पंथ, निर्मलपर्याय होनेसे ध्रुव स्वभावमें नहीं होता, परन्तु ध्रुवस्वभावके आश्रयसे ज्ञायककी प्रतीति तथा परिणतिरूप जो निर्मल पर्याय हुई वह सुखका पंथ है। ध्रुव ज्ञायक तो पंथका—निर्मलपर्यायका—आश्रय है, स्वयं पंथ नहीं है। अहा! ज्ञायकके पंथपर जानेसे दुःख दूर होगा और सुखकी घड़ी आयेगी, आनन्दका अवसर आयेगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभावसे एकत्वरूप और शुभाशुभ विभावसे विभक्त ऐसा मैं त्रिकालशुद्ध सहज ज्ञायक हूँ। ज्ञायक स्वभावमें अनुरक्ति और विभावसे विरक्ति वही दुःख टालनेका तथा सुखकी प्राप्तिका पंथ है। ज्ञायकस्वभावकी पहिचान और प्रतीतिके बिना बाह्यमें व्यापार, स्त्री–पुत्रादिको छोड़ दे तो वह कोई सच्ची विरक्ति–वैराग्य नहीं है। समयसारमें आता है न! कि—

अनुरक्त बँधता कर्मसे, होता विरक्त ही मुक्त है,
जिनदेवका उपदेश यह, नहिं रक्त हो तू कर्ममें।१५०

काम–क्रोधादि अशुभ और पूजा–भक्ति आदि शुभभावोंसे दृष्टि तथा परिणति हटाकर उसे सहजशुद्ध ज्ञायकस्वभावमें स्थापित करे उसका नाम सच्चा वैराग्य है। निर्जरा–अधिकारमें भी आता है : 'सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः' सम्यग्दृष्टिको नियमसे ज्ञान–वैराग्यशक्ति होती है। अंतरमें अनन्त ऋद्धिका भण्डार ऐसे निजज्ञायक परमभावमें दृष्टिका जोर होनेसे सम्यग्दृष्टिको अनन्त सिद्ध, त्रैकालिक अनन्त तीर्थंकरादिका पर्यायमें स्वीकार होने पर भी उनका अंतरमें जोर (मूल्य) नहीं है। ज्ञान हो और वैराग्य न हो अथवा वैराग्य हो और ज्ञान न हो—ऐसा नहीं है। वास्तवमें ज्ञान उसीको कहा जाता है कि जिसको, अपने चैतन्य अनुभवके साथ, समस्त विभावसे अंतरमें विरक्ति हो।

'हम अनन्तकालके दुखियारे; हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा? ऐसा प्रश्न किसी (ब्रह्मचारिणी) पुत्रीने पूछा होगा—ऐसा लगता है; उसका उत्तर बहिनने दिया है। एकेन्द्रिय हो या अरबपति सेठ हो या पंचमहाव्रत अथवा शुक्ल लेश्याके फलरूप हुआ नववें ग्रैवेयकका अहिमन्द्र हो—सब अनन्तकालके दुखियारे हैं। 'हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?—यह मुख्य प्रश्न है। 'मैं त्रिकालशुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसा अस्तिसे और 'विभावसे भिन्न हूँ' ऐसा नास्तिसे निज भगवान आत्माको ग्रहण करे तो अनादिकालसे प्रवाहरूप चला आता दुःख दूर होगा और सुखकी घड़ी आयगी। ज्ञायकस्वभावके साथ एकत्व साधकर शुभाशुभ विभावसे विरक्त होना—यही दुःखसे छूटनेका एकमात्र उपाय है। इसके सिवा लाखों बाहरी क्रियाकाण्ड करे तब भी दुःखसे अंशतः भी छुटकारा नहीं होता। लोगोंको असह्य लगेगा, परन्तु क्या किया जाय? अंतरमें ज्ञायकभावका अनुभव सो 'ज्ञान' और शुभाशुभ विभावसे विरक्ति सो 'वैराग्य'; —यही दुःखसे मुक्त होनेका उपाय है।

'ज्ञायककी प्रतीति हो और विभावकी रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्नके पीछे विकल्प टूटेगा और सुखकी घड़ी आयगी।'

ज्ञायककी प्रतीति होना और शुभाशुभ विभावकी रुचि छूटना—इन दोनोंका समय तो एक ही है। जिसको रुचिमें ज्ञायकस्वभाव पोषाता हो, उसे विभाव नहीं पोषाता। त्रैकालिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि रुचि, और परिणति हो और विभावकी दृष्टि, रुचि तथा परिणति छूटे—ऐसे अन्तर्मुख प्रयत्नके पीछे विकल्प टूटेगा और सुखकी घड़ी आयगी। अखण्ड आनंदकन्द चैतन्यस्वरूप भगवान आत्माकी अंतरंग रुचि होनेपर तथा पुण्य-पापकी रुचि छूटने पर, अहा! ऐसे अन्तर्मुख उद्यमके पीछे विकल्प टूटेगा और अतीन्द्रिय आनन्दका अपूर्व अवसर आयगा। अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दका पिण्ड ऐसे निज ज्ञायकभावकी अंतरमें दृष्टि हो और विकल्प—रागके साथ एकत्वबुद्धि—छूटे तो अनादिका दुःख दूर हो और सुखकी घड़ी आये। सूक्ष्म बात है भाई! किसी बाह्य प्रवृत्ति, क्रियाकाण्ड या शुभ परिणामसे यह वस्तु प्राप्त हो ऐसी नहीं है बाह्य क्रियाकाण्ड तथा शुभभावसे भिन्न ऐसे निज ज्ञायककी प्रतीति होनेपर आनन्दका काल आयगा, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आयगा। शास्त्रोंमें अनेक बातें आती हैं, परन्तु सबका सार एक ही है कि—ज्ञायककी प्रतीति और विभावसे विरक्ति करना। छहढालामें आता है न! कि—

लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जग दंद-फंद, निज आतम ध्याओ।

सुखकी घड़ी अर्थात् सुखका काल, सुखका अवसर। शुभाशुभ विभावसे भिन्न होकर दृष्टि भीतर असंग एवं अभेद ज्ञायकस्वभावमें जानेसे स्वकालमें आनन्द आयगा। ध्रुव स्वभावकी दृष्टि होनेपर अनादिकालीन दुःखोंका व्यय और पूर्वकालमें जो कभी प्रगट नहीं हुआ ऐसे आनन्दका उत्पाद होगा। दुःखका नाश और आनन्दकी उत्पत्ति ज्ञायकके—शुद्धात्मद्रव्यस्वभावके—आश्रयसे ही होती है; इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। बहिन दुखियारोंको दुःखसे छूटनेका उपाय बतलाती हैं। बहिनकी यह जो वाणी है वह भगवानकी वाणी है; भगवानने जो कहा है वही बहिनने कहा है।

" 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी-भावसे कर, फिर गहराईसे कर, परन्तु चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा।"

ऊपरी-भावसे अर्थात् विकल्पके साथ और गहराईसे अर्थात् विकल्पको तोड़कर। विकल्प तोड़कर गहराईसे ज्ञायकमें प्रविष्ट नहीं हुआ हो तबतक पहले भले ही 'मैं शरीरादि पर और रागादि विभावसे भिन्न ज्ञायक हूँ' इसप्रकार विकल्पकी भूमिकामें ऊपरी भावसे कर, पश्चात् विकल्पको तोड़कर गहराईसे—अनुभव सहित—ज्ञायकको ग्रहण कर, परन्तु चाहे जिसप्रकार अन्तर्मुख पुरुषार्थ द्वारा, उस मार्ग पर जा। वर्तमान ऊपरी पर्यायका लक्ष छोड़कर ध्रुव ज्ञायकस्वभावको गहराईसे भले ही पहले ऊपरी भावसे—विकल्पकी भूमिकामें—ग्रहण कर, पश्चात् अंतरमें विकल्प तोड़कर गहराईमें उतर जा। अहा! यह धर्मकी प्रथम सीढ़ी—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन—प्राप्त करनेकी रीति हैं। सम्यग्दर्शन और स्वानुभूतिके बिना चारित्र—व्रत, तपादि—सच्चा नहीं होता। भगवान आत्मा जिनस्वरूप है; उस पर दृष्टि करेगा तो अजिन ऐसे विभावभावोंके साथ एकत्वबुद्धि टूटेगी और अपूर्व आनन्द प्रगट होगा; इसलिये कुछ भी करके उस मार्ग पर जा।

'मैं ज्ञायक हूँ'—ऐसा भले ही पहले ऊपरी-भावसे अर्थात् विकल्प, राग और मनके सम्बन्धसे कर; क्योंकि प्रारम्भमें इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है; पश्चात् ज्ञायकको गहराईसे अर्थात् विकल्प, राग और मनका संबंध छोड़कर अनुभवपूर्वक ग्रहण कर, परन्तु चाहे जिसप्रकार अंतरमें आत्माके-ज्ञायकके मार्ग पर चल। जैसे—भोंयरेमें भगवान विराजते हों तदनुसार, ऊपरी विकल्प तथा रागकी पर्यायके पीछे, भीतर गहरे ध्रुवतलमें ज्ञायक परमात्मा विराजता है; उस ध्रुव ज्ञायक प्रभुका भले ही पहले विकल्पसे अंतरमें विचार कर, पश्चात् 'यह मैं पूर्णानन्दस्वरूप मात्र ज्ञायक ही हूँ' इसप्रकार गहराईसे, विकल्परहितरूपसे स्वानुभवपूर्वक ग्रहण कर; कुछ भी करके उस मार्ग पर जा। इसके सिवा दुःखमुक्तिका अन्य कोई उपाय नहीं है।

'शुभाशुभ भावसे भिन्न ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करके ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायकको गहराईसे प्राप्त करना, वही सादि-अनन्त सुख प्राप्त करनेका उपाय है।'

भगवान आत्मा समस्त शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न ज्ञायक है। अरे रे! लोग और उपदेशक भी 'शुभभाव करते-करते मोक्ष होगा, शुभभाव मोक्षमार्गका आधार है, शुभभावसे अंतरंग शुद्धता होगी'—ऐसा मानते हैं और अनादिकी विपरीत दृष्टिका पोषण करते हैं। भाई! भगवानने तो ज्ञायकको शुभाशुभ भावसे भिन्न कहा है। उस ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करके ज्ञायककी श्रद्धा दृढ़ करना। ज्ञायकको गहराईसे—स्वानुभवसे प्राप्त करना, यही अविनाशी सुख प्राप्त करनेका उपाय है। श्रद्धा एवं ज्ञानकी वर्तमान परिणतिको त्रिकालशुद्ध आनन्दकन्द ध्रुव ज्ञायककी ओर उन्मुख कर; उसका अभ्यास कर। यही शाश्वत मुक्ति सुख प्राप्त करनेका उपाय है। भगवानकी खूब भक्ति करे, यात्रा करे, व्यवहार मार्गमें खूब सावधान रहे तो शाश्वत सुखका सच्चा मार्ग मिले—ऐसा नहीं है। शास्त्रोंका बहुत ज्ञान करे तो सुखका मार्ग प्राप्त हो जायगा—ऐसा भी नहीं है। भाई! ज्ञायकको भूलकर मात्र शास्त्रोंका ज्ञान वह तो ज्ञेयनिमग्नज्ञान है; उसके द्वारा स्वरूपोन्मुख नहीं हुआ जाता।

दया, दान, पूजा, भक्ति आदि शुभभावोंसे भी भिन्न ज्ञायक ध्रुवपिण्डका—विज्ञानघन शाश्वत स्वभावका—अभ्यास करके ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायक शुद्ध परमभावको गहराईसे प्राप्त करना वही मोक्षके सादि-अनन्त सुखका उपाय है। मोक्ष होनेपर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्णानन्ददशाका प्रारम्भ होता है इसलिये सादि, और उसका कभी अन्त नहीं होता इसलिये अनन्त। ज्ञायकको गहराईसे प्राप्त करना ही एकमात्र सादि-अनन्त—अविनाशी सुख प्राप्त करनेका उपाय है। अहा! बड़ी सादी भाषा.....ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करके.....ज्ञायकको गहराईसे प्राप्त करना! बहिन एकान्तमें बैठी होगी और किसीने पूछा होगा कि 'हम अनंतकालके दुखियारे, हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?' उसका बहिन उत्तर देती हैं। यह सब वचनामृत संगमरमरमें उत्कीर्ण होना हैं।

अनन्त-अनन्त पदार्थ—तीर्थंकर, सिद्ध, सर्वज्ञ तथा विश्वके समस्त भाव—मेरे ज्ञानके ज्ञेय हैं, मेरी वस्तु नहीं है; मैं तो तद्भिन्न सुखकन्द शुद्ध ज्ञायक ही हूँ—इसप्रकार ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करके ज्ञायककी रुचि दृढ़ करना, ज्ञायकको गहराईसे अर्थात् अनुभवसे प्राप्त करना, वही अनन्तकालका दुःख मिटाने और सादि-अनन्त-अनन्त सुख प्राप्त करनेका उपाय है। ज्ञायकका ज्ञायकरूपमें गहराईसे अभ्यास कर, विकल्प और रागसे नहीं। अहा! क्या कुदरती वाणी आयी है! यह संगमरमरमें उत्कीर्ण होनेवाली है। पौने तीन लाख रुपये तो आ चुके हैं, पाँच-सात लाखका मकान (बहिनश्री-चम्पाबहिन-वचनामृतभवन) बनेगा—ऐसा कहते हैं। [पूज्य गुरुदेवश्रीकी समाधिके पश्चात् यह योजना, पूज्य श्री कानजीस्वामी-स्मारक योजना-अंतर्गत 'श्री पंचमेरु-नन्दीश्वरजिनालय " गुरुदेवश्री-कानजीस्वामी-वचनामृत भवन " बहिनश्री चम्पाबहिन-वचनामृत भवन'—ऐसे त्रिपटे अभिधानयुक्त भव्य जिनायतनमें समाविष्ट कर ली गई है।

आत्मामें अनित्यत्व धर्मको नहीं माननेवाले उसे एकान्त नित्य और ध्रुव मानते हैं, परन्तु द्रव्यस्वभावसे नित्य होनेपर भी कोई भी पदार्थ किसी भी समय पर्याय-अपेक्षासे अनित्यत्वसे रहित हो ही नहीं सकता। वस्तुके ध्रुवत्वका निर्णय भी आत्माकी पलटती पर्यायमें होता है, उसके नित्यध्रुव अंशमें नहीं होता। सम्यक्त्व, ज्ञान, स्थिरता आदि समस्त कार्य पर्यायमें होते हैं। पर्यायसे रहित कोई वस्तु होती ही नहीं। एकान्त नित्य, ध्रुव और अपरिणामी माननेवाले, वेदान्तकी भाँति, आत्माका नाश कर देते हैं; उनको अनेकान्तस्वरूप आत्मतत्त्व हाथमें नहीं आता। शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न शुद्ध ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करना, ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायकको, गहरे उतरकर-अनुभव करके, प्राप्त करना और उसके फलरूप प्राप्त होनेवाला सादि अनंत सुख वगैरह कार्य तो पर्यायमें होता है न? 'सादि-अनन्त अनन्त समाधिसुखमें' रहनेकी भावना सम्यग्दृष्टि जीव भाता है। प्रथम सम्यग्दर्शनकी भावनामें आत्माको प्राप्त करके फिर पूर्ण स्वरूपस्थिरता एवं केवलज्ञानकी भावना भाता है। सादि-अनन्त सुख प्राप्त करनेका यह उपाय है।

'आत्मा सुखका धाम है, उसमेंसे सुख प्राप्त होगा।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मसिद्धिमें श्रीमद्ने कहा है कि—शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम' भगवान आत्मा स्वयं ही स्वभावसे सुखका धाम होनेसे, उसके आश्रयमें जानेपर सुखकी प्राप्ति अवश्य होगी ही। अहा! आत्मा ही अतीन्द्रियआनन्दका धाम, क्षेत्र, स्थान, भाजन एवं भण्डार है; इसलिये उसमेंसे अर्थात् उसके अवलम्बनसे शाश्वत सुख प्राप्त होगा। आत्माको पहले ज्ञायकरूपसे समझाकर अब कहते हैं कि वह आनन्दका धाम है। आत्मामें अनन्त गुण हैं, परन्तु शास्त्रोंमें आचार्यदेवने ज्ञान और आनन्द—इन दो ही विषयोंको मुख्यरूपसे स्थापित किया है; क्योंकि आनन्दधाम ऐसे निज ज्ञायकमें ज्ञानकी—साधना परिणतिकी—एकाग्रता होनेसे सादि-अनन्त अनंत सुख प्राप्त होगा। 'हम अनन्तकालके दुखियारे, हमारा यह दुःख कैसे मिटेगा?'—यह प्रश्न था न?—लो, उसका यह उत्तर बहिनने दिया है।

❃

वचनामृत–४२०

प्रश्न :—जिज्ञासुको चौवीसों घन्टे आत्माके विचार चलते हैं?

उत्तर :—विचार चौवीसों घन्टे नहीं चलते। परन्तु आत्माका खटका, लगन, रुचि, उत्साह बना रहता है। 'मुझे आत्माका करना है, मुझे आत्माको पहिचानना है' इसप्रकार लक्ष बारम्बार आत्माकी ओर मुड़ता रहता है॥४२०॥

प्रश्न :—जिज्ञासुको चौवीसों घन्टे आत्माके विचार चलते हैं?

बहिनके वचनामृतके अन्तमें प्रश्न हैं; उनमें यह दूसरा प्रश्न है। आप तो ज्ञायक, ज्ञायक और ज्ञायक कहते रहते हो, तो क्या जिज्ञासुको ज्ञायकके विचार चौवीसों घन्टे चलते हैं? जिसे अंतरमें श्रद्धा, ज्ञान और अनुभूतिमें ज्ञायक प्रगट हुआ है उसे तो भीतर ज्ञायकपरिणति निरन्तर चलती ही रहती है, परन्तु अभी जो आत्माको समझनेका जिज्ञासु है उसे चौवीसों घन्टे आत्माके विचार चलते हैं?

'उत्तर :—'आत्माको समझनेका जिज्ञासु कहो या आत्मार्थी कहो—दोनोंका एक ही अर्थ है। जो अभी आत्माको प्राप्त नहीं है, परन्तु जिसके अंतरमें आत्मा प्राप्त करनेकी सच्ची जिज्ञासा है उसे आत्मार्थी कहते हैं। जिसे सत्को प्राप्त करनेकी जिज्ञासा, इच्छा, अभिलाषा एवं भावना है ऐसे आत्मार्थीको चौवीसों घन्टे आत्माके विचार चलते हैं? इस प्रश्नका उत्तर बहिन देती हैं।

'विचार चौवीसों घन्टे नहीं चलते।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसे आत्मा प्राप्त करनेकी सच्ची जिज्ञासा है ऐसे जीवको चौवीसों घन्टे आत्माके विचार भले ही न चले,.....

'परन्तु आत्माका खटका, लगन, रुचि, उत्साह बना रहता है।'

ज्ञायकके विचार सतत नहीं चलते, परन्तु अंतरमें ज्ञायकको ग्रहण करनेका खटका, ज्ञायकोन्मुखताकी तीव्र भावना, लगन, रुचि और उत्साह तो चौवीसों घन्टे बने रहते हैं। चाहे जितने कार्य हों, अरे! निद्रामें हो तब भी क्या कोई अपना नाम भूल जाता है? स्वयं नींदमें पड़ा हो और कोई उसका नाम लेकर पुकारे तो तुरन्त ही कहता है—'हाँ!'—इसप्रकार जिज्ञासुको आत्माका खटका, लगन, रुचि और उत्साह निरन्तर—दूसरे कार्योंमें अथवा नींदमें भी—बना रहता है। खटका, लगन, उत्साह—अहा! कैसी सादी गुजराती भाषा है!

लागी लगन हमारी, जिनराज सुजस सुन्योमें.....लागी०
काहूके कहें कबहूँ नहिं छूटे, लोकलाज सब डारी;
जैसे अमली अमल करत समै, लाग रही ज्यों खुमारी.....लागी०

जिसने जिनराजका अर्थात् निज शुद्धात्माका सुयश–महिमा स्वानुभवी गुरुके निकट सुनी है ऐसे आत्मार्थी जीवको अंतरमें ऐसी लगन, खटका, खुमारी–मस्ती बनी रहती है।

" 'मुझे आत्माका करना है, मुझे आत्माको पहिचानना है' इसप्रकार लक्ष बारम्बार आत्माकी ओर मुड़ता रहता है।"

'काम एक आत्मार्थका, अन्य नहीं मन रोग'; मुझे अपने आत्माका कार्य करना है, मुझे आत्माको पहिचानना है'—ऐसा खटका अंतरमें निरन्तर रहना चाहिये, जिससे लक्ष बारम्बार जाता रहे। ज्ञायकस्वरूप निज आत्माको मुझे पहिचानना है—ऐसा खटका, उत्साह, रुचि और लगन रहना चाहिये। पहले पुण्य करके स्वर्गमें जाऊँ और वहाँसे भगवानके पास जाऊँगा, वहाँ आत्मकल्याण कर लूँगा—ऐसी वायदेकी बात नहीं की है। जिसे आत्माका हित करना है ऐसे जिज्ञासुको आत्माका खटका लगा रहता है और लक्ष बारम्बार आत्मोन्मुख होता रहता है।

जिज्ञासुको आत्मप्राप्तिके लिये क्या करना चाहिये?—यह बात यहाँ कही है। जिज्ञासुको पहले हमारी भक्ति करना चाहिये—ऐसा गुरुने नहीं कहा है। जिज्ञासुको तो गुरुकी शिक्षानुसार आत्माको जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। 'मुझे तो अपने आत्माका काम है, अन्य कोई काम नहीं है।' अहा! पंचमकालके आचार्य पंचमकालके अप्रतिबुद्ध श्रोताको अपने निजवैभवसे एकत्व–विभक्त आत्मा बतलाते हैं और साथ ही साथ कहते हैं कि—एकत्वविभक्त शुद्ध आत्मा बतलाऊँ तो तू अपने स्वानुभव प्रत्यक्षसे प्रमाण करना। आचार्यदेवने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अप्रतिबुद्ध शिष्यमें इतनी तत्परता–पात्रता तो देखी है कि—पर तथा रागसे विभक्त और पूर्ण ज्ञानानन्दस्वभावसे एकत्वरूप ऐसे शुद्धात्माको वह स्वानुभवप्रत्यक्षसे प्रमाण कर सकेगा। अहा! क्या वाणी है! मानो भावश्रुतका समुद्र उमड़ रहा है! यहाँ कहते हैं कि भाई! ऊपरसे स्वीकार करके अटक नहीं जाना, परन्तु मुझे अपना आत्मकार्य करना है, मुझे आत्माको पहिचानना है' इसप्रकार अंतरकी यथार्थ रुचि, लगन, उत्साह, आकांक्षापूर्वक बारम्बार लक्षको आत्मोन्मुख करते रहना, जिससे तुझे एकत्वविभक्तस्वरूप शुद्धात्मा स्वानुभवप्रत्यक्ष होगा। अनन्तगुणका पिण्ड ज्ञायक प्रभु भगवान आत्मा भीतर विराज रहा है; वहाँ जा, तो वह प्राप्त होगा। भगवान आत्माको प्राप्त करनेका परमार्थ उपाय तो वह है; बाकी सब—व्रत, तप, भक्ति आदि—व्यवहारकी बातें हैं।

❋

वचनामृत–४२१

प्रश्न :—मुमुक्षुको शास्त्रका अभ्यास विशेष रखना या चिंतनमें विशेष समय लगाना ?

उत्तर :—सामान्य अपेक्षासे तो, शास्त्राभ्यास चिंतन सहित होता है, चिंतन शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है। विशेष अपेक्षासे, अपनी परिणति जिसमें टिकती हो और अपनेको जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे वह करना चाहिये। यदि शास्त्राभ्यास करनेसे अपनेको निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिये और यदि चिंतनसे निर्णयमें दृढ़ता होती हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत चिंतन विशेष करना चाहिये। अपनी परिणतिको लाभ हो वह करना चाहिये। अपनी चैतन्यपरिणति आत्माको पहिचाने वही ध्येय होना चाहिये। उस ध्येयकी सिद्धिके हेतु प्रत्येक मुमुक्षुको ऐसा ही करना चाहिये ऐसा नियम नहीं हो सकता। ४२१।

'प्रश्न :—मुमुक्षुको शास्त्रका अभ्यास विशेष रखना या चिंतनमें विशेष समय लगाना ?'

दो प्रश्न हुए। यह तीसरा प्रश्न है। प्रश्न महत्वपूर्ण है। अगले प्रश्नमें जिज्ञासुकी बात कही थी। यहाँ जिसे आत्माके मोक्षकी अभिलाषा है ऐसे मुमुक्षुकी बात कही है। मोक्षके अभिलाषीको शास्त्रका अभ्यास विशेष रखना या चिंतनमें विशेष समय लगाना?

'उत्तर :—'

इस प्रश्नका उत्तर देते हुए बहिन कहती हैं कि—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'सामान्य अपेक्षासे तो, शास्त्राभ्यास चिंतन सहित होता है, चिंतन शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है।'

सामान्यरूपसे शास्त्राभ्यास चिंतन सहित होता है। परन्तु कौनसे शास्त्र? वीतराग सर्वज्ञके कहे हुए यह समयसार, प्रवचनसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि शास्त्र। भाई! उनका अभ्यास चिंतन सहित होता है और चिंतनशास्त्राभ्यासपूर्वक होता है।

'विशेष अपेक्षासे, अपनी परिणति जिसमें टिकती हो और अपनेको जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे वह करना चाहिये।'

पहले ऐसा कहा कि—सामान्य अपेक्षासे तो, शास्त्रका अभ्यास अंतरमें चिंतन सहित होता है, चिंतन शास्त्रके अभ्यासपूर्वक होता है। अब कहते हैं कि—विशेष अपेक्षासे अपनी परिणति यदि शास्त्राभ्यासमें स्थिर रहती हो और उससे अपनेको विशेष लाभ होता दिखायी दे तो वह करना, और अपनी परिणति यदि शास्त्राभ्यासपूर्वक चिन्तनमें स्थिर रहती हो और उससे अपनेको विशेष लाभ होता दिखायी दे तो वह करना। कहीं एकान्त आग्रह नहीं रखना, अपनी परिणतिमें जिससे विशेष लाभ होता लगे वह करना।

'यदि शास्त्राभ्यास करनेसे अपनेको निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिये और यदि चिन्तनसे निर्णयमें दृढ़ता होती हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत चिंतन विशेष करना चाहिये।'

मुनिराजको भी ध्यान और स्वाध्याय—यह दो ही कार्य मुख्य हैं न? मुनिराजको ध्यानमें रहना चाहिये, न रह सकें तो शास्त्राभ्यास करना चाहिये। शास्त्रका अभ्यास ऐसा प्रयोजन रखकर करना चाहिये जिससे तत्त्वनिर्णयमें विशेष दृढ़ता और आत्माका विशेष लाभ प्राप्त हो। अधिक शास्त्राभ्यास करूँगा तो प्रश्नोंके उत्तर देना आ जायगा—ऐसा बाह्य लक्ष और प्रयोजन छोड़ देना। अंतरमें आत्माके हितकी विशेष सिद्धि हो इस हेतु यदि शास्त्राभ्याससे अपनेको निर्णयकी दृढ़ता होती हो तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना और यदि अंतर्मुख चिंतवनसे निर्णय दृढ़ होता हो, आत्माकी परिणतिमें स्वसन्मुखताका विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत चिंतवन विशेष करना। इसप्रकार दोनों बातें ली हैं। अहा! ऐसी बात है। पुस्तकमें बहुत सार आ गया है। प्रारम्भसे अन्ततककी बात बड़ी सादी भाषामें सहज ही आ गई है।

'अपनी परिणतिको लाभ हो वह करना चाहिये।'

प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास या चिन्तवन—दोनों हैं तो विकल्पात्मक; परन्तु उन दोनोंमें,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसके द्वारा अपनेको परिणतिमें निर्णयकी दृढ़ता और स्वसन्मुखताका विशेष लाभ हो वह करना।

अपनी चैतन्य परिणति आत्माको पहिचाने वही ध्येय होना चाहिये।'

शास्त्राभ्यास हो या चिंतवन हो, परन्तु ध्येय तो अपनी वर्तमान चैतन्यपरिणति निज शुद्धात्माको पहिचाने—ग्रहण करे–यही होना चाहिये। शास्त्राभ्यास करे, परन्तु प्रयोजन यदि मान–सन्मान तथा आजीविका आदिका लाभ लेना हो तो वह ज्ञान अज्ञान है।

मोक्षमार्ग प्रकाशकमें इस आशयका कथन है कि—शास्त्राभ्यास द्वारा पदार्थकी कदाचित् सत्य जानकारी करे तथापि उसके द्वारा यदि अयथार्थ प्रयोजन साधे तो उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। इसलिये 'मैं पढ़ूँ, विचार करूँ तो जगतके लोगोंको उत्तर दे सकूँगा' आदि बाह्य प्रयोजन साधना वह अहितकर है। यहाँ कहते हैं कि—शास्त्राभ्यास और चिंतनमें अपनी चैतन्यपरिणति ज्ञायक आत्माको पहिचाने यही ध्येय होना चाहिये।

'उस ध्येयकी सिद्धिके हेतु प्रत्येक मुमुक्षुको ऐसा ही करना चाहिये ऐसा नियम नहीं हो सकता।'

आनन्दस्वरूप आत्माकी उपलब्धिरूप ध्येयकी सिद्धिहेतु प्रत्येक आत्मार्थीको मात्र शास्त्राभ्यास या मात्र चिंतन ही करना चाहिये ऐसा नियम नहीं है। शास्त्राभ्याससे अथवा चिंतनसे—जिसप्रकार भी आत्माका दृढ़ निर्णय होता हो, विशेष लाभ होता हो, वह करना चाहिये। ऐसा ही करना वह कोई एकान्तनियम नहीं होता।

❁

जिसके ध्येयमें, रुचिमें और प्रेममें ज्ञायकभाव ही विद्यमान है उसको शुभ विकल्पमें या अन्यत्र कहीं भी अटकना अच्छा नहीं लगता। अहा! अंतर ज्ञायकस्वभावमें जानेकी उत्कण्ठा है। बाहरका—पुण्य–पापके भाव और उनके फलका—जिसको रस और रुचि है उसको ज्ञायकस्वभावका प्रेम–रुचि नहीं है, और जिसको आत्माके ज्ञायकभावका रस लगा उसे पुण्यके परिणामसे लेकर सारा जगत रसका विषय नहीं है। जिसे बाहरका प्रेम है कि—दुनिया मुझे कैसे माने, दुनियामें मेरा नाम कैसे हो, मुझमें योग्यता होगी तो दुनिया मुझे बड़ा समझेगी,—उसे ज्ञायकस्वभावके प्रति प्रेम और रुचि नहीं है।

—पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१७६

दिनांक १-१-७९

वचनामृत–४२२

प्रश्न :—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते!'

उत्तर :—विकल्प तुझे लगे नहीं हैं, तू विकल्पोंको लगा है। तू हट जा न! विकल्पोंमें रंचमात्र सुख और शान्ति नहीं है, अंतरमें पूर्ण सुख एवं समाधान है।

पहले आत्मस्वरूपकी प्रतीति होती है, भेदज्ञान होता है, पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है॥४२२॥

'प्रश्न :—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते!'

'वचनामृत' में पीछे यह सब प्रश्न हैं। चौथा प्रश्न ऐसा है कि—अंतरमें यह जो विकल्प—शुभाशुभ राग, पुण्य-पापकी वृत्तिके उत्थान—होते हैं वे हमारा पीछा नहीं छोड़ते, मार्ग नहीं देते।

'उत्तर :—'

इस प्रश्नका उत्तर देते हुए बहिन कहती हैं कि—

'विकल्प तुझे लगे नहीं हैं, तू विकल्पोंको लगा है।'

प्रभु! तू स्वभावसे निर्विकल्प निराकुल आनन्दघनस्वरूप है। तुझे अनादि मोहवासनाके कारण, निर्विकल्प आनन्दस्वभावकी—ध्रुव ज्ञायकभावकी—दृष्टि नहीं है और शरीरादि पर द्रव्याश्रित—निमित्ताधीन—दृष्टि है, इसलिये विकल्प उठते हैं। विकल्प तुझसे लिपटे नहीं हैं, तू विकल्पोंसे लिपट रहा है। अंतरमें आनन्दस्वरूप, अनाकुल शान्तरस भगवान आत्मा विराजता है उसे पकड़ना चाहिये, अंतर्मुख दृष्टि एवं रुचि करके उसे ग्रहना चाहिये, परन्तु उसका ग्रहण न करके, अनादिसे रागके ऊपर दृष्टि तथा विभावका प्रेम होनेसे, तूने विकल्पको पकड़ा है, विकल्पने तुझे नहीं पकड़ा। आत्माका सहजरूप तो शुद्ध, निर्विकल्प और आनन्दमय है; उसमें तेरी दृष्टि नहीं है इसलिये तू स्वभावसे शुद्ध, निर्विकल्प और आनन्दमय होनेपर भी, वर्तमान पर्यायमें रागको—विकल्पको लग रहा है। यहाँ (स्वभावको) जो लगना चाहिये उसके स्थान पर वहाँ (विकल्पको) लग रहा है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'तू हट जा न!'

रागादि विकल्प और ज्ञानस्वभावके बीच सन्धि है, निःसन्धि–एकमेकता नहीं है; क्योंकि दोनोंमें लक्षण, प्रयोजन, स्वाद आदि सब भिन्न–भिन्न हैं। राग तो अशुचि, विपरीत और दुःखमय है, तथा ज्ञानस्वभाव तो शुचि, अविपरीत एवं सुखमय है। राग और स्वभावकी एकता कभी नहीं हुई है, परन्तु अनादि भ्रमसे तूने एकत्व मान रखा है। उस मान्यताको तू छोड़। एकत्वबुद्धिसे तू विकल्पको लग रहा है; वहाँसे हट जा! जो तेरा स्वरूप नहीं है उसे तू लगा है। स्वभावको पहिचानकर तू विकल्पसे हट जा!

'विकल्पोंमें रंचमात्र सुख और शान्ति नहीं है, अंतरमें पूर्ण सुख एवं समाधान है।'

विकल्प अर्थात् वृत्ति; चाहे शुभरागकी वृत्ति उठे या अशुभ रागकी वृत्ति उठे—उसमें कहीं शान्ति और सुख नहीं है। शान्ति अर्थात् समाधान, आराम, चारित्र, स्वरूपस्थिरता; और सुख अर्थात् अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द, स्वरूप–आह्लाद। विकल्पसे हट जा और भीतर स्वभावमें पूर्ण सुख और समाधान है वहाँ जा न! सुखनिधान ज्ञायकस्वभावसे लग न! स्वभावसे लगने पर विकल्पकी उत्पत्तिका न होना उसने विकल्पको तोड़ा ऐसा कहा जाता है। विकल्पमें अंशतः भी सुख और शान्ति नहीं है, परन्तु भीतर स्वभावमें तो परिपूर्ण सुख और समाधान है।

भगवान आत्माकी पर्यायमें काम–क्रोधादि अशुभ या व्रत–तप–भक्ति आदि शुभ विकल्प उठते हैं वह तो बाह्यवृत्ति है; उसमें सुख या शान्ति किंचित् मात्र नहीं है। अंतरमें विकल्प रहित जो ज्ञायक वस्तु, जिसमें विकल्पका अंश भी नहीं है, उसमें सुख और शान्ति अर्थात् समाधान है। शान्ति और सुखमें क्या फेर है? शान्तिमें समाधान अर्थात् स्वरूपस्थिरतारूप चारित्र और सुखमें अनाकुलतास्वरूप आनन्द कहना है। सुख और शान्ति—ऐसी दो बातें ली हैं। रागादि विकल्पें जैसे सुख नहीं है वैसे ही स्थिरता, समाधान या शान्ति भी नहीं है। भगवान आत्मामें भीतर पूर्ण सुख है और पूर्ण शान्ति, समाधान, वीतरागता है। अहा! ऐसी बातें हैं!

'पहले आत्मस्वभावकी प्रतीति होती है, भेदज्ञान होता है, पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है।'

'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? स्वरूप क्या मेरा अहो?' आदि विचारों द्वारा सत्समागमसे ज्ञानादिलक्षण द्वारा प्रथम आत्माके अस्तित्वकी प्रतीति हो, भेदज्ञान हो, पश्चात् विकल्प टूटकर निर्विकल्प स्वानुभूतिस्वरूप आत्मशान्ति होती है। वास्तवमें तो गहराईसे यथार्थ प्रतीति और भेदज्ञान हो तब साथ ही निर्विकल्प, स्वानुभूतिस्वरूप आत्मशान्ति प्रगट होती है, परन्तु यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'प्रथम-पश्चात्' कहनेका आशय ऐसा है कि—पहले सीधा विकल्प तोड़ने जायगा तो स्वानुभूति और शान्ति नहीं होगी, परन्तु पहले लक्षणादि द्वारा आत्मस्वभावकी पहिचान, प्रतीति और भेदज्ञान हो तभी स्वानुभूति और शान्ति होगी। वचनामृतके ४१९वें बोलमें आ गया है न! कि—'मैं ज्ञायक हूँ' इसप्रकार भले ही पहले ऊपरीभावसे कर, फिर गहराईसे कर, परन्तु कैसे भी करके उस मार्ग पर जा। आत्मस्वभावकी प्रतीति एवं भेदज्ञान पहले ऊपर-ऊपरसे—सामान्यरूपसे—साधारणरूपसे विकल्पके साथ होते हैं, फिर गहराईसे—विशेषरूपसे विकल्प टूटकर हो तब साथ ही उसी समय निर्विकल्प स्वानुभूति होती है।

पूर्ण ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान आत्माकी प्रतीति और परद्रव्य तथा रागादि विभावसे भेदज्ञान हो—ऐसी दो बातें कही हैं। वहाँ प्रतीति हो तब भेदज्ञान साथ है ही। भेदज्ञानके बिना प्रतीति कैसी?—किसकी? वास्तवमें अर्थात् गहराईसे तो प्रतीति, भेदज्ञान और विकल्पका टूटना आदि एकसाथ ही होते हैं, परन्तु विशेष समझानेके लिये भेद करके कहा है कि—ज्ञानानन्दस्वभावी आत्माकी प्रतीति और भेदज्ञान होनेपर विकल्प टूटते हैं और स्वानुभूति—शान्ति होती है। अंतरमें भेदज्ञान द्वारा विकल्पसे भिन्न हुआ कि तुरन्त ही स्वानुभूति-शान्ति हुई। दोनोंके बीच अंतर कितना?—जरा भी नहीं, दोनों एक समय—साथ ही हैं। समझानेमें क्या आयगा? आत्मस्वभावकी गहराईसे प्रतीति और भेदज्ञान हो उसीकाल बुद्धिपूर्वक विकल्पकी उत्पत्ति नहीं हुई उसीको 'पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है'—ऐसा कहा है। पहले विश्वास और भेदज्ञान साधारण कहे, फिर गहराईसे विश्वास और भेदज्ञान होनेपर विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ वही निर्विकल्प स्वानुभूति है। वर्तमान पर्यायको, अंतरंग स्वभावकी प्रतीति और रागादिसे भेदज्ञानपूर्वक स्वोन्मुख करने पर स्वानुभूति होती है। अहा! यह शब्द और बात गंभीर है।

प्रथम-पश्चात् क्या? यह आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी एक महान अमूर्त वस्तु है। प्रथम इस निज महाप्रभुके विश्वास द्वारा रागसे भिन्न हो तब विकल्प टूट जाते हैं। विकल्प उत्पन्न नहीं होते इसलिये सहज निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। विकल्पके कालमें जो अनुभव था वह रागका था, और जब अंतरमें गहराईसे प्रतीति और भेदज्ञान द्वारा विकल्प टूटकर जो निर्विकल्प अनुभव हुआ वह निज आत्माका अनुभव है। पं. टोडरमलजीने रहस्यपूर्ण-चिट्ठीमें सम्यग्दृष्टिको सविकल्प परिणाम द्वारा निर्विकल्प परिणाम होनेका विधान कहा है न!—वह सम्यग्दृष्टि कदाचित् स्वरूपध्यान करनेका उद्यमी होता है वहाँ प्रथम स्वपर-स्वरूपका भेदविज्ञान करता है; नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित केवल चैतन्यचमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानता है; पश्चात् परका विचार भी छूट जाता है और मात्र स्वात्मविचार ही रहता है; वहाँ निजस्वरूपमें अनेक प्रकारकी अहंबुद्धि धारण करता है, 'मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ' इत्यादि विचार होनेसे सहज ही आनन्दतरंग उठती है, रोमांच होता है; तत्पश्चात् ऐसे विचार भी छूट जाते हैं और स्वरूप केवल चिन्मात्र भासने लगता है; वहाँ सर्व परिणाम उस-रूपमें एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं; दर्शन-ज्ञानादिकके अथवा नय-प्रमाणादिकके विचार-विकल्प भी विलय हो जाते हैं। जो चैतन्यस्वरूपका सविकल्प निश्चय किया था, उसीमें व्याप्य-व्यापकरूप होकर ऐसा प्रवर्तता है कि जहाँ ध्याता-ध्येयरूपपना दूर हो जाता है।—ऐसी दशाका नाम निर्विकल्प अनुभव है। अहा! पं. टोडरमलजीकी शैली बड़ी अच्छी है!

समयसारमें 'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो' आता है न! भूतार्थ, सत्यार्थ, त्रिकालशुद्ध ऐसे निज ध्रुव ज्ञायक द्रव्यकी ओर वर्तमान परिणतिको ले जाने, भूतार्थ ज्ञायकभावका आश्रय करने पर, विभाव और भेदका विकल्प टूटकर निर्विकल्प स्वानुभूति होती है। वह स्वानुभूति किसप्रकार होती है वह यहाँ समझाया है। पहले भूतार्थ आत्मस्वभावकी पूर्वापर विरोधरहित यथार्थ प्रतीति होती है, पर एवं विभावसे भिन्न उसका भेदज्ञान होता है, पश्चात् भूतार्थ ज्ञायकस्वभावका अंतरमें आश्रय करने पर, परिणतिको स्वरूपोन्मुख करने पर, विकल्प टूटें अर्थात् विकल्प उत्पन्न नहीं हों वही निर्विकल्प स्वानुभूति है। कथनमें तो ऐसा आता है न! कि—पहले प्रतीति होती है, भेदज्ञान होता है, फिर विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है, अथवा सविकल्प परिणाम द्वारा निर्विकल्प परिणाम होते हैं। उसका आशय यह है कि—इसके सिवा अनुभवके लिये अन्य कोई विधि नहीं है। प्रथम विकल्प होते हैं परन्तु उन्हें छोड़े, अर्थात् स्वभावका आश्रय करके विकल्प टूटें, तब आत्मानुभव होता है।

उपदेशमें आता है कि—'विकल्पको तोड़!' परन्तु किस प्रकार तोड़े? 'इस विकल्पको तोड़ूँ' यह भी पर्यायपर दृष्टि है। पर्यायपर दृष्टिसे विकल्प उत्पन्न होते हैं, टूटते नहीं हैं। तथापि समझायें किस प्रकार? 'विकल्प छोड़' ऐसा समझानेके लिये जो भाषा शैली हो तदनुसार समझाते हैं। वास्तवमें तो अभेदज्ञायक वस्तु पर दृष्टि पड़ने पर, उसका आश्रय होने पर, परिणति रागसे पृथक् हो गई और विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ; उसे विकल्प तोड़ा—ऐसा कहा जाता है। यह वस्तुस्थिति है।

पहले जीवादि नवतत्त्वोंको जाने, फिर नवमेंसे एक अभेद ज्ञायकतत्त्वको पृथक् कर ले। नवके भेद पर दृष्टि न रखकर अभेद ध्रुव ज्ञायकतत्त्व पर दृष्टि स्थापित करे—ऐसा करनेसे विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ; उसे 'विकल्प तोड़ा' ऐसा कहा जाता है। अहा! वस्तुकी शैली! अध्यात्मकी है न! स्वभावोन्मुख हो वहाँ रागसे पृथक् हो जाता है।

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावै विश्राम;
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभवताको नाम।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! अंतरमें भूतार्थका आश्रय हुआ, स्वरूपका ध्यान हुआ, वहाँ मन अर्थात् विकल्प विश्राम पाते हैं—अटक जाते हैं। विकल्प रुक जानेपर स्वरूपके रसास्वादरूप जो अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है उसका नाम अनुभव है। अहा! इसका नाम निर्विकल्प स्वानुभूति है। यह तो शान्ति, धैर्य एवं अंतरंग पुरुषार्थ हो तभी हो सकता है। बाहरी अध्ययन, पठन अधिक हो तब होगा—ऐसी यह वस्तु नहीं है। यह वस्तु कोई और है भाई!

*

वचनामृत—४२३

प्रश्न :—'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा है; तो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होनेपर आत्माके सर्व गुणोंका आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है?

उत्तर :—निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्दगुणकी आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होनेपर आत्माके सर्वगुणोंका (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्माके ही हैं, इसलिये एक गुणकी पर्यायका वेदन हो उसके साथ-साथ सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं। भले ही सर्व गुणोंके नाम न आते हों, और सर्व गुणोंकी संज्ञा भाषामें होती भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।

स्वानुभूतिके कालमें अनन्तगुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणोंकी चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायोंमें रमण करता हुआ प्रगट होता है। वह निर्विकल्प दशा अद्भुत है, वचनातीत है। वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है।।४२३।।

'प्रश्न :—'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होनेपर आत्माके सर्व गुणोंका आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है?'

'सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व' ऐसा श्रीमद्‌ने कहा है। चौथे गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं' ऐसा पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें आता है। आत्माकी निर्विकल्प दृष्टि—सम्यग्दर्शन-होनेपर क्या आत्माके श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वीर्यादि सर्व-अनन्त—गुणोंका आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है?—यह प्रश्न है। आत्माके जितने-अनन्त अनन्त अनन्त—गुण हैं उन सबका आंशिक निर्मल परिणमन वेदनमें आता है अथवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मात्र सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र, शान्ति एवं आनन्दादि अमुक परिणमन ही वेदनमें आता है?

'उत्तर :—'

ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंके पिण्डस्वरूप भगवान आत्माकी अंतर्प्रतीति होनेपर उसके सर्वगुणोंका अंशतः शुद्ध परिणमन अनुभवमें आता है? वेदनमें सर्वगुणोंका निर्मल परिणमन आता है या नहीं?—इस प्रश्नका उत्तर देते हैं।

'निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्दगुणकी आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होनेपर आत्माके सर्वगुणोंका (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्वगुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है।'

शरीरादि पर द्रव्य तथा रागादि विभावसे भिन्न निज शुद्धात्मद्रव्यके यथार्थ श्रद्धान–ज्ञानपूर्वक निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें अतीन्द्रिय आनन्दकी आश्चर्यकारी परिणति प्रगट होनेपर आत्माके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, शान्ति आदि सर्व गुणोंका यथासम्भव (जिस–जिस गुणकी पर्यायमें जितना सम्भव हो (उतना) आंशिक शुद्ध परिणमन व्यक्त होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन भी होता है। अहा! मुख्य बातें हैं! समझमें आता है? यह तो अकेला मक्खन है। आत्मामें गुण कितने? अनन्त–अनन्त–अनन्त......अरे! अनन्तको अनन्तसे गुणा करो तब भी पार नहीं आयगा इतने अनन्त गुण हैं। इतने ज्ञानादि अनन्त गुणोंके अभेद पिण्डरूप जो निज ध्रुव एकरूप ज्ञायक आत्मा उसके सम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक निर्विकल्प स्वानुभूति होनपर सर्वगुणोंका—प्रत्येक गुणमें अपने–अपने योग्य—आंशिक निर्मल परिणमन व्यक्त होता है और साथ ही साथ सर्व गुणोंके व्यक्त अंशोंका वेदन भी होता है। केवली भगवानको सर्वगुण पूर्णरूपसे–सर्वदेश व्यक्त हो गये हैं और साधक जीवको वे सर्वगुण एकदेश—अंशतः व्यक्त हुए हैं। केवलीको सर्व गुण पर्यायमें सर्वांशरूपसे वेदनमें आते हैं, साधकजीवको एकदेश, परन्तु सब, वेदनमें आते हैं। अहा! सर्वदेश वेदनमें आयें या एकदेश आयें, परन्तु जाति तो एक ही है।

पर्यायमें पूर्ण व्यक्तता हुई इसलिये भीतर गुणसामर्थ्यमें कोई अपूर्णता हो गई—ऐसा नहीं है। पर्यायमें पूर्णता हो अथवा अपूर्णता, गुणशक्ति तो सदा एकरूप परिपूर्ण रहती है। अहा! धर्म कोई अपूर्व वस्तु है। उसे प्राप्त करनेके लिये बड़े धैर्यकी आवश्यकता है; यह तो धैर्यवानोंका काम है भाई! यहाँ प्रश्न यह उठता है कि—स्वानुभूति होनेपर आनन्दके साथ सर्व गुणोंका आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है? उत्तरमें कहते हैं कि—हाँ, सर्व गुणोंका यथासम्भव आंशिक शुद्ध परिणमन व्यक्त होता है और उनका वेदन भी होता है। 'यथासम्भव' क्यों कहा? सर्वगुणोंके परिणमनमें निर्मलताका विकास एक जैसा नहीं होता, चौथे गुणस्थानमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

श्रद्धा क्षायिक—पूर्ण—हो जाती है, परन्तु चारित्र बारहवें गुणस्थानमें और ज्ञान-दर्शन-वीर्य तेरहवें गुणस्थानमें क्षायिक—पूर्ण—होते हैं। चौथे गुणस्थानमें भी श्रद्धा, ज्ञान, चरित्रादिकी निर्मलताके अंश समान नहीं होते, इसलिये 'यथासम्भव' कहा है। जिस गुणके परिणमनमें जितने अंश शुद्धि प्रगट हुई है वह अनुभवमें आती है। आया कुछ समझमें प्रभु!

अहा! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है, उसके एक-एक कथनमें अत्यन्त गम्भीरता है। ज्ञान, आनन्द एवं वीर्यादि अनन्त-अनन्त-अनन्त गुणोंके अभेद पिण्डस्वरूप निज शुद्धात्म द्रव्यकी अंतर्दृष्टि होनेपर सर्वगुणोंका अंशतः निर्मल परिणमन एकसाथ प्रगट होता है तथा वेदनमें आता है। जिस समय परिणमन होता है उसी समय उनका वेदन होता है। उन सर्व गुणोंकी पर्यायका वेदन होता है। गुणोंकी पर्याय कही; कथनमें तो ऐसा ही आयगा न! वास्तवमें द्रव्यके परिणमनसे गुणका परिणमन कोई भिन्न नहीं है। 'चिद्विलास'में आता है न! कि—द्रव्य परिणमने पर गुण परिणमते हैं, द्रव्यके परिणमनसे गुणकी पर्याय कोई भिन्न नहीं है। सर्व गुणोंका परिणमन कहो अथवा अभेदरूपसे द्रव्यका परिणमन कहो—दोनों एक ही हैं; इसलिये द्रव्यका व्यक्त परिणमन और वेदन—ऐसा नहीं कहकर उसके सर्व गुणोंका आंशिक शुद्धपरिणमन व्यक्त होता है और उसका वेदन होता है—ऐसा कहा है। लो! इतने शब्दोंमें इतना भरा है।

'आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्माके ही हैं, इसलिये एक गुणकी पर्यायका वेदन हो उसके साथ-साथ सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं।'

'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा, उसमें जो ज्ञानादि सर्व गुण कहे वे कोई भिन्न नहीं हैं, अखण्ड आत्मा ही है। सर्वगुण आत्माके ही हैं; तथापि आत्मा किसी एक गुण विशेषका आलिंगन नहीं करता, किसी एक गुणविशेषसे खण्डित नहीं होता। प्रवचनसारकी १७२वीं गाथाकी टीकामें अलिंगग्रहणके १८वें बोलमें कहा है कि :—लिंग अर्थात् गुण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध (पदार्थज्ञान) वह जिसके नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार आत्मा गुणविशेषसे अनालिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य हैं।' ज्ञानकी प्रधानतासे गुणकी बात करता है इसलिये 'अर्थावबोध जिसको नहीं है" ऐसा कहा है। उस परसे सब गुण समझ लेना। आत्मा गुण विशेषसे नहीं आलिंगित शुद्ध अखंड एक पदार्थ है। आत्मा और प्रत्येक गुणमें संज्ञा, लक्षण और प्रयोजनभेदसे भेद है, परन्तु जैसे परद्रव्य प्रदेश-अपेक्षासे पृथक् है वैसे ही आत्मा और उसका प्रत्येक गुण प्रदेश-अपेक्षासे पृथक् नहीं है। सर्व गुण ही अखण्ड एक द्रव्य है। आत्मा अखण्ड द्रव्य है, ज्ञानादि सर्व गुण आत्माके ही हैं, इसलिये वेदनमें किसी एक गुणकी पर्यायका ही वेदन होता है—ऐसा नहीं है, किसी एक गुणकी पर्यायका वेदन हो उसके साथ-साथ सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूतार्थके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है। भूतार्थ द्रव्यस्वभावका आश्रय, उसका वेदन होनेपर उसके सर्वगुणोंकी पर्यायें वेदनमें आती हैं। स्वानुभूतिमें ज्ञान और आनन्दकी मुख्यता होने पर भी, सर्व गुणोंकी परिणति वेदनमें आती है। द्रव्य अखण्ड होनेसे, एक गुणकी पर्यायके वेदनके साथ उसके सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं।

'भले ही सर्वगुणोंके नाम न आते हों, और सर्व गुणोंकी संज्ञा भाषामें होती भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।'

प्रत्येक द्रव्यमें दो जातिके गुण हैं : सामान्य और विशेष। जो गुण सर्व द्रव्योंमें हों वे सामान्य गुण, और सबमें न हों वे विशेष गुण हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व आदि अनन्त सामान्यगुण सर्व द्रव्योंमें हैं, इसलिये आत्मद्रव्यमें भी हैं। आत्मद्रव्यके विशेष गुण चेतनत्व, ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, वीर्य, सुख आदि अनन्त हैं। भले ही सर्व गुणोंके नाम न आते हों तथापि उनका संवेदन तो होता ही है। अरे! नाम आनेकी बात तो दूर रही, परन्तु सर्व गुणोंके नाम भाषामें होते भी नहीं; क्योंकि गुणोंकी संख्या अनन्त-अनन्त-अनन्त है और भाषामें शब्दोंकी संख्या मात्र संख्यात है। सर्व गुणोंकी संज्ञा अर्थात् नाम भाषामें होते भी नहीं, तथापि उनकी पर्यायोंका संवेदन तो होता ही है। भले ही उन अनन्त गुणोंकी अनन्त पर्यायोंके नाम न आते हों, उन सबकी संज्ञा—नाम—भाषामें होती भी नहीं, तथापि वे सर्व पर्यायें वेदनमें तो अवश्य आती हैं। अहा! बात कुछ सूक्ष्म आ गई है। इस बोलमें अन्तिम कुछ शेष है, उसे कल लेंगे।

निमित्तकी अपेक्षा की जाय तो बंध-मोक्ष दो पक्ष होते हैं और उसकी अपेक्षा न लेने पर अकेला निरपेक्ष तत्त्व ही लक्षमें आये तो स्वपर्याय प्रगट होती है।

—पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१७७

दिनांक २-१-७९

वचनामृत-४२३ (चालू)

वचनामृतका ४२३वाँ बोलचल रहा है। कल कुछ बाकी रह गया था। आज इस बोलको फिर ले लें।

प्रश्न ऐसा है कि—सर्व गुणांशको सम्यक्त्व कहा है, तो क्या सम्यक्त्व होने पर स्वानुभूतिमें आत्माके सर्वगुणोंकी आंशिक शुद्ध पर्यायका वेदन होता है?

उत्तरमें क्या कहते हैं? कि—ज्ञानादि अनन्त गुणात्मक अखण्ड आत्मद्रव्य अनुभव सहित दृष्टि, श्रद्धा, रुचि और विश्वासमें आये उसे सम्यग्दर्शन अथवा सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक्त्व होने पर आत्माकी सर्वगुणोंकी पर्यायोंमें निर्मलताका अंश प्रगट होता है। इस गम्भीर बातको श्रीमद्ने 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' और पं. टोडरमलजीने 'चतुर्थ गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादि अनन्तगुण एकदेश प्रगट हुए हैं'—ऐसे शब्दोंमें व्यक्त किया है।

आत्मा एक ही अखण्ड अभेद परिपूर्ण द्रव्य है; उसकी निर्विकल्प प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। विकल्प और रागको उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। रागसे भिन्न पूर्णानन्द ज्ञायक प्रभुकी अंतरंग प्रतीति होनेपर उसके सर्व गुणोंका आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है। यह बात कल कही जा चुकी है। बात कुछ सूक्ष्म है; यह दृष्टि अनन्तकालसे नहीं की है, इसलिये कठिन लगती है। अहा! अनन्त गुणोंका नाथ सच्चिदानन्द प्रभु! उसकी अन्तरोन्मुखता पूर्वक परसे—निमित्त, राग, पर्याय तथा गुणभेदसे—विमुख हो तब दृष्टि और प्रतीति सम्यक् होती है और साथ ही निर्विकल्प स्वानुभूति भी होती है।

निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्दगुणकी मुख्यता ली है। स्वानुभूति होनेपर आनन्दगुणकी कोई आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होती है, जिसके स्वादके निकट इन्द्रोंके इन्द्रासन तथा दैवी भोगोपभोग भी खड़े हुए तृण समान तथा चक्रवर्तीका राज्य, छियानवे हजार अप्सरा जैसी रानियाँ आदि सब दुर्गन्धित घूरे जैसे तुच्छ भासित होते हैं। सम्यक्त्व होनेपर आनन्दगुणकी पर्यायके आश्चर्यकारी आंशिक स्वादके साथ साथ अन्य सर्वगुणोंकी पर्यायोंका आंशिक निर्मल वेदन भी आता है। यथासंभव अर्थात् सम्यग्दर्शन तो अंशपूर्ण है परन्तु उसके साथ ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छत्व, प्रभुत्व आदि जो शक्तियाँ हैं वे पर्यायमें अंशतः प्रगट

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती हैं, पूर्ण नहीं। अस्तित्व आदि सामान्य गुणोंकी पर्यायें पूर्ण हैं, अधूरी नहीं हैं। आत्मद्रव्यमें अनन्त गुण हैं; उनमें कुछ गुणोंकी पर्यायें परिपूर्णरूपसे परिणमती हैं और कुछ गुणोंकी पर्यायोंमें शुद्धिका आंशिक विकास होकर वे क्रमशः पूर्ण होती हैं। इसलिये स्वानुभूतिमें सर्व गुणोंका यथासम्भव आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है—ऐसा कहा है।

आत्मद्रव्य क्षेत्रसे लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है, अवगाहनाअपेक्षासे वर्तमान शरीर प्रमाण है, परन्तु उसमें गुण संख्यासे अनन्त हैं। अनन्त गुणोंको रहनेके लिये अनन्तक्षेत्र-प्रदेशकी आवश्यकता नहीं हैं। सीमित अवगाहनामें भी संख्यासे असीम-अनन्त गुणोंका वास हो सकता है। असंख्य प्रदेशोंमें सर्वत्र अनन्त गुणोंका अस्तित्व होनेसे, स्वानुभूति होनेपर वे सर्व गुण यथासम्भव शुद्धिरूपसे परिणमते हैं और वेदनमें आते हैं। फिर, स्वानुभूतिमें जिसका वेदन होता है वह सर्व गुणोंका व्यक्त परिणमन वेदनमें आता है, ध्रुव गुण नहीं। गुणोंके ध्रुवांशका वेदन नहीं होता, परिणमन स्वरूप पर्यायांशका वेदन होता है।

कथनमें ऐसा आये कि अज्ञानीको अकेली रागादि पर्यायोंका वेदन है, ध्रुवस्वभावका नहीं; ज्ञानीको ध्रुवस्वभावका वेदन है। वहाँ ध्रुवस्वभावका वेदन अर्थात् वेदन तो पर्यायका है, परन्तु वर्तमान पर्यायका झुकाव अनादिसे जो रागादिकी ओर था वह पलटकर ध्रुव स्वभावोन्मुख हुआ; ध्रुव स्वभावोन्मुख हुए परिणमनके वेदनको ध्रुवका वेदन कहते हैं। ध्रुवस्वभावोन्मुख हुए परिणमनमें सर्वगुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है; अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरु लघुत्व आदि सामान्य तथा ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, आनन्दादि विशेष—सर्व गुण आत्माके ही हैं। इस कारण एकगुणकी पर्यायका वेदन हो उसके साथ-साथ सर्वगुणोंकी पर्यायोंका रस यथासम्भव अवश्य वेदनमें आता है। अहा! यह कैसा धर्म है? भाई! धर्म कोई अलौकिक वस्तु है। 'वत्थुसहावो धम्मो'—वस्तुका स्वभाव वह धर्म है। भगवान आत्मा वस्तु होनेसे उसमें अनन्त स्वभाव—गुण हैं, जो उसके धर्म हैं। उन शुद्धस्वभावोंका अभेद आश्रय करके जब आत्मा निज स्वभावोंरूपसे यथोचित् शुद्ध परिणमन करता है, तब उस शुद्ध परिणमनको धर्मरूप परिणमन कहा जाता है, जिससे शाश्वत पूर्ण सुख प्राप्त होता है। ऐसा धर्मका स्वरूप है। उस धर्म-परिणमनमें आत्माके सर्व गुणोंकी यथासम्भव शुद्ध पर्यायें प्रगट होती हैं और अवश्य वेदनमें आती हैं।

भले ही उन सर्वगुणोंके नाम नहीं आते हों, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है। नाम न आये उससे क्या उन अनन्त गुणोंका साथ ही परिणमन और वेदन नहीं है? अहा! आत्मा तो कोई अलौकिक वस्तु है। अहा! आत्मा भी क्या वस्तु है! एक समयकी पर्यायके समीप सम्पूर्ण तत्त्व विद्यमान है। वर्तमान प्रगट ज्ञानकी दशा कि जिसमें सब विचारादि चलते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं उस दशाके-पर्यायके—समीप ही भीतर भगवान सम्पूर्ण तत्त्व—परमात्मतत्त्व—अनन्त-अनन्त सामर्थ्यसे सदा भरपूर विद्यमान है। उसके सर्वगुणोंके नाम भले ही न आते हों, और सर्वगुणोंकी संज्ञा वाणीमें होती भी नहीं है, तथापि उनका संवेदन तो अवश्य होता है। सर्वज्ञकी वाणीमें भी अनन्त गुणोंके नाम नहीं आते। सर्वज्ञ भगवान जो सम्पूर्ण जानते हैं उसके अनन्तवें भाग ही उनकी वाणीमें आता है। सर्वज्ञकी वाणीमें जो आता है उसका अनंतवाँ भाग गणधर भावश्रुतमें झेलते हैं; गणधरने जितना झेला है उसका अनन्तवाँ भाग बारह अंगरूप द्रव्यश्रुतमें निबद्ध होता है। जैसे अनन्त भावोंका कथन नहीं हो सकता, वैसे ही गुणोंकी (जो कि अनन्त हैं उन सबकी) भी संज्ञा भाषामें नहीं होती; तथापि उनकी पर्यायोंका वेदन तो अवश्य होता है। अहा! ऐसी बातें तो कभी सुननेको मिली ही नहीं। सम्प्रदायमें तो दया पालो, व्रत धारण करो, भक्ति करो, बस हो गया धर्म! भाई! वह कोई धर्म नहीं है, धर्म तो धर्मीके—जिसमें अनन्त स्वभाव (गुण) वसे हैं ऐसी ज्ञायक वस्तुके—आश्रयसे होते हैं। जहाँ वस्तुस्वभावकी ही खबर नहीं है वहाँ धर्म कैसा? वस्तु अर्थात् ध्रुवस्वभाव कोई रिक्त वस्तु नहीं है; उसमें ज्ञान, शान्ति, आनन्दादि अनंतानंत गुण भरे हैं। भले ही उन अनन्त गुणोंके नाम न आयें, अनन्त गुणोंके नाम भाषामें होते भी नहीं; अरे! सर्वज्ञकी वाणीमें भी सर्व गुणोंके नाम नहीं आते। 'जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें, कह न सके उसको जब श्री भगवान भी।'....तो क्या सर्वज्ञको नाम नहीं आते होंगे? भाई! सर्वज्ञ तो सब जानते हैं, परन्तु शब्द संख्यात होनेसे, अनन्त गुणोंके नाम भाषामें हो ही नहीं सकते। तीनोंकालके समयोंकी अपेक्षा गुणोंकी संख्या अनन्तगुनी है। एकसमयमें एक नाम कहें तथापि, तीनकालके समयोंकी अपेक्षा गुणोंकी संख्या अनन्तगुनी होनेसे, समस्त गुणोंका नाम-कथन नहीं हो सकता। नाम भले ही न आयें भाषामें सब नाम भले ही न हों तथापि पर्यायोंका वेदन तो होता ही है।

मिश्रीका स्वाद चींटीको भी आता है। भले ही उसे मिश्रीकी मिठासका नाम न आये, परन्तु मिठासका वेदन तो होता है; उसी प्रकार भगवान आत्माके अनन्त गुणोंके नाम न आयें, भाषामें सब नाम होते भी नहीं, तथापि उन अनन्त गुणोंकी निर्मल पर्यायोंका स्वानुभूतिमें वेदन तो होता ही है। त्रिकालशुद्ध निज शुद्धात्म द्रव्यस्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्द पर्यायके साथ आत्माके सर्व गुणोंकी निर्मल पर्याय यथासंभव व्यक्त हुई है; भले ही उन सब निर्मल पर्यायोंके नाम न आयें, परन्तु उन अनन्त पर्यायोंका स्वानुभूतिमें एकसाथ संवेदन तो होता ही है।

कल यहाँ तक प्रवचन हुआ था, अब आगे.......

'स्वानुभूतिके कालमें अनन्त गुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणोंकी चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायोंमें रमण करता हुआ प्रगट होता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्मा—'भग' अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्यादि स्वरूपलक्ष्मी, और 'वान' अर्थात् वाला–युक्त–सहित; अनन्त स्वरूपलक्ष्मीवाला होनेसे आत्मा स्वयं भगवान है—स्वानुभूतिकालमें अपने आनन्द, शान्ति आदि गुणोंकी चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायोंमें क्रीड़ा करता प्रगट होती है। अपने त्रैकालिक शुद्ध स्वरूपका अनुसरण करके–अवलोकन लेकर, उसका आश्रय करके ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि गुणोंकी पर्यायोंमें अद्भुत निर्मलताका वेदन हो-उसे स्वानुभूति कहते हैं। अहा! स्वानुभूति होनेपर जो आनंद प्रगट होता है उसका तो क्या कहना! इन्द्रोंके इन्द्रासन और चक्रवर्तीके भोगोंमें जिसकी अंशतः भी गंध नहीं है ऐसे किसी आत्मिक आनन्दका वेदन स्वानुभूतिमें होता है। स्वानुभूतिके समय अनन्त गुणसागर निज भगवान आत्मा—जोकि ज्ञान, आनन्द और शान्ति आदि अनन्त शक्तियोंका अखण्ड सत्त्व, शक्तियोंका महासागर है—अपने आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि गुणोंकी कोई अद्भुत स्वाभाविक पर्यायोंमें क्रीड़ा करता प्रगट होती है। 'क्रीड़ा करता प्रगट होता है अर्थात् सहजरूपसे परिणमित होता हुआ प्रगट होता है। त्रैकालिक शुद्ध ध्रुवस्वभावमें तो कोई 'रमना'—'क्रीड़ा करना' अथवा 'परिणमना' है नहीं, किन्तु सहज ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणसामर्थ्योंसे परिपूर्ण अखण्ड ध्रुव स्वभावके आश्रयसे आत्माको आनन्दादि चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायोंमें 'रमना' तथा 'परिणमता' प्रगट होता है। अहा! स्वानुभूति होनेपर ऐसी कोई चमत्कारिक अद्भुतता प्रगट होती है।

'वह निर्विकल्प दशा अद्भुत है, वचनातीत है।'

भगवान आत्माको, अपने अनन्तगुणसामर्थ्यसे भरपूर ध्रुव स्वभावका अनुसरण करके, आनन्दादि निर्विकल्प वेदनरूप निर्मल पर्याय होना सो स्वानुभूति है। वह निर्विकल्प दशा कोई अद्भुत है, वचनसे अगोचर है, उसका वर्णन शब्दोंमें नहीं हो सकता।

'वह दशा प्रगट होनेपर सारा जीवन पलट जाता है।'

सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूति प्रगट होनेपर सारा जीवन पलट जाता है, अंतरसे समस्त सांसारिक भावोंका रस छूट जाता है, ऐसा लगने लगता है मानों नया जन्म धारण कर लिया हो। राग और कषायके वेदनका जो जीवन था वह सब पलटकर शान्तिसुधामय हो गया और भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दरूपसे वेदनमें आया। अहो! वह दशा कोई अद्भुत है, वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। अनादिसे पर दिशामें दृष्टि थी इसलिये दशामें दुःख था, अब दृष्टि स्वदिशामें–स्वदेशमें—लौट आयी इसलिये जीवनकी दशा सम्पूर्ण पलट गई, आनन्दमय बन गई। अहा! वह दशा तो अवर्णनीय है! इस पूरे पैरेमें कोई अलौकिक बातें हैं। आता है कुछ समझमें? भावनगरके एक प्रोफेसर यह पुस्तक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(बहिनश्रीके वचनामृत) ले गये थे; इसे पढ़कर अपने पत्रमें लिखते हैं कि—'इसमें तो प्रत्येक पैरेमें भण्डार भरे हैं।' अहा सहज ही आ गया है न? एक-एक पैरेमें बेड़ा पार हो जाय ऐसी यह वस्तु है, बारह अंगका सार भरा है। बारह अंगमें भी 'अनुभूति' कहना है न? कलश-टीकामें भी आता है न! कि—कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। उसका समाधान इसप्रकार है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। इसलिये शुद्धात्मानुभूति होनेपर शास्त्र पढ़नेका कोई बंधन नहीं है।' बारह अंगमें भी स्वानुभूति करनेको कहा है। वह कोई वचनातीत अद्भुत दशा है। वह प्रगट होनेपर सारा जीवन पलट जाता है।

स्वानुभूतिकालमें आत्मा अपनी आनन्दादि अनन्त गुणोंकी स्वाभाविक अद्भुत पर्यायोमें रमण करता हुआ प्रगट होता है। ज्ञानीको आनन्दके वेदनके साथ भूमिकानुसार जितना राग है उतना दुःख भी है। चौथे, पाँचवें और छठवें गुणस्थानमें स्वभावसन्मुख होकर जितनी शक्तिकी व्यक्ति प्रगट हुई है उतनी शान्ति और आनन्द है, परन्तु जबतक पर्यायमें पूर्णता प्रगट नहीं हुई तबतक रागादिभाव आते हैं और उतना दुःख भी है। स्वभावके अवलम्बनसे जितनी शुद्धि प्रगट हुई है उतनी ज्ञानधारा, आनन्दधारा, शान्तिधारा और स्वच्छत्वकी धारा है और अशक्तिके कारण जो रागादिभाव होते हैं वह कर्मधारा, दुःखधारा, अशान्तिधारा तथा मलिनताकी धारा है। ज्ञानी हुआ इसलिये उसे दुःखका वेदन किंचित् (अस्थिरताकी अपेक्षासे भी) नहीं है—ऐसा नहीं है। सर्वज्ञको दुःखका वेदन किंचित् भी नहीं है, मिथ्यादृष्टिको आनन्दका वेदन किंचित् नहीं है और साधकदशामें भूमिकानुसार आनन्द और दुःखका वेदन दोनों साथ हैं।

सम्यग्दर्शन होनेपर भगवान आत्माके आनन्दका जिसे अनुभव हुआ उसे अब जगतकी कोई बाह्यवस्तु खींच सके, आकर्षित कर सके—ऐसा नहीं रहा है। जगतकी कोई वस्तु—सुन्दर अप्सराएँ अथवा अन्य कोई भोगोपभोग—ललचा नहीं सकती ऐसा अद्भुत अनुभूतिका आनन्द है। समयसारमें 'अद्भुतादद्भुतः' आता है न? आत्माकी अद्भुतसे भी अद्भुत स्वभावमहिमा जयवंत वर्तती है। ज्ञानियोंको यद्यपि वस्तुस्वभावसे आश्चर्य नहीं है तथापि उनको पूर्वमें कभी नहीं हुआ था ऐसा अद्भुत परम आनन्द होता है और उससे आश्चर्य भी होता है। अहा! स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट हुई निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशा कोई अद्भुत है, वचनअगोचर है; वह दशा प्रगट होनेपर सारा जीवन जात्यन्तर हो जाता है, पलट जाता है।

❋

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–४२४

प्रश्न :—आत्मद्रव्यका बहुभाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भागमें ही अशुद्धता आयी है न?

उत्तर :—निश्चयसे अशुद्धता द्रव्यके थोड़े भागमें भी नहीं आयी है, वह तो ऊपर–ऊपर ही तैरती है। वास्तवमें यदि द्रव्यके थोड़े भी भागमें अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्यका थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाय, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं, सदाकाल रहेगी! बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव द्रव्यके ऊपर तैरते हैं परन्तु उसमें सचमुच स्थान नहीं पाते। शक्ति तो शुद्ध ही है, व्यक्तिमें अशुद्धता आयी है।।४२४।।

'प्रश्न :—आत्मद्रव्यका बहुभाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भागमें ही अशुद्धता आयी है न?'

पूर्णानन्दस्वरूप त्रैकालिक ज्ञायक प्रभु स्वयं अस्तित्वयुक्त महान पदार्थ है। उस महापदार्थका बहुत सा भाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भागमें ही अशुद्धता आयी है न?

'उत्तर :—'

प्रश्न ऐसा है कि—भगवान आत्मा जो पूर्णवस्तु है उसके अल्प भागमें अशुद्धता और अधिक भागमें शुद्धता—ऐसा है? उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि—

'निश्चयसे अशुद्धता द्रव्यके थोड़े भागमें भी नहीं आयी है, वह तो ऊपर–ऊपर ही तैरती है।'

भगवान आत्मा द्रव्य–अपेक्षासे त्रिकालशुद्ध, गुणभेद और पर्यायरहित अभेद एकरूप ज्ञायक ध्रुव सत्त्व है। पुण्य–पापादि अशुद्धता द्रव्यके, अर्थात् ध्रुव सत्त्वके अल्पभागमें भी नहीं आयी है। वस्तुमें अशुद्धता तो पर्याय–अपेक्षासे है; वह तो पानीके भण्डार पर तेलकी बूँदकी भाँति, ऊपर ही ऊपर तैरती है। जिसप्रकार तेलकी बूँद पानीमें प्रवेश नहीं करती, ऊपर ही ऊपर रहती है। वैसे ही रागादि अशुद्धता द्रव्यस्वभावमें घुस नहीं जाती ऊपर ऊपर ही रहती है। अशुद्धता तो पर्यायमें है न? द्रव्यस्वभाव तो त्रिकालशुद्ध ही है, उसके अल्पभागमें भी कभी अशुद्धता नहीं आती; मात्र पर्यायमें अशुद्धता है और वह भी ऊपर–ऊपर ही तैरती है।

जीवादि सर्व वस्तुएँ सत् हैं। सत् उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त हैं; इसलिये पूर्व पर्यायका व्यय, नवीन पर्यायका उत्पाद तथा मूल द्रव्यरूपसे ध्रुव रहना वह वस्तुका स्वतः सिद्ध सहज स्वभाव है। रागादि अशुद्धता, वस्तुमें उत्पाद–व्ययरूप पर्यायअपेक्षासे ऊपर–ऊपर तैरती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होनेपर भी त्रिकालशुद्ध द्रव्यस्वभावमें, उसके अल्प भागमें भी, प्रविष्ट नहीं होती। अहा! शरीर, वाणी और कर्मादि पर द्रव्य तो ऊपर भी नहीं तैरते, क्योंकि वे पदार्थ तो आत्मासे सर्वथा भिन्न–पृथक् ही हैं; परन्तु अशुद्धता परद्रव्यकी भाँति पृथक् नहीं है, आत्माकी पर्यायमें ऊपरी भावसे ऊपर ही ऊपर तैरती है; वह भीतर द्रव्यके अल्पभागमें भी नहीं आती। मन–आधे मन पानीके भण्डारमें तेलकी बूँद ऊपर ही ऊपर तैरती है, उसमें प्रविष्ट नहीं होती; वैसे ही अशुद्धता ध्रुव समूहमें प्रवेश नहीं करती, ऊपर ही ऊपर रहती है। द्रव्य स्वभावसे कभी अशुद्ध होता ही नहीं। द्रव्य सदैव पारिणामिक भावरूप है। केवलीको भी, द्रव्यमें अशुद्धता आ गई—ऐसा भासित नहीं होता; स्वभावसे पारिणामिक ऐसा द्रव्य अशुद्ध होता ही नहीं, फिर 'वह अशुद्ध हुआ है' ऐसा कैसे भासित होगा? द्रव्यस्वभाव तो सदा परिपूर्ण अखण्ड एकरूप है। सादि–अनन्तकाल चाहे जो शुद्धपर्यायें हों तथापि द्रव्यस्वभाव तो सदा एकरूप परिपूर्ण है। द्रव्यस्वभावमें यदि न्यूनाधिकता अथवा समलता–निर्मलता हो तो उसका एकरूप ध्रुवत्व ही समाप्त हो जाय। इसलिये वास्तवमें अशुद्धता द्रव्यस्वभावके अल्पभागमें भी नहीं आयी है, वह तो पर्यायमें ऊपर ही ऊपर तैरती है। अहा! वस्तुस्वरूप कोई अचिन्त्य है! साधारणके तर्कमें आ जाय–बैठ जाय ऐसी यह वस्तु नहीं है। इस बातको सिद्ध करनेके लिये अब न्याय देते हैं।

'वास्तवमें यदि द्रव्यके थोड़े भी भागमें अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्यका थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाय, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं, सदाकाल रहेगी।'

द्रव्य अर्थात् वस्तुका त्रैकालिक एकरूप ध्रुव सत्त्व। भगवान आत्माके—द्रव्यके—अल्प भागमें रागादि अशुद्धता आये तो वह कभी हटेगी ही नहीं। द्रव्य तो नित्य रहनेवाली ध्रुव वस्तु है, उसमें अशुद्धता हो तो निरन्तर रहना चाहिये। प्रभु! तू कौन है? तेरा ज्ञानादि अनन्त–अनन्त सामर्थ्यसे भरपूर त्रैकालिक ध्रुवसत्त्व कितना महान है?—उसकी तुझे खबर नहीं है। तेरी जो एक समयकी वर्तमान पर्याय है, बस! उसीमें तूने अनादिसे विभावके खेल खेले हैं, परन्तु पर्यायके साथ भीतर जो त्रिकाल एकरूप द्रव्य–महाप्रभु–है वहाँ तूने दृष्टि नहीं डाली। आता है कुछ समझमें? अहा! यह तो जगतसे उस पारकी बातें हैं, जगतकी बातोंसे बिलकुल भिन्न हैं।

वस्तु तो स्वभावसे नित्य एकरूप रहती है। वस्तुके–नित्य स्वभावके–अल्प भागमें भी मिथ्यात्व एवं रागादिकी मलिनता आये, तो अशुद्धता कभी दूर नहीं होगी, सदा ही रहेगी। मलिनता वर्तमान पर्यायमें परके लक्षसे हुई है, तथापि द्रव्य सामान्य तो सदा परिपूर्ण एकरूप ही है। अनादिकालसे मिथ्यात्व तथा रागादिकी अनेक पर्यायें हुईं और गईं—पर्यायें आयीं और गईं यह सत्य है, आकाशकुसुम जैसा नहीं है—तथापि द्रव्यस्वभावसे तो शुद्ध, परिपूर्ण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा एकरूप ही रहा है। विभावरूपसे पलटना अथवा विभावके अभावरूपसे पलटना—ऐसे बन्ध–मोक्षके पलटे–बलटे द्रव्यस्वभावमें नहीं होते।

पर्याय तो वस्तुमें ऊपर तैरता क्षणिक भाव है; वह ध्रुव द्रव्यस्वभावमें कभी प्रविष्ट नहीं होता; इसलिये द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता और पर्याय द्रव्यका स्पर्श नहीं करती—ऐसा कहा जाता है। समयसारकी ४९वीं गाथाकी टीकामें 'अव्यक्त' के बोलोंमें भी कहा है कि—व्यक्त और अव्यक्तका एकसमयमें ज्ञान होनेपर भी व्यक्तको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। अहा! वस्तुस्वरूप तो कोई अद्भुत है भाई! आत्मवस्तु द्रव्यस्वभावसे प्रतिसमय परिपूर्ण शुद्ध है; उसका स्वभाव कभी अंशतः भी अशुद्ध नहीं होता।

'बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव द्रव्यके ऊपर तैरते हैं परन्तु उसमें सचमुच स्थान नहीं पाते।'

समयसारकी १४–१५ वीं गाथाओंमें भी आत्माको अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त अर्थात् स्वभावसे त्रिकालमुक्त और शुद्ध कहा है। बन्ध और मोक्ष—दोनों पर्याय–अपेक्षासे हैं, वस्तुस्वभाव तो त्रिकाल मुक्त और शुद्ध ही है। बद्धस्पृष्ट आदि भाव स्पष्टरूपसे स्वभावके ऊपर तैरते हैं तथापि द्रव्यमें प्रतिष्ठा नहीं पाते, क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है और यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव अनित्य हैं, अनेकरूप हैं; पर्यायें द्रव्यस्वभावमें प्रवेश नहीं करती ऊपर ही तैरती हैं। ऐसे शुद्ध द्रव्यस्वभावका, मोहरहित होकर, हे भव्य! तू अनुभव कर। वाह रे भगवान! यह आत्मतत्त्व कैसा है? 'अद्भुताद्–अद्भुत' है। अहा! ऐसी वस्तु है; लोगोंको सुननेके लिये भी नहीं मिलती। उपदेशकोंने बाह्यमें चढ़ा दिया है—व्रत करो, तप करो और भक्ति करो; परन्तु भाई! भगवान आत्मा कितना महान है उसकी तूने प्रतीति नहीं की तो वह सब व्यर्थ है। भगवान द्रव्यस्वभावके अंतरमें दर्शन न हों और रागको ही देखता रहे यह तो अनादिकालीन भटकनेका मार्ग है। द्रव्यस्वभावमें—भगवान आत्मामें—पर्याय, केवलज्ञानकी पर्याय भी, भीतर वास्तवमें स्थान नहीं पाती, पर्यायमात्र द्रव्यस्वभावके ऊपर ही तैरती है। शुद्धपर्याय भी ध्रुव द्रव्यस्वभावमें प्रवेश नहीं पाती। वहाँ द्रव्यके—ध्रुवस्वभावके—अल्प भागमें भी अशुद्धता आ जाय—यह बात ही नहीं रहती। द्रव्यस्वभाव तो त्रिकालशुद्ध है।

'शक्ति तो शुद्ध ही है, व्यक्तिमें अशुद्धता आयी है।'

शक्ति अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव सामर्थ्य और व्यक्ति अर्थात् वर्तमान प्रगट होनेवाली क्षणिक पर्याय। आत्माको क्षणिक प्रगट पर्यायमें अशुद्धता आयी है, शक्तिरूप त्रैकालिक ध्रुवस्वभावमें नहीं। शक्तिरूप ध्रुवस्वभाव तो सदाशुद्ध है। अहा! ऐसी बात है।

❐

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन-१७८

दिनांक ३-१-७९

वचनामृत-४२५

प्रश्न :—जिज्ञासु जीव तत्त्वको यथार्थ धारण करने पर भी किस प्रकार अटक जाता है?

उत्तर :—तत्त्वको धारण करने पर भी जगतके किन्हीं पदार्थोंमें गहरे-गहरे सुखकी कल्पना रह जाये अथवा शुभपरिणाममें आश्रयबुद्धि रह जाये—इत्यादि प्रकारसे वह जीव अटक जाता है। परन्तु जो खास जिज्ञासु-आत्मार्थी हो और जिसे खास प्रकारकी पात्रता प्रगट हुई हो वह तो कहीं अटकता ही नहीं, और उस जीवको ज्ञानकी कोई भूल रह गई हो तो वह भी स्वभावकी लगनके बलसे निकल जाती है; अंतरकी खास प्रकारकी पात्रतावाला जीव कहीं अटके बिना अपने आत्माको प्राप्त कर लेता है।।४२५।।

'प्रश्न :—जिज्ञासु जीव तत्त्वको यथार्थ धारण करने पर भी किस प्रकार अटक जाता है?'

गुरुके सान्निध्यमें सुनकर तथा शास्त्राभ्यास द्वारा जीवादि द्रव्यों एवं पुण्य-पापादि तत्त्वोंके स्वरूपकी यथार्थ धारणा करने पर भी जिज्ञासु जीव कहाँ और किस प्रकार अटक जाता है?—यह प्रश्न है।

'उत्तर :—'

अच्छा प्रश्न है। जिज्ञासु होनेपर भी, तथा गुरुका उपदेश सुनकर और शास्त्रोंका अभ्यास करके छह द्रव्य, नव तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय, स्वभाव-विभावादिकी यथार्थ धारणा भी की है तथापि, जीव किस प्रकार अटक जाता है, आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे वंचित रह जाता है?—इस प्रश्नका उत्तर देते हैं।

'तत्त्वको धारण करने पर भी जगतके किन्हीं पदार्थोंमें गहरे-गहरे सुखकी कल्पना रह जाये अथवा शुभपरिणाममें आश्रयबुद्धि रह जाये—इत्यादि प्रकारसे वह जीव अटक जाता है।

तत्त्वकी धारणा करने पर भी उस जीवको भीतर गहरे-गहरे सूक्ष्मरूपसे किन्हीं बाह्य

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थोंमें सुखबुद्धि रह जाती है। तत्त्वको धारण करने पर भी उसके द्वारा यदि अपने अयथार्थ प्रयोजनकी सिद्धि करे तो उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। दुनियाको उपदेश दूँ, श्रोतागण संतुष्ट हों तो मेरा ज्ञान यथार्थ कहलाये, दूसरोंको समझा सकूँ तो मेरे ज्ञानकी प्रसिद्धि हो, लोग मेरा मान-सन्मान करें—ऐसी जो अंतरंग बुद्धि है वह अयथार्थ प्रयोजन है; उसमें तो स्पष्टरूपसे बाह्य बड़प्पनमें सुखकी कल्पना है।

जीवने अनन्तबार बाह्य मुनिपना लेकर ग्यारह अंग और नवपूर्वका ज्ञान किया, करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ किये, परन्तु भीतर गहरे-गहरे कहीं परके प्रति सन्तोष रह गया जिससे वह सब किंचित् भी कल्याणका साधन नहीं हुआ; अंतरमें आत्माका यथार्थ ग्रहण-अपनी शुद्ध सत्ताका यथार्थ अवलम्बन-नहीं हुआ। सब ज्ञातृत्व परसत्तावलम्बी रहा। हजारों आदमी मेरा व्याख्यान सुनें तो मेरे ज्ञानकी प्रशंसा होने लगे—ऐसी अंतरंग रुचि हो तो उस जीवको आत्मज्ञानका उदय नहीं होता। उसने भले ही ऐसी धारणा बनायी हो कि—'आत्मा ज्ञानस्वरूप है, शरीरादि जड़-अचेतन हैं', परन्तु यदि अंतरमें मानका प्रयोजन हो, बाह्य प्रशंसामें संतुष्टिका अनुभव करता हो, तो उसको वहाँ अटक जानेसे, आत्माकी प्राप्ति नहीं होती।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक'के चौथे अधिकारमें कहा है कि—मिथ्यादृष्टि जीव कभी किसी पदार्थको सत्य जाने तथापि वह निश्चयरूप निर्धारसहित श्रद्धानपूर्वक नहीं जानता, इसलिये उसके ज्ञानको यथार्थ नहीं कहते। और कहा है कि—उसने तत्त्वकी धारणा की होनेपर भी उसका ज्ञातृत्व कारणविपरीतता, स्वरूपविपरीतता या भेदाभेदविपरीतता सहित है। उसको अपनी पकड़में न आये, तथापि गहरे-गहरे विपरीतता रही होती है। इसप्रकार अज्ञानीको तत्त्वकी धारणा होनेपर भी, ज्ञातृत्वमें विपरीतता होती है। यह तो ठीक परन्तु तदुपरान्त वहाँ ऐसा कहा है कि—मिथ्यादृष्टिको कदाचित् तत्त्वकी सच्ची धारणा हो, सच्चा ज्ञातृत्व हो तथापि, उसके द्वारा अपना मानादि अयथार्थ प्रयोजन साधता है इसलिये, उसको सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। उसका सर्व ज्ञातृत्व मिथ्याज्ञान है। सत्य जाने तथापि मिथ्याज्ञान कहना? भाई! वह तो बहिर्लक्षी धारणाकी अपेक्षा उसे सत्यज्ञान कहा है परन्तु उसको वह बहिर्लक्षी ज्ञातृत्व मानादिरूप अयथार्थ प्रयोजन साधता है इसलिये तथा आत्माके हितका प्रयोजन नहीं साधता इसलिये मिथ्याज्ञान है।

तत्त्वको धारण करने पर भी 'लोग मेरा व्याख्यान सुनें', 'मुझे आता है—मुझको लोग जानें' आदि प्रकारसे जीवको बाह्यमें गहरे-गहरे सुखकी कल्पना रह जाती है। बहिनके बोलमें आया है न! कि—'मुझे आता है'—ऐसे खोटे ज्ञानके अभिमानके रहते चाहताा नहीं। विभावके मार्ग पर तो अनादिसे चल ही रहा है। वहाँसे रोकनेके लिये गुरु चाहिये। एक अपनी लगाम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और दूसरी गुरुकी लगाम हो तो जीव विमुख हो। ज्ञानके अभिमानसे दूर रहना अच्छा है। प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है। वे सब प्रसंग निःसार हैं; सारभूत एक आत्मस्वभाव है। जिसे बाह्यमें प्रसिद्धिकी अंतरंग रुचि है उसे गुप्त रहनेका भाव नहीं है, वह तो किसी प्रकारसे प्रसिद्ध होनेके लिये आतुर रहता है। धारणा सच्ची होनेपर भी उसे सम्यग्ज्ञान कैसे कहा जाय? उसे गहरे-गहरे सुखकी कल्पना, बाहरका प्रेम रह जाता है। अहा! इसमें—'वचनामृत'में—पहले अनेक न्याय आ गये हैं। देखो न, कैसी सरल भाषा है! शब्द भी यथार्थ हैं।

तत्त्वको धारण करने पर भी, जगतके किन्हीं पदार्थोंमें सुखकी बुद्धि रह जानेसे जीव अटक जाता है—यह बात कही है। अब, शुभपरिणाममें आश्रयबुद्धि रह जानेसे जीव अटक जाता है—यह बात आती है।

शुभ परिणाम अनेक प्रकारके होते हैं। द्रव्य-गुणपर्यायमें भेदसम्बन्धी, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके भेद सम्बन्धी, गुण-गुणीके भेदसम्बन्धी—इत्यादि तत्त्वविचारात्मक भेदविकल्प भी शुभ परिणामोंमें समाहित हैं। यह आत्मा अभेद ज्ञान स्वरूप है—ऐसा लक्ष न करके जो ऊपर कहे हुए भेदोंके रसमें रुकता है उसे शुभ परिणाममें आश्रयबुद्धि है। समयसार-कलशटीका (कलश-८) में कहा है कि—यदि शुद्ध जीववस्तुमात्र देखनेमें न आये, गुण-पर्यायमात्र या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमात्र देखनेमें न आये, तो जीववस्तु ऐसी भी है; यदि ऐसे भेद देखनेमें न आयें, वस्तुमात्र देखनेमें आये, तो समस्त भेद झूठे हैं; ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है। तथा वहाँ कहा है कि—भेदबुद्धिकी अपेक्षा जीववस्तु चेतनालक्षणसे जीवको जानती है, वस्तुका विचार करने पर इतना विकल्प—भेद भी झूठा है, शुद्ध अभेद वस्तुमात्र है; ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है। इसका आशय ऐसा ग्रहण करना कि—आत्मार्थी जीवको भेदोंकी आश्रयबुद्धि छोड़कर अभेद शुद्ध ज्ञायकका आश्रय करना।

'मैं तो यह ज्ञायक हूँ, यह राग नहीं—यह नहीं'—इसप्रकार अंतरमें भेद उठे वह भी भेदविकल्प है। भीतर रागसे भिन्न होकर अनुभव हो जाय तो वह भेदज्ञान अभेद हो गया।

यदि ज्ञानस्वरूप आत्माके शुद्ध अस्तित्वको ग्रहण न करे और तद्रूप परिणमन न करे, तो वह जीव ज्ञेयनिमग्न रहता है। जो जो बाहरका जाने—शास्त्र पढ़े, वाद-विवाद करके जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादिसे वस्तुकी तर्कणा करे—उसमें तल्लीन हो जाता है। मानों ज्ञान बाहरसे आता हो ऐसे भावका वेदन करता रहता है। उसीमें अटक जाता है। इस सबका प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्माको जानना है। ज्ञानकी मूल भूमि तो दृष्टिगोचर नहीं हुई, ज्ञाताको जाना नहीं, तो वह सब जाननेका फल क्या? जो ज्ञान आत्माके शुद्ध अस्तित्वका ग्रहण न करे, एकान्त ज्ञेयनिमग्न रहे, उसे 'परमार्थ वचनिका' में परसत्तावलम्बी कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह मोक्षका मार्ग नहीं है अर्थात् बंधका मार्ग है। अहा! सूक्ष्म बात है भाई! आया कुछ समझमें? तत्त्वको धारण करने पर भी गहरे-गहरे परमें सुखकी कल्पना अथवा शुभपरिणाममें—जो कि व्रत, तप, भक्ति आदि अनेक प्रकारके हैं, अरे! गुण-गुणीका भेद भी शुभ राग है, उसमें—उपादेयबुद्धि रह जाय आदि प्रकारसे—वह जीव अटक जाता है। वर्तमान परिणामको अंतर्स्वभावोन्मुख करना चाहिये, वह न करके पर्याय बुद्धिमें इसप्रकार जीव अनेक प्रकारसे अटक जाता है।

यह तो सूक्ष्मरूपसे जीव कहाँ अटक जाता है उसकी बात है, परन्तु कोई जीव सम्यक्त्व प्राप्त करके भी गिर जाता है। किसप्रकार अटक या गिर जाता है?—अंतरमें गहरे-गहरे बाह्यमें सुखकी कल्पना अथवा रागमें उपादेयबुद्धि हो जानेसे ऐसा होता है।

अब, खास आत्मार्थीकी बात आती है :—

'परन्तु जो खास जिज्ञासु-आत्मार्थी हो और जिसे खास प्रकारकी पात्रता प्रगट हुई हो वह तो कहीं अटकता ही नहीं, और उस जीवको ज्ञानकी कोई खास भूल रह गई हो तो वह भी स्वभावकी लगनके बलसे निकल जाती है; अंतरकी खास प्रकार पात्रतावाला जीव कहीं अटके बिना अपने आत्माको प्राप्त कर लेता है।'

अंतरमें प्रविष्ट होनेके लिये जिसे सच्ची पात्रता प्रगट हुई है ऐसा आत्मार्थी जीव तो बाह्य पदार्थोंमें या व्यवहारके—शुभ-भावोंमें कहीं अटकता ही नहीं है। उसे जो ज्ञान प्रगट हुआ है वह अंतरमें जानेके लिये है, बाह्यमें अटकने या दिखानेके लिये नहीं। 'काम एक आत्मार्थका अन्य नहीं मन रोग।' —इसप्रकार जिसे मात्र आत्माकी ही आवश्यकता है, वास्तविक तत्त्वको प्राप्त करनेकी सच्ची जिज्ञासा है, लगन और आकांक्षा है, दुनियामें प्रसिद्धिकी अथवा अन्य कोई प्रयोजन नहीं है, वह तो कहीं अटकता ही नहीं है, और यदि उसे ज्ञान सम्बन्धी कोई भूल रह गई हो, विचारभेद हो गया हो, तो वह भी अंतरंगस्वभावकी लगनके बलसे निकल जाता है। विशेष प्रकारकी पात्रतावान जिज्ञासु आत्मार्थी बाह्यमें-शुभरागमें अथवा अन्य किसी बातमें-कहीं अटकता ही नहीं। यदि उसे किसी बाह्य वस्तुका गहरे-गहरे आश्चर्य रह गया होगा तो वह स्वभावकी तीव्र रुचिके बलसे निकाल देगा। 'मुझे अकेला आत्मा ही चाहिये' ऐसी विशेष जिज्ञासा—आत्मार्थिता और विशेषप्रकारकी अंतरंगपात्रता—यह दो बातें जिसमें होती हैं वह जीव अन्यत्र कहीं अटकता नहीं है। यदि उस जीवको ज्ञान सम्बन्धी-तत्त्व सम्बन्धी किसी विषयकी—भूल रह गई हो तो वह भी स्वभावप्राप्तिकी तीव्र उत्कंठाके बलसे निकल जायगी। उसको 'लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ, तोरि सकल जग दंद-फंद नित आतम ध्याओ—अन्य सब बातें एक ओर रखकर मात्र निज सर्वज्ञस्वभावी ज्ञायकभावको अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ग्रहण करनेकी तीव्र जिज्ञासा है। उसके अंतरमें एक ही प्रयोजन है—ज्ञायकस्वभावी पूर्णानन्दके नाथ निज आत्मभगवानको पकड़ना है; बस यही बात है। ऐसी अंतरकी विशेष प्रकारकी पात्रतावान जीव कहीं अन्यत्र अटके बिना अन्यत्र कहीं आकर्षित हुए बिना, अपने ज्ञायकस्वभावको प्राप्त कर लेता है। अहा! बड़ी अच्छी बात है। आया कुछ समझमें? यदि कोई इसे मध्यस्थ होकर पढ़े तो उसे ऐसा लगेगा कि इस पुस्तकमें तत्त्वका भण्डार भरा है।

❋

वचनामृत–४२६

प्रश्न :—मुमुक्षुको सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर :—अनादिकालसे आत्माने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा है, परन्तु भ्रान्तिके कारण 'छोड़ दिया है'—ऐसा उसे भासित हुआ है। अनादिकालसे द्रव्य तो शुद्धतासे भरा है, ज्ञायकस्वरूप ही है, आनन्दस्वरूप ही है। उसमें अनन्त चमत्कारिक शक्ति भरी है।—ऐसे ज्ञायक आत्माको सबसे भिन्न—परद्रव्यसे भिन्न, परभावोंसे भिन्न—जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। भेदज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। ज्ञायक आत्माको पहिचानना चाहिये।

'ज्ञायकस्वरूप हूँ' ऐसा अभ्यास करना चाहिये, उसकी प्रतीति करना चाहिये; प्रतीति करके उसमें स्थिर हो जाने पर, उसमें जो अनन्त चमत्कारिक शक्ति है वह प्रगट अनुभवमें आती है॥४२६॥

प्रश्न :—'मुमुक्षुको सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये?'

जिसको मात्र मोक्षका ही काम है, आत्मार्थका ही प्रयोजन है ऐसे मुमुक्षु जीवको सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये क्या करना?—यह प्रश्न है।

'उत्तर :—'

अब, बहिन इस प्रश्नका उत्तर देती हैं कि—

'अनादिकालसे आत्माने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा है, परन्तु भ्रान्तिके कारण 'छोड़ दिया है'—ऐसा उसे भासित हुआ है।'

आत्माने ज्ञान और आनन्दादि अनन्तगुणोंसे परिपूर्ण अपना सहज स्वरूप अनादिकालसे कभी छोड़ा नहीं है, परन्तु स्वरूप सम्बन्धी भ्रान्तिके कारण 'छोड़ दिया है—मानों भीतर कोई चैतन्यद्रव्य है ही नहीं' ऐसा उसे भासित हुआ है। वस्तुस्वरूप भी ज्योंका त्यों अनादिका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है और भ्रान्ति भी अनादिकी है। क्या द्रव्य अपना स्वभाव—ज्ञानादि सामर्थ्यसे भरपूर अपना सहज अस्तित्व—कभी छोड़ेगा? तथापि भ्रान्तिके कारण, उसका मोक्ष नहीं होनेसे, मानो आत्मवस्तु कुछ है ही नहीं—ऐसा उसे भासित हुआ है। अहा! यह विशेष बात है। 'वर्तमान राग और पर्याय जितना ही मैं हूँ' ऐसी पर्यायबुद्धिके कारण, त्रैकालिक स्वरूप मानो है ही नहीं—ऐसा उसे भासित होता है। पर्यायबुद्धि कहो, अंशबुद्धि कहो या भ्रान्ति कहो—उसके कारण मानो स्वरूप छोड़ दिया है—ऐसा उसे भासित हुआ है।

'अनादिकालसे द्रव्य तो शुद्धतासे भरा है, ज्ञायकस्वरूप ही है, आनन्दस्वरूप ही है।'

चाहे जितनी क्षणस्थायी विकारी पर्यायें हो गईं, काम-क्रोध या गति आदिके विभाव परिणाम हुए, तथापि वस्तुका मूलस्वरूप तो सदाशुद्ध, ज्ञायकस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप ही है। द्रव्यके मूल स्वभावको अशुद्धता, अपूर्णताने कभी स्पर्श ही नहीं किया है। द्रव्य अनादिकालसे शुद्धता युक्त अर्थात् केवलज्ञान एवं आनन्दस्वरूप ही है, उसमें—मूल द्रव्यस्वरूपमें—अज्ञान, राग या दुःख कभी प्रविष्ट हुए ही नहीं। अज्ञान, राग और दुःख आदि तो उसकी—आत्माकी—वर्तमान क्षणिक पर्यायमें ही हैं, द्रव्यस्वभावमें नहीं। आत्माने सहज ज्ञान और आनन्दरूप अपना मूलस्वरूप कभी छोड़ा ही नहीं है, परन्तु भ्रान्तिके कारण 'छोड़ दिया है' ऐसा माना है।

'उसमें अनन्त चमत्कारिक शक्ति भरी है।'

शक्ति अर्थात् गुण। आत्मामें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, प्रभुत्व आदि अनन्त-अनन्त चमत्कारिक शक्तियाँ हैं; परन्तु दो की मुख्यतासे बात करने पर 'आत्मा ज्ञान अर्थात् ज्ञायकस्वरूप ही है और आनन्दस्वरूप ही है' ऐसा कहा। अहा! ज्ञानादि गुणोंके चमत्कारकी तो क्या बात! जिसका एक समयका पूर्ण परिणमन अक्षय और अनंत है, अनन्तानन्त, अपरिमित भावोंको एकसाथ जान लेता है, ऐसे ज्ञानगुणकी चमत्कृति तो कोई अद्भुत है! शक्ति भी अपरिमित है और पर्याय भी अपरिमित! सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर स्वानुभूतिका जो चमत्कार होता है उसमें ज्ञानादि अनन्त चमत्कारिक शक्तियोंका यथासम्भव अंशतः आनन्द आता है। अहा! वस्तु भी चमत्कारिक और उसकी स्वानुभूति भी चमत्कारिक! प्रश्न यह था कि—मुमुक्षुको सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये? उसका यह उत्तर है।

'—ऐसे ज्ञायक आत्माको सबसे भिन्न—परद्रव्यसे भिन्न, परभावोंसे भिन्न—जाननेका प्रयत्न करना चाहिये।'

'ज्ञायक आत्मा' अर्थात् क्या? अहा! वह तो सहज ज्ञान एवं सहज-आनन्दादि अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। अरे! जीवको अभी तो अपने तत्त्वके-द्रव्यके स्वरूपकी भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खबर नहीं है; उसने अनादिसे वर्तमान पर्यायें खेल खेले हैं। शास्त्रोंका ज्ञान किया, महाव्रत पाले, परन्तु वह तो एक समयकी क्षणिक पर्यायका खेल है; भीतर जो अनन्त शक्तिवान चमत्कारिक ध्रुवतत्त्व है, उस पर इसकी दृष्टि कभी नहीं गई।

इस ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप ज्ञायक आत्माको कर्म, शरीर, वाणी आदि परद्रव्योंसे तथा राग–द्वेषादि परभावोंसे तथा गुणभेदके विकल्पोंसे भी पृथक् जाननेका अंतरप्रयत्न करना। आत्मा गुणविशेषसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध अभेद द्रव्य है। अहा! राग तो नहीं, पर्याय तो नहीं, किन्तु गुणभेद भी नहीं—ऐसा जो निज शुद्धात्मद्रव्य—सबसे भिन्न ज्ञायक आत्मा—उसे समझनेका अंतर्पुरुषार्थ करना।

'भेदज्ञानका अभ्यास करना चाहिये।'

परद्रव्यसे भिन्न, रागादि विभावपर्यायसे भिन्न, अरे! निर्मल पर्याय जितना भी नहीं—इसप्रकार स्व–पर तथा स्वभाव–विभावकी भिन्नताका अभ्यास करना। आजकल तो लोगोंमें भेदज्ञानकी मुख्य बात छोड़कर बाहरकी—व्रत, तप, पूजा और भक्तिकी—बातें चलती हैं। भीतर सम्पूर्ण सर्वोत्कृष्ट चैतन्यसम्राट पड़ा रहा और जीव बाह्य क्रियाकाण्ड या शुभरागमें लग गये हैं। यहाँ कहते हैं कि—ज्ञायक आत्माको परसे तथा विभावसे भिन्नरूप जाननेका—भेदज्ञानका—अभ्यास करना। भेदज्ञानका अभ्यास ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका उपाय है।

'ज्ञायक आत्माको पहिचानना चाहिये।'

देखो, यह भेदज्ञानके अभ्यासका जोड़। अनन्तानन्त चमत्कारिक शक्तियोंके पिण्डस्वरूप निज ज्ञायक आत्माको पहिचानना, अंतरमें उसका ग्रहण करना, रुचिको उस ओर लगाना, उपादेयपनेकी महिमा सहित त्रैकालिक शुद्ध ध्रुव पूर्ण स्वरूपको ज्ञेय बनाना, ध्यानरूप पर्यायमें पूर्ण स्वरूपको ध्येय बनाना—यह कथन भी भेदसे है। भाषामें क्या आयेगा?

" 'ज्ञायकस्वरूप हूँ' ऐसा अभ्यास करना चाहिये, उसकी प्रतीति करना चाहिये, प्रतीति करके उसमें स्थिर हो जाने पर, उसमें जो अनन्त चमत्कारिक शक्ति है वह प्रगट अनुभवमें आती है।"

अनन्त शक्तिवान चमत्कारी चैतन्यतत्त्व जो ज्ञायकभाव उसका स्वरूप समझनेका अंतरंग अभ्यास करना, उसकी श्रद्धा, रुचि और प्रतीति करना। निज ज्ञायकतत्त्वका विश्वास करके उसमें स्थिर होने, लीन होनेपर जो अनन्तचमत्कारिक शक्ति है वह प्रगट अनुभवमें आती है। ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई परिणतिमें उसकी अनन्त अद्‌भुत शक्ति प्रगटरूपसे संवेदनमें आती है। शक्तिरूपसे सामर्थ्य था वह व्यक्तरूपसे वेदनमें आया। ४२६ बोल पूर्ण हुए; अब ६ बोल शेष हैं।

* * *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१७९

दिनांक ४-१-७९

वचनामृत–४२७

प्रश्न :—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे?

उत्तर :—पहले द्रव्य–गुण–पर्याय—सबको पहिचाने। चैतन्यद्रव्यके सामान्यस्वभावको पहिचानकर, उसपर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते–करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये, तो उसमें जो विभूति है वह प्रगट होती है। चैतन्यके असली स्वभावकी लगन लगे, तो प्रतीति हो; उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।

सबसे पहले चैतन्यद्रव्यको पहिचानना, चैतन्यमें ही विश्वास करना और पश्चात् चैतन्यमें ही स्थिर होना......तो चैतन्य प्रगट हो, उसकी शक्ति प्रगट हो।

प्रगट करनेमें अपनी तैयारी होना चाहिये; अर्थात् उग्र पुरुषार्थ बारम्बार करे, ज्ञायकका ही अभ्यास, ज्ञायकका ही मंथन, उसीका चिंतवन करे, तो प्रगट हो।

पूज्य गुरुदेवने मार्ग बतलाया है; चारों ओरसे स्पष्ट किया है।।४२७।।

'प्रश्न :—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे?

जिसे मोक्षकी अभिलाषा है, जिसको पूर्ण परमानन्द तथा धर्मकी दशा प्रगट करनेकी भावना है, उसे पहले क्या करना?—ऐसा पूछा है।

'उत्तर :—'

यहाँ तो मुक्तिके अभिलाषी जीवको प्रथम क्या करना—यह समझाना है न?

'पहले द्रव्य–गुण–पर्याय–सबको पहिचाने।'

द्रव्य अर्थात् ज्ञान, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि अनन्त गुणोंका अभेद पिण्ड—आत्मा; वह क्या वस्तु है? गुण अर्थात् आत्मद्रव्यकी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनन्त त्रैकालिक शक्तियाँ; वे कैसी हैं? पर्याय अर्थात् गुण–सामर्थ्य स्थायी रखकर प्रतिक्षण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होनेवाली न्यूनाधिक या पूर्ण दशाएँ; वे क्या हैं? उन सबके स्वरूपको सर्वप्रथम समझे। वस्तुस्वरूपकी सच्ची पहिचान करना वह मुमुक्षु जीवका प्रथम कर्तव्य है; क्योंकि स्वरूपकी नासमझी ही अनन्त दुःखका मूल है। 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त'—आत्माके स्वरूपको समझे बिना ही जीव अनादिकालसे दुःखी हो रहा है।

'चैतन्यद्रव्यके सामान्यस्वभावको पहिचानकर, उसपर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये, तो उसमें जो विभूति है वह प्रगट होती है।'

सर्वप्रथम करने योग्य यह है। दया, दान, व्रत और भक्ति आदि भाव तो शुभराग है। वह तो अनन्तकालसे अनन्तबार किये हैं। उनसे पुण्यका बंध और भव होते हैं परन्तु धर्म, शान्ति या भवका अभाव नहीं होता। धर्म, शान्ति और जन्म-मरणका अभाव तो आत्माकी सच्ची समझ अथवा आत्मलीनतासे होता है।

प्रथम द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप समझकर चैतन्यद्रव्यके—आत्मवस्तुके—सामान्यस्वभावकोश अर्थात् शरीर और कर्म आदि परद्रव्यसे पृथक्, रागादि विभाव रहित, क्षणिक पर्यायमात्र नहीं तथा गुणभेदसे रहित ऐसे निज चैतन्यद्रव्यसामान्यकी—जिनेश्वरदेवने जिसे ध्रुव अखण्ड ज्ञायकभाव कहा है उसकी—अंतरमें बराबर प्रतीति करे, वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें उसे लक्षमें ले, 'मैं ज्ञानानन्द-सामर्थ्यपूर्ण चैतन्यसामान्य सदृश एकरूप ध्रुवज्ञायक वस्तु हूँ'—ऐसा जानकर अंतरमें दृष्टि डाले, तो उसका अभ्यास करके-करते भीतर चैतन्यमें स्थिर हो जाये और अंतरंगविभूति प्रगट हो—ज्ञान एवं आनन्दादि गुणोंकी निर्मल शुद्धि हो। यह करना है। बाकी सब तो अनन्तबार किया है। अनन्तबार महाव्रत धारण किये, नग्न दिगम्बर साधु हुआ, परन्तु इस देह देवायलमें विद्यमान, ज्ञान एवं आनन्दके परिपूर्ण सामर्थ्यसे भरपूर आत्मा क्या वस्तु है उसकी प्रतीतिके बिना, उसकी पहिचान, दृष्टि और अभ्यास बिना अंशतः भी सुख प्राप्त नहीं हुआ; उसके महाव्रतादि सब निरर्थक हुए और चारगतिमें भ्रमण ज्योंका त्यों रहा।

जिसे सम्यग्दर्शन-धर्मका प्रथम सोपान, चारित्रधर्मका मूल आत्मदर्शन—प्रगट करना हो उसे परद्रव्य तथा रागादि विभावसे भिन्न निज ज्ञायकभावको जानकर उसमें दृष्टि लगाना, अर्थात् उसमें माहात्म्यपूर्ण रुचिका जोर देना तथा उसका बारम्बार अभ्यास करके उसमें स्थिर हो जाना। ज्ञायकस्वभावमें परिणति स्थिर होनेसे उसमें जो अनन्तज्ञान, अनन्त-आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त विभूतियाँ भरी हैं उनका अंशतः प्रगट अनुभव होता है। 'सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व'—इस न्यायसे सर्व गुणोंकी स्वाभाविक विभूति अंशतः प्रगट होती है। अहा! ऐसी बात है। पहले दया, दान, व्रत, उपवास या भक्ति करना ऐसा नहीं कहा,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु प्रथम द्रव्य–गुण–पर्यायको जानना कहा। समयसारकी १७वीं तथा १८वीं गाथामें भी, मोक्षार्थी पुरुषको पहले तो आत्माको जानना, फिर उसका श्रद्धान करना और पश्चात् उसीका आचरण करना—अनुभव द्वारा उसमें लीन होना; क्योंकि आत्मज्ञानके बिना, नहीं जाने हुएका ज्ञान गधेके सींगोंके श्रद्धान जैसा होनेसे तथा आचरण समस्त अन्य भावोंके भेद बिना आत्मामें निःशंक स्थिरतामें असमर्थ होनेसे साध्य ऐसे निज शुद्ध आत्माको नहीं साधते—ऐसा कहा है।

पहले द्रव्य–गुण–पर्याय—सबको जानकर निजज्ञायक द्रव्यस्वभावको जाने, उसपर लक्ष देकर—महात्म्यभरी दृष्टि लगाकर—उसका अभ्यास करे; ऐसा करते–करते चैतन्यमें स्थिरता हो जाती है और अंतरकी विभूति प्रगट होती है। समयसार कलश-टीका (कलश-५) में कहा है न! कि—जो कोई सहजरूपसे अज्ञानी हैं, जीवादि पदार्थोंके द्रव्यगुण–पर्यायस्वरूप जाननेके अभिलाषी हैं, उनके लिये गुण–गुणी भेदरूप कथन योग्य है। गुण–गुणीरूप भेदकथन ज्ञान उत्पन्न होनेका एक अंग है। 'जीवका लक्षण चेतना' इतना कहनेसे पुद्गलादि अचेतन द्रव्योंसे भिन्नत्वकी प्रतीति उत्पन्न होती है; इसलिये जबतक अनुभव न हो तबतक, गुण–गुणीभेदरूप कथन ज्ञानका अंग (साधन) है। तत्त्व समझनेके लिये प्रथम भेदरूप व्यवहार, हस्तावलम्बतुल्य होनेसे, आता अवश्य है, तथापि भीतर चित्चमत्कारस्वरूप परमपदार्थको प्रत्यक्षरूपसे अनुभवनेवाले पुरुषोंको वह (व्यवहार) कुछ नहीं है, झूठा—अभूतार्थ, अपरमार्थ, असत्यार्थ—है। वस्तुका अनुभव होनेपर वह व्यवहार छूट जाता है। आया कुछ समझमें? चैतन्यद्रव्यके त्रिकालशुद्ध अखण्ड एकरूप सामान्यस्वभावको—ध्रुव परिपूर्ण ज्ञायकभावको—पहिचानकर, उसपर दृष्टि—लक्ष करके, उसका अभ्यास करते–करते विकल्परहित होकर चैतन्य उसमें स्थिर हो जाय, तो उसमें चैतन्यकी अनन्त शक्तिरूप जो विभूति है वह प्रगट होती है।

'चैतन्यके असली स्वभावकी लगन लगे तो प्रतीति हो; उसमें स्थिर हो तो उसका अनुभव होता है।'

पूर्ण ज्ञानानन्द वह चैतन्यका मूलस्वभाव है, उसकी ऊपर–ऊपरसे नहीं किन्तु अंतरसे लगन लगे, उत्कंठा जागृत हो तो प्रतीति होती है, उसमें लीनता करे तो उसका निर्विकल्प अनुभव होता है। अंतरमें ज्ञायकस्वभावमें एकाग्रता होनेपर निर्विकल्प आनन्दका अनुभव होता है। अंतरमें चैतन्यशक्तिकी जो विभूति प्रगट हो—स्वानुभूति हो उसका नाम धर्म तथा मोक्षका मार्ग है।

'सबसे पहले चैतन्यद्रव्यको पहिचानना, चैतन्यमें ही विश्वास करना और पश्चात् चैतन्यमें ही स्थिर होना।'

पहले कहा था कि—प्रथम द्रव्य–गुण–पर्याय—सबको जाने, उन्हें जानकर, अब कहते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं कि सर्वप्रथम चैतन्यद्रव्यको—निज शुद्धात्मद्रव्यको—जानना, उसीको उपादेयरूपसे लक्षमें लेना, उसीका आश्रयरूपसे ग्रहण करना। तीर्थंकर केवली भगवानको तथा अजीव द्रव्योंको पहले जानना—ऐसा नहीं कहा, क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं। यहाँ तो अपने द्रव्य–गुण–पर्यायकी बात है। उनमें से द्रव्यसामान्य–निज ध्रुव ज्ञायकभाव–पर दृष्टि देना;—वह सर्वप्रथम करना है। चैतन्यसामान्य ध्रुव परमभावमें दृष्टि करके उसीमें विश्वास करना और पश्चात् उसीमें लीनता–एकाग्रता–करना। अहा! विश्वास–भरोसा वह कोई साधारण बात नहीं है भाई! यह चैतन्य महाप्रभु तो ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंका पिण्ड अद्भुत पदार्थ है—इसप्रकार पहले उससे जानना, उसीमें विश्वास करना और फिर उसीमें स्थिर होना। अहा! ज्ञान, श्रद्धान एवं स्थिरता—तीनों बातें आ गई।

टंकीमें पानी बहुत है, परन्तु नल खोले तो निकलेगा; वैसे ही ज्ञान और आनन्दादि अनन्तगुणोंसे भरपूर आत्माको विश्वास और एकाग्रतासे ग्रहण करेगा तो निर्मल पर्यायोंका प्रवाह भीतरसे प्रगट होगा। अहा! ऐसी बात है। आजकर तो बाह्य प्रवृत्तिमें—व्रत किये और भक्ति की इत्यादिमें—धर्म मान बैठे हैं। भाई! परका तथा रागका करना वह तो मरना–भावमरण है, शान्तिका घात है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि—सर्वप्रथम अपने शुद्धात्मद्रव्यसामान्यको जानना, उसीमें विश्वास करना और फिर उसीमें स्थिर होना।

'......तो चैतन्य प्रगट होगा, उसकी शक्ति प्रगट होगी।'

अपने चैतन्यद्रव्यको पहिचाने, उसकी प्रतीति करे और फिर उसीमें लीनता करे तो चैतन्यद्रव्यकी अनन्त विभूति प्रगट होगी। कहा है न! कि—'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व।'

'प्रगट करनेमें अपनी तैयारी होना चाहिये; अर्थात् उग्र पुरुषार्थ बारम्बार करे, ज्ञायकका ही अभ्यास, ज्ञायकका ही मंथन, उसीका चिंतवन करे, तो प्रगट हो।'

ज्ञायकस्वभावकी लगन, प्रतीति और उसीमें लीनता आदि प्रगट करनेमें अपनी तत्परता, अपना स्वोन्मुख पुरुषार्थ होना चाहिये; किसीकी सहायता–प्रयत्न वहाँ काम नहीं आयेगा। देव–शास्त्र–गुरु भी दिशा बतलाकर पृथक् रहते हैं कार्य नहीं कर देते। स्वानुभूति अथवा स्वरूपस्थिरतारूप कार्यके लिये स्वयं ही स्व–पर की, स्वभाव–विभावकी तथा निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी यथार्थ प्रतीति करके अंतरमें स्वसन्मुखताका उग्र पुरुषार्थ करे, ज्ञायकका अभ्यास, ज्ञायकका मंथन, उसीका एकाग्रतारूप चिंतवन करे तो वह प्रगट होता है। अहा! ऐसी बात है; अभी तो यह अनेक लोगोंको समझनेमें भी कठिन लगती है। अनादिकालसे जीव भ्रान्तिमें भटक रहा है। अनन्तबार दिगम्बर जैन साधु भी हुआ, ग्यारह अंगका पाठी और शुक्ललेश्याका स्वामी भी अनंतबार हुआ; परन्तु अंतरमें विराजमान ज्ञानानन्दादि–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामर्थ्यपूर्ण त्रैकालिक शुद्ध चैतन्य महाप्रभु पर दृष्टि नहीं की, उसका स्वीकार, सत्कार नहीं किया; रागका और एक समयकी पर्यायका स्वीकार, सत्कार तथा आदर किया। इस मिथ्यात्वपरिणतिसे जीव संसारमें भटक रहा है।

अंतरमें ज्ञायककी धुन लगना चाहिये, ज्ञायकके प्रति अभ्यासमें पुरुषार्थकी उग्रता होना चाहिये। 'ज्ञाता......ज्ञाता......ज्ञाता ऐसा जो यह ज्ञायक स्वभाव वही मैं हूँ'—इसप्रकार उसीका मंथन और चिंतवन करे तो ज्ञायकका अनुभव प्रगट हो। मंथन और चिंतवन ऐसे दो शब्दोंका प्रयोग किया है। उनमें मंथन तो विकल्पस्वरूप है और 'चिंतवन' शब्दका प्रयोग विकल्प और निर्विकल्प दोनों अर्थमें होता है। मंथनमें तत्त्वकी खोज चारों ओरसे होती है और चिंतवनमें खोजपूर्वक एकाग्रता होती है। प्रथम सविकल्प एकाग्रता होती है और पश्चात् आनन्दस्वरूपमें जो स्थिरता वह निर्विकल्प एकाग्रता-चिंतवन है। 'चिंतवन करना' अर्थात् 'स्वरूपमें एकाग्र होना' ऐसा अर्थ नियमसारमें आता है। ज्ञायकका चिंतवन करे तो ज्ञायक प्रगट होता है।

'पूज्य गुरुदेवने मार्ग बतलाया है; चारों ओरसे स्पष्ट किया है।'

इस बोलके अन्तमें बहिनने अपनी विनय प्रगट करते हुए कहा है कि—(गुरुदेवने) मार्ग बतलाया है; सामान्य शुद्ध द्रव्यस्वभाव क्या है और पर्यायमें मलिनता आदि क्या है—सारा विषय अनेक पक्षोंसे समझाया है; परन्तु समझना इसे (जीवको) है न!

❋

वचनामृत-४२८

प्रश्न :—आत्माकी विभूतिको उपमा देकर समझाइये।

उत्तर :—चैतन्यतत्त्वमें विभूति भरी है। कोई उपमा उसे लागू नहीं होती। चैतन्यमें जो विभूति भरी है वह अनुभवमें आती है; उपमा क्या दी जाय? ॥४२८॥

'प्रश्न :—आत्माकी विभूतिको उपमा देकर समझाइये।'

प्रश्नकार कहता है कि—आत्माकी विभूति अनन्त है, परन्तु हम उसे नहीं समझ सकते, तो आत्माकी विभूति कोई उपमा देकर समझाइये न!

'उत्तर :—'

आत्मविभूतिको समझनेकी जिसे अंतरंग जिज्ञासा है उसे उत्तर देकर समझाते हैं—

'चैतन्यतत्त्वमें विभूति भरी है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चैतन्य तत्त्वमें अर्थात् ज्ञायक आत्मामें सहजज्ञान, सहज सुख, सहज वीर्य आदि अनन्त विभूतियाँ भरी हैं; वह तो अनंत-अनंत विभूतियोंका रत्नाकर है। स्वयंभूरमण समुद्रके तलमें मात्र रत्न ही हैं, वैसे ही स्वयंभू-स्वतःसिद्ध ऐसे ज्ञायक महासागरमें गुणरत्न भरे हैं। असंख्यात योजनके विस्तारवाले स्वयंभूरमण समुद्रमें मात्र असंख्य रत्न ही हैं, परन्तु असंख्यप्रदेशी ज्ञायक महासागरमें तो ज्ञानादि गुणरत्न अनन्तानन्त हैं।

'कोई उपमा उसे लागू नहीं होती।'

अहा! चैतन्यमय अनन्तानन्त शक्तियोंके महासागरको क्या उपमा दी जाय?—किसकी उपमा दें? एकसमयके परिणमनमें विश्वके सम्पूर्ण भावोंको—समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायको—एकसाथ, उनकी तीनोंकालकी विशेषताओं सहित, जान ले ऐसे परिपूर्ण सामर्थ्ययुक्त ज्ञानगुण, परिपूर्ण स्वाभाविक आह्लादरूप परिणमे ऐसे सामर्थ्ययुक्त आनन्दगुण आदि सहित अनन्त-अनन्त गुणविभूति जिसमें सदा भरी पड़ी है और जिसका अवलम्बन लेनेसे उन समस्त गुणोंकी विभूति अनुभवमें आती है ऐसे उस महान चैतन्य भगवानको अथवा उसकी चैतन्यविभूतिको कोई उपमा लागू नहीं होती।

'चैतन्यमें जो विभूति भरी है वह अनुभवमें आती है; उपमा क्या दी जाय?'

चैतन्यद्रव्यमें अनन्तज्ञान, अनन्त-आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त रमणता, अनन्त-वीतरागता आदि जो अनन्त शक्तिकी विभूति भरी है वह वेदनमें आती है; उसे उपमा क्या दी जाय? 'अनुभवैकगम्यमहिमा'—मात्र अनुभवसे ही ज्ञात होनेयोग्य जिसकी अचिन्त्य महिमा है उसे क्या उपमा दी जाय? नाम दिया जाता है कि चैतन्य रत्नाकर, परन्तु वह रत्न क्या वस्तु है? रत्नाकरमें तो जड़ रत्न होते हैं, आत्मा तो अनन्त-अनन्त चैतन्यमय गुणरत्नोंका आकर-समुद्र है। अहा! चैतन्यरत्नाकरको जड़की उपमा क्या दी जाय?—कैसे लागू होगी? वह तो स्वसन्मुख होनेपर उसकी वानगी मात्र अनुभवमें आती है। अहा! वह अनुभव कैसा? वह विभूति कैसी? वह वैभव कैसा? काहेकी उपमा देकर वर्णन करें? अंतरमें स्वभावका आश्रय करनेवाली दृष्टि हो तब 'अहो! यह ऐसी अद्‌भुत वस्तु है!'—ऐसा ग्रहण होकर वह अनुभवमें आती है, वेदनमें आती है। वह वस्तु कोई बहिर्लक्षी धारणाका विषय नहीं है। स्वलक्षी ज्ञानकी वर्तमान पर्यायमें इतना सामर्थ्य है कि चैतन्य द्रव्य सामान्यको जाननेसे तद्‌गत अनन्त विभूतिका, अनन्त गुणसामर्थ्योंका ज्ञान तथा अंशतः यथासम्भव वेदन भी उसको होता है। चैतन्यमें जो विभूति भरी है वह वेदनमें आती है, परन्तु उसे उपमा क्या दी जाय?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रोता :—हमें पहले क्या करना चाहिये?

उत्तर :—पहले आत्माको यथार्थ समझना, फिर उसका श्रद्धान करके उसीमें जाना–स्थिर होना, उसका अनुभव करना।

श्रोता :—आत्माको किसप्रकार समझें?

उत्तर :—'ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता'रूपसे जो सदा विद्यमान है ऐसे भगवान आत्माको पहले तो जाने कि—यह जो ज्ञातारूपसे ख्यालमें आता है वही मैं हूँ। तत्पश्चात् उसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है; क्योंकि जाने बिना श्रद्धान किसका? आत्माका ज्ञान और श्रद्धान होनेके पश्चात् द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप समस्त अन्यभावोंसे भेद करके आश्रयभूत अपने आत्मामें स्थिर होगा। इसप्रकार पहले आत्माको यथार्थ जानना और फिर उसका श्रद्धान करके उसीमें लीन होना।—यह एक ही कार्य करने जैसा है। अहा! ऐसी बातें हैं। वे बाहरकी भाषासे समझमें नहीं आ सकतीं। संकेत से भी वे पर हैं। स्वयं अंतरमें लक्ष करे तो गुरुने लक्ष कराया ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है। 'ते तो प्रभुअे आपीयो वर्तुं चरणाधीन'—'गुरुने आत्मा दिया' ऐसा निमित्त और व्यवहारका कथन है, वास्तवमें तो स्वयं ही अपनी उपादानशक्तिसे अंतरमें लक्ष करके जब आत्माको समझा–अनुभव किया तब गुरुका उपकार व्यवहारसे कहा जाता है।

चैतन्यमें जो विभूति भरी है वह निर्विकल्परूपसे अनुभवमें आती है। उसका वर्णन कौनसी उपमा देकर होगा? वर्णन–वाणी जड़ और आत्मा चैतन्य–उदय–अस्त जितना अन्तर है। श्रीमद्‌ने कहा है न! कि—

जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें,
कह न सके उसको जब श्री भगवान भी;
उस स्वरूपको अन्य वाणी क्या कहेगी?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान भी।

वस्तुस्वरूपमात्र अनुभवगम्य होनेपर भी सप्तभंगीमें उसे 'कथंचित् वक्तव्य' कहा है। यदि सर्वथा अव्यक्त हो तो अन्य जीवको समझनेकी बात ही नहीं बन सकेगी—जिनेन्द्रदेशना ही व्यर्थ सिद्ध होगी। चैतन्यकी विभूतिके वाणी द्वारा संकेत होते हैं, परन्तु उसका वेदन तो अनुभव होनेपर ही होता है। वह अनुभवमें आता है परन्तु उसकी उपमा क्या दी जाय? वह तो उपमातीत अचिन्त्य वस्तु है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१८०

दिनांक ५-१-७९

वचनामृत–४२९

प्रश्न :—प्रथम आत्मानुभव होनेसे पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है?

उत्तर :—अन्तिम विकल्पका कोई नियम नहीं है। भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्वकी सन्मुखताका अभ्यास करते–करते चैतन्यतत्त्वकी प्राप्ति होती है। जहाँ ज्ञायककी ओर परिणति ढल रही होती है, वहाँ कौनसा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्तमें अमुक ही विकल्प होता है) ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधाराकी उग्रता–तीक्ष्णता हो वहाँ 'विकल्प कौनसा?' उसका सम्बन्ध नहीं है।

भेदज्ञानकी उग्रता, उसकी लगन, उसीकी तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। अभ्यास करे, गहराईमें जाय, उसके तलमें जाकर पहिचाने, तलमें जाकर स्थिर हो, तो प्राप्त होता है—ज्ञायक प्रगट होता है।

'प्रश्न :—आत्मानुभव होनेसे पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है?'

आत्मामें जो विभूति भरी है उसे कोई उपमा लागू नहीं होती, परन्तु उस विभूतिका भण्डार ऐसे ज्ञायक आत्माका अनुभव तो होता है न! वह अनुभव होनेसे पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है?—ऐसा प्रश्न है।

'उत्तर :—

भगवान आत्मा स्वभावसे शुद्ध, पूर्ण विज्ञानघन और आनन्दकन्द है; उसका सम्यक् दर्शन, उसका निर्विकल्प अनुभव होनेसे पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है? इस प्रश्नका उत्तर अब कहते हैं :—

'अन्तिम विकल्पका कोई नियम नहीं है।'

आत्मानुभव होनेसे पूर्व, स्वभावसन्मुखताके तथा पर और विभावसे विमुखताके अनेक प्रकारके विकल्प आते अवश्य हैं; परन्तु अन्तिम विकल्प अमुक एक ही प्रकारका हो ऐसा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई नियम नहीं है। अन्तिम विकल्पसे भी वस्तु तो प्राप्त नहीं होती। वह अन्तिम विकल्प कैसा?—शुभराग कैसा?—उसका कोई नियम नहीं है। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा विकल्प भी हो सकता है और 'यह शरीरादि अथवा रागादि मैं नहीं हूँ' ऐसा विकल्प भी हो सकता है। उसमें अन्तिम विकल्प कौनसा होता है—ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें सविकल्प द्वारसे निर्विकल्प परिणाम होनेका विधान आता है न! वहाँ ऐसा कहा है कि 'मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ' इत्यादि विचार–विकल्प प्रथम आते हैं पश्चात् ऐसे विचार–विकल्प भी छूट जाते हैं और केवल चिन्मात्ररूप स्वरूप भासित होने लगता है। ऐसे विकल्प आते हैं, परन्तु उनमें अन्तिम अमुक ही विकल्प होता है—ऐसा कोई विशेष नियम नहीं है; स्वरूपकी ओर ढलनेमें निमित्त हो ऐसा कोई भी–चाहे जो–विकल्प होता है।

'भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्वकी सन्मुखताका अभ्यास करते–करते चैतन्यतत्त्वकी प्राप्ति होती है।'

स्व–परके तथा स्वभाव–विभावके भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्वके सन्मुख होनेका अभ्यास करते–करते, बीचमें जो राग आता है उसका लक्ष छोड़कर अन्तर्मुख होनेसे ज्ञायक तत्त्वकी प्राप्ति होती है। अन्तिम विकल्प ज्ञायककी प्राप्तिमें सहायक होता है—ऐसा कुछ नहीं है; क्योंकि उससे तो पृथक् होना है; जिससे पृथक् होना है वह सहायक कैसे होगा? अहा! ऐसी बाते हैं। परसे तथा रागसे भिन्न हो तब शुद्धात्म तत्त्वसन्मुख होगा न? इसलिये यहाँ 'भेदज्ञानपूर्वक' कहा है। अहा! बहिनके प्रत्येक शब्दमें बड़ी गम्भीरता है। संक्षिप्त भाषामें बहुत कह दिया है।

शरीर, वाणी, मन तथा कर्म—यह अचेतन पदार्थ तो कहीं एक ओर रह गये, परन्तु जो अन्तिम विकल्प है उससे भी अंतरमें भेद करने पर, शुद्ध ज्ञायककी सन्मुखताका अभ्यास करने पर अर्थात् परसन्मुखताकी वृत्तिको तोड़ने पर, शुद्धात्मतत्त्वकी अनुभवमें प्राप्ति होती है। अहा! भेदज्ञानकी तो कोई अनुपम महिमा है। जो कोई मुक्तिको प्राप्त हुए हैं वे सब भेदज्ञानसे हुए हैं, जो बँधे हैं वे भेदज्ञानके अभावसे बँधे हैं। जीवकर्मसे बँधा है और कर्म मार्ग दें तो मुक्ति प्राप्त हो—यह बात सत्य नहीं है। भेदविज्ञानसे सिद्ध होते हैं और उसके अभावसे बंध होता है—यह एक ही नियम है। यह तो वीतरागमार्ग है। वर्तमानमें तो मार्गके नामसे बड़ा फेरफार हो गया है, इसलिये यह बात सूक्ष्म लगती है। भेदज्ञानपूर्वक ज्ञायकतत्त्वकी सन्मुखताका अभ्यास करते–करते अनुभवमें उसकी प्राप्ति होती है। अहा! भाषा जड़ और आत्मा अरूपी एवं चैतन्य; जड़ भाषा द्वारा चैतन्यकी बातें कैसे करना! भाषामें कितना आयगा?

'जहाँ ज्ञायककी ओर परिणति ढल रही होती है, वहाँ कौनसा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्तमें अमुक ही विकल्प होता है) ऐसा 'विकल्प' सम्बन्धी कोई नियम नहीं है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तमान ज्ञानकी परिणतिका ज्ञायकके प्रति ढलना वही स्वसन्मुखता है। तब अन्तिम 'विकल्प' सम्बन्धी ऐसा कोई नियम नहीं है कि 'ऐसा ही' विकल्प होता है। किसीको द्रव्य–गुण–पर्यायका, किसीको उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यका, किसीको स्वभावविभावका, किसीको गुण–गुणीके भेदका, किसीको द्रव्यसामान्यका अथवा गुण–पर्यायके भेदका विकल्प होता है; परन्तु वहाँ अन्तिम अमुक प्रकारका विकल्प हो—ऐसा कोई नियम नहीं है।

''ज्ञायकधाराकी उग्रता–तीक्ष्णता हो वहाँ 'विकल्प कौन सा?' उसका सम्बन्ध नहीं है।''

पूर्णानन्दघन ज्ञायक आत्मा, जोकि उसका आश्रय करनेवाली वर्तमान पर्यायसे भी पार है, उसकी धाराकी—'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी ज्ञातृपरिणतिकी–उग्रता अर्थात् तीक्ष्णता हो वहाँ अन्तिम 'विकल्प कौनसा?' उसका सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दर्शन होनेपर, रागसे भिन्न होनेपर, अन्तरोन्मुखता होनेपर, अन्तिम विकल्प कौनसा?—उसका कोई नियम नहीं है। स्वसन्मुखताका उचित कोई भी विकल्प हो, तथापि उससे भेदज्ञान वर्तता है अर्थात् वहाँ विकल्पका अवलम्बन नहीं है। अहा! मार्ग तो ऐसा है, उसकी विधि यही है। लोगोंको कठिन लगता है, परन्तु क्या किया जाय? मार्ग तो समझना ही पड़ेगा।

'भेदज्ञानकी उग्रता, उसकी लगन, उसकी तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।'

परद्रव्य और रागादि विभावसे—देव–शास्त्र–गुरु अथवा तत्त्वचिन्तनके शुभभावसे भी—भिन्न होकर स्वसन्मुखताका होना ही भेदज्ञानकी उग्रता है। जिसे आत्मानुभवकी प्राप्ति करना है उसे भेदज्ञानकी उग्रता, उसकी लगन, उसीकी तीव्रता होती है, शब्दसे उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह उग्रता, लगन, उत्कंठा, तीव्रताका वर्णन शब्दोंसे क्या होगा? उसे तो संकेतसे कहते हैं।

'अभ्यास करे, गहराईमें जाय, उसके तलमें जाकर पहिचाने, तलमें जाकर स्थिर हो, तो प्राप्त होता है—ज्ञायक प्रगट होता है।'

तीव्र पुरुषार्थ करके रागसे भिन्न होनेका अन्तर्मुख अभ्यास करे, पर्यायका लक्ष छोड़कर भीतर ध्रुवतलमें–आत्मस्वभावकी गहराईमें—जाय तो ज्ञायक प्रगट हो। 'लक्ष' और 'प्रगटना' दोनों हैं तो पर्यायें; कारण–कार्यपना पर्यायमें होता है। वेदान्तकी मान्यतानुसार वस्तु पर्यायरहित, सर्वथा कूटस्थ नहीं है। वस्तु स्वभावसे एकरूप ध्रुव है—ऐसा निर्णय किसने किया? वस्तु स्वयं ही अपनी पर्याय द्वारा, अन्तर्मुख होकर अपने ज्ञानादि सामर्थ्य भरपूर ध्रुवभावका निर्णय करती है। आया कुछ समझमें? यह तो तत्त्वका मक्खन है! पर्याय है वह क्षणवर्ती ऊपरी भाव है और अंतरमें जो तल है वह नित्य एकरूप स्थायी सामर्थ्य भरपूर ध्रुवस्वभाव है। भाई! तू अपनी वर्तमान पर्यायको, जो बाहरका लक्ष करती है उसको, अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्रुवतलकी ओर मोड़कर उसे पहिचान, उसमें जाकर स्थिर हो, तो वह ध्रुवतल प्राप्त होगा—ज्ञायक प्रगट होगा।

'तलमें जाना' उसका अर्थ क्या? कि—वर्तमान पर्यायमें जो रागांश है वह आकुलतास्वरूप है और ज्ञान है वह मात्र 'ज्ञाता' स्वरूप है—इसप्रकार पहले जानना अभी यह भेदज्ञान विकल्परूप है; पश्चात् यह जो 'ज्ञातृत्व' है वह अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव परिपूर्ण सामर्थ्य सहित है—इसप्रकार वर्तमान ज्ञानपरिणतिके ऊपरसे लक्ष हटाकर दृष्टिको अंतरमें अनन्त महात्म्य भरपूर ध्रुव ज्ञायक–ज्ञानपिण्ड—पर स्थिर करना उसे 'तलमें जाना' कहते हैं। समयसारमें उसे 'भूतार्थका आश्रय करना' ऐसा कहा है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभाव दृष्टिका आश्रय होनेसे उसे मुख्य करके 'भूतार्थ' कहा है और गुणभेद अथवा शुद्धाशुद्ध पर्याय आदि व्यावहारिक भावोंके आश्रयसे विकल्प उठते हैं इसलिये उन्हें गौण करके 'अभूतार्थ' कहा है। अभूतार्थ कहा उससे क्या पर्याय नहीं है? तब फिर यह बंध–मोक्षका कार्य तो पर्यायमें ही होता है। यदि पर्याय ही न हो तो बंध–मोक्षका भी अभाव सिद्ध होगा, जो कि प्रत्यक्षविरुद्ध है। तलमें जाकर माने तो ज्ञायक प्रगट हो। तलको जानेगा कौन? तलमें जायगा कौन?—यह सब कार्य तो पर्यायमें होता है। वस्तुमें पर्यायरूप विशेष अंश है अवश्य, परन्तु वह आश्रय करने योग्य नहीं है; आश्रय करने योग्य तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भूतार्थ स्वभाव है।

समयसारकी ११वीं गाथाकी टीकामें 'ज्ञायक अनादिसे तिरोभूत (ढँका हुआ) था वह, अंतर्मुख दृष्टि होनेपर आविर्भूत हुआ'—ऐसा कहा है। ज्ञायक तो सदा एकरूप ज्ञायक ही है। वह कभी आविर्भूत या तिरोभूत नहीं होता, परन्तु वर्तमान पर्यायमें वह अनादिसे लक्षगत—अनुभूतिगत हुआ अर्थात् उसे 'आविर्भूत' हुआ—ऐसा कहा जाता है। अहा! उस ज्ञायकतलमें वर्तमान परिणतिको ले जाय तो ज्ञायक प्रगट हो—अनुभवगम्य हो। ज्ञानपर्यायको ध्रुवोन्मुख करे तब ज्ञायक प्रगट हुआ ऐसा कहा जाता है।

❋

वचनामृत–४३०

प्रश्न :—निर्विकल्प दशा होनेपर वेदन किसका होता है?—द्रव्यका या पर्यायका?

उत्तर :—दृष्टि तो ध्रुवस्वभावकी ही होती है; वेदन होता है आनन्दादि पर्यायोंका।

द्रव्य तो स्वभावसे अनादि–अनन्त है जो पलटता नहीं है, बदलता नहीं है। उस पर दृष्टि करनेसे, उसका ध्यान करनेसे, अपनी विभूतिका प्रगट अनुभव होता है॥४३०॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :—निर्विकल्प दशा होने पर वेदन किसका होता है?—द्रव्यका या पर्यायका?

शरीर, वाणी और मन; पत्नी, पुत्र, परिवार और पैसादि परद्रव्य तथा राग–द्वेष और शुभाशुभादि परभावसे भिन्न अंतरमें शुद्ध ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्माकी—सर्वज्ञदेवने देखा है ऐसे निज पूर्णानन्दके नाथकी—दृष्टि होकर पर्यायके या गुणभेदके रागमिश्रित विचार छूटने पर जो स्वानुभूतिमय निर्विकल्प दशा हुई उसमें वेदन किसका होगा? त्रिकालशुद्ध द्रव्यस्वभावका—ध्रौव्यका या क्षणिक पर्यायका?

'उत्तर :—'

प्रश्न समझमें आया? अनादि मिथ्यात्वजनित भ्रान्ति दूर होनेपर चतुर्थ गुणस्थानमें अंतरंग द्रव्यदृष्टि होकर जो निर्विकल्प दशा हुई उसमें वेदन दशाका है या ध्रुव द्रव्यस्वभावका? अरेरे! अभी तो द्रव्य क्या और पर्याय क्या?—उसकी भी खबर नहीं है! सांसारिक पापकार्योंमें जीवको तत्त्वसमझनेका अवकाश कहाँ है? प्रभु! एकबार सुन तो सही की—अंतरमें तेरा त्रैकालिक ध्रुव प्रभुत्व कितना महान है। और यह जो पर्याय है वह कितनी तुच्छ एवं गौण है! निर्विकल्प दशा होनेपर वेदन किसका होता है?—पर्यायका या ध्रुवद्रव्यका?

'दृष्टि तो ध्रुव स्वभावकी ही होती है, वेदन होता है आनन्दादि पर्यायोंका।'

दृष्टि स्वयं सम्यग्दर्शनरूप निर्विकल्प पर्याय है; वह तो ध्रुव स्वभावपर ही होती है अर्थात् दृष्टिरूप पर्यायका आश्रय त्रैकालिक ध्रुव निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य है; और जो वेदन है वह तो ध्रुव स्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाली आनन्दादि पर्यायोंस्वरूप है। अहा! भाषा सादी है और भाव ऊँचे—गम्भीर हैं; आता है कुछ पकड़में?

शरीर, वाणी आदि पर हैं, जड़ हैं और धूल हैं; पैसा आदि तो कहीं दूर रह गये। आत्मामें जो पुण्य–पापके विकार होते हैं वह भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है। आत्मामें है मात्र उसके दो पक्ष—एक सामान्य अर्थात् ध्रुव और दूसरा विशेष अर्थात् पर्याय। वहाँ, दृष्टि जब ध्रुव पर होती है तब किसका वेदन होता है? धर्मकी निर्विकल्प दशा प्रगट होनेपर द्रव्यके ध्रुव पक्षका वेदन होता है या उसकी दशाका होता है? उसके उत्तरमें कहते हैं कि निर्विकल्पदशाके समय दृष्टि तो अनन्त–सामर्थ्यभरपूर ध्रुवस्वभाव पर ही होती है, परन्तु जो वेदनमें आते हैं वे अतीन्द्रियज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि पर्याय हैं। वेदन पर्यायका होता है, ध्रुवांशका नहीं। कहीं–कहीं 'ध्रुवस्वभावका वेदन' ऐसा कथन आता है, परन्तु उसका अर्थ 'ध्रुवस्वभावके आश्रयससे–अवलम्बनसे प्रगट हुई पर्याका वेदन, ऐसा समझना। वेदन स्वयं पर्याय है। जबतक दृष्टि पर तथा विभावके ऊपर थी तबतक मात्र रागादिका वेदन था; जब ध्रुव ज्ञायकभावकी दृष्टि हुई, ध्रुव स्वभावकी शक्तिवाली श्रद्धाज्ञानकी पर्याय हुई, तब उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्रुवस्वभावका वेदन हुआ कहा जाता है। कार्य-फल पर्यायमें आता है, इसलिये पर्यायका वेदन है और उस पर्यायका आश्रय-विषय ध्रुवस्वभाव होनेसे 'ध्रुवका वेदन'—ऐसे दोनों प्रकारसे कहा जाता है। आया कुछ समझमें?

निर्विकल्प दशा हुई उस समय दृष्टि-माहात्म्यभरे अभिप्रायका जोर-तो ध्रुवस्वभाव पर ही है, परन्तु वेदनमें आती हैं ज्ञान और आनन्दादिकी व्यक्त पर्यायें। ध्रौव्यका वेदन नहीं होता, परिणमनका वेदन होता है। जो प्रतिसमय बदलती है उसका वेदन होता है, जिसका बदलनेका स्वभाव ही नहीं है उस ध्रुवस्वभावका वेदन नहीं होता। अहा! बड़ी अच्छी बात आ गई है। ब्रह्मचारिणी पुत्रियाँ बहिनके (बहिनश्री चम्पाबहिनके) पास बैठी होंगी, तब किसीने पूछा होगा और सहज ही बात आ गई है। बहिनसे सहज ही बोलनेमें आया और लिखनेवालेने लिख लिया। बहिनको खबर नहीं थी कि यह लिखा जा रहा है और लिखनेवालेको (ब्रह्मचारी बहिनोंको) खबर नहीं थी कि यह पुस्तकरूपमें प्रकाशित होगा। सब सहज ही बन गया है।

सामान्यरूप जो द्रव्य है वह सदा एकरूप है। एकरूपमें वेदन कैसा? बदले उसका वेदन होता है। दृष्टि-जोर तो द्रव्यके ऊपर ही है परन्तु उसका (द्रव्यका) वेदन नहीं होता। जिनका वेदन होता है वे तो ज्ञान एवं आनन्दादि पर्यायें हैं। ध्रुवशक्तिरूपसे जो ज्ञान और आनन्दादि गुण थे वे निर्विकल्प दशा होनेपर, पर्यायमें व्यक्त होकर वेदनमें आये। इसप्रकार शक्तिका वेदन नहीं होता परन्तु व्यक्तिका-पर्यायका वेदन होता है। आता है कुछ समझमें? भाई! यह मनुष्यभव आत्माको समझकर भवका अभाव करनेके लिये है, भोगोंमें लीन रहने-संतुष्ट रहनेके लिये नहीं।

'द्रव्य तो स्वभावसे अनादि-अनन्त है जो पलटता नहीं है, बदलता नहीं है।'

देखा वस्तुका मूल स्वरूप? द्रव्य तो मूल स्वभावसे अनादि-अनन्त, एकरूप ध्रुव है; वह कभी परिवर्तित नहीं होता अर्थात् अपने मूल स्वभावको नहीं छोड़ता, और बदलता नहीं है अर्थात् रूपान्तरित नहीं होता; वह सदा निजरूप तथा एकरूप ध्रुव रहता है। ध्रुव द्रव्यस्वभाव विभाव या स्वभाव-पर्यायरूप परिणमित नहीं होता, तो फिर उसका वेदन क्या? अहा! न्यायसे समझमें आये ऐसी बात है; पहले बात ध्यानमें तो आना चाहिये न? द्रव्य स्वरूपसे तो भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है। द्रव्यस्वभावमें आवरण या अनावरण—ऐसा कुछ नहीं है।

'उस पर दृष्टि करनेसे, उसका ध्यान करनेसे, अपनी विभूतिका प्रगट अनुभव होता है।'

जो परिवर्तित नहीं होता, जो बदलता नहीं है, ऐसे ध्रुव ज्ञायक द्रव्य पर दृष्टि करनेसे,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पलटती हुई दशाको, नहीं पलटनेवाले ध्रुव ज्ञायकतत्त्व पर केन्द्रित करनेसे, तथा उसका ध्यान अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकतत्त्वमें एकाग्रता करनेसे, अपनी—ज्ञायकमें शक्तिरूपसे विद्यमान—विभूतिका प्रगट अनुभव होता है। अहा! शब्द सादे तथा अल्प, परन्तु भीतर भाव बहुत भरे हैं।

भगवान आत्मा द्रव्यस्वभावसे अनादि–अनन्त है; उसका कर्ता कोई ईश्वर नहीं है। जो सदा स्वतः 'है....है....है', उसका आदि क्या? जो स्वयं 'है,' उसका नाश कैसा? स्वतःसिद्ध स्वतंत्र पदार्थके स्वभावकी पूर्णतामें त्रुटि कैसी? परिपूर्ण सामर्थ्ययुक्त द्रव्यस्वभाव जो नित्य उदयरूप है उस पर दृष्टि करनेसे—आश्रयके रूपमें जोर देनेसे, उसे ध्यानका विषय बनानेसे—भीतर द्रव्यस्वभावमें विद्यमान अपनी ज्ञान एवं आनन्दादि विभूतिका पर्यायमें प्रगट वेदन होता है। भाषा तो सादी है भाई! भाव तो जो हैं सो हैं—अत्यन्त गम्भीर!

अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्दादि अनन्त गुणोंका भण्डार ऐसे निज ज्ञायक ध्रुव तत्त्वका अन्तरमें यथार्थ लक्ष—दृष्टि करनेसे, उसीमें एकाग्रता करनेसे, उस प्रत्येक गुणकी पर्यायमें व्यक्तरूपसे विभूति प्रगट होती है। वह आत्माका सच्चा वैभव है, लक्ष्मी, शरीर अथवा रागादि कुछ भी आत्माका वैभव नहीं है। भाई! तेरे अन्तरका वैभव—स्वभावकी चमक कोई और ही है! यह लक्ष्मी, शरीर, कुटुम्ब और कीर्ति आदि तो, स्मशानमें जलती हुई हड्डियोंसे निकलनेवाले 'फोस्फरस' की भाँति, बाहरकी–सांसारिक चमक है। अहा! ऐसा वस्तुस्वरूप! दिखलानेवाले दिखलाते हैं परन्तु देखना तो स्वयं अपनेको है न? स्वयं अंतरमें दृष्टि करे तो गुरुको निमित्त कहा जाय।

द्रव्य और गुण तो ध्रुव हैं, उनका वेदन नहीं होता। दृष्टि ध्रुवतत्त्व पर होती है। दृष्टि स्वयं पलटती पर्याय है; उसका विषय–आश्रय अपरिवर्तित ज्ञायक ध्रुवतत्त्व है। उसका ध्यान–उसमें लीनता करनेसे अपनी सामर्थ्ययुक्त विभूतिका पर्यायमें प्रगट अनुभव होता है। विभूति त्रैकालिक है और उसका पर्यायमें प्रगट अनुभव सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञानपूर्वक निर्विकल्प दशा होने पर होता है। अहा! ऐसी सादी गुजराती भाषा! परन्तु भीतर तो मक्खन भरा है मक्खन!

❋

वचनामृत–४३१

प्रश्न :—निर्विकल्प अनुभूतिके समय आनन्द कैसा होता है?

उत्तर :—उस आनन्दकी, किसी जगतके—विभावके–आनन्दके साथ, बाहरकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किसी वस्तुके साथ, तुलना नहीं है। जिसको अनुभवमें आता है वह जानता है। उसे कोई उपमा लागू नहीं होती। ऐसी अचिन्त्य अद्भुत उसकी महिमा है॥४३१॥

'प्रश्न :—निर्विकल्प अनुभूतिके समय आनन्द कैसा होता है? निर्विकल्प अनुभूति स्वयं तो वर्तमान निर्मल पर्याय है। उस समय आनंद कैसा–किस प्रकारका होता है?

'उत्तर :—'

आनन्द गुण तो त्रिकाल परिपूर्ण है; परन्तु स्वानुभूति होने पर जो आनन्द होता है वह तो वर्तमान प्रगट हुई निर्मल पर्याय है। स्वानुभूतिके समय प्रगट हुआ आनन्द कैसा होता है?—यह प्रश्न है न? उसका उत्तर देते हैं—

'उस आनन्दकी, किसी जगतके—विभावके—आनन्दके साथ, बाहरकी किसी वस्तुके साथ तुलना नहीं है।'

यह, वेदनरूप–पर्यायरूप आनन्दकी बात है, त्रैकालिक आनन्दगुणकी नहीं। अहा! उस आनन्दकी तो क्या बात! स्वानुभूति होनेपर आत्मामेंसे प्रगट हुए उस आनन्दकी किसी भी सांसारिक—वैभाविक—आनंदके साथ। किसी बाह्य वस्तुके साथ, कोई तुलना नहीं है।

'जिसको अनुभवमें आता है वह जानता है।'

आनन्द निधान ज्ञायक आत्माको पहिचानकर जिसे स्वानुभूति प्रगट हुई है वही उस अतीन्द्रिय आनन्दको यथार्थ जानता है।

'उसे कोई उपमा लागू नहीं होती।'

उसे क्या उपमा दें?

'ऐसी अचिन्त्य अद्भुत उसकी महिमा है।'

किसकी महिमा ऐसी अचिन्त्य और अद्भुत है? कि—निर्विकल्प स्वानुभव होने पर जो आनन्द आता है उसकी। अहा! निर्विकल्प द्रव्यदृष्टि होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, जिस आनन्दका अनुभव होता है वह कैसा है? तो कहते हैं कि—वह तो अचिन्त्य और अद्भुत है। उसकी महिमा वचनसे अकथ्य और मनसे अगम्य है, वह तो मात्र स्वानुभूतिगम्य है।

❒

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१८१

दिनांक ६-१-७९

वचनामृत–४३२

प्रश्न :—आज वीरनिर्वाणदिनके प्रसंग पर कृपया दो शब्द कहिये।

उत्तर :—श्री महावीर तीर्थाधिनाथ आत्माके पूर्ण अलौकिक आनन्दमें और केवलज्ञानमें परिणमित थे। आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की। चैतन्यशरीरी भगवान आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपदको प्राप्त हुए, चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया, स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिम्बरूपसे सिद्धालयमें विराज गये; अब सदा समाधिसुख–आदि अनन्तगुणोंमें परिणमन करते रहेंगे। आज भरतक्षेत्रसे त्रिलोकीनाथ चले गये, तीर्थंकर भगवानका वियोग हुआ, वीर प्रभुका आज विरह पड़ा। इन्द्रोंने ऊपरसे उतरकर आज निर्वाणमहोत्सव मनाया। देवों द्वारा मनाया गया वह निर्वाणकल्याणक महोत्सव कैसा दिव्य होगा। उसका अनुसरण करके आज भी लोग प्रतिवर्ष दिवालीके दिन दीपमाला प्रज्वलित करके दीपावली महोत्सव मनाते हैं।

आज वीरप्रभु मोक्ष पधारे। गणधरदेव श्री गौतमस्वामी तुरन्त ही अन्तरमें गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया। आत्माके स्वक्षेत्रमें रहकर लोकालोकको जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्षज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें आनन्दादि अनन्त गुणोंकी अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।

अभी इस पंचम कालमें भरतक्षेत्रमें तीर्थंकरभगवानका विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं। महाविदेहक्षेत्रमें कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है। आज भी वहाँ भिन्न–भिन्न विभागोंमें एक–एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं। वर्तमानमें विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती विजयमें श्री सीमंधरनाथ विचर रहे हैं और समवसरणमें

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विराजकर दिव्यध्वनिके स्रोत बहा रहे हैं। इस प्रकार अन्य विभागोंमें अन्य तीर्थंकरभगवन्त विचर रहे हैं।

यद्यपि वीरभगवान निर्वाण पधारे हैं तथापि इस पंचमकालमें इस भरतक्षेत्रमें वीर भगवानका शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है। वीरप्रभुके शासनमें अनेक समर्थ आचार्यभगवान हुए जिन्होंने वीरभगवानकी वाणीके रहस्यको विविध प्रकारसे शास्त्रोंमें भर दिया है। श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्यभगवन्तोंने दिव्यध्वनिके गहन रहस्योंसे भरपूर परमागमोंकी रचना करके मुक्तिका मार्ग अद्‌भुत रीतिसे प्रकाशित किया है।

वर्तमानमें श्री कहानगुरुदेव शास्त्रोंके सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्तिका मार्ग स्पष्ट रीतिसे समझा रहे हैं। उन्होंने अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो।।४३२।।

'प्रश्न :—आज वीर निर्वाणदिनके अवसर पर कृपया दो शब्द कहिये।'

दीपावली एक पावन पर्व है। यह चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर भगवानके मोक्ष कल्याणकका पावन दिवस है। इस दिन किसीने पूज्य गुरुदेवसे प्रश्न पूछा होगा।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी पिछली रात्रिमें इस भरतक्षेत्रके अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान पावापुरीमें समश्रेणीसे मोक्ष पधारे और कार्तिक कृष्णा अमावस्याके प्रातःकाल स्वर्गलोकसे आकर इन्द्रों तथा देवोंने निर्वाणकल्याणक–महोत्सव मनाया। उस उत्सवके प्रतीकरूपमें लोग आजके दिन 'दिपावली पर्व' मनाते हैं।

'उत्तर :—श्री महावीर तीर्थाधिनाथ आत्माके पूर्ण अलौकिक आनन्दमें और केवलज्ञानमें परिणमते थे।'

महावीरका जीव पहले पुरुरवा नामक भील था। उसी भवमेंसे उसका सुधार प्रारम्भ हो गया था। बीचमें दूसरे अनेक भव किये थे, अन्तिम भवमें भरतक्षेत्रके मगधदेशकी कुण्डलपुरीमें सिद्धार्थराजाकी रानी त्रिशलादेवीके गर्भसे चौवीसवें तीर्थंकरके रूपमें अवतरित हुए थे। पुरुरवा भीलोंका राजा था। वनमें एक मुनि ध्यानस्थ बैठे थे। दूरसे उनको मृग मानकर पुरुरवा बाण छोड़नेकी तैयारीमें था कि उसकी पत्नीने कहा : यह तो कोई महान सन्त, मुनिराज हैं। भीलने बाण रख दिया और मुनिराजके पास जाकर भक्तिपूर्वक वंदन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किया। मुनिराजका उपदेश सुनकर मद्य, मांस और मधुका त्यागव्रत धारण कर लिया; वह तो शुभभाव था, धर्म नहीं था। वहाँसे उसके सुधारका प्रारम्भ हुआ। वहाँसे मरकर वह देव होता है, पश्चात् क्रमशः अनेक भव करके सिंहका भव धारण करता है। यह भव 'महावीर' होनेसे पहलेका दसवाँ भव है। एक बार वह सिंह हिरनको फाड़कर खा रहा था तब आकाशमेंसे दो चारणऋद्धिधारी मुनिवरो उतरते हैं और सिंहको सम्बोधित करते हैं कि—'हे वनराज! तुम यह क्या कर रहे हो? हमने तो भगवानके पास सुना है कि—तुम दसवें भवमें महावीर तीर्थंकर होनेवाले हो। नरकगतिमें ले जानेवाली ऐसी घोर हिंसा तुम्हें शोभा नहीं देती। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा भीतर विराजमान है, उसे अंतरमें दृष्टि डालकर ग्रहण करो! उसकी अनुभूति करो! सम्यक्त्व प्राप्त करनेका तुम्हारा अवसर आ गया है।' अहा, देखो! भीतर उपादान तैयार होता है तब प्राकृतिक ही निमित्तका योग कैसा मिल जाता है! मुनिराजकी भाषा कैसी होगी? भाषा भले ही चाहे जैसी हो परन्तु उसका भाव बराबर समझ गया। उपदेश सुनते हुए सिंहकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी और अंतर्मुखदृष्टिपूर्वक वह सिंह सम्यग्दर्शन एवं निर्विकल्प स्वानुभूति प्राप्त कर लेता है। अरे! अभी तो पंजोंके नीचे मारा हुआ हिरन पड़ा है, पेटमें भी मांस चला गया है—ऐसी स्थितिमें भी जीव उन सबसे अपनी परिणति हटाकर अंतरमें पुरुषार्थपूर्वक साधनाका कार्य कर लेता है! अहा! अंतरंग पात्रता हो वहाँ निमित्तका योग सहज ही बन जाता है। निमित्त मिलाना नहीं पड़ते और निमित्तसे कार्य भी नहीं होता। सिंहकी अपनी उपादानभूत तैयारी हुई वहाँ आकाश मार्गसे जाते हुए मुनिवर उस घने जंगलमें उतरे और कहा कि—हे मृगराज! तुम भगवान हो, जिनस्वरूप हो।

घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन;
मतिमदिराके पानसों, मतवाला समुझै न।

जिन सोही है आतमा, अन्य होई सो कर्म;
कर्म कटै सो जिनवचन, तत्त्वज्ञानीको मर्म।

—प्रभु! तू जिन है न! वीतरागमूर्ति भगवान है न!—इतना सुनते ही सिंह अंतरमें उतर गया और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। आँखोंसे अश्रुधारा बहती है और अंतरमें अशुद्धताकी धारा अंशे लुप्त हो जाती है–नष्ट हो जाती है तथा स्वानुभूतियुक्त शुद्धताकी धारा प्रवाहित होती है। साधनकी अविच्छिन्न धारा सहित महावीरका जीव सिंहपर्याय छोड़कर बीचमें देव और मनुष्यके पाँचभव करके धातकी खण्डके पूर्वविदेहक्षेत्रमें चक्रवर्तीका भव धारण करता है तत्पश्चात् पूर्व तीसरे भवमें जम्बूद्वीपमें नन्दराजा होता है और मुनिदशा धारण करके तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है। वहाँसे सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्ररूपसे बाईस सागरकी आयु पूर्ण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करके जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध देशकी कुण्डलपुरीके राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके गर्भमें अषाढ शुक्ला छठवींके दिन आते हैं और देव गर्भ कल्याणकका महान उत्सव मनाते हैं। चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन जन्म कल्याणक, तीस वर्षकी आयुमें मगसिर कृष्णा दसवींके दिन केवलज्ञानकल्याणक और तीस वर्षतक दिव्यध्वनि द्वारा शासन प्रवर्तनके पश्चात् बहत्तर वर्षकी आयुमें कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके पिछले प्रहरमें निर्वाणकल्याणक—यह पाँचों कल्याणक इन्द्रों और देवोंने स्वर्गसे मध्यलोकमें आकर अति आनन्दोल्लासपूर्वक मनाये थे। कार्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन वीरनिर्वाणका महामहोत्सव हुआ उस दीपावलीके वार्षिक दिवस पर किसीने बहिनसे कहा कि—आज वीर निर्वाणदिनके अवसर पर कृपा करके दो शब्द कहें। तब बहिन बोली की—श्री महावीर तीर्थाधिनाथ आत्माके पूर्ण अलौकिक आनन्दमें तथा केवलज्ञानमें परिणमते थे।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होनेपर चतुर्थ गुणस्थानमें सिद्धकी जातिका अतीन्द्रिय अलौकिक आनन्द प्रगट होता है परन्तु वह अति अल्प है, और जब यथार्थ दिगम्बर मुनिपना प्रगट होता है तब, अंतरमें स्वरूपस्थिरताकी अत्यन्त वृद्धि हो जानेसे, उस अलौकिक आनन्दका प्रचुर स्वसंवेदन होता है; तथापि अभी आनन्द पूर्ण प्रगट नहीं हुआ है। पूर्ण अलौकिक आनन्द तो केवल ज्ञानदशा—चारों घातिकर्मोंका क्षय होनेपर अनन्त चतुष्टयरूप अरिहंतदशा प्राप्त हो तब प्रगट होता है। चतुर्थ गुणस्थानमें अंशतः आनन्द, छठवें–सातवेंमें प्रचुर आनन्द, बारहवेंमें वीतराग–आनन्द, तेरहवेंमें क्षायिक अनन्त आनन्द और सिद्धमें क्षायिक अव्याबाध आनन्द होता है।

वीरप्रभु पूर्ण आनन्द प्राप्त करनेसे पूर्व प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप मुनिदशामें थे। अहा! मुनिदशा किसे कहें! जो अंतर्बाह्य निर्ग्रंथ सन्त परमशुद्धोपयोगभूमिकाको प्राप्त हों उन्हें मुनि कहते हैं। वर्तमानमें तो दिगम्बर साधु होकर कहते हैं कि—इस पंचमकालमें शुद्धोपयोग नहीं होता, मात्र शुभोपयोग होता है। अरे भाई! साधु होकर तू यह क्या कहता है? वर्तमान पंचमकालमें यदि मात्र शुभोपयोग ही हो तो क्या धर्म नहीं है? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने तो 'पंचमकालमें धर्मध्यानरूप शुद्धोपयोग होता है' ऐसा मोक्षप्राभृतमें कहा है—

भरते दुष्मकालेय धर्मध्यान मुनिने होय छे;
ते होय छे आत्मस्थने; माने न ते अज्ञानी छे।

प्रवचनसारमें कहा है कि—सच्चे भावलिंगी आचार्य, उपाध्याय और साधु—सब परम शुद्धोपयोग भूमिकाको प्राप्त होते हैं। भूमिकानुसार व्रतादिके विकल्प आते हैं परन्तु वे हेयरूपसे वर्तते हैं, उनको वे विशेष स्वरूपस्थिरता द्वारा लाँघ जायँगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'आज उनने सिद्ध दशा प्राप्त की।'

वीर प्रभुने प्रचुर आनन्दके संवेदनरूप शुद्धोपयोगदशाको प्राप्त करके, साढ़े बारह वर्षकी उग्र स्वरूपसाधनाके पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त किया। पूर्ण आनन्द तथा केवलज्ञान परिणतिको प्राप्त वीर प्रभुने दिव्यध्वनि द्वारा तीस वर्ष तक धर्मप्रवर्तनके पश्चात् आज–कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके पिछले प्रहरमें—सिद्धदशा प्रगट की। अरेरे! लोगोंने वर्तमानमें मार्गमें बहुत गड़बड़ी कर दी है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्माका दिव्यध्वनिमें कथन है कि—जहाँ परमात्मदशा प्रगट होती है वहाँ आत्माके पूर्ण अलौकिक आनन्द एवं केवलज्ञानरूप परिणमन होता है। उन केवलज्ञानी परमात्माकी देहमुद्रा नग्नदशारूप होती है। अरे! जो सच्चे भावलिंगी सन्त हैं उनको भी वस्त्र नहीं होते, तब केवली परमात्माको वस्त्र कैसे होंगे? वीर प्रभुने प्रथम प्रचुर स्वसंवेदनयुक्त नग्नदशारूप वीतराग मुनिपना अंगीकार किया, पश्चात् पूर्ण अलौकिक आत्मिक आनन्दयुक्त केवलज्ञान प्राप्त हुआ और आज अशरीरी सिद्धदशा प्रगट की।

'चैतन्यशरीरी भगवान आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपदको प्राप्त हुए, चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया, स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिम्बरूपसे सिद्धालयमें विराज गये; अब सदा समाधि सुख–आदि अनन्त गुणोंमें परिणमन करते रहेंगे।'

भगवान आत्मा तो ज्ञानशरीरी है, यह दृश्यमान शरीर तो मिट्टीका पुतला, जड़, अचेतन, धूल है। अरे! पुण्यपापके भाव हैं वह भी कार्मणशरीरकी झिलमिलाहट है आत्माका स्वरूप नहीं है। पूर्णानन्द और केवलज्ञानस्वरूप चैतन्यशरीरी महावीर प्रभुने आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपद—चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया। अ, इ, उ, ऋ, लृ—इन पाँच ह्रस्व स्वरोंके उच्चार जितने समयके पश्चात् तुरन्त ही चैतन्यपिण्ड शरीरसे पृथक् होकर उसी समय पावापुरीकी समश्रेणीमें उनका शुद्धात्मा ऊर्ध्वगमन करके लोकके अग्रभागमें समवस्थित हो गया—पूर्ण अशरीरी चिद्रूप होकर केवल चैतन्यबिम्बरूपसे सिद्धालयमें विराज गया; अब वहाँ सादि–अनन्त काल तक समाधि सुखादि अनन्त गुणोंमें परिणमन करता रहेगा। श्रीमद्ने अपूर्व अवसरमें कहा है न! कि—

पूर्व प्रयोगादि कारणके योगसे,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो;
सादि अनन्त अनन्त समाधि सुखमें
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो. अपूर्व०

सिद्ध भगवान सादि–अनन्त काल क्या करते हैं?—तो कहते हैं कि—क्षायिक अनन्त समाधि, शान्ति, सुख, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, आदि अनन्त गुणोंकी परिपूर्ण पर्यायरूपसे निरन्तर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमन करते रहते हैं। यहाँ संसारमें भी जीव और क्या कर सकता है? क्या शरीर, वाणी अथवा स्त्री–पुत्रादिका कुछ कर सकता है? नहीं; मात्र असमाधि, अशान्ति और दुःख इत्यादिरूपसे परिणमित होता रहता है। वीरप्रभु सब सादि–अनन्त समाधिसुखादि अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायोंरूपसे निरन्तर परिणमित होते रहेंगे।

'आज भरतक्षेत्रसे त्रिलोकीनाथ चले गये, तीर्थंकरभगवानका वियोग हुआ, वीरप्रभुका आज विरह पड़ा।'

वृषभदेव भगवान कैलाश—अष्टापद—पर्वतसे मोक्ष पधारते हैं तब 'अरे! भरतक्षेत्रमें साक्षात् भगवानका वियोग हुआ'—ऐसे विरहवेदनसे भरतचक्रवर्तिके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होती है। सौधर्म इन्द्र कहते हैं—अरे मित्र भरत! यह विलाप कैसा! तुम भी चरमशरीरी हो, इसी भवमें भगवानके समान मुक्ति प्राप्त करनेवाले हो। भरत खिन्न हृदयसे कहते हैं—हे इन्द्र! सुनो! हमें अपनी खबर है, इसी भवमें हमारा मोक्ष निश्चित है, तथापि, वर्तमानमें हमारी भूमिका ऐसी है जिससे भगवानके विरहकी वेदनारूप प्रशस्त राग आ जाता है। भगवानके प्रति जो भाव है वह भी शुभराग है, धर्म नहीं, तथापि जबतक वीतरागदशा न हो तबतक ऐसा प्रशस्त राग सम्यक्त्वी तो क्या मुनिको भी आये बिना नहीं रहता; परन्तु है वह बंधका कारण; शुभाशुभ रहित शुद्धभाव वह एक ही मोक्षका कारण है। यहाँ कहते हैं कि—त्रिलोकीनाथ वीरप्रभु भरतक्षेत्र छोड़कर चले गये, तीर्थंकर सूर्य अस्त हो गया, साक्षात् अरिहंत तीर्थंकर परमात्माका विरह पड़ा।

'इन्द्रोंने ऊपरसे उतरकर आज निर्वाण महोत्सव मनाया।'

प्रथम स्वर्गका सौधर्म इन्द्र और उसकी शची इन्द्राणी—दोनों आत्मज्ञानी तथा एकावतारी होते हैं। शचीका जीव जब देवीकी पर्यायमें उत्पन्न हुआ तब मिथ्यादृष्टि था; क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीपर्यायमें उत्पन्न नहीं होता ऐसा आगमोक्त नियम है। सौधर्म इन्द्रको अपने दो सागरप्रमाण आयुकालमें असंख्य तीर्थंकरोंके पंचकल्याणक मनानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। दो सागरमें पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रमें असंख्य तीर्थंकर नहीं होते, परन्तु पाँच विदेहमें, वहाँ तीर्थंकरोंकी उत्पत्तिका प्रवाह अविच्छिन्न होनेसे, होते हैं। अहा! बत्तीस लाख विमानोंके स्वामित्ववाला और असंख्य देवोंका लाड़ला प्रथम स्वर्गका सौधर्म इन्द्र और उसके साथ अन्य स्वर्गोंके इन्द्र तथा असंख्य देवादिने स्वर्ग लोकसे उतरकर पावापुरीमें आजके दिन श्री महावीरप्रभुका निर्वाण महोत्सव मनाया था।

'देवों द्वारा मनाया गया वह निर्वाणकल्याणक महोत्सव कैसा दिव्य होगा!'

अहा! जिसे स्वर्गसे आकर देव और इन्द्र मनाते हों उस महोत्सवकी दिव्यताका तो क्या कहना!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसका अनुसरण करके आज भी लोग प्रतिवर्ष दिवालीके दिन दीपमाला प्रज्वलित करके दीपावली महोत्सव मनाते हैं।'

देवों द्वारा मनाये गये महावीर निर्वाण महोत्सवका अनुसरण करके आज भी लोगोंमें दीपमालाएँ प्रज्वलित करके तथा आतिशबाजी द्वारा दीपोत्सव महोत्सव मनानेकी प्रथा चली आ रही है।

'आज वीर प्रभु मोक्ष पधारे।'

२५०४ वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्याके प्रातःकाल अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीके पिछले प्रहरमें इस भरतक्षेत्रके चौवीसवें—चरम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान मगधदेशकी पावापुरीसे मोक्ष पधारे।

'गणधरदेव श्री गौतमस्वामी तुरन्त ही अंतरमें उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया।'

गणधर श्री गौतमस्वामी शुद्धोपयोग भूमिकाको प्राप्त तो थे ही। ज्यों ही भगवानका मोक्ष हुआ वहाँ तुरन्त ही वे अंतरमें—सम्यक्त्वका ध्येय ऐसे पूर्णानन्द आदि सामर्थ्य भरपूर ज्ञायक ध्रुवधाममें—स्थिरतापरिणतिमें गहरे उतर गये और उसी दिन पूर्ण वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञानको प्राप्त हुए।

'आत्माके स्वक्षेत्रमें रहकर लोकालोकको जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्षज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें आनन्दादि अनन्त गुणोंकी अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।'

स्व–परका यथातथ प्रकाशक स्वानुभूतिसहित मति–श्रुत ज्ञान तो उनको पहलेसे प्रगट हुआ है। यह तो पूर्ण ज्ञानकी बात है। द्रव्य और गुणसे तो भगवान आत्मा तीनोंकाल परिपूर्ण है, पर्यायमें जो अपूर्णता थी वह वीतरागता और केवलज्ञान प्राप्त होनेपर निकल गई। आत्माका स्वक्षेत्र असंख्यप्रदेशी है; उसमें ज्ञान और आनंदादि अनन्त गुण विद्यमान हैं। अनन्त गुणोंको रहनेके लिये अनन्त प्रदेशकी आवश्यकता नहीं है। आत्माके असंख्य प्रदेशमें एकसाथ रहनेवाले ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्तगुणोंकी प्रतिसमय होनेवाली अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशित हो उठीं। नीचे सम्यग्दर्शन होनेपर 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—इस न्यायसे सम्यक्त्व, ज्ञान और आनन्दादि सर्व गुणोंकी पर्यायें प्रकाशित अवश्य हो उठी हैं, परन्तु अंशतः और वेदनमें भी अल्प; मुनिवरोंको भी प्रगट अवश्य हुई हैं, परन्तु प्रमाणमें विशेष और वेदनमें अत्यन्त प्रचुर और केवलीके तो अनन्त गुणोंकी अनन्त पर्यायें प्रमाणमें तथा वेदनमें परिपूर्णरूपसे प्रकाशित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो उठी हैं। गौतमस्वामीको अंतरकी गहराईमें उतर जानेपर, आत्माके स्वक्षेत्रमें रहकर लोकालोकको जाननेवाला स्व–पर प्रकाशक अद्भुत ज्ञान प्रगट हुआ, आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त गुणोंकी अनन्त पूर्ण पर्यायें खिल उठीं।

'अभी इस पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर भगवानका विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं।'

भरतक्षेत्रमें इस समय पंचमकाल वर्त रहा है, तीर्थंकर या सामान्य केवली हों ऐसा योग इस कालमें नहीं है।

'महाविदेहक्षेत्रमें कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है।'

विदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधरस्वामी आदि बीस तीर्थंकर भगवन्त तो सदैव होते हैं। वहाँ तीर्थंकर और केवलियोंका कभी विरह नहीं होता, सदा धर्मकाल प्रवर्तता है। प्रकृतिका नियम है कि—छह महीना और आठ समयमें छहसौ आठ जीव नियमसे मोक्ष जाते हैं। भरतक्षेत्रसे वर्तमानकालमें कोई मोक्ष नहीं जाता, तो कहाँसे जाते हैं?—विदेहक्षेत्रसे। वहाँ सदा धर्मकाल वर्तता है। अपने पण्डितजीने—बहिनश्री चम्पाबेनके भाई हिंमतभाईने, जो समवसरणस्तुति बनाई उसमें कहा है न! कि—

धर्मकाल अहो! वर्ते, धर्मक्षेत्र विदेहमें;
बीस बीस जहाँ गर्जे, धोरी धर्मप्रवर्तका।

'आज भी वहाँ भिन्न–भिन्न विभागोंमें एक–एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं।'

जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप—यह ढाई द्वीप—४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्यक्षेत्र है। उसमें कुल पाँच विदेहक्षेत्र हैं। पाँच मेरुकी पूर्व–पश्चिम दिशाओंमें स्थित प्रत्येक विदेहक्षेत्रके सोलह–सोलह 'विजय' (देश) हैं। इसप्रकार विदेहक्षेत्रके कुल १६० विभाग हैं। आज भी वहाँ भिन्न–भिन्न विभागोंमें एक–एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं। विदेहक्षेत्रमें बीस तीर्थंकर तो सदा होते हैं; परन्तु किसी समय प्रत्येक विभागमें तीर्थंकर हों तो एकसाथ १६० तीर्थंकर भी होते हैं।

'वर्तमानमें विदेह क्षेत्रके पुष्कलावती विजयमें श्री सीमंधरनाथ विचर रहे हैं और समवसरणमें विराजकर दिव्यध्वनिका धोध बहा रहे हैं।'

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रके पुष्कलावती विजयमें श्री सीमंधर भगवान वर्तमानमें विराज रहे हैं; परमौदारिक शरीर है, ५०० धनुष (२००० हाथ) ऊँची देहयष्टि है, एक करोड़ पूर्वकी आयु है। (७० लाख, ५६ हजार करोड़ वर्षका एक पूर्व होता है)। केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयके धारी भगवान समवसरणमें विराजकर दिव्यध्वनिके धोध बहा रहे हैं। भगवानकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मदेशना 'ॐ'कार दिव्यध्वनिमय होती है, उनको हमारी भाँति क्रमसे निकलनेवाली भाषा नहीं होती, होंठ बन्द होते हैं; समस्त शरीरसे 'ॐ'ध्वनिका मधुरनाद उठता है, और उनका अतिशय ऐसा होता है कि सभाजन अपनी-अपनी भाषामें देशनाका भाव समझ जाते हैं।

ॐकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै,
रचि आगम उपदिशै, भविकजीव संशय निवारै।

'इस प्रकार अन्य विभागोंमें अन्य तीर्थंकर भगवन्त विचर रहे हैं।'

अरेरे! लोगोंको विश्वास कहाँ है? अन्य विजयोंमें भी वर्तमानमें तीर्थंकर विचरते हैं। श्री सीमंधरादि बीस नामोंवाले तीर्थंकर भगवान विदेहक्षेत्रमें (काल-क्रममें नवीन-नवीन होकर) सदैव होते हैं। जगतमें तीनोंकाल तीनोंलोकके (लोकालोक सर्वके) ज्ञाता सर्वज्ञ वीतराग अरिहंत परमात्माका कभी विरह नहीं होता। जगतमें यदि 'ज्ञेय' सदा है तो उसको पूर्णरूपसे जाननेवाले और जानकर दिव्यध्वनि द्वारा बतलानेवाले सशरीर परमात्मा भी सदा होते हैं, उनका विरह कभी नहीं हो सकता। भले ही वर्तमानमें भरत क्षेत्रमें तीर्थंकर नहीं हैं, परन्तु विदेहक्षेत्रमें तो सदा होते हैं; क्योंकि वहाँ सदा धर्मकाल वर्तता है।

'यद्यपि वीरभगवान निर्वाण पधारे हैं तथापि इस पंचमकालमें इस भरतक्षेत्रमें वीरभगवानका शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है।'

वीर भगवान इससमय '**णमो सिद्धाणं**'—अशरीरी सिद्ध परमात्मारूपसे लोकाग्रमें विराजते हैं, तथापि इस भरतक्षेत्रमें वर्तमानमें उनका शासन प्रवर्त रहा है।

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

शासन नायक वीतराग सर्वज्ञ श्री महावीर भगवानका उपकार वर्तमानमें इस भरतक्षेत्रमें वर्त रहा है।

'वीर प्रभुके शासनमें अनेक समर्थ आचार्य भगवान हुए जिन्होंने वीर भगवानकी वाणीके रहस्यको विविध प्रकारसे शास्त्रोंमें भर दिया है।'

महावीर भगवानके शासनमें अनेक ज्ञान-तप-ऋद्धिधारी समर्थ दिगम्बर सन्त-आचार्य भगवन्त हुए। दो हजार वर्ष पहले सनातन दिगम्बर जैनके श्रमणधर्मसे भ्रष्ट होकर वस्त्रपात्रधारी जो दूसरा पंथ निकला है वह वास्तवमें वीर प्रभुका मार्ग नहीं है। सूत्रपाहुडमें भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवने उन्हें उन्मार्गी कहा है :—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहिं वस्त्रधर सिद्धि लहै, वह होय तीर्थंकर भले,
बस नग्न मुक्तिमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं।

सच्चे भावलिंगी आचार्य, उपाध्याय अथवा साधु तो शुद्धोपयोग भूमिकाको प्राप्त होते हैं। षट् खण्डागमकी धवला टीकामें 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में जो 'लोए' और 'सव्व' शब्द हैं वे अन्तदीपक होनेसे अगले चारों पदोंमें लागू होते हैं—ऐसा कहा है। और उसकी टीका करते हुए कहा है—लोकमें त्रिकालवर्ती सर्व अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार हो। श्रेणिकराजा भावी-तीर्थंकर हैं, वर्तमानमें ८४००० वर्षकी स्थितिसे प्रथम नरकमें हैं, वहाँसे निकलकर जम्बूद्वीपके इस भरतक्षेत्रकी अगली-भविष्यकी चौवीसीके प्रथम तीर्थंकर होनेवाले हैं। उनके भावी अरिहंतपनेको अभीसे नमस्कार हो सकता है।

वीरप्रभुके शासनमें शुद्धोपयोग भूमिकाको प्राप्त अनेक महासमर्थ आचार्य भगवन्त हुए, जिन्होंने वीर भगवानकी वाणीके विविध रहस्योंको अनेक शास्त्रोंमें भर दिया है।

'श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्य भगवन्तोंने दिव्यध्वनिके गहन रहस्योंसे भरपूर परमागमोंकी रचना करके मुक्तिका मार्ग अद्‌भुत रीतिसे प्रकाशित किया है।'

श्री कुन्दकुन्दके साथ जो 'आदि' शब्द है उसमेंसे दिगम्बर भावलिंगी सन्त लेना, अन्य वस्त्र-पात्रधारी नहीं। उन्होंने तो, भगवानका नाम देकर कल्पित शास्त्र रचे हैं—महावीरभगवानके दो पिता और दो माताएँ; अर्जुनकी पत्नी महासती द्रौपदीके पाँच पति आदि अनेक कल्पित बातें लिखी हैं। उन मार्गभ्रष्ट गुरुओंको तथा उन कल्पित शास्त्रोंको मानना वह गृहीत मिथ्यात्व है। 'आदि' शब्दमें श्री उमास्वामी, कार्तिकस्वामी, पूज्यपादस्वामी, समन्तभद्र, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, अमृतचन्द्र, योगीन्दुदेव आदि दिगम्बर आचार्यभगवन्त लेना। आकाशस्तम्भ समान उन समर्थ आचार्य भगवन्तोंने वीरप्रभुकी वाणीके मर्मको विविध प्रकारसे शास्त्रोंमें भरकर अद्‌भुत रीतिसे मुक्तिमार्गका प्रकाशन किया है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने विक्रम शकके प्रारम्भमें (सं. ४९में) पूर्वविदेह क्षेत्रमें जाकर भगवान श्री सीमंधर स्वामीकी दिव्यध्वनिका साक्षात् श्रवण किया था। वहाँ आठ दिन रहकर केवली-श्रुतकेवलीके सत्समागमका लाभ लिया था। वहाँसे आकर उन्होंने इन समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकायसंग्रह, नियमसार, अष्टप्राभृत आदि शास्त्रोंकी रचना की है। इसप्रकार श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ दिगम्बर सन्तोंने वीर मुखोद्‌गत दिव्यध्वनिके गम्भीर रहस्योंसे भरपूर परमागमोंकी रचना करके मोक्षका मार्ग अद्‌भुत रीतिसे प्रकाशित किया है।

अन्तिम पैरेग्राफमें बहिनने अपनी (गुरुदेवके प्रति) बहुमानपूर्वक विनय व्यक्त की है। उसे सब अपने-आप पढ़ लें।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

[अन्तिम पैरेग्राफमें पूज्य बहिनश्रीने परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति बहुमानपूर्ण जो अहोभाव व्यक्त किया है वह इसप्रकार है :—वर्तमानमें श्री कहानगुरुदेव शास्त्रोंके सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्तिका मार्ग स्पष्टरीतिसे समझा रहे हैं। उन्होंने अपने सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जाग्रत किया है। गुरुदेवका असीम उपकार है। इसकालमें ऐसा मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह महाभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहर्निश अंतरमें रहो!]

गुरु-कहान तणो उपकार भरते गाजे रे,
स्वानुभूति भर्यो रणकार, चेतन जागे रे।

❊

गणनातीत गुरु-उपकार मुज अणु-अणुए रे,
शब्दोथी केम कथाय, नमुं नमुं भावे रे।

❊

देव-गुरु तणो वसवाट सदा मुज दिलमां रे,
शिवपद तक रहुं तुज दास—भावुं उरमां रे।

—बहिन श्री चम्पाबेन.

साधक जीव प्रारम्भसे अन्ततक निश्चयकी ही मुख्यता रखकर व्यवहारको गौण ही करते जाते हैं, इसलिये साधकदशामें निश्चयकी मुख्यताके बलसे साधकको शुद्धताकी वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता टलती ही जाती है।

—पूज्य गुरुदेवश्री.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com